भगवान बुद्ध और उनका धम्म

डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर

परिचय 5

आमुख 6

प्रथम खंड 7

सिद्धार्थ गौतम- बोधिसत्व किस प्रकार बुद्ध बने? 7

प्रथम भाग : जन्म से प्रव्रज्या 8

दूसरा भाग : सदा के लिये अभिनिष्क्रमण 29

तीसरा भाग : नये प्रकाश की खोज मे 36

चौथा भाग : ज्ञान- लाभ और नवीन- मार्ग का दर्शन 41

पाचवा भाग : बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती 45

छठाँ भाग : बुद्ध और उनके समकालीन 52

सातवाँ भाग : समानता तथा विषमता 54

द्वितीय खंड 56

धम्म-दीक्षाओं का आंदोलन 56

पहला भाग : बुद्ध और उनका विषाद योग 57

दुसरा भाग : परिव्राजको की दीक्षा 60

तीसरा भाग : कुलीनों तथा धार्मिकों की धम्म-दीक्षा 68

चौथा भाग : जन्मभूमि का आवाहन 80

पाँचवाँ भाग : धम्म- दीक्षा का पुनरारम्भ 87

छठा भाग : निम्नस्तर के लोगों की धम्म-दीक्षा 89

सातवाँ भाग : स्त्रियों की धम्म-दीक्षा 92

आठवाँ भाग : पतितों तथा अपराधियों की धम्म-दीक्षा 96

तृतीय खंड 100

बुद्ध ने क्या सिखाया 100

प्रथम भाग : 'धम्म' मे भगवान बुद्ध का अपना स्थान 101

दुसरा भाग : भगवान बुद्ध के धम्म के बारे में विविध मत 105

तीसरा भाग : धम्म क्या हैं? 107

चौथा भाग : अ-धम्म क्या हैं? 116

पाचवा भाग : सद्धम्म क्या है? 132

चतुर्थ खंड 146

मजहब (धर्म) और धम्म 146

पहला भाग : मजहब (धर्म) और धम्म 147

तीसरा भाग : बौद्ध जीवन मार्ग 165

चौथा भाग : बुद्ध प्रवचन 175

पंचम खंड 193

संघ 193

पहला भाग : संघ 194

दूसरा भाग : भिक्षु—भगवान् बुद्ध की कल्पना 198

तीसरा भाग : भिक्षु के कर्तव्य 204

चौथा भाग : भिक्षु और गृहस्थ 209

पांचवा भाग : गृहस्थों के जीवन-नियम (विनय) 212

षष्ठम खंड 217

भगवान बुद्ध और उनके समकालिन 217

पहला भाग : उनके समर्थक 218

दूसरा भाग : भगवान बुद्ध के विरोधी 223

तीसरा भाग : उनके धम्म के आलोचक 231

चौथा भाग : समर्थक और प्रशंसक 236

सप्तम खंड 242

महान परिव्राजक की अन्तिम चारिका 242

पहला भाग : निकटस्थ जनों से भेंट 243

दूसरा भाग : वैशाली से विदाई 246

तीसरा भाग : महा- परिनिर्वाण 248

अष्टम खंड 255

महामानव सिद्धार्थ गौतम 255

पहला भाग : उनका व्यक्तित्व 256

दूसरा भाग : उनकी मानवता 258

तीसरा भाग : उन्हें क्या नापसन्द था और क्या पसन्द? 264

समाप्ति 267

परिचय

भारतीय जनता के एक वर्ग की बौद्ध-धम्म में दिलचस्पी बढ़ती चली जा रही हैं - इसके लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं | इसके साथ साथ एक और स्वाभाविक मांग भी उत्तरोत्तर बढती जा रही है और वह है भगवान् बुद्ध के चरित्र और उनकी शिक्षाओं के सम्बन्ध में एक स्पष्ट तथा संगत ग्रन्थ की |

किसी भी अबौद्ध के लिये यह कार्य अत्यन्त कठिन है कि वह भगवान् बुद्ध के चरित्र और उनकी शिक्षाओं को एक ऐसे रूप में पेश कर सके कि उनमें संपुर्णता के साथ साथ कुछ भी असंगति न रहे | जब हम दीघनिकाय आदि पालि ग्रन्थों के आधार पर भगवान् बुद्ध का जीवन- चरित्र लिखने का प्रयास करते हैं तो हमें वह कार्य सहज प्रतीत नहीं होता, और उनकी शिक्षाओं की सुसंगत अभिव्यक्ति तो और भी कठिन हो जाती है | यथार्थ बात है और ऐसा कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं कि संसार में जितने भी धर्मो के संस्थापक हुए है, उनमें भगवान बुद्ध की चर्या का लेखा-जोखा हमारे सामने कई ऐसी समस्यायें पैदा करता है जिनका निराकरण यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है | क्या यह आवश्यक नहीं कि इन समस्याओं का निराकरण किया जाय और बौद्ध- धम्म के समझने - समझाने के मार्ग को निष्कण्टक किया जाय? क्या अब वह समय नहीं आ गया है कि बौद्धजन उन समस्याओं को ले, उन पर खुला विचार-विमर्श करें और उन पर जितना भी प्रकाश डाला जा सके डालने का प्रयास करें?

इन समस्याओं की ही चर्चा को उत्पेरित करने के लिये मै उनका यहां उल्लेख कर रहा हूँ |

पहली समस्या भगवान् बुद्ध के जीवन की प्रधान घटना प्रव्रज्या के ही सम्बन्ध में है | बुद्ध ने प्रव्रज्या क्यों ग्रहण की? परम्परागत उत्तर है कि उन्होने प्रव्रज्या इसलिये ग्रहण की क्योंकि उन्होने एक वृद्ध पुरुष, एक रोगी व्यक्ति तथा एक मुर्दे की लाश को देखा था | स्पष्ट ही यह उत्तर गले के नीचे उतरने वाला नहीं | जिस समय सिद्धार्थ (बुद्ध) ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी उस समय उनकी आयु २९ वर्ष की थी | यदि सिद्धार्थ ने इन्ही तीन दृष्यों को देखकर प्रव्रज्या ग्रहण की तो यह कैसे हो सकता है कि २९ वर्ष की आयु तक सिद्धार्थ ने कभी किसी बूढे, रोगी, तथा मृत व्यक्ति को देखा ही न हो? यह जीवन की ऐसी घटनायें है जो रोज ही सैकडो हजारों घटती रहती है और सिद्धार्थ ने २९ वर्ष की आयु होने से पहले भी इन्हें देखा ही होगा | इस परम्परागत मान्यता को स्वीकार करना असम्भव है कि २९ वर्ष की आयु होने तक सिद्धार्थ ने एक बुढे, रोगी और मृत व्यक्ति को देखा ही नहीं था और २९ वर्ष की आयु होने पर ही प्रथम- बार देखा | यह व्याख्या तर्क की कसौटी पर कसने पर खरी उतरती प्रतीत नहीं होती | तब प्रश्न पैदा होता है कि यदि यह व्याख्या ठीक नही तो फिर इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर क्या है?

दूसरी समस्या चार आर्य-सत्यों से ही उत्पन्न होती है | प्रथम सत्य है दुःख आर्य सत्य? तो क्या चार सत्य भगवान् बुद्ध की मूल शिक्षाओं मे समाविष्ट होते हैं ? जीवन स्वभावत: दुःख है, यह सिद्धान्त जैसे बुद्ध-धम्म की जड पर ही कुठाराघात करता प्रतीत होता है | यदि जीवन ही दुःख है, मरण भी दुःख है, पुनरूत्पत्ति भी दुःख है, तब तो सभी कुछ समाप्त है। न धम्म ही किसी आदमी को इस संसार में सुखी बना सकता है और न दर्शन ही | यदि दुःख से मुक्ति ही नही है तो फिर धम्म भी क्या कर सकता है और बुद्ध भी किसी आदमी को दुःख से मुक्ति दिलाने के लिये क्या कर सकता है क्योंकि जन्म ही स्वभावत: दुःखमय है | यह चारो आर्य-सत्य-जिनमे प्रथम आर्य-सत्य ही दुःख -सत्य है - अबौद्धों द्वारा बौद्ध-धम्म ग्रहण किये जाने के मार्ग में बडी बाधा है | ये उनके गले आसानी से नहीं उतरते | ऐसा लगता है कि ये सत्य मनुष्य को निराशावाद के गढ़े मे ढकेल देते है | ये ‘सत्य’ भगवान् बुद्ध के धम्म को एक निराशावादी धम्म के रूप में उपस्थित करते है | प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या ये चार आर्य-सत्य भगवान बुद्ध की मूल-शिक्षायें ही है अथवा ये बाद का भिक्षुओ का किया गया प्रक्षिप्तांश है?

एक तीसरी समस्या आत्मा, कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को लेकर है | भगवान बुद्ध ने ‘आत्मा’ के अस्तित्व से इनकार किया | लेकिन साथ ही कहा जाता है कि उन्होने ‘कर्म’ तथा ‘पुनर्जन्म’ के सिद्धान्त का भी समर्थन किया है | प्रश्न पैदा हो सकता हैं, ‘आत्मा’ ही नहीं तो कर्म कैसा ? ‘आत्मा’ ही नहीं तो पुनर्जन्म कैसा? ये सचमुच टेढ़े प्रश्न है। भगवान् बुद्ध ने ‘कर्म’तथा ‘पुनर्जन्म’ शब्दों का प्रयोग किन विशिष्ट अर्थो मे किया है? क्या भगवान् बुद्ध ने इन शब्दों का किन्ही ऐसे विशिष्ट अर्थो मे प्रयोग किया, जो अर्थ उन अर्थो से सर्वथा भिन्न थे, जिन अर्थो में भगवान् बुद्ध के समकालीन ब्राह्मण इन शब्दों का प्रयोग करते थे? यदि हां, तो वह अर्थ-भेद क्या था ? अथवा उन्होंने उन्हीं अर्थो मे इन शब्दों का प्रयोग किया जिन अर्थो मे ब्राह्मणजन इनका प्रयोग करते थे ? यदि हां तो क्या ‘आत्मा’ के अस्तित्व के अस्वीकार करने तथा ‘कर्म’ और ‘पुनर्जन्म’ के सिद्धान्त को मान्य करने में भयानक असंगति नहीं है ?

एक चौथी समस्या भिक्षु को ही लेकर है। भगवान बुद्ध ने किस उद्देश्य से भिक्षु संघ की स्थापना की? क्या उनका उद्देश्य एक (समाज- निरपेक्ष) आदर्श मनुष्य का निर्माण मात्र था? उथवा उनका उद्देश्य आदर्श समाज सेवकों की रचना था जो इन सहायक के मित्र, मार्ग- दर्शक तथा दार्शनिक एक साथ हों। यह एक अत्यन्त महत्व का प्रश्न है। इस पर बौद्ध - धम्म का भविष्य तक निर्भर करता है। यदि भिक्षु एक "सम्पूर्ण मनुष्य" मात्र बना रहेगा तो उसका धम्मप्रचार- कार्य में कोई उपयोग नहीं, क्योकि वह एक "सम्पूर्ण मनुष्य" होने के बावजूद एक "स्वार्थी" आदमी ही बना रहेगा। दूसरी ओर, यदि वह समाज-सेवक भी है तो उससे बौद्ध- धम्म भी कुछ आशा रख सकता है। इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया ही जाना चाहिये; सैद्धान्तिक संगति बैठाने के लिये ही नहीं, भावी बौद्ध- धम्म के हिताहित की दृष्टि से भी।

मै समझता हूँ कि मेरे द्वारा उठाये गये ये प्रश्न (जिन का उत्तर आप इस पुस्तक में पायेंगे -- अनु.) पाठकों को कुछ सोचने-विचारने पर मजबूर करेंगे और वे भी यथासमय अपना मत जागृता से व्यक्त करेंगे ही।

आमुख

"समय-समय पर प्रचलित और आनुवंशिक विश्वासों तथा विचारों पर पुनर्विचार करने; वर्तमान और विगत अनुभव के बीच सामजस्य स्थापित करने एवं ऐसी स्थिति तक पहुँचने के लिए जो भावना और चिंतन की माँगों को पूरा करती है और भविष्य का सामना करने के लिए स्व-विश्वास प्रदान करती है, मनुष्य अपने आपको बाध्य पाते हैं। यदि वर्तमान दिवस पर, व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों के महत्व को आलोचनात्मक और वैज्ञानिक गवेषणा के विषय के रूप में धर्म ने वर्धमान ध्यान आकर्षित किया है, तो इसका श्रेय दिया जा सकता है (क) वैज्ञानिक ज्ञान और चिंतन की द्रुतगामी प्रगति; (ख) इस विषय में गहनतर बौद्धिक रूचि; (ग) विश्व के सभी भागों में धर्म को सुधारने अथवा पुनर्निर्मित करने, अथवा इसके स्थान पर किसी अधिक "बुद्धिवादी" और "वैज्ञानिक" या कम 'अंधविश्वासपूर्ण' चिंतन धारा को लाने की व्यापक प्रवृत्ति और (घ) उस प्रकार की अतीत की सामाजिक, राजनीतिक और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रभाव को जिन्होंने धर्म को प्रभावित भी किया है और उससे प्रभावित भी हुई हैं। जब भी नीतिपरक अथवा नैतिक मूल्य की गतिविधियों या स्थितियों पर प्रश्न उठाया जाता है, तो उसमें धर्म का महत्व संलिप्त होता है और गहराई तक आंदोलित करने वाले सभी अनुभव 'मूल्य निरंतर' सर्वाधिक मूलभूत विचारों के पुनर्विचार को बाध्य करते हैं, चाहे वे प्रत्यक्ष रूप से धार्मिक हों अथवा नहीं। अंततोगत्वा, न्याय, मानव नियति, ईश्वर और संसार सम्बंधी समस्याएं उठती हैं और बदले में इनसे 'धार्मिक' तथा अन्य विचारों के पारस्परिक संबंध, सामाधरण ज्ञान की मान्यता और 'अनुभव' तथा 'वास्तविकता' की व्यावहारिक अवधारणाओं की समस्याएं संबद्ध होती हैं।

- 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन ऐंड इथिक्स', खंड –x, पृ. 669

प्रथम खंड

सिद्धार्थ गौतम- बोधिसत्व किस प्रकार बुद्ध बने?

पहला भाग - जन्म से प्रव्रज्या
दुसरा भाग - सदा के लिये अभिनिष्क्रमण
तीसरा भाग - नये प्रकाश की खोज
चौथा भाग - बुद्धत्व तथा नया-मार्ग
पांचवा भाग - बुद्ध तथा उनके पूर्ववर्ती
छठा भाग - बुद्ध तथा उनके समकालीन
सातवाँ भाग - समानता तथा विषमता

प्रथम भाग : जन्म से प्रव्रज्या

१. कुल

१. ईसा पूर्व छठी शताब्धी में उत्तर भारत सर्व-प्रभुत्व सम्पन्न एक राज्य न था ।
२. देश अनेक छोटे बड़े राज्यों में बँटा हुआ था । इनमें से किसी-किसी राज्य पर एक राजा का अधिकार था, किसी-किसी पर किसी एक राजा का अधिकार न था ।
३. जो राज्य किसी एक राजा के अधीन थे उनकी संख्या सोलह थी । उनके नाम थे अंग, मगध, काशी. कोसल, (वज्जि), मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मल्ल, सौरसेन, अष्मक, अवन्ति, गन्धार तथा कम्बोज ।
४. जिन राज्यो, में किसी एक 'राजा' का आधिपत्य न था, वे थे कपिलवस्तु के शाक्य, पावा तथा कुसीनारा के मल्ल, वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह, रामगाम के कोलिय, अल्लकप्प के बुलि, केसपुत्त के कालाम, कलिंग , पिपलवन के मौर्य, तथा भग्ग (भर्ग) जिनकी राजधानी सिंसुमारगिरि थी ।
५. जिन राज्यों पर किसी एक 'राजा' का अधिकार था वे जनपद कहलाते थे और जिन राज्यों पर किसी एक 'राजा' का अधिकार न था वे 'संघ' या 'गण' कहलाते थे ।
६. कपिलवस्तु के शाक्यों की शासन- पद्धति के बारे में हमे, विशेष जानकारी नहीं है। हम नहीं जानते कि वहाँ प्रजातन्त्र था अथवा कुछ लोगों का शासन था ।
७. इतनी बात हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि शाक्यों के जनतन्त्र में कई राज-परिवार थे और वे एक दुसरे के बाद क्रमश: शासन करते थे ।
८. राज-परिवार का मुखिया राजा कहलाता था ।
९. सिद्धार्थ गौतम के जन्म के समय शुद्धोदन की 'राजा' बनने की बारा थी ।
१०. शाक्य राज्य भारत के उत्तर-पूर्व कोने में था। यह एक स्वतन्त्र राज्य था ।
लेकिन आगे चलकर कोशल-नरेश ने इसे अपने शासन-क्षेत्र में शामिल कर लिया था ।
११. इस 'अधिराजिक-प्रभाव-क्षेत्र' में रहने का परिणाम यह था कि कोशल नरेश की स्वीकृति के बिना शाक्य-राज्य स्वतन्त्र रीति से अपने कुछ राजकीय अधिकारों का उपयोग न कर सकता था ।
१२. उस समय के राज्यों में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था। मगध राज्य भी ऐसा ही था । कोशल-नरेश प्रसेनजित् और मगध-नरेश बिम्बिसार सिद्धार्थ गौतम के समकालीन थे।

२. पूर्वज

१. शाक्यों की राजधानी का नाम कपिलवस्तु था । हो सकता है कि इस नगर का यह नाम महान बुद्धिवादी मुनि कपिल के ही नाम पर पड़ा हो ।
२. कपिलवस्तु में जयसेन नाम का एक शाक्य रहता था। सिंह-हुन उसका पूत्र था । सिंह-हुन का विवाह हुआ था कच्चाना से । उसके पांच पुत्र थे । शुद्धोदन, धौतोदन, शुक्लोदन, शाक्योदन तथा अमितोदन । पांच पुत्रों के अतिरिक्त सिंह-हुन की दो लडकियाँ थीं -- अमिता तथा प्रमिता ।
३. परिवार का गोत्र आदित्य था ।
४. शुद्धोदन का विवाह महामाया से हुआ था । उसके पिता का नाम अंजन था और मां का सुलक्षणा । अंजन कोलिय था और देवदह नाम की बस्ती में रहता था ।
५. शुद्धोदन बड़ा योद्धा था । जब शुद्धोदन ने अपनी वीरता का परिचय दिया तो उसे एक और विवाह करने की भी अनुमति मिल गई। उसने महाप्रजापति को चुना । महाप्रजापति महामाया की बड़ी बहन थी ।
६. शुद्धोदन बड़ा धनी आदमी था । उसके पास बहुत बड़े-बड़े खेत थे और नौकर-चाकर भी अनगिनत थे । कहा जाता है कि अपने खेतों को जोतने के लिये उसे एक हजार हल चलवाने पड़ते थे ।
७. वह बड़े अमन-चैन की जिन्दगी बसर करता था । उसके कई महल थे ।

३. जन्म

१. सिद्धार्थ गौतम ने शुद्धोदन के घर में जन्म ग्रहण किया था । उनके जन्म की कथा इस प्रकार है ।

२. शाक्य-राज्य के लोग आषाढ़ के महिने में एक महोत्सव मनाया करते थे । इस उत्सव में क्या राजा, क्या प्रजा सभी सम्मिलित होते थे ।

३. सामान्यरूप से यह महोत्सव सात दिन तक मनाया जाता था ।

४. एक बार महामाया ने इस उत्सव को बड़े ही आमोद- प्रमोद के साथ, बडी ही शान-शौकत के साथ, फूलों के साथ और सुगन्धियों के साथ मनाने का निश्चय किया। हाँ उसमें सुरामेरय आदि नशीली वस्तुओ का सर्वथा परित्याग था ।

५. सातवें दिन वह प्रात :काल उठी। सुगन्धित जल से स्नान किया । चार लाख कार्षापणों का दान दिया । अच्छे से अच्छे गहने-कपडे पहने । अच्छे से अच्छे खाने खाये । व्रत रखे । तदनंतर वह खूब सजे-सजाये शयनानगर में सोने के लिये चली गई ।

६. उस रात शुद्धोदन और महामाया निकट हुए और महामाया ने गर्भ धारण किया । राजकीय शय्या पर पड़े पड़े उसे नींद आ गई । निद्रा- ग्रस्त महामाया ने एक स्वप्न देखा ।

७. उसे दिखाई दिया कि चतुर्दिक महाराजिक देवता उसकी शय्या को उठा ले गये हैं और उन्होने उसे हिमवन्त प्रदेश में एक शाल-वृक्ष के नीचे रख दिया है । वे देवता पास खड़े हैं ।

८. तब चतुर्दिक महाराजिक देवताओं की देवियाँ वहा आई और उसे उठाकर मानसरोवर ले गई ।

९. उन्होने उसे स्थान कराया, स्वच्छ वस्त्र पहनाये, सुगन्धियों का लेप किया और फूलो से ऐसा और इतना सजाया कि वह किसी दिव्यात्मा का स्वागत कर सके ।

१०. तब सुमेध नाम का एक बोधिसत्व उसके पास आया और उसने प्रश्न किया, “मैने अपना अन्तिम जन्म पृथ्वी पर धारण करने का निश्चय किया है, क्या तुम मेरी माता बनना स्वीकार करोगी?” उसका उत्तर था -- “बड़ी प्रसन्नता से ।” उसी समय महामाया देवी की आँख खुल गई ।

११. दूसरे दिन महामाया ने शुद्धोदन से अपने स्वप्न की चर्चा की । इस स्वप्न की व्याख्या करने में असमर्थ राजा ने स्वप्न-विद्या में प्रसिद्ध आठ ब्राह्मणो को बुला भेजा ।

१२. उनके नाम थे राम, ध्वज, लक्ष्मण, मन्त्री, यण्ण, भोज, सुयाम और सुदत्त । राजा ने उनके योग्य स्वागत की तैयारी की ।

१३. उसने जमीन पर पुष्पवर्षा कराई और उनके लिये सम्मानित आसन बिछवाये ।

१४. उसने ब्राह्मण के पात्र चांदी-सोने से भर दिये और उन्हें घी, मधु, शक्कर, बढ़िया चावल तथा दूध से पके पकवानों से संतर्पित किया ।

१५. जब ब्राह्मण खा-पीकर प्रसन्न हो गये, शुद्धोदन ने उन्हें महामाया का स्वप्न कह सुनाया और पूछा --“मुझे इसका अर्थ बताओ ।”

१६. ब्राह्मणों का उत्तर था, “महाराज! निश्चित रहें। आपके यहाँ एक पुत्र होगा। यदि वह घर में रहेगा तो वह चक्रवर्ती राजा होगा; यदि गृहत्याग कर संन्यासी होगा तो वह बुद्ध बनेगा - संसार के अन्धकार का नाश करने वाला ।”

१७. पात्र में तेल धारण किये रहने की तरह महामाया बोधिसत्व को दस महीने तक अपने गर्भ में धारण किये रही । समय समीप आया जान उसने अपने मायके जाने की इच्छा प्रकट की । अपने पति को सम्बोधित करके उसने कहा-- “मै अपने मायके देवदह जाना चाहती हूँ।”

१८. शुद्धोदन का उत्तर था-- “तुम जानती हो कि तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी ।” कहारों के कन्धों पर ढोई जाने वाली सुनहरी पालकी में बिठवा कर अनेक सेवक-सेविकाओं के साथ शुद्धोदन ने महामाया को उसके मायके भिजवा दिया ।

१९. देवदह के मार्ग में महामाया को शाल-वृक्षों के एक उद्यान-वन में से गुजरना था, जिसके कुछ वृक्ष पुष्पित थे कुछ अपुष्पित । यह लुम्बिनी-वन कहलाता था ।

२०. जिस समय पालकी लुम्बिनी-वन में से गुजर रही थे, सारा लुम्बिनी वन दिव्य चित्र लता की तरह अथवा किसी प्रतापी राजा के सुसज्जित बाजार जैसा प्रतीत होता था ।

२१. जड से वृक्षों की शाखाओं के छोर तक पेड फलों और फूलों से लदे थे । नाना रंग के भ्रमर-गण गुन्जार कर रहे थे । पक्षी चहचहा रहे थे ।

२२. यह मनोरम दृश्य देखकर महामाया के मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि वह कुछ समय वहाँ रहे और क्रीडा करे । उसने पालकी ढोने वालों को आज्ञा दी कि वह उसकी पालकी को शाल-उद्यान में ले चले और वहाँ प्रतीक्षा करें ।
२३. महामाया पालकी से उतरी और एक सुन्दर शाल-वृक्ष की ओर बढ़ी । मन्द पवन बह रहा था, जिससे वृक्ष की शाखायें ऊपर-नीचे हिल डोल रही थी । महामाया ने उनमें से एक को पकड़ना चाहा ।
२४. भाग्यवश एक शाखा काफी नीचे झुक गई । महामाया ने पंजों के बल खड़ी होकर उसे पकड लिया । तुरन्त शाखा ऊपर की ओर उठी और उसका हलका सा झटका लगने से महामाया को प्रसव-वेदना आरम्भ हुई । उस शाल- वृक्ष की शाखा पकडे, खडे ही खडे महामाया ने एक पुत्र को जन्म दिया ।
२५. ५६३ ई. पू. में वैशाख पुर्णिमा के दिन बालक ने जन्म ग्रहण किया ।
२६. शुद्धोदन और महामाया का विवाह हुए बहुत समय बीत गया था । लेकिन उन्हें कोई सन्तान न हुई थी । आखिर जब पुत्र-लाभ हुआ तो केवल शुद्धोदन और उसके परिवार द्वारा बल्कि सभी शाक्यों द्वारा पुत्र जन्मोत्सव बड़ी ही शान-बान और बड़े ही ठाट-बाट के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मनाया गया ।
२७. बालक के जन्म के समय अपनी बारी से, शुद्धोदन पर कपिलवस्तु का शासन करने की जिम्मेदारी थी । वह 'राजा' कहलाया, और इसीलीये स्वाभाविक तौर पर बालक भी राजकुमार ।

४. असित का आगमन

१. जिस समय बालक का जन्म हुआ, उस समय हिमालय में असित नाम के एक बड़े ऋषि रहते थे ।
२. असित ने सुना कि आकाश-स्थित देवता "बुद्ध" शब्द की घोषणा कर रहे है । उसने देखा कि वह अपने वस्त्रों को ऊपर उछाल-उछाल प्रसन्नता के मारे इधर-उधर घूम रहे है । वह सोचने लगा कि मैं वहाँ क्यों न जाऊँ, जहाँ 'बुद्ध' ने जन्म ग्रहण किया है ।
३. जब असित ऋषि ने समस्त जम्बुद्वीप पर अपनी दिव्यदृष्टि डाली, तो देखा कि शुद्धोदन के घर में एक दिव्य बालक ने जन्म ग्रहण किया है और देवताओं की भी इतनी अधिक प्रसन्नता का यही कारण है ।
४. इसलिये वह महान ऋषि असित अपने भानजे नरदत्त के साथ राजा शुद्धोदन के घर आये और उसके महल के द्वार पर खड़े हुए ।
५. अब असित ऋषि ने देखा कि शुद्धोदन के द्वार पर लाखों आदमियों की भीड एकत्रित है। वह द्वारपाल के पास गये और कहा -- "अरे ! जाकर राजा से कहो की दरवाजे पर एक ऋषि खड़े हुए ।"
६. द्वारपाल राजा के पास गया और हाथ जोड़कर विनती की -- "राजन ! द्वार पर एक वृद्ध ऋषि पधारे है और आप से भेंट करना चाहते हैं ।"
७. राजा ने असित ऋषि के बैठने के लिये आसन की व्यवस्था की और द्वारपाल को कहा --"ऋषि को आने दो ।" महल के बाहर आकर द्वारपाल ने असित से कहा -- "कृपया भीतर पधारें।"
८. असित ऋषि राजा के सामने उपस्थित हुए और उसे खड़े-खड़े आशीर्वाद दिया -- "राजन ! आपकी जय हो । राजन! आपकी जय हो । आप चिरकाल तक जियें और अपने राज्य पर धर्मानुसार शासन करें ।"
९. तब शुद्धोदन ने असित ऋषि को साष्टांग दण्डवत् किया और उन्हें बैठने के लिये आसन दिया। जब उसने देखा कि असित ऋषि सुखपूर्वक आसीन है तो शुद्धोदन ने कहा -- "ऋषिवर ! मुझे स्मरण नहीं है कि इसके पूर्व आपके दर्शन हुए हों । आपके यहाँ आगमन का क्या उद्देश्य है? आपके यहाँ पधारने का क्या कारण है?"
१०. तब असित ऋषि ने राजा शुद्धोदन से कहा, "राजन ! तुम्हें पुत्र- लाभ हुआ है। मैं उसे देखने के लिये आया हूँ ।"
११. शुद्धोदन बोला, "ऋषिवर! बालक सोया है । क्या आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करने की कृपा करेंगे?" ऋषि का उत्तर था, "राजन! इस तरह के दिव्य विभूतियाँ देर तक सोती नहीं रहतीं । वे स्वभाव से ही जागरूक होती है ।"
१२. तब बालक ने ऋषि पर अनुकम्पा करके अपने जागते रहने का संकेत किया ।
१३. यह देख कि बालक जाग उठा है, शुद्धोदन ने उसे दृढ़तापूर्वक दोनो हाथो में लिया और असित ऋषि के सामने ले आया ।
१४. असित ने देखा कि बालक बत्तीस महापुरुष-लक्षणों तथा अस्सी अनुव्यञ्जनों से युक्त है । उसने देखा कि उसका शरीर शुक्र और ब्रह्मा के शरीर से भी अधिक दीप्त है और उसका तेजोमण्डल उनके तेजोमण्डल से लाख गुणा अधिक प्रदीप्त है । उसके मुँह से तुरन्त यह वाक्य निकला -- "निस्सन्देह यह अद्भुत पुरुष है ।" वे अपने आसन से उठे, दोनों हाथ जोडे और उसके पैरों पर गिर पड़े । उन्होने बालक की परिक्रमा की और उसे अपने हाथों में लेकर विचार-मग्न हो गये ।

१५. असित ऋषि पुरानी भविष्यवाणी से परिचित थे कि जिसके शरीर में गौतम की ही तरह के बत्तीस महापुरुष-लक्षण होंगे, वह इन दो गतियों में से एक को निश्रित रूप से प्राप्त होगा, तीसरी को नहीं । "यदि वह गृहस्थ रहेगा, तो वह चक्रवर्ती नरेश होगा ।, लेकिन यदि वह गृहत्याग कर प्रव्रजित हो जायेगा तो वह सम्यक सम्बुद्ध होगा ।"

१६. असित ऋषि को निश्चय था कि यह बालक गृहस्थ नहीं बनेगा ।

१७. बालक की ओर देखकर, वह सिसकियाँ भर- भर कर रोने लगा ।

१८. शुद्धोदन ने देखा कि असित ऋषि सिसकियाँ भर- भर कर रो रहा है ।

१९. उसे इस प्रकार रोता देखकर, शुद्धोदन के रोंगटे खडे हो गये । उसने असित ऋषि से निवेदन किया -- "ऋषिवर ! आप इस प्रकार रो क्यों रहे हैं? आंसू क्यों बहा रहे हैं? ठंडी साँस क्यों ले रहे हैं? मैं समझता हूँ कि बालक का भविष्य तो निर्विघ्न ही है ?"

२०. असित ऋषि ने राजा को उत्तर दिया – "राजन ! मैं बच्चे के लिये नहीं रो रहा हूँ । इसका तो भविष्य निर्विघ्न है । मैं अपने लिये रो रहा हूँ ।"

२१. "ऐसा क्यों?" शुद्धोदन ने पूछा । असित ऋषि का उत्तर था, "मै जरार्जीर्ण हूँ, वय:प्राप्त हूँ और यह बालक निश्चयात्मक रूप से 'बोधि' लाभ करेगा, सम्यकसंबुद्ध होगा । तदनन्तर वह लोक-कल्याण के लिये अपना धम्म-चक्र प्रवर्तित करेंगा, जो इससे पहले इस संसार में कभी प्रवर्तित नहीं हुआ है ।"

२२. "जिस श्रेष्ट जीवन की, जिस सद्धर्म की वह घोषणा करेगा वह आदि में कल्याणकारक होगा, मध्य में कल्याणकारक होगा और अन्त में कल्याणकाकरक होगा । वह अर्थ तथा व्यञ्जन की दृष्टि से निर्दोष होगा । वह परिशुद्ध होगा । वह परिपूर्ण होगा ।

२३. "जिस प्रकार राजन! कभी कहीं इस संसार में उदुम्बर (गूलर)पुष्पित होता है, उसी प्रकार अनंत युगों के अनन्तर इस संसार में कहीं बुद्धोत्पाद होता है । राजन! इसी प्रकार निश्चय से यह बालक 'बोधि' लाभ करेगा, सम्यक् सम्बुद्ध होगा और तदनन्तर अनन्त प्राणियों को इस दु:खमय सागर के पार ले जाकर सुखी करेगा ।

२४. "लेकिन राजन्! मै उस बुद्ध को नहीं देख सकूंगा! इसलिये राजन! मैं इस दु:ख से दुखी हूं और रो रहा हूँ । मेरे भाग्य में उस बुद्ध की पूजा करना नहीं बदा है ।"

२५. तब राजा ने असित ऋषि और उसके भानजे नाहक (नरदत्त) को श्रेष्ठ भोजन से संतर्पित किया और वस्त्र दान दे उनकी परिक्रमा कर वन्दना की ।

२६. तब असित ने अपने भानजे नालक को कहा, "नरदत्त! जब कभी तुम्हें यह सुनने को मिले कि यह बालक 'बुद्ध' हो गया है तो जाकर शरण ग्रहण करना । यह तेरे सुख, कल्याण और प्रसन्नता के लिये होगा ।" इतना कहकर असित ने राजा से बिदा ली और अपने आश्रम चला गया ।

५. महामाया की मृत्यु

१. पांचवें दिन नामकरण संस्कार किया गया । बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया । उसका गोत्र गौतम था । इसीलीये जनसाधारण में वह सिद्धार्थ गौतम से प्रसिद्ध हुआ ।

२. बालक के जन्म की खुशियाँ और उसके नामकरण की विधियाँ अभी समाप्त नहीं हुई थीं कि महामाया अचानक बीमार पड़ी और उसके रोग नें गम्भीर रूप धारण कर लिया ।

३. अपना अन्त समय निकट आया जान उसने शुद्धोदन और प्रजापति को अपनी शय्या के समीप बुलाया और कहा -- "मुझे विश्वास है कि असित ने मेरे बच्चे के बारे में जो भविष्यवाणी की है, वह सच्ची निकलेगी । मुझे यही अफसोस है कि मैं इस वाणी को पूरा हुआ न देख सकूंगी । "

४. "प्रजापति! मैं अपना बच्चा तुम्हे सौंप जाती हूँ। मुझे विश्वास है कि उसके लिये तुम उसकी माँ से भी बढ़कर होगी ।"

५. "मेरा बालक शीघ्र ही मातृ-हीन बालक हो जायेगा । लेकिन मुझे इसकी तनिक चिन्ता नहीं है कि मेरे बाद यथायोग्य विधि से उसका लालन-पालन नही होगा ।"

६. "अब दुखी न हों । मुझे मरने दें । मेरा अन्त समय आ पहुँचा है । यमदूत मेरी प्रतीक्षा कर रहे है ।" इतना कहते-कहते महामाया ने अन्तिम सांस ले ली । शुद्धोदन और प्रजापति दोनों को ही बड़ा दु:ख हुआ । दोनों फूटफूटकर रोने लगे ।

७. जब सिद्धार्थ की माता का देहान्त हुआ तो उसकी आयु केवल सात दिन की थी ।"

८. सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था । उसका नाम था नन्द । वह शुद्धोदन का महाप्रजापति से उत्पन्न पुत्र था ।

९. उसके ताया-चाचा की भी कई सन्तानें थीं। महानाम और अनुरुद्ध शुक्लोदन के पुत्र थे तथा आनन्द अमितोदन के। देवदत्त उसकी बुआ अमिता का पुत्र था। महानाम सिद्धार्थ की अपेक्षा बड़ा था और आनन्द छोटा।
१०. सिद्धार्थ उनके साथ खेलता-खाता बड़ा हुआ।

६. बचपन तथा शिक्षा

१. जब सिद्धार्थ थोड़ा चलने-फिरने योग्य हो गया, शाक्य जनपद के मुखिया इकट्ठे हुए और उन्होने शुद्धोदन से कहा कि बालक को ग्राह-देवी अभया के मन्दिर में ले चलना होगा।
२. शुद्धोदन ने स्वीकार किया और बालक को कपड़े पहना देने के लिये महाप्रजापति से कहा।
३. जब वह उसे वस्त्र पहना रही थी सिद्धार्थ ने अत्यन्त मधुर वाणी में अपनी मौसी से पूछा कि उसे कहाँ ले जाया जा रहा है? जब उसे पता लगा कि उसे मन्दिर ले जाया जा रहा है तो वह मुस्कराया। लेकिन शाक्यों के रीति-रिवाज का ध्यान कर वह चला गया।
४. आठ वर्ष की आयु होने पर सिद्धार्थ ने अपनी शिक्षा आरम्भ की।
५. जिन्हें शुद्धोदन ने महामाया के स्वप्न की व्याख्या करने के लिये बुलाया था और जिन्होंने सिद्धार्थ के बारे में भविष्यवाणी की थी वे ही आठ ब्राह्मण उसके प्रथम आचार्य हुए।
६. जो कुछ वे जानते थे जब वे सब सिखा चुके तब शुद्धोदन ने उदिच्य देश के उच्च कुलात्पन्न प्रथम कोटि के भाषा-विद् तथा वैयाकरण, वेद, वेदांग तथा उपनिषदों तेनु पूरे जानकर सब्बमित्त को बुला भेजा। उसके हाथ पर समर्पण का जल सिंचन कर शुद्धोदन ने सब्बमित्त को ही शिक्षण के निमित्त सिद्धार्थ को सौप दिया। वह उसका दूसरा आचार्य था।
७. उसकी अधीनता में सिद्धार्थ ने उस समय के सभी दर्शन- शास्त्रों पर अपना अधिकार कर लिया।
८. इसके अतिरिक्त उसने भारद्वाज से चित्त को एकाग्र तथा समाधिस्थ करने का मार्ग सीख लिया था। भारद्वाज आलार कालाम का शिष्य था। उसका अपना आश्रम कपिलवस्तु में ही था।

७. आरम्भिक प्रवृत्तियाँ

१. जब कभी वह अपने पिता की जमींदारी में जाता वहाँ कृषि-सम्बन्धी कोई काम न होता, वह किसी एकान्त कोने में जाकर ध्यानारूढ हो जाता।
२. निस्सन्देह उसे सभी प्रकार की शिक्षा मिल रही थी, किन्तु साथ-साथ एक क्षत्रिय के योग्य सैनिक शिक्षक की ओर से भी उदासीनता नहीं दिखाई जा रही थी।
३. शुद्धोदन को इस बात का ध्यान था कि कहीं ऐसा न हो कि सिद्धार्थ में मानसिक गुणों का ही विकास हो और वह क्षात्र-बल में पिछड जाय।
४. सिद्धार्थ स्वभाव के कारूणिक था। उसे यह अच्छा नहीं लगता था कि आदमी, आदमी का शोषण करे।
५. एक दिन अपने कुछ मित्रों सहित वह अपने पिता के खेत पर गया। वहाँ उसने देखा कि मजदूर खेत कोड़ रहे हैं बांध बांध रहे है। उनके तन पर पर्याप्त कपड़ा नहीं है। वे सूर्य के ताप से जल रहे हैं।
६. उस दृश्य का उसके चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा।
७. उसने अपने एक मित्र से कहा -- एक आदमी दूसरे का शोषण करे, क्या इसे ठीक कहा जायेगा? मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी मजदूरी पर गुलछर्रे उडाये यह कैसे ठीक हो सकता है?
८. उसके मित्रों के पास उसके इस प्रश्न का कोई उत्तर न था, क्योंकि वे पुरानी विचार-परम्परा के मानने वाले थे कि किसान-मजदूर का जन्म अपने मालिकों की सेवा करने के लिये ही हुआ है और ऐसा करना ही उनका धर्म है।
९. शाक्य लोग वप्रमंगल नाम का एक उत्सव मनाया करते थे। धान बोने के प्रथम दिन मनाया जाने वाला यह एक ग्रामीण उत्सव था। शाक्यों की प्रथा के अनुसार उस दिन हर शाक्य को अपने हाथ से हल जोतना पड़ता था।
१०. सिद्धार्थ ने हमेशा इस प्रथा का पालन किया। वह अपने हाथ से हल चलाया करता था।
११. यद्यपि वह विद्वान् था, किन्तु उसे शरीर श्रम से घृणा न थी।

१२. उसका "क्षत्रिय" कुल था, उसे धनुष चलाने तथा अन्य शस्त्रों का प्रयोग करने की शिक्षा मिली थी। लेकिन वह किसी भी प्राणि को अनावश्यक कष्ट देना नहीं चाहता था।
१३. वह शिकारियों के दल के साथ जाने से इनकार कर देता था। उसके मित्र कहते- "क्या तुम्हें शेर- चितों से डर लगता है?" वह प्रत्युत्तर देता -- "मै जानता हूँ कि तुम शेर- चितों को मारने वाले नहीं हो, तुम हिरनो तथा खरगोशों जैसे निस्पृह जानवरों को ही मारने वाले हो।"
१४. "शिकार के लिये नहीं, तो अपने मित्रों का निशाना देखने के लिये ही आओं" उसके मित्र आग्रह करते। सिद्धार्थ इस तरह के निमंत्रणों को भी अस्वीकार कर देता --"मै निर्दोष प्राणियों के वध का साक्षी नहीं होना चाहता।"
१५. उसकी इस प्रवृत्ति से प्रजापति गौतमी बड़ी चिन्तित हो उठी।
१६. वह उससे तर्क करती – "तुम भूल गए हो कि तुम एक क्षत्रिय कुमार हो। लड़ना तुम्हारा 'धर्म' है। शिकार के माध्यम से ही युद्ध-विद्या में निष्णात हुआ जा सकता है, क्योंकि शिकार करके ही तुम ठीक-ठीक निशाना लगाना सीख सकते हो। शिकार-भूमि ही युद्ध-भूमि का अभ्यास-क्षेत्र है।"
१७. लेकिन सिद्धार्थ बहुधा गौतमी से पूछ बैठते, "तो मां ! एक क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिये?" और गौतमी का उत्तर होता, "क्योंकि यह उसका धर्म है।"
१८. सिद्धार्थ उसके उत्तर से संतुष्ट न होता। वह गौतमी से पूछता --"मां! यह तो बता कि आदमी का आदमी को मारना एक आदमी का ही 'धर्म' कैसे हो सकता है?" गौतमी उत्तर देती --"यह सब तर्क एक संन्यासी के योग्य है। लेकिन क्षत्रिय का तो 'धर्म' लड़ना ही है। यदि क्षत्रिय भी नहीं लडेगा तो राष्ट्र का संरक्षण कौन करेगा।"
११. "लेकिन मां! यदि सब क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे को प्रेम करें तो क्या बिना कटे-मरे वे राष्ट्र का संरक्षण कर ही नहीं सकते?" गौतमी निरूत्तर हो जाती।
२०. वह अपने साथियों को अपने साथ बैठकर ध्यान लगाने की प्रेरणा करता। वह उन्हे बैठने का ठीक ढंग सिखाता। वह उन्हें किसी एक विषय पर चित्त एकाग्र करना सिखाता। वह उन्हें परामर्श देता कि ऐसी ही भावनाओं की भावना करनी चाहिये कि मै सुखी रहूँ, मेरे सम्बन्धी सुखी रहे और सभी प्राणी सुखी रहें।
२१. उसके मित्र उसकी बातों को महत्व न देते थे। वे उस पर हँसते थे।
२२. वे आँखे बन्द करते तो उनका चित्त उनके ध्यान के विषय पर एकाग्र न होता। इसकी बजाय उनकी आंखों के सामने नाचते वे हिरन जिनका वे शिकार करना चाहते थे, अथवा वे मिठाईयाँ जिन्हें वे खाना चाहते थे।
२३. उसके माता- पिता को उसका यह ध्यानाभिमुख होना अच्छा नहीं लगता था। उन्हें लगता था कि यह क्षत्रिय जीवन के सर्वथा प्रतिकूल है।
२४. सिद्धार्थ का विश्वास था कि योग्य भावनाओं पर चित्त एकाग्र करने से हम अपनी मैत्री-भावना को बहुत व्यापक बना सकते है। उसका कहना था कि सामान्यरूप से जब भी कभी हम प्राणियों के बारे में कुछ भी विचार करते है, हमारे मन में भेद-विभेद घर कर जाते हैं। हम मित्रों को शत्रुओं से भिन्न कर लेते है। हम अपने पालतू पशुओ को मनुष्यो से भिन्न कर लेते हैं। हम अपने मित्रों से प्रेम करते है, और प्रेम करते हैं अपने पालतू पशूओं से। हम अपने शत्रुओ से घृणा करते हैं और घृणा करते है सामान्य जन्तुओं से।
२५. "हमे इस विभाजक रेखा की सीमा के उस पार जाना चाहिये। हम यह कार्य तभी कर सकते है जब हम अपने ध्यान में इस व्यवहार - जगत की सीमाओं को लांघ सकें।"
२६. उसका बचपन करूणामय था।
२७. एक बार वह अपने पिता के खेतों पर गया। विश्राम के समय वह एक वृक्ष के नीचे लेटा हुआ प्राकृतिक शान्ति और सौन्दर्य का आनन्द लूट रहा था। उसी समय आकाश से एक पक्षी ठीक उसी के सामने आ गिरा।
२८. पक्षी को एक तीर लगा था, जिसने उसे बिंध दिया था और जिसके कारण वह तडफडा रहा था।
२९. सिद्धार्थ पक्षी की सहायता के लिये उठ बैठा। उसने उसका तीर निकाला, जख्म पर पट्टी बांधी और पीने के लिये पानी दिया। उसने पक्षी को गोद में लिया और अपनी चादर के भीतर छिपाकर उसे अपनी छाती की गरमी पहुँचाने लगा।
३०. सिद्धार्थ को आश्चर्य था कि इस असहाय पक्षी को किसने बींधा होगा? शीघ्र ही उसका ममेरा भाई देवदत्त वहाँ आ पहुँचा। वह शिकार के सभी आयुधों से सन्नद्ध था। उसने सिद्धार्थ से कहा कि उसने उडते हुए पक्षी पर तीर चलाया था। पक्षी घायल हो गया था। कुछ दूर उछलकर वह वही, आस-पास ही गिरा था। उसने सिद्धार्थ से पूछा- "क्या तुमने उसे देखा है ?"
३१. सिद्धार्थ ने 'हाँ' कहकर स्वीकार किया और वह पक्षी भी उसे दिखाया जो अब बहुत कुछ स्वस्थ हो चला था।

३२. देवदत्त ने मांग की कि उसका पक्षी उसे दे दिया जाय। सिद्धार्थ ने इनकार किया। दोनों में घोर विवाद हुआ।
३३. देवदत्त का कहना था कि शिकार के नियमों के अनुसार जो पक्षी को मारता है वही उसका मालिक होता है। इसलिये वही उसका मालिक है।
३४. सिद्धार्थ का कहना था कि यह आधार ही सर्वथा गलत है। जो किसी की रक्षा करता है, वही उसका स्वामी हो सकता है। हत्यारा कैसे किसी का स्वामी हो सकता है?
३५. दोनों में से एक भी पक्ष झुकने के लिये तैयार न था। मामला न्यायालय तक जा पहुँचा। न्यायालय ने सिद्धार्थ के पक्ष में निर्णय दिया।
३५. देवदत्त सिद्धार्थ का बद्ध-वैरी बन गया। लेकिन सिद्धार्थ की करूणा ऐसी ही अनुपम थी कि वे ममेरे भाई को प्रसन्न बनाये रखने की बजाय एक पक्षी की जान बचाना अधिक श्रेयस्कर समझते थे।
३६. सिद्धार्थ गौतम का आरम्भिक जीवन कुछ-कुछ ऐसा ही था।

८. विवाह

१. दण्डपाणि नाम का एक शाक्य था। यशोधरा उसकी लड़की थी। अपने सौन्दर्य और 'शिल' के लिये वह प्रसिद्ध थी।
२. यशोधरा अपने सोलहवें वर्ष में पहुंच गई थी और दण्डपाणी को उसके विवाह की चिन्ता ने आ घेरा था।
३. प्रथा के अनुसार दण्डपाणि ने अपने सभी पडोसी 'देशो' के तरूणों को अपनी लड़की के 'स्वयंवर' में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेजा।
४. सिद्धार्थ गौतम के नाम भी एक निमंत्रण भेजा गया था।
५. सिद्धार्थ गौतम का भी सोलहवाँ वर्ष पूरा हो चुका था। उसके माता-पिता भी उसकी शादी के लिये वैसे ही चिन्तित थे।
६. उन्होंने उसे 'स्वयंवर' में जाने को और यशोधरा का 'पाणि-ग्रहण' करने को कहा। उसने अपने माता-पिता का कहना माना।
७. आगत तरूणों में से यशोधरा ने सिद्धार्थ-गौतम को ही चुना।
८. दण्डपाणि बहुत प्रसन्न नहीं था। उसे उन दोनों के 'दाम्पत्य' जीवन की सफलता में सन्देह था।
९. उसे लगता था कि सिद्धार्थ को तो साधु-सन्तों की संगति ही अच्छी लगती है। उसे तो एकान्त प्रिय है। वह एक अच्छा सद्गृहस्थ कैसे बन सकेगा?
१०. यशोधरा सिद्धार्थ गौतम के अतिरिक्त और किसी दूसरे से विवाह न करना चाहती थी। उसने अपने पिता से पूछा क्या साधू-सन्तो की संगति को अच्छा समझना कोई अपराध है? यशोधरा का ऐसा ख्याल नहीं था।
११. यशोधरा की मां को जब मालूम आ कि यशोधरा सिद्धार्थ गौतम के अतिरिक्त और किसी दूसरे से विवाह करना ही नहीं चाहती, उसने दण्डपाणि से कहा कि उसे राजी हो जाना चाहिये। दण्डपाणि राजी हो गया।
१२. गौतम के प्रतिद्वन्द्वी निराश ही नहीं हुए बल्कि उन्हें लगता था कि उनका अपमान हो गया है।
१३. उन्हें लगता था कि कम से कम उनके प्रति 'न्याय' करने के लिये ही यशोधरा को चाहिये था कि 'चुनाव' करने से पहले किसी न किसी तरह से सबकी परिक्षा लेती।
१४. कुछ समय तो वह चुप रहे। उनका विश्वास था कि दण्डपाणि यशोधरा को गौतम का चुनाव ही न करने देगा। उनका उद्देश्य यूं ही पूरा हो जायेगा।
१५. लेकिन जब उन्होंने देखा कि दण्डपाणि असफल रहा है, उन्होंने हिम्मत से काम लिया और इस बात की मांग की कि 'लक्ष्यवेध' की एक 'परिक्षा' होनी ही चाहिये। दण्डपाणि को स्वीकार करना पड़ा।
१६. पहले तो सिद्धार्थ इसके लिये तैयार न था। लेकिन, उसके सारथी, छन्दक ने उसे समझाया कि यदि वह अस्वीकार करेगा तो यह उसके लिये, उसके परिवार के लिये तथा सबसे बढ़कर यशोधरा के लिये ही बड़ी लज्जा की बात होगी।
१७. सिद्धार्थ-गौतम के मन पर इस तर्क का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने उस 'परीक्षण' में सम्मिलित होना स्वीकार किया।
१८. 'परिक्षण' आरम्भ हुआ। प्रत्येक प्रतिद्वन्दी ने अपना-अपना कौशल दिखाया।
१९. सबके अन्त में गौतम की बारी थी। किन्तु उसी का 'लक्ष्य-वेध' सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ।
२०. इसके बाद विवाह हुआ। शुद्धोदन और दण्डपाणि दोनों को बड़ी प्रसन्नता थी। इसी प्रकार यशोधरा और महाप्रजापति भी बड़ी प्रसन्न थी।
२१. विवाह हो चुकने के काफी समय बाद यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम राहुल रखा गया।

९. पुत्र के संरक्षण के लिये पिता की योजना

१. राजा प्रसन्न था कि पुत्र का विवाह हो गया और वह गृहस्थ बन गया, किन्तु साथ ही असित ऋषि की भविष्यवाणी भूत की तरह उसका पीछा कर रही थी ।
२. उस भविष्यवाणी को पूरा न होने देने के लिये उसने सोचा कि सिद्धार्थ गौतम को 'काम-भोगों' के बंधन से अच्छी तरह से बाँध दिया जाय ।
३. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शुद्धोदन ने अपने पुत्र के लिये तीन महल बनवाये-एक ग्रीष्म ऋतू में रहने के लिये, दूसरा वर्षा ऋतु में रहने के लिये और एक तीसरा शीत ऋतु में रहने के लिये । उसने इन महलों को हर तरह के भोगविलास के साधनों से सुसज्जित किया ।
४. हर महल के गिर्द एक-एक सुन्दर बाग था जिसमें नाना तरह के फूलों से लदे हुए पेड थे ।
५. अपने पुरोहित उदायी के परामर्श से उसने निश्चय किया कि कुमार के लिये एक 'अन्तःपुर' की व्यवस्था करनी चाहिये, जहाँ सुन्दरियों की कमी न हो ।
६. शुद्धोदन ने तब उदायी को कहा कि वह उन षोडशियों को संकेत कर दे कि वे कुमार का चित्त जीतने का प्रयास करें ।
७. उदायी ने सुन्दरियों को इकट्ठा कर कुमार का चित्त लुभाने का संकेत ही नहीं किया, विधि भी बताई ।
८. उन्हें सम्बोधित करके उसने कहा --"आप सब इस तरह की कला में दक्ष है,, आप सबको रागररंजित चित्त की भाषा का अच्छा परिचय है । आप सब सुन्दर हैं, आकर्षक है । आप सब अपने कौशल में कुशल हैं ।"
९. "आप अपने चातुर्य से उन ऋषि-मुनियों को भी जीत सकती हैं तो कामजित् माने जाते हैं । आप उन देवताओं को भी जीत सकती हैं, जिन्हें केवल दिव्य लोक की अप्सराएँ ही लुभा सकती हैं ।"
१०. "अपनी कला, अपनी चतुराई, अपने आकर्षण से पुरुषों की तो बात ही क्या, आप स्त्रियों तक को मोह ले सकती हैं ।"
११. "अपने-अपने क्षेत्र में आप सब इतनी कुशल थी कि आप सबके लिये कुमार को कामरूपी रज्जु में बांधकर अपने वश में कर लेना किसी भी तरह कठीन नही हो सकता ।"
१२. "नवागत वधुओं को -- जिनकी आंखों पर लाज-शर्म का पर्दा पड़ा रहता है -- तो यह शोभा देता है कि वे संकोच से काम लें । आप सबको नहीं ।"
१३. "निस्सन्देह यह वीर भी महान् है । लेकिन इससे तुम्हें क्या । स्त्री का बल भी तो महान् होता है । यही तुम्हारा दृढ़ संकल्प होना चाहिये ।"
१४. "पुराने समय में काशी की एक वेश्या ने एक ऋषि को पथ-भ्रष्ट कर दिया था और उसे अपने पैरों में लिटाया था ।"
१५. "और उस महान् ध्यानी प्रसिद्ध विश्वामित्र को घृताची नाम की अप्सरा ने दस वर्ष तक जंगल में बन्दी बनाकर रखा था ।"
१६. "इस प्रकार के अनेक ऋषि-मुनियों को स्त्रियाँ रास्ते पर ले आई हैं । इस कुमार ने तो अभी तारूण्य के प्रथम-प्रहर में पैर ही रखा है । इसका तो कहना ही क्या?"
१७. "जब यह ऐसा है तो तुम निधडक होकर प्रयास करो ताकि राज्य परिवार की परम्परा बनी रहे ।"
१८. "सामान्य स्त्रियाँ सामान्य आदिमियों को वशीभूत करती हैं, किन्तु धन्य है वे जो असाधारण मनुष्यों को वशिभूत करती हैं ।"

१०. स्त्रियाँ राजकुमार को अपने वश मे न ला सकी ।

१. उदायी के ये शब्द स्त्रियों के हृदय को छू गये । उन्होंने कुमार को वशीभूत करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा देने का निश्चय किया ।
२. लेकिन अपनी भ्रू-भंगिमाओं, अपने अक्षि-कटाक्षों, अपनी मुस्कराहटों, अपने कोमल अंग-संचालनो के बावजूद उन षोडशियों को यह विश्वास न था कि उनका जादू कुमार पर चल सकेगा ।
३. लेकिन उदायी की प्रेरणा के कारण, कुमार के कोमल स्वभाव के कारण तथा सुरा और प्रेम-मद के कारण उनका आत्म-विश्वास शीघ्र ही स्थिर हो गया ।

४. तब स्त्रियाँ अपने काम में लग गई । कुमार की स्थिती वैसी ही थी जैसी हथिनी-समूह से घिरे हुए हिमालय के जंगल मे विचरते हुए हस्ति-राज की हो ।
५. उन स्त्रियों से घिरा हुआ वह राजकुमार ऐसे ही सुशोभित होता था जैसे सूर्य-देवता अपने दिव्यभवन में अप्सराओं से घिरा हो ।
६. उनमें से कुछ ने रागातिरेक से उसे अपने छातियों से दबाया ।
७. कुछ दूसरियों ने लडखड़ाने का बहाना बना उसे बड़ी जोर से अपनी छातियों से लगाया । उसके बाद उन्होंने अपने लताओं से कोमल करों को उसके कंधों पर ढीला छोड़ अपना भार भी उस पर डाल दिया ।
८. कुछ दूसरियो ने अपने सुरा-गंध, रक्तवर्ण होठों वाले मुख से उसके कान में फुसफुसाया -- मेरी रहस्यपूर्ण बातें सुनों ।
९. कुछ दूसरियो ने --जिनके वस्त्र इतरों से भीगे थे -- उसे आज्ञा देने की तरह कहा --"हमारी पूजा यहाँ करो । "
१०. दूसरी नीलाम्बरा सुरा से मत्त होने का बहाना बनाते हुए अपनी जीभ को बाहर करके खड़ी हो गई जैसे रात के समय बिजली कौंध रही हो ।
११. कुछ दूसरी घुंघरुओ का निनाद करती घूमती थी और अपने अर्ध-आच्छादित शरीर का प्रदर्शन भी कर रही थी ।
१२. कुछ दूसरी एक आम्र-शाखा को पकड़े खड़ी थी और अपनी कलश सदृश छातियों का प्रदर्शन कर रही थी ।
१३. कुछ किसी पद्म-सरोवर से आई थी हाथो में पद्म थे, आँखें भी पद्मों के ही समान थीं, वे पद्म-पाणि की तरह उस पद्म-पाणि की तरह उस पद्म-मुख राजकुमार के पास खड़ी थीं ।
१४. एक दूसरी ने उचित हाव-भाव के साथ एक गीत गाया ताकि वह संयत भी उत्तेजित हो सके । उसकी दृष्टि कह रही थी -- अरे! तुम किस भ्रम में पड़े हो!
१५. दूसरी ने अपने प्रकाशपूर्ण चेहरे पर अपनी भ्रूरुपी कमान को तानकर उसकी मुख-मुद्रा को नकल बनाई ।
१६. एक दुसरी जिसकी छाती पूरी उभारी थी और जिसके कानों की बालियाँ हवा में झूक रही थीं जोर हूंसी और बोली -- "यदि सके तो मुझे पकडे ।"
१७. कुछ दूसरियो ने उसे फल-मालाओं के बंधन में बाँधने की कोशिश की । कुछ दूसरियों ने उस पर मधुर किन्तु अंकुश के समान चुभने वाले शब्दों का प्रहार किया ।
१८. एक दूसरी ने उसे बुलाने के लिये, एक आम्र-वृक्ष की शाखा को हाथ में लेकर एक फूल दिखाया और प्रश्न किया --"यह किसका फूल है ?"
१९. एक दूसरी ने आदमी की-सी चाल-ढाल बनाकर कहा – "हे स्त्री-जित, जा इस पृथ्वी को जीत ।"
२०. एक दूसरी ने एक नील पद्म की गंध लेते हुए और अपनी गोलगोल आँखे मटकाते हुए कुछ अस्पष्ट शब्दों में राजकुमार को सम्बोधित किया --
२१. "स्वामी! मधु-गन्धी पुष्पों से आच्छादित इस आम्र-फल को देखें । स्वर्ण-पिंजर में बन्द की तरह कोकिल यहाँ गाती हैं ।"
२२. "यहाँ आयें और इस अशोक-वृक्ष को देखें जो प्रेमियों का शोकवर्धक है और जहाँ मधु-मक्खियाँ ऐसे गून्जार करती हैं मानों वे अग्नि- दग्ध हों ।"
२३. "यहाँ आयें और आम्र-लतिका लिपटे इस तिलक वृक्ष को देखें मानों कोई पीतवस्त्रधारिणी किसी श्वेत वस्त्र आच्छादीत पुरूष से लिपटी हो ।"
२४. "अंगुरी-रस की तरह प्रकाशमान् पुष्पित कुरवक वृक्ष को देखें जो कि इस प्रकार झुका हुआ है, मानों स्त्रियों के नखों की लाली से आहत हुआ हो!"
२५. "इस तरूण अशोक को आकर देखें, जिसकी नई-नई शाखायें चारों और फैली हुई हैं । ऐसा लगता है मानों यह हमारे हाथों के सौन्दर्य को देखकर ही लज्जा से गडा जाता हो ।"
२६. "इस झील को ही देंखे, जिसके तट पर सिन्दवार उगी है, मानों श्वेत वस्त्र पर एक सुन्दर रमणी लेटी हुई है ।"
२७. "स्त्री जाति की सामर्थ्य देखो । पानी में वह चकवी आगे-आगे जाती है और उसका पति पीछे-पीछे मानों वह उसका दास हो ।"
२८. "मत्त कोकिल का संगीत सुनो, और दुसरे का भी उसका अक्षरश: अनुकरण करते हुए ।"
२९. "अच्छा होता यदि वसन्त ऋतु में पक्षियों में पैदा होने वाले उन्माद का कुछ अंश आप में भी होता और यह अपने आपको सदा बुद्धिमान समझते रहने वाले पण्डितों के विचार न होते ।"
३०. इस प्रकार इन प्रेमासक्त स्त्रियों ने राजकुमार के विरूद्ध हर तरह की युद्ध-नीति बरती ।
३१. इतने आक्रमण किये जाने पर भी वह संयतेन्द्रिय न प्रसन्न हुआ, न मुस्कराया ।
३२. उनकी वास्तविक अवस्था से परिचय प्राप्त होने के कारण राजकुमार स्थिर एकाग्रचित्त से विचार करता रहा ।

३३. "इन स्त्रियों में किस बात की ऐसी कमी है कि ये इतना भी नहीं देख सकतीं कि यौवन चञ्चल है | वार्धक्य समस्त सौन्दर्य का नाश कर देगा |"
३४. इस प्रकार यह बे-मेल मेल महीनों-वर्षों चलता रहा | किन्तु इसका कुछ फल न हुआ |

११. प्रधान मंत्री का कुमार को समझाना

१. उदायी समझ गया कि तरुणियाँ असफल रही हैं और राजकुमार ने उनमें कोई दिलचस्पी नहीं ली |
२. नीतिकुशल उदायी ने राजकुमार से स्वयं बातचीत करने की सोची |
३. राजकुमार से एकान्त में उदायी ने कहा – "क्योंकि मुझे राजा ने आपके सुहृद्-पद पर नियुक्त किया है | इसलिये मैं एक मित्र की हैसियत से ही आपसे दो बातें करना चाहता हूँ|"
४. "किसी अहित-काम से बचाना, हितकर काम में लगाना, विपत्ति में साथ न छोड़ना -- मित्र के यही तीन लक्षण हैं |"
५. "यदि मैं अपनी मैत्री की घोषणा करने के अनन्तर भी पुरूषार्थ से विमुख आपको न समझाऊँ तो मै अपने मैत्री-धम्म से च्युत होता हूँ |"
६. "ऊपरी मन से भी स्त्रियों से सम्बन्ध जोडना अच्छा है | इससे आदमी का संकोच जाता रहता है और मन का रंजन भी होता ही है |"
७. "निरादार न करना और उनका कहना मानना - इन दो बातों से ही स्त्रियाँ प्रेम के बन्धन में बँध जाती हैं | निस्सन्देह सद्गुण भी प्रेम का कारण होते है | स्त्रियाँ आदर चाहती हैं |"
८. "हे विशालाक्ष! क्या आप ऊपरी मन से भी, उनके सौन्दर्य के अनुरूप शालीनता दिखाने के लिये, उन्हें प्रसन्न रखने का कुछ प्रयास न करेंगे ?"
९. "दाक्षिण्य ही स्त्रियों की औषध है | दाक्षिण्य ही उनका अलंकार है | बिना दाक्षिण्य ही सौंन्दर्य पुष्प-विहीन उद्यान के समान हैं |"
१०. "लेकिन अकेले दाक्षिण्य से भी क्या! उसके साथ हृदय की भावना का भी मेल होना चाहिये | इतनी कठिनाई से हस्तगत हो सकने वाले कामभोग जब आपकी मुट्ठी में है तो निश्चय से आप उनका तिरस्कार न करेंगे |"
११. "काम को ही सर्वप्रथम पुरूषार्थ मान कर, प्राचीन काल में, इन्द्र तक ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का आलिंगन किया |"
१२. "इसी प्रकार अगस्त्य ऋषि ने भी सोमभार्या रोहिणी के साथ रमण किया और श्रुति अनुसार लोपमुद्रा के साथ भी यही बीती |"
१३. "औतथ्य-पत्नी मरूत की पुत्री ममता के साथ ऋषि बृहस्पति ने सहभोग किया और भारद्वाज को जन्म दिया |"
१४. "अर्घ्य अर्पण करती हुई बृहस्पति की पत्नी को चन्द्रमा ने ग्रहण किया और दिव्य बुध को जन्म दिया |"
१५. "इसी प्रकार पुरातन समय में रागातिरेक से पराशर ऋषि ने यमुना तट पर वरूण-पुत्र की पुत्री काली के साथ सहवास किया |"
१६. "वसिष्ठ ऋषि ने अक्षमाला नाम की एक नीच जाति की स्त्री से सहवास किया और कपिंजलाद नाम के पुत्र को जन्म दिया |"
१७. "और बड़ी आयु हो जाने पर भी राजर्षि ययाति ने चैवरथ वन में अप्सरा विश्वाची के साथ संभोग किया |"
१८. "यद्यपि वह जानता था कि पत्नी के साथ सहवास उसकी मृत्यु का कारण होगा तो भी कौरव-नरेश पण्डु माद्री के रूप और गुणों पर मुग्ध हो, प्रेम के वशीभूत हो गया |"
१९. "इस प्रकार के महान् पुरूषो तक ने जुगुप्सित काम-भोगों का सेवन किया है | तब प्रशंसनीय काम-भोगो के सेवन में तो दोष ही क्या है?"
२०. "यह सब होने पर भी, आश्चर्य है कि शक्ति, तारूण्य और सौन्दर्य से सम्पन्न आप उन काम-भोगों की उपेक्षा कर रहे हैं जिन पर न्यायत: आपका अधिकार है और जिनमें सारा जगत आसक्त है |"

१२. राजकुमार का प्रधान मन्त्री को उत्तर

१. पवित्र परम्परा से समर्थित उचित ही प्रतीत होने वाले इन वचनों को सुनकर मेघ-गर्जन सदृश स्वर में राजकुमार ने उत्तर दिया --
२. "आपकी स्नेह-सिक्त भाषा तो आपके योग्य ही है, लेकिन मै आपको बताऊंगा कि आप कहाँ गलती पर है |"

३. “मै संसार के विषयों की अवज्ञा नहीं करता । मै जानता हूँ कि सारा जगत इन्ही में आसक्त है । लेकिन क्योंकि मै जानता हूं कि सारा संसार अनित्य है, इसलिये मेरा मन उनमें रमण नहीं करता ।”
४. “यदि यह स्त्री-सौंदर्य स्थायी भी रहे, तो भी यह किसी बुद्धिमान् आदमी के योग्य नहीं कि उसका मन विषयों में रमण करे ।”
५. “और जहाँ तक तुम कहते हो कि वे बडे-बड़े महात्मा भी विषयों के वशीभूत हुए है तो वे इस विषय मे प्रमाण नही, हैं, क्योंकि अन्त मे वे भी क्षय को प्राप्त हुए है ।”
६. “जहाँ क्षय है वहाँ तास्तविक महानता नही है, जहाँ विषयासक्ति है वहाँ वास्तविक महानता नहीं हैं, जहाँ असंयम है वहाँ वास्तविक महानता नहीं है ।”
७. “और यह जो आपका कहना है कि ऊपरी मन से ही स्त्रियाँ से स्नेह करना चाहिये तो चाहे यह दक्षता से भी तो भी मुझे यह रूचिकर नही है ।”
८. “यदि यह यथार्थ नहीं है तो मुझे स्त्रियों की इच्छा के अनुसार अनुवर्तन भी प्रिय नहीं । यदि आदमी का मन उसमें नहीं है तो ऐसे अनुवर्तन पर भी धिक्कार है ।”
९. “जहाँ राग का अतिशय है, जहाँ मिथ्यात्व मे विश्वास है, जहाँ असीम आसक्ति है और जहाँ विषयों की सदोषता का यथार्थ दर्शन नहीं -- ऐसी वञ्चना में भी क्या धरा है?”
१०. “और यदि राग के वशीभूत हुए प्राणी परस्पर एक दूसरे को ठगते हैं तो क्या ऐसे पुरुष भी इस योग्य नहीं कि स्त्रियाँ उनकी ओर देखे तक नहीं और क्या स्त्रियाँ भी इस योग्य नही कि पुरुष उनकी ओर देखें तक नहीं?”
११. “क्योंकि यह सब ऐसा ही है, इसलिये मुझे विश्वास है कि तुम मुझे विषय भोग के अशोभन कृपथ पर नहीं ले जाओगे ।”
१२. राजकुमार के सुनिश्चित दृढ संकल्प ने उदायी को निरुत्तर कर दिया । उसने राजा को सारा वृतान्त जा सुनाया ।
१३. जब शुद्धोदन को यह मालूम हुआ कि उसके पुत्र का चित्त किस प्रकार विषयों से सर्वथा विमुख है तो उसे सारी रात नींद नहीं आई, उसके दिल में वैसा ही दर्द था जैसा किसी हाथी की छाती में जिसे तीर लगा हो ।
१४. अपने मंत्रियो के साथ उसने बहुत- सा समय यह विचार करने पर खर्च किया कि वह किस उपाय से सिद्धार्थ को संसार के विषयों की ओर अभिमुख कर सके और उस जीवन से विमुख कर सके जिसकी ओर अग्रेसर होने की उसकी पूरी संभावना थी । लेकिन उन उपायों के अतिरिक्त जिन्हें करके वे मात खा चुके थे, उन्हे कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा ।
१५. जिनकी पुष्यमालायें और अलंकार व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे, जिनके हाव भाव और आकर्षण- कौशल निष्प्रयोजन सिद्ध हो चुके थे, जिनके हृदय मे विगढ प्रेम था, उन तरूणियो की सारी मण्डली विदा कर दी गई ।

१३. शाक्य संघ मे दीक्षा

१. शाक्यों का अपना संघ था । बीस वर्ष की आयु होने पर हर शाक्य तरूण को शाक्य संघ में दीक्षित होना पड़ता था और संघ का सदस्य होना होता था ।
२. सिद्धार्थ गौतम बीस वर्ष का हो चुका था । अब यह समय था कि वह संघ मे दीक्षीत हो और उसका सदस्य बने ।
३. शाक्यों का अपना एक संघ- भवन था, जिसे वह संथागार कहते थे । यह कपिलवस्तु में ही था । संघ-सभायें संथगार में ही होती थी ।
४. सिद्धार्थ को संघ में दीक्षित कराने के लिये शुद्धोदन ने शाक्य- पुरोहित को संघ की एक सभा बुलाने के लिये कहा ।
५. तदनुसार कपिलवस्तु में शाक्यों के संथागार में संघ एकत्रित हुआ ।
६. सभा में पुरोहित ने प्रस्ताव किया कि सिद्धार्थ को संघ का सदस्य बनाया जाय ।
७. शाक्य-सेनापति अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने संघ को सम्बोधित किया -- “शाक्य कुल के शुद्धोदन के परिवार में उत्पन्न गौतम संघ का सदस्य बनना चाहता है । उसकी आयु पूरे बीस वर्ष की है और वह हर तरह से संघ का सदस्य बनने के योग्य है । इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि उसे शाक्य-संघ का सदस्य बनाया जाय । यदि कोई इस प्रस्ताव के विरुद्ध हो तो बोले ।”
८. किसी ने प्रस्ताव का विरोध नहीं किया । सेनापति बोला – “मैं दूसरी बार भी पूछता हूँ कि यदि कोई प्रस्ताव के विरूद्ध हो तो बोले ।”
९. प्रस्ताव के विरुद्ध बोलने के लिये कोई खडा नहीं हुआ । सेनापति ने फिर कहा- “मै तीसरी बार भी पूछता हूँ कि यदि कोई प्रस्ताव के विसद्ध हो तो बोले ।”
१०. तीसरी बार भी कोई प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं बोला ।

११. शाक्यों में यह नियम था कि बिना प्रस्ताव के कोई कार्रवाई न हो सकती थी और जब तक कोई प्रस्ताव तीन बार पास न हो तब तक वह कार्य रूप में परिणत नहीं किया जा सकता था ।
१२. क्योंकि सेनापति का प्रस्ताव तीन बार निर्विरोध पास हो गया था, इसलिये सिद्धार्थ के विधिवत् शाक्य-संघ का सदस्य बन जाने की घोषणा कर दी गई ।
१३. तब शाक्यों के पुरोहित ने खड़े होकर सिद्धार्थ को अपने स्थान पर खड़े होने के लिये कहा ।
१४. सिद्धार्थ को सम्बोधन करके उसने पूछा- "क्या आप इसका अनुभव करते थे कि संघ ने आपको अपना सदस्य बनाकर सम्मानित किया है ?" सिद्धार्थ का उत्तर था --"मैं अनुभव करता हूँ ।"
१५. "क्या आप संघ के सदस्यों के कर्तव्य जानते हैं?" "मुझे खेद है कि मै उनसे अपरिचित हूँ, किन्तु उन्हें जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी ।"
१६. पुरोहित बोला -"मै सर्वप्रथम आपको बताऊँगा कि संघ के सदस्य की हैसियत से आपके क्या कर्तव्य है ।" उसने उन्हें एक एक करके क्रमश : गिनाया- (१) आपको अपने तन, मन और धन से शाक्यों के स्थार्थ की रक्षा करनी होगी । (२) आपको संघ की सभाओं में उपस्थित रहना होगा । (३) आपको बिना किसी भी भय का पक्षपात के किसी भी शाक्य का दोष खुलकर कह देना होगा । (४) यदि आप पर कभी कोई दोषारोपण किया जाय तो आप को क्रोधित नहीं होना होगा, दोष होने पर अपना दोष स्वीकार कर लेना होगा, निर्दोष होने पर वैसा कहना होगा ।"
१७. इसके आगे पुरोहित ने कहा --"मै आपको बताना चाहता हूँ कि क्या करने से आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे -- (१) व्यभिचार करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (२) किसी की हत्या करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (३) चोरी करने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे, (४) झूठी साक्षी देने पर आप संघ के सदस्य न रह सकेंगे ।"
१८. सिद्धार्थ का उत्तर था --"मान्यवर ! मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे संघ के नियमों से परिचित कराया । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनके अर्थ और व्यञजन सहित उन्हें पालन करने का प्रयास करूँगा ।"

१४. संघ से संघर्ष

१. सिद्धार्थ को शाक्य-संघ का सदस्य बने आठ वर्ष बीत चुके थे ।
२. वह संघ का बड़ा ही वफादार और दृढ़ सदस्य था । जितनी दिलचस्पी उसे निजी मामलों में थी, उतनी ही दिलचस्पी उसे संघ के मामलों में भी थी ।
३. उसकी सदस्यता के आठवें वर्ष में एक ऐसी घटना घटी जो सिद्धार्थ के परिवार के लिये दुर्घटना बन गई और उसके अपने लिये जीवन-मरण का प्रश्न ।
४. इस दु:खान्त प्रकरण का आरम्भ इस प्रकार हुआ ।
५. शाक्यों के राज्य से सटा हुआ कोलियों का राज्य था । रोहिणी नदी दोनों राज्यों की विभाजक-रेखा थी ।
६. शाक्य और कोलिय दोनों ही रोहिणी नदी के पानी से अपने अपने खेत सींचते थे । हर फसल पर उनका आपस में विवाद होता था कि रोहिणी के जल का पहले और कितना उपयोग कौन करेगा? यह विवाद कभी-कभी झगडो में परिणत हो जाते और झगड़े लड़ाइयों में ।
७. जिस वर्ष सिद्धार्थ की आयु २८ वर्ष की हुई उस वर्ष रोहिणी के पानी को लेकर शाक्यों के नौकरों में और कोलियों के नौकरों में बड़ा झगड़ा हो गया । दोनों पक्षों ने चोट खाई ।
८. जब शाक्यों और कोलियों को इसका पता लगा तो उन्होंने सोचा कि इस प्रश्न का युद्ध के द्वारा हमेशा के लिये निर्णय कर लिया जाय ।
९. शाक्यों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड देने की बात पर विचार करने के लिये संघ का एक अधिवेशन बुलाया ।
१०. संघ के सदस्यों को सम्बोधित करके सेनापति ने कहा -- "कोलियों ने हमारे लोगों पर आक्रमण किया । हमारे लोगों को पीछे हट जाना पड़ा । कोलियों ने इससे पहले भी अनेक बार ऐसी आक्रमणात्मक कार्रवाइयाँ की हैं । हमने आज तक उन्हें सहन किया । लेकिन यह इसी तरह नहीं चल सकता । यह रूकना चाहिये और इसे रोकने का एक ही तरीका है कि कोलियों के विकद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय । मेरा प्रस्ताव है कि कोलियो के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय । जो विरोध करना चाहे, वे बोलें ।"
११. सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खडा हुआ बोला –"मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ । युद्ध से कभी किसी समस्या का हल नहीं होता । युद्ध छेड देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति ही होगी । इससे एक युद्ध का बीजारोपण हो जायेगा । जो किसी की हत्या

करता है, उसे कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल जाता है; जो किसी को जीतता है उसे कोई दूसरा जीतने वाला मिल जाता है; जो किसी को लूटता है उसे कोई लूटने वाला मिल जाता है ।"

१२. सिद्धार्थ गौतम ने अपनी बात जारी रखी --"मुझे ऐसा लगता है कि शाक्यो को कोलियों के विरूद्ध युद्ध छेडने में जल्दबाजी से काम नहीं लेना चाहिये । पहले सावधानी से इस बात की जाँच करनी चाहिये कि वास्तव में दोषी पक्ष कौनसा है? मैंने सुना है कि हमारे आदमियो ने भी ज्यादती की है । यदि ऐसा है तो हम भी निर्दोष नहीं हैं ।"

१३. सेनापति ने उत्तर दिया --"यह ठिक है कि हमारे आदमियो ने ही पहल की थी । लेकिन यह याद रहना चाहिये कि पहले पानी लेने की भी यह हमारी ही बारी थी ।"

१४. सिद्धार्थ गौतम ने कहा --"इससे स्पष्ट है कि हम भी सर्वथा निर्दोष नहीं है । इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि हम अपने में से दो आदमी चुनें और कोलियों से भी कहा जाय कि वे भी अपने में से दो आदमी चुनें और फिर यह चारों मिलकर एक पाँचवाँ आदमी चुनें । ये पाँचो आदमी मिलकर झगडे का निपटारा कर दें ।"

१५. सिद्धार्थ गौतम ने प्रस्ताव में जो परिवर्तन सुझाया था उसका विधिवत् समर्थन हो गया । किन्तु सेनापति ने विरोध किया । कहा --"मुझे निश्चय है कि जब तक कोलियों को कड़ा दण्ड नही दिया जाता तब तक उनका यह टण्टा समाप्त नहीं होगा ।"

१६. प्रस्ताव और उसमें सुझाये हुए परिवर्तन पर मत लेने आवश्यक हो गये । पहले सिद्धार्थ के सुझाये परिवर्तन पर ही मत लिये गये । बहुत बड़े बहुमत से सिद्धार्थ का सुझाव अमान्य हो गया ।

१७. इसके बाद सेनापति ने स्वयं अपने प्रस्ताव पर मत माँगे । सिद्धार्थ गौतम ने फिर खड़े होकर विरोध किया । उसने कहा -- "मेरी प्रार्थना है कि संघ इस प्रस्ताव को स्वीकार न करे । शाक्य और कोलिय निकट-सम्बन्धी है । परस्पर एक दूसरे का नाश करने में बुद्धिमानी नहीं है ।"

१८. सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम की स्थापना का सर्वथा विरोध किया उसने इस बात पर जोर दिया कि युद्ध में क्षत्रियों के लिये कोई अपना-पराया नही होता । राज्य के लिये उन्हें अपने सगे भाइयों से भी लड़ना ही चाहिये ।

१९. ब्राह्मणों का धर्म है यज्ञ करना, क्षत्रियों का धर्म है युद्ध करना, वैश्यों का धर्म है व्यापार करना और शूद्रों का धर्म है सेवा करना । हर किसी को अपना अपना धर्म निभाने में ही पुण्य हैं । यही शास्त्रों की आज्ञा हैं ।

२०. सिद्धार्थ का उत्तर था -- "जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, धर्म तो इस बात के हृदयंगम करने में है कि वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता । यह केवल अवैर से ही शान्त हो सकता है ।"

२१. सेनापति बेसबर हो उठा । बोला -- "इस दार्शनिक शास्त्रार्थ में पडना बेकार है । स्पष्ट बात यह है कि सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है । हम संघ का मत लेकर इसका निश्चय करें कि संघ का क्या विचार है ?"

२२. तदनुसार सेनापति ने अपने प्रस्ताव पर लोगों के मत माँगे । बड़े भारी बहुमत से प्रस्ताव पास हो गया ।

१९. देश छोड़ जाने को सुझावा

१. दूसरे दिन सेनापति ने शाक्य संघ की दूसरी सभा बुलाई । इसका उद्देश्य था कि उसके अनिवार्य सैनिक- भर्ती के प्रस्ताव पर विचार हो ।

२. जब संघ एकत्र हुआ उसने प्रस्ताव किया कि उसे आज्ञा दी जाय कि वह बीस वर्ष और पचास वर्ष के बीच के प्रत्येक शाक्य के लिये कोलियों के विरुद्ध लड़ने के निमित्त सेना में भर्ती होना अनिवार्य होने की घोषणा कर दे ।

३. सभा में दोनों पक्ष उपस्थित थे--वे भी जिन्होंने संघ की पहली सभा में युद्ध-घोषणा के पक्ष में मत दिया था और वे भी जिन्होंने इसके विरुद्ध मत दिया था ।

४. जिन्होंने इसके पक्ष में मत दिया था, उनके लिये सेनापति का प्रस्ताव स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी । यह उनके पूर्व निश्चय का स्वाभाविक परिणाम था ।

५. लेकिन जिस अल्पमत ने उक्त निर्णय के विरुद्ध मत दिया था, उसके सामने एक कठिनाई थी । उसकी समस्या थी -- बहुमत के आगे सर झुकाना अथवा नहीं झुकाना?

६. अल्पमत का निश्चय था कि बहुमत के आगे सिर न झुकाया जाय ।

इसीलिये उन्होंने उस सभा में उपस्थित रहने का भी निर्णय किया था । दुर्भाग्य से किसी में यह साहस नहीं था कि यही बात खुल कर कह सके । कदाचित् वे बहुमत का विरोध करने के परिणामों से परिचित थे ।

७. जब सिद्धार्थ ने देखा कि उसके समर्थक मौन हैं तो वह उठ खडा हुआ | और उसने संघ को सम्बोधित करके कहा -- 'मित्रों! आप जो चाहें कर सकते हैं | आपके साथ बहुमत है | लेकिन मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि मैं अनिवार्य सैनिक भर्ती का विरोध करूँगा | मैं आपकी सेना में सम्मिलित नहीं होऊँगा | मैं युद्ध में भाग नहीं लूँगा |'
८. सिद्धार्थ गौतम को उत्तर देते हुए सेनापति ने कहा -"उस शपथ की याद करो जो तुमने संघ का सदस्य बनते समय ग्रहण की थी | यदि तुम अपने दिये गये वचनों में से किसी एक का भी पालन न करोंगे तो तुम सार्वजनिक निन्दा के भाजन बनोगे |"
९. सिद्धार्थ का उत्तर था -- "निस्सन्देह मैने अपने तन, मन, धन से शाक्यों के हितों की रक्षा करने का वचन दिया है | लेकिन मैं नहीं समझता कि यह युद्ध शाक्यों के हित में हैं | शाक्यों के हित के मुकाबले में सार्वजनिक निन्दा का मेरे लिये कोई मूल्य नहीं |"
१०. सिद्धार्थ ने संघ को इस बात की याद दिलाई और सावधान किया कि कोलियों से निरन्तर झगड़ते रहने के कारण शाक्य-संघ बहुत कुछ कोशल-नरेश के हाथ का खिलोना बन गया है | इसकी कल्पना करना आसान है कि यह युद्ध शाक्य संघ को और भी अधिक दुर्बल बना देगा और इससे कोशल-नरेश को एक और ऐसा अवसर मिल जायेगा कि वह शाक्य-संघ के स्वातंत्र्य को और भी अधिक घटा दे |
११. सेनापति को क्रोध आ गया | वह बोला -- "तुम्हारा यह भाषण कौशल तुम्हारे किसी काम न आयेगा | तुम्हे संघ के बहुमत के सामने सिर झुकाना होगा | शायद तुम्हें इस बात का बहुत भरोसा है कि कोशल-नरेश की अनुमति के बिना संघ अपनी आज्ञा की अवहेलना करने वाले को फांसी या देश से निकल जाने की सजा नहीं दे सकता और यदि इनमें से कोई भी एक दण्ड तुम्हें दिया जाय तो कोशल-नरेश इसकी अनुमति नहीं देगा |"
१२. "लेकिन याद रखो | संघ तुम्हें दूसरे अनेक तरीकों से दण्डित कर सकता है | संघ तुम्हारे परिवार के सामाजिक बहिष्कार का निर्णय कर सकता है और संघ तुम्हारे परिवार के खेतों को जब्त कर सकता है | इसके लिये संघ को कोशल नरेश की अनुमति की आवश्यकता नहीं |"
१३. सिद्धार्थ ने समझ लिया कि यदि उसने कोलियों के विरूद्ध युद्ध-घोषणा करने के प्रस्ताव का अपना विरोध जारी रखा तो उसके क्या क्या दुष्परिणाम हो सकते है | इसलिये वह तीन बातों में से एक का चुनाव कर सकता था -- (१) सेना में भर्ती होकर युद्ध में भाग ले सकता था, (२) फांसी पर लटकना या देश से निकाल दिया जाना स्वीकार कर सकता था, (३) अपने परिवार के लोगों का सामाजिक बहिष्कार और उनके खेतों की जब्ती के लिये राजी हो सकता था |
१४. पहली बात वह किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता था | वह इस विषय में दृढ़ था | तीसरी बात पर तो वह विचार तक न कर सकता था | इस परिस्थिति में उसने सोचा कि उसके लिये दूसरी बात ही सर्वाधिक मान्य हो सकती है |
१५. तद्नुसार सिद्धार्थ ने संघ को सम्बोधित किया -- "कृपया मेरे परिवार को दण्डित न करें | सामाजिक बहिष्कार द्वारा उन्हें कष्ट न दें | उनके खेत जब्त करके उन्हें जीविकाविहीन न करें | वे निर्दोष हैं | अपराधी मैं ही हूँ | मुझे अकेले ही अपने अपराध का दण्ड भोगने दें | चाहे आप मुझे फांसी पर लटका दें और चाहे देश से निकाल दें- आप चाहें दण्ड दें | मैं खुशी से इसे स्वीकार कर लूंगा | और मै इस बात का वचन देता हूं कि मैं इस की शिकायत कोशल-नरेश से न करूंगा |"

१६. प्रव्रज्या – अभिनिष्क्रमण

१. सेनापति बोला -- "तुम्हारी बात मानना कठिन है | क्योकि यदि तुम स्वेच्छा से भी 'मृत्यु' अथवा 'देश-निकाले' का वरण करो, तो भी कोशल- नरेश को इसका पता लग ही जायेगा | वह निश्चयपूर्वक इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि शाक्य-संघ ने ही यह दण्ड दिया होगा और वह शाक्य-संघ के विरुद्ध कार्रवाई करेगा |"
२. "यदि यह कठिनाई है, तो मैं आसानी से एक उपाय सुझा सकता हूँ", सिद्धार्थ-गौतम का उत्तर था | "मैं परिव्राजक बन सकता हूं और देश के बाहर चला जा सकता हूँ | यह भी एक प्रकार का 'देश-निकाला' ही है |"
३. सेनापति ने सोचा कि यह एक अच्छा सुझाव है | किन्तु उसे इसके कार्यरूप में परिणत होने में सन्देह था |
४. इसलिये सेनापति ने सिद्धार्थ से पूछा- "बिना अपने माता-पिता और पत्नी की अनुज्ञा के तुम परिव्राजक कैसे बन सकते हो ?"
५. सिद्धार्थ ने उसे विश्वास दिलाया कि वह भरकस अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा और कहा, 'मैं वचन देता हूँ कि चाहे अनुमति मिले और चाहे न मिले, मैं तुरन्त देश छोड़ दूंगा |'
६. संघ को लगा कि सिद्धार्थ का सुझाव ही इस बिकट समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल है | संघ ने इसे स्वीकार कर लिया |
७. सभा के सम्मुख जो कार्य-क्रम था उसे समाप्त कर संघ विसर्जित होने को ही था कि एक तरूण शाक्य ने अपने स्थान पर खड़े होकर कहा -- "कृपया मेरी बात सुनें | मैं कुछ महत्व की सूचना देना चाहता हूँ |"

८. उसे बोलने की अनुमति मिली तो उसने कहा -- “मुझे इसमें तनिक सन्देह नहीं कि सिद्धार्थ गौतम अपने वचन का पालन करेगा और तुरन्त देश के बाहर चल जायेगा । लेकिन एक बात है, जिससे मैं थोडा चिन्तित हूँ ।”
९. अब जब कि सिद्धार्थ आँखों से अदृश्य हो जायेगा तो क्या संघ का यही इरादा है कि कोलियों के विरुद्ध की घोषणा कर दी जाय ।”
१०. “मै चाहता हूँ कि संघ पुन: इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे । कुछ भी हो कोशल-नरेश को सिद्धार्थ-गौतम के देश-निकाले का तो पता ही लग जायेगा । यदि शाक्य तुरन्त कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे तो कोशल-नरेश समझ जायेगा कि सिद्धार्थ गौतम ने इसीलिये देश का त्याग किया होगा क्योंकि वह कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड देने का विरोधी था । यह हमारे लिये अच्छा न होगा ।”
११. “इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि हमें सिद्धार्थ-गौतम को गृह-त्याग और कोलियों के विरुद्ध वास्तविक युद्ध छेड देने के बीच कुछ समय को यू गुजार देना चाहिये । अन्यथा केशल-नरेश इन दोनो घटनाओ मे संबंध स्थापित कर लेगा ।”
१२. संघ को लगा कि निश्चय से यह बात महत्त्वपूर्ण हैं । नीति की दृष्टि से यह मान ली गई ।
१३. इस प्रकार शाक्य-संघ की यह दु:खान्त सभा समाप्त हुई और उस अल्पमत ने भी जो युद्ध का विरोधी था किन्तु जिसमें अपनी बात साफ- साफ कहने का साहस न था, संतोष की सांस ली कि एक अत्यन्त भयानक स्थिति से किसी न किसी तरह पार हो गये ।

१७. बिदाई के शब्द

१. शाक्य संघ की सभा में जो कुछ हुआ उसकी सूचना सिद्धार्थ गौतम के वापिस लौटने से बहुत पहले राजा के महल में पहुँच गई थी ।
२. घर पहुँचने पर सिद्धार्थ गौतम ने देखा कि उसके माता-पिता बहुत दु:खी है और रो रहे हैं ।
३. शुद्धोदन ने कहा- “हम युद्ध के दुष्परिणामो की चर्चा किया करते थे । लेकिन मै नहीं जानता था कि तुम इस सीमा तक चले जाओगे ।”
४. सिद्धार्थ का उत्तर था- “मैं भी नहीं सोचता था कि ऐसी स्थिति आ पहुंचेगी । मैं समझता था कि समझाने से शाक्य शान्ति के समर्थक बन जायेंगे ।”
५. “किन्तु दुर्भाग्य से, सैनिक अधिकारियों ने लोगों को इतना उत्तेजित कर दिया था कि मेरी बातों का उन पर कोई प्रभाव न पडा ।”
६. “लेकिन मै आशा करता हूँ कि इतना तो आप समझते ही होंगे कि मैंने कैसे परिस्थिति को अधिक बिगड़ने से बचा लिया । मैं सत्य और न्याय के पथ से विचलित नहीं हुआ और सत्य और न्याय का आग्रह करने का जो भी दण्ड था मैने उसे अपने ही सिर पर ले लिया ।”
७. लेकिन शुद्धोदन इससे संतुष्ट नहीं था । बोला- “तुमने यह नहीं सोचा कि इससे हमारे सिर पर क्या बितेगी?” “लेकिन इसी कारण तो मैने प्रव्रज्या लेना स्वीकार किया है । जरा सोचो तो सही यदि शाक्यों ने सारे खेत जब्त करने की आज्ञा दे दी होती तो इसका क्या दुष्यरिणाम हुआ होता ।”
८. “लेकिन, तुम्हारे बिना हम इन खेतों को रखकर क्या करेंगे?” शुद्धोदन बोला । “सारा परिवार ही शाक्य जनपद का परित्याग कर देश से बाहर क्यो न चल दे?”
९. रोती हुई प्रजापित गौतमी भी सहमत थी । बोली -- “तुम हम सब को इस प्रकार छोड़ कर अकेले कैसे जा सकते हो?”
१०. सिद्धार्थ ने सान्त्वना दी -- “मां ! क्या तुमने हमेशा क्षत्राणी होने का दावा नहीं किया ? क्या यह ऐसा ही नही है ? तुम्हें वीरता का त्याग नही करना चाहिये । इस प्रकार दुखी होना तुम्हारे लिये अशोभनीय है । यदि मै युद्ध-भूमि में गया होता और वहाँ जाकर मर गया होता तो तुम क्या करती ? क्या, तब भी तुम इसी प्रकार दु:खी हुई होती ।”
११. गौतमी बोली -- “नहीं, यह तो एक क्षत्रिय के योग्य होता । लेकिन अब तुम लोगों से दूर जंगल जानवरों के साथ रहने जा रहे हो । हम यहाँ शान्त कैसे रह सकते हैं? मैं यही कहती हूँ कि तुम हमें भी साथ ले चलो ।”
१२. सिद्धार्थ ने प्रश्न किया -- “मै तुम सबको कैसे साथ ले चल सकता हूँ? नन्द केवल एक बच्चा हैं । मेरे पुत्र राहुल का अभी जन्म ही हुआ है । क्या तुम इन्हें छोडकर मेरे साथ आ सकती हो?”

१३. गौतमी को संतोष न हुआ। उसका कहना था, "हम सब शाक्यों का देश छोड़कर कोशल-नरेश की अधीनता में रहने के लिये कोशल जनपद मे जा सकते हैं।"
१४. सिद्धार्थ ने आपत्ति की- "लेकिन माँ! शाक्य क्या कहेगे? क्या वे इसे देश-द्रोह न समझेंगे? फिर मैने वचन दिया है कि मैं वचन या कर्म से कोई ऐसी बात न कहूँगा, न करुँगा कि जिससे कोशल नरेश को मेरी प्रव्रज्या का यथा कारण ज्ञात हो सके।"
१५. "यह सही है कि मुझे अकेले जंगल में रहना होगा। लेकिन कोलियों के विरुद्ध लड़ाई में हिस्सा लेने और जंगल में रहने -- इन दोनों में से अधिक श्रेयस्कर क्या है?"
१६. इस बीच शुद्धोदन ने प्रश्न किया- "लेकिन इतनी जल्दी किस लिये ? शाक्य-संघ ने अभी कुछ समय के लिये लड़ाई को स्थगित कर दिया है।"
१७. "हो सकता है कि युद्ध कभी छिडे ही नहीं। तुम अपनी प्रव्रज्या भी क्यों स्थगित नहीं करते? हो सकता है कि शाक्य-संघ तुम्हें यहाँ बने रहने की ही अनुमति दे दे।"
१८. सिद्धार्थ को यह विचार सर्वथा नापसन्द था। इसलिये उसने कहा -- "क्योंकि मैंने प्रव्रजित हो जाने का वचन दिया इसीलिये शाक्य संघ ने अभी कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ना स्थगित किया है।"
१९. "यह भी संभव है कि मेरे प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने पर शाक्य-संघ अपनी युद्ध की घोषणा को वापिस ले ले। किन्तु यह सब कुछ मेरे पहले प्रव्रज्या ले लेने पर ही निर्भर करता है।"
२०. "मैने वचन दिया है और मुझे उसे अवश्य पूरा करना चाहिये। वचन भंग का बड़ा बुरा परिणाम हो सकता है - हमारे लिये भी और शान्ति-पक्ष के लिये भी।"
२१. "माँ, अब मेरे मार्ग में बाधक न बनो। मुझे आज्ञा दो और अपना आशीर्वाद। जो कुछ हो रहा है, अच्छे के लिये ही हो रहा हैं।"
२२. गौतमी और शुद्धोदन मूक थे।
२३. तब सिद्धार्थ यशोधरा के कमरे में पहुंचे। उसे देख कर सिद्धार्थ के मुँह से वचन नहीं निकला। वह नहीं जानता था कि क्या कहे और कैसे कहे? यशोधरा ने ही मौन भंग किया। बोली -- "कपिलवस्तु में शाक्य-संघ की सभा में जो कुछ हुआ वह सब मैं सुन चुकी हूँ।"
२४. सिद्धार्थ ने पूछा- "यशोधरा। मुझे बता कि तुझे मेरा प्रव्रजित होने का निश्चय कैसा लगा है ?"
२५. सिद्धार्थ समझता था कि शायद यशोधरा बेहोश हो जायेगी। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।
२६. अपनी भावनाओ को अच्छी तरह अपने वश मे रख कर उसने उत्तर दिया -- "यदि मै ही तुम्हारी स्थिति मे होती तो और दुसरा मै कर ही क्या सकती थी? निश्चय से मै कोलियो के विरुद्ध छेड जाने वाले युद्ध मे हिस्सा नही ले सकती थी।"
२७. "तुम्हारा निर्णय ठीक है। तुम्हें मेरी अनुमति और समर्थन प्राप्त है। मैं भी तुम्हारे साथ प्रव्रजित हो जाती। यदि मैं नहीं हो रही हूँ तो इसका मात्र यही कारण है कि मुझे राहुल का पालन-पोषण करना है।"
२८. "अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता। लेकिन हमे वीरतापूर्वक इस स्थिति का मुकाबला करना चाहिये। अपने माता-पिता तथा पुत्र की चिन्ता न करना। मैं जब तक जीऊँगी उनकी देख-भाल करूँगी।"
२९. "अब मैं इतना ही चाहती हूँ कि अपने प्रिय सम्बन्धियों को छोड़-छाड कर जो तुम प्रव्रजित होने जा रहे हो, तुम किसी ऐसे नये पथ का आविष्कार कर सको जो मानवता के लिये कल्याणकारी हो।"
३०. सिद्धार्थ इससे बड़ा प्रभवित हुआ। इससे पहले उसने कभी नहीं जाना था की यशोधरा इतनी दृढ़ थी, इतने वीर-भाव से समन्वित थी और इतनी अधिक उदाराशया थी। आज ही उसे पता लगा कि वह कितना भाग्यवान् था कि उसे यशोधरा जैसी पत्नी मिली थी। आज भाग्य ने दोनो को पृथक्-पृथक् कर दिया था। उसने उसे राहुल को लाने को कहा। एक पिता की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि डाल कर वह वहाँ से विदा हो गया।

१८. गृह-त्याग

१. सिद्धार्थ ने सोचा कि वह भारद्वाज के पास जाकर प्रव्रजित हो जायेगा। भारद्वाज का आश्रम कपिलवस्तु में ही था। तदनुसार वह अपने सारथी छन्न को साथ लेकर और अपने प्रिय अश्व कन्थक पर चढ़कर आश्रम की ओर चला।
२. ज्योही वह आश्रम के समीप पहुँचा, द्वार पर ही एकत्र हुए पुरुषो और स्त्रियों ने उसे ऐसे घेर लिया मानो वह एक नयी- नवेली वधू का स्वागत कर रह हों।

३. जब वे उसके सामने आये, उनकी आंखे आश्चर्य से खुली रह गई । उन्होंने बन्द कमल की तरह हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया ।

४. वे उसे घेरे खड़े थे । उनके हृदय भावाविष्ट थे । वे ऐसे खड़े थे कि मानो वे अपने अर्ध-खिले नेत्रों से उसका पान ही कर रहे हों ।

५. कुछ स्त्रियों ने तो यही समझा कि वह कामदेव का साकार-रुप है । क्योंकि वह अपने लक्षणों तथा अलंकारों से ऐसा ही अलंकृत था ।

६. कुछ दूसरी स्त्रियो ने उसकी कोमलता और ऐश्वर्य की ओर ध्यान देकर सोचा कि अपनी अमृतमयी किरणों के साथ चन्द्रमा पर उतर आया है ।

७. कुछ दूसरी स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य से इतनी पराभूत थी कि वह मुँह बाये खड़ी थीं, मानो वे उसे निगल ही जायेगी । वे लम्बे आश्वास ले रही थीं ।

८. इस प्रकार स्त्रियाँ केवल उसकी ओर देख ही रही थी । न उनके मुँह में शब्द था, न चेहरे पर मुस्कुराहट । वे उसे घेरे खड़ी थी, और उसके प्रव्रजित होने के निश्चय पर आश्चर्य से विचार कर रही थीं ।

९. बड़ी कठिनाई से उसने उस भीड़ में से अपने लिये रास्ता निकाला और आश्रम के द्वार में प्रवेश किया ।

१०. सिद्धार्थ को यह अच्छा नहीं लगता था कि शुद्धोदन और प्रजापति गौतमी उसके प्रव्रजित होने के समय उपस्थित रहे । क्योकि वह जानता था कि ऐसे समय वे अपने को संभाले न रख सकेंगे । लेकिन उसकी जानकारी के बिना ही वे पहले से आश्रम आ पहुँचे थे ।

११. ज्योंही उसने आश्रम में प्रवेश किया उसने देखा कि उपस्थित मण्डली में उसके माता-पिता भी है ।

१२. अपने माता-पिता को वहाँ उपस्थित देखकर वह सर्वप्रथम उनके पास गया और उनका आशीर्वाद चाहा । वे भावना से इतने अधिक अभिभूत थे कि उनके मुहं से एक शब्द नहीं निकल रहा था । वे लगातार रोते रहे । उन्होने उसे छाती से लगाया और आँसुओं से उनका अभिषेक किया ।

१३. छन्न ने कन्थक को एक पेड से बांध दिया था और पास खड़ा था । जब उसने देखा कि शुद्धोदन और प्रजापति आँसू बहा रहे हैं तो वह भी भावनावश अपने आँसुओं को न रोक सका ।

१४. बड़ी कठिनाई से अपने माता-पिता से पृथक् हो सिद्धार्थ वहाँ गया जहाँ छन्न खड़ा था । उसने वापिस घर ले जाने के लिये उसे अपने वस्त्र और गहने कपड़े दे दिये ।

१५. तब उसने अपना सिर मुण्डवाया । ऐसा करना परिव्राजक के लिये आवश्यक था । उसका चचेरा भाई महानाम परिव्राजक के योग्य वस्त्र और भिक्षापात्र ले आया था । सिद्धार्थ ने उन्हें पहन लिया ।

१६. इस प्रकार परिव्राजक का जीवन व्यतीत करने की पूरी तैयारी करके वह भारद्वाज के पास गया कि वह उसे विधिवत् प्रव्रजित कर दे ।

१७. अपने शिष्यों की सहायता से भारद्वाज ने आवश्यक संस्कार किये और सिद्धार्थ गौतम के परिव्राजक बनने की घोषणा कर दी ।

१८. यह याद करके कि उसने शाक्य संघ के सम्मुख दोहरी प्रतिज्ञा की थी, एक तो प्रव्रज्या लेने की और दूसरे अविलम्ब की शाक्य जनपद की सीमा से बाहर हो जाने की; सिद्धार्थ गौतम ने प्रव्रज्या का संस्कार समाप्त होते ही अपनी यात्रा आरम्भ कर दी ।

१९. जो जनसमूह आश्रम में इकट्ठा हो गया था वह असामान्य था । सिद्धार्थ गौतम की प्रव्रज्या की परिस्थिति भी असामान्य ही थी । जब राजकुमार आश्रम से बाहर निकला, जनता भी उसके पीछे-पीछे हो ली ।

२०. उसने कपिलवस्तु से बिदा ली और अनोमा नदी की ओर बढ़ा । पीछे मुडकर देखा तो जनता अभी भी पीछे- पीछे चली आ रही थी ।

२१. उसने उन्हें रोका और कहा -- "बहनो और भाइयों ! मेरे पीछे-पीछे चले आने से क्या लाभ हैं ? मै शाक्यों और कोलियों के बीच का झगड़ा न निपटा सका । लेकिन यदि तुम समझौते के पक्ष में जनमत तैयार कर लो, तो तुम सफल हो सकते हो । इसलिये कृपा करके वापिस लौट जाओ ।" उसकी प्रार्थना सुनी तो लोग पीछे लौटने लगे ।

२२. शुद्धोदन और गौतमी भी महल को वापस चले गये ।

२३. सिद्धार्थ के त्याग वस्त्रों और गहनों को देखना गौतमी के लिये असह्य था । उसने उन्हें एक कंवल तालाब मे फिकवा दिया ।

२४. प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय सिद्धार्थ गौतम की आयु केवल २९ वर्ष की थी ।

२५. लोग उसे याद करते थे और यह कह कह कर प्रशंसा करते थे कि “यह उच्च कुलात्पन्न है, यह श्रेष्ठ माता-पिता की सन्तान है, यह सम्पन्न है, यह तारूण्य के मध्य मे है, यह सुन्दर शरीर और बुद्धि से युक्त है, सुख-भोग में पला है और वही अपने सम्बन्धियो से इसलिये लडा कि पृखी पर शान्ति बनी रहे और जनता का कल्याण हो ।”
२६. “यह एक शाक्य तरूण था जिसने बहुमत के आगे झुकने के बजाय स्वेच्छा से दण्ड स्वीकार किया जिसका मतलब था ऐश्वर्य के स्थान पर दरिद्रता, सुख समृद्धि के स्थान पर भिक्षाटन, गृह-निवास के स्थान पर गृह- त्याग । और यह जा रहा है जब कोई इसकी चिन्ता करनेवाला नहीं, और यह जा रहा है बिना किसी भी ऐसी एक चीज को साथ लिये जिसे यह अपनी कह सके ।”
२७. “इसका यह स्वेच्छा से किया हुआ महान् त्याग है । यह बड़ी ही वीरता और साहस का कार्य है । संसार के इतिहास में इसकी उपमा नहीं । यह शाक्य मुनि अथवा शाक्य-सिंह कहलाने का अधिकारी है ।”
२८. शाक्य-कुमारी कृषा गौतमी का कथन कितना सही था । सिद्धार्थ गौतम के ही सम्बन्ध में उसने कहा था । “धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे पुत्र को जन्म दिया और धन्य है वह नारी जिसका ऐसा पति है ।”

१९. राजकुमार और उनका सेवक

१. छन्न को भी कन्थक के साथ वापस लौट जाना चाहिये था । लेकिन उसने वापस जाना अस्वीकार किया । उसने आग्रह किया कि कान्थक को लिए वह कम से कम अनोमा नदी के तट तक अवश्य साथ चलेगा । छन्न का यह आग्रह इतना अधिक था कि सिद्धार्थ गौतम को उसकी बात माननी पड़ी ।
२. अन्त में वे अनोमा नदी के तट पर पहुँचे ।
३. तब छन्न को सम्बोधित करके सिद्धार्थ बोला- “मित्र ! इस प्रकार यहाँ तक साथ- साथ आने से मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह प्रमाणित हो गया । तुम्हारी भक्ति ने मेरे हृदय को सर्वथा जीत लीया है ।”
४. “तुम्हारा मेरे प्रति जो भाव है उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ । खेद है कि मै इस समय ऐसी स्थिति में हूँ कि तुम्हारे लिये कुछ कर नहीं सकता ।”
५. “जिससे उपकार की आशा हो उसके प्रति कौन अनुरक्त नहीं होगा?”
६. “परिवार के लिये पुत्र का पालन-पोषण किया जाता है, अपने भावी सुख के लिये पुत्र पिता को मानता है, किसी न किसी आशा से ही संसार के लोग बन्धे रहते हैं; बिना आशा का निस्वार्थ भाव कहीं नही है ।”
७. “केवल एक तुम्ही इसके अपवाद हो । इस घोड़े को लो और वापस हो जाओ ।”
८. “राजा के स्नेह में अभी किसी तरह की कमी नहीं आई होगी । उसे किसी न किसी तरह इस दु:ख को सह लेने मे सहायता करनी होगी ।”
९. “उसे कहना की मैं जो उसे छोड़कर चला आया हूँ वह न किसी स्वर्ग की कामना से, न स्नेह की कमी से और न क्रोध की अधिकता से ।”
१०. “इस प्रकार घर छोडकर चले आये मेरे लिये उसे अनुताप नहीं करना चाहिये, संयोग कितना भी दीर्घकालीन हो एक न एक दिन वियोग में परिणत होता ही है ।”
११. “जब वियोग अनिवार्य ही है तो यह कैसे हो सकता है कि सम्बन्धियों से वियोग न हो ।”
१२. “आदमी के मरने पर उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी तो बहुत होते हैं, किन्तु उसके पुण्य का उत्तराधिकारी मिलना कठिन है, शायद होता ही नहीं ।”
१३. “राजा-- मेरे पिता-- की देखभाल रखनी होगी । हो सकता है कि वह कहे कि मैंने अनुपयुक्त समय पर गृह-त्याग किया है; किन्तु धम्म करने के लिये कोई भी समय अनुपयुक्त समय है ही नहीं ।”
१४. “मित्र! मेरे पिता को इन और ऐसे ही शब्दों से समझाना । ऐसा प्रयास करना कि उसे मेरी याद भी बनी न रहे ।”
१५. “हाँ, मेरी मां से भी कहना कि मैं उसके स्नेह के अयोग्य सिद्ध हुआ । उसका वात्सल्य वचनातीत था ।”
१६. इन शब्दों को सुना तो छन्न ने भावावेश से रूंधे कंठ से हाथ जोड़कर कहा-
१७. “स्वामी! यह देखकर कि आप अपने सम्बन्धियो को वियोग-दु:ख देकर जा रहे है मेरा हृदय ऐसे बैठा जा रहा है जैसे दलदल में फँसा हुआ हाथी ।”
१८. “आपका ऐसा निर्णय किसकी आंखो से अश्रु-धारा न बहायेगा, चाहे उसका हृदय लोह-निर्मित भी क्यों न हों, स्नेह-सिक्त हृदय का तो कहना ही क्या?”

१९. “कहाँ तो यह प्रासाद में ही रहने योग्य कोमलाङ्ग और कहाँ वह तीक्ष्ण कुशाग्रास से ढकी हुई पृथ्वी?”

२०. “हे कुमार! आप का ऐसा निर्णय जानकर मै अब कपिलवस्तु के लोगों के लिये दु:खदायक इस कन्थक घोड़े को वापस कैसे ले जा सकता हूँ?”

२१. “निश्चय से आप इस स्नेह-सिक्त वृद्ध राजा को ऐसे ही छोड़कर नहीं जायेंगे जैसे कोई नास्तिक सद्धर्म को ।”

२२. “और अपनी उस मौसी को --जिसने पाल-पोस कर इतना बड़ा किया आप उसी तरह नही ही भूलेंगे जैसे कोई कृतघ्न अपने उपकारी को भूल जाता है ।”

२३. “और अपनी उस भार्या को तो आप छोड़ेंगे ही नहीं, जो गुणवती है, जो श्रेष्ठ कुलोत्पन्न है, जो पतिव्रता है और जो एक बालक की मां हैं ।”

२४. “और हे धर्म तथा यश की सर्वाधिक चिन्ता करनेवाले! आप यशोधरा के उस पुत्र को तो उसी प्रकार छोड़ेंगे ही नही, जैसे कोई जुआरी अपने यश छोड़ देता है ।”

२५. “स्वामिन! यदि आपने अपने राज्य और सम्बन्धियों को त्याग देने का दृढ़ संकल्प ही कर लिया है तो आप मुझे तो छोडेगे ही नहीं, क्योंकि आप ही मेरे शरण-स्थान हैं ।”

२६. “मै आपको इस प्रकार जंगल में अकेला छोड़कर इस दग्ध-हृदय के साथ नगर को वापस नही लौट सकता ।”

२७. “जब मैं अकेला वहाँ जाऊँगा तो राजा मुझे क्या कहेगा और मै आपकी सहधर्मिणी को ही क्या शुभ-संवाद सुनाऊंगा?”

२८. “और आपका जो यह कहना हे कि मै राजा को आपके अवगुण सुनाऊँ ताकि उसका स्नेह कम हो जाय, तो यदि मैं तालु से सटी जिव्हा से निर्लज्ज बनकर आपके अवगुण कहने का प्रयास भी करूं तो उन पर कौन विश्वास करेगा?”

२९. “जो दया-मूर्ति है और जिसने सदा करूणा दिखाई है, यह उसके योग्य नहीं कि अपने स्नेह का परित्याग कर दे । मुझ पर दया करे । लौट चलें ।”

३०. छन्न के इन दु:खभरे शब्दों को सुनकर सिद्धार्थ गौतम ने अत्यन्त कोमलता से उत्तर दिया-

३१. “छन्न! मेरे वियोग से उत्पन्न होने वाले दु:ख का परित्याग करो । नाना जन्म ग्रहण करने वाले प्राणियों के लिये परस्पर का वियोग अनिवार्य है ।”

३२. “यदि मै स्नेह के कारण आज अपने सम्बन्धियों का परित्याग न भी करूँ, तो भी एक न एक दिन मृत्यु हमें एक दूसरे से अनिवार्य तौर पर पृथक् कर ही देगी ।”

३३. “जिस मेरी मां ने, मुझे इतना कष्ट सहन करके जन्म दिया था, अब वह कहाँ है? और मैं कहाँ हूं?”

३४. “जैसे पक्षी अपने विश्राम-वृक्ष पर इकट्ठे होते हैं, किन्तु फिर नाना दिशाओं में उड़ जाते हें, यही प्राणियों की दशा है । उनका भी वियोग अवश्यम्भावी है ।”

३५. “जैसे बादल एकत्र होकर फिर पृथक पृथक नाना दिशाओं में चले जाते हैं, यही प्राणियों की दशा है । उनका भी वियोग अवश्यम्भावी है ।”

३६. “और क्योंकि यह संसार इसी प्रकार परस्पर एक दूसरे की वञ्चना करता हुआ गतिमान है । इसलिये संयोग के समय किसी भी चीज को अपना समझ बैठना भयावह है ।”

३७. “क्योंकि यह ऐसा ही है, इसलिये मित्र! शोक मत करो । वापिस लौट जाओ । यदि मन नहीं ही माने तो जाकर फिर वापस चले आना ।”

३८. “बिना मुझे कुछ और कहे, कपिलवस्तु के लोगों से जाकर कहना कि उसके लिये जो तुम्हारा स्नेह है, उसे छोड़ दें, क्योंकि उसका निश्चय दृढ़ है ।”

३९. जब स्वामी और सेवक के बीच की यह बातचीत कन्थक ने सुनी तो उस श्रेष्ठ अश्व ने अपनी जिह्वा से स्वामी के चरण चाटे और आँखों से गरम-गरम आँसू गिराये ।

४०. उस हाथ से जिसकी अँगुलियाँ जूड़ी हुई थीं, उस हाथ से जिसमें मंगल स्वस्ति अंकित था, उस हाथ से जिसकी हथेली अन्दर को थी, गौतम ने उसे थपथपाया और एक मित्र की तरह सम्बोधित करके कहा –

४१. “कन्थक! सहन कर । अश्रु मत बहा । तेरा परिश्रम शीघ्र ही सफल होगा ।”

४२. जब छन्न ने देखा कि अब शीघ्र विदा होना ही होगा, तो उसने गौतम के उस परिव्राजक रूप को नमस्कार किया ।

४३. कन्धक और छन्न से विदा लेकर गौतम भी अपने मार्ग पर चल दिये ।

४४. छन्न ने जब देखा कि उसका स्वामी राज्य त्याग कर, परिव्राजक का वेष धारण किये चला जा रहा हैं, उससे न रहा गया । वह अपने हाथ उठाकर जोर से चिल्लाया और जमीन पर गिर पड़ा ।

४५. जब उसने पीछे मुड़कर देखा वह एक बार फिर जोर से चिल्लाया। उसने अपने कन्थक के गले में हाथ डाले। वह निराश और भग्न-हृदय फिर अपने मार्ग पर आगे बढ़ा।
४६. रास्ते में कभी वह चिन्तित हो उठता, कभी पश्चात्ताप करता, कभी लडखडाता, कभी गिर पड़ता। इस प्रकार स्नेह-विदीर्ण हृदय से उसने रास्ते भर नाना तरह की बातें कीं। वह स्वयं नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा है।

२०. छन्न की वापसी

१. स्वामी के वनगमन के बाद वापस लौटते समय छन्न ने अपने दुखी मन का भार हलका करने का भरसक प्रयास किया।
२. उसका दिल इतना भारी था कि जिस दूरी को वह पहले एक दिन में पूरा कर लेता था जब अपने स्वामी के वियोग की चिन्ता करते-करते उसी दूरी को पूरा करने में उसे आठ दिन लगे।
३. कन्थक, यद्यपि वह अभी भी धैर्यपूर्वक चला जा रहा था, किन्तु वह अत्यन्त क्लान्त और श्रान्त हो गया था। निस्सन्देह वह अभी भी अलंकारों से अलंकृत था, तो भी स्वामी-विहीन होने के कारण सर्वथा तेज-विहीन हो गया था।
४. और जिस दिशा में उसका स्वामी गया था उधर घूम-घूम कर बड़े ही शोक-संतप्त स्वर में वह बार-बार हिनहिनाया। यद्यपि वह क्षुधा से परेशान था तो भी उसने पहले की तरह न रास्ते भर घास चरी और न पानी पिया।
५. अन्त में दोनों उस कपिलवस्तु पहुँचे जो सिद्धार्थ के चले जाने के कारण एकदम सूना हो गया था। वे दोनों भी प्राण-विहीन शरीर की तरह ही वहाँ पहुँचे।
६. पद्म-पुष्पित जलाशय थे, फूलों से लदे हुए वृक्ष थे; किन्तु नागरिकों के हृदय प्रसन्न्ता से शून्य थे।
७. तेज-विहीन आँखों में अश्रु लिये हुए जब उन दोनों ने कपिलवस्तु मे प्रवेश किया तो उन्हें सारा नगर अन्धकारावृत प्रतीत हुआ।
८. जब लोगों ने सुना कि शाक्य-जाति के उस अभिमान को बिना साथ लाये ही वे दोनों अकेले लौटे है, तो लोगों की आँखे आँसू बरसाने लगीं।
९. आवेश से उन्मत्त हुए लोग छन्न का पीछा कर रहे थे और आँसू बहाते हुए चिल्ला रहे थे- "जाति और राज्य का गौरव राजकुमार कहाँ है ?"
१०. "जहाँ वह नहीं है वह नगर हमारे लिये जंगल है, और जिस जंगल में वह है वह जंगल ही हमारे लिये नगर है। सिद्धार्थ-विहीन नगर का हमारे लिये कोई आकर्षण नहीं।"
११. स्त्रियाँ खिड़कियों पर आकर जुट गई। वे एक दूसरे को कह रही थीं -- "राजकुमार लौट आया है।" लेकिन जब उन्होंने देखा कि घोड़े की पीठ नंगी हैं,उन्होनें खिडकिया बंद कर ली और जोर-जोर से विलाप करने लगी।

२१. परिवार का विलाप

१. शुद्धोदन के परिवार के लोग बड़ी उत्सुकतापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सम्भव है छन्न सिद्धार्थ को समझा-बूझा कर वापस लागने में सफल हो जाय।
२. राजकीय अस्तबल में प्रवेश करते ही कन्थक बड़े ओर से हिनहिनाया। इस प्रकार उसने महल के लोगों को अपना दु:ख व्यक्त कर दिया।
३. जो लोग राज-महल के भीतरी भाग में थे, उन्होंने सोचा -- "क्योंकि कन्थक हिनहिना रहा है, इसलिये राजकुमार वापस आ गया होगा।"
४. और वे स्त्रियाँ जो दु:ख के मारे होश-हवास भुलाये बैठी थीं, अब प्रसन्नता से पागल हो गई। वे राजकुमार को देखने की आशा में बडी तेजी से महल से बाहर आई। वे निराश हुई। वहाँ कन्थक था। राजकुमार न था।
५. सारा आत्म-संयम भूल कर गौतमी चिल्ला उठी। वह बेहोश हो गई। जोर-जोर से रोती हुई कहने लगी :-
६. "जिसके वैसे लम्बे-लम्बे बाहु हों, जिसकी सिंह समान चाल हो, जिसकी वृषभ जैसी आँखे हों, जो स्वर्ण समान सुन्दर हो, जिसका वक्षस्थल खूब चौड़ा हों, जिसका स्वर मेघ-गर्जन के समान गम्भीर हो - क्या एसे वीर को किसी आश्रम में रहना चाहिये?"
७. "यह वसुन्धरा ही रहने योग्य नहीं है क्योंकि वह अनुपम श्रेष्ठ कर्मी हमें छोड़कर चला गया हैं।"

८. “उसके वे दो पाँव - जिनके चरणों की अँगुलियों के बीच में सुन्दर जाली है, जिनके गिट्टे नील कंवल की तरह कोमल और आच्छादित है, जिनके बीच चक्र चिन्ह अंकित है, वन की कठोर-भूमि पर कैसे चल सकेंगें?”
९. “वह शरीर-- जो महलों में रहने या लेटने के योग्य है, जो मूल्यवान भेष-भूषा तथा चन्दन आदि के लेप से अलंकृत रहता है - उन जंगलों में कैसे रहेगा, जहाँ शीत, उष्णता और वर्षा से बचने का कोई उपाय नहीं ।”
१०. “जिसे अपना कुल, शील, शौर्य, बल, विद्या, सौन्दर्य और तारूण्य का अभिमान था; जिसे हमेशा देने का ही अभ्यास रहा, लेने का नहीं; वह दूसरों से भिक्षा कैसे माँग सकेगा?”
११. “जो स्वच्छ सुनहरी शैया पर सोता था और जिसे मधुर वाद्य के संगीत से उठाया जाता था वह मेरा तपस्वी अब केवल एक वस्त्र बिछाकर कठोर पृथ्वी पर कैसे सोयेगा?”
१२. इस प्रकार के करूण विलाप को सुनकर स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरे का आलिङ्गन कर आंसू बहाने लगी । उनकी आँखों से आँसू क्या बरस रहे थे, हिलाई गई लताओं के फूलों से मधु बरस रहा था ।
१३. यह भूलकर कि उसने उसे सहर्ष जाने की अनुमति दे दी थी वियोगाहत यशोधरा भी एक बार ही भूमि पर गिर पड़ी ।
१४. “अपनी धर्मपत्नी को -- मुझे -- वह कैसे छोड़ गया ? वह मुझे विधवा बना गया । वह अपनी धर्मपत्नी को अपने नये-जीवन का संगी-साथी बना सकता था ।”
१५. “मुझे स्वर्ग की कामना नही है । मेरी एक ही इच्छा रही है कि मेरा पति मुझे इस लोक वा परलोक में कभी न छोड़े ।”
१६. “यदि मै उसके विशालाक्ष तेजस्वी मुख की ओर देखने की अधिकारिणी नहीं हूँ तो क्या यह बिचारा राहुल भी अपने पिता की गोद मे लेटने का अधिकारी नहीं हैं!”
१७. “खेद है कि उस वीर के कोमल सौन्दर्य के भीतर उसका हृदय अत्यन्त कठोर है, अत्यन्त निर्दय है । कौन ऐसा है जो शत्रु को भी मुग्ध कर लेने वाले, तोतली बोली बोलने वाले इस प्रकार के बच्चे तक को छोड़ कर चला जाय?”
१८. “निश्चय से मेरा हृदय भी अत्यन्त दारूण है -- शायद पत्थर का बना हुआ अथवा लोह- निर्मित है जो अपने स्वामी के वनगमन पर, अनाथवत् छोड़कर चले जाने पर भी विदीर्ण नही होता । लेकिन मैं करूँ क्या? मेरा दु:ख असह्य है ।”
१९. इस प्रकार अपने दु:ख में अपने होश-हवास गँवाये हुए यशोधरा रोई और जोर-जोर से रोई । यद्यपि वह स्वभाव से बड़ी धैर्यवान् थी, लेकिन इस समय दु:ख में वह अपना धैर्य गँवा बैठी थी ।
२०. इस प्रकार जमीन पर पड़ी यशोधरा को, दु:ख के मारे अपने होश-हवास गँवाये देखकर और उसका करूण विलाप सुनकर सारी स्त्रियाँ भी चिल्लाने लगीं । आँसुओं के मारे उनके चेहरे ऐसे हो गये थे जैसे वर्षा से प्रताड़ित कमल हों ।
२१. छन्न और कन्थक दोनों के वापस लौट आने की बात सुनकर और अपने पुत्र के दृढ़ निश्चय की बात सुनकर शुद्धोदन के चित्त को बड़ी चोट पहुँची ।
२२. अपने पुत्र के वियोग से अत्यन्त दु:खी शुद्धोदन ने नौकर-चाकरों से सँभाले जाकर जरा देर के लिये घोड़े की ओर देखा । उस समय असकी आँखे आँसुओं से भरी थीं । इसके बाद वह जमीन पर गिर पड़ा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा ।
२३. तब शुद्धोदन अपने मन्दिर मे गया, प्रार्थना की और कई माङ्गलिक क्रियाएँ की । उसने अपने पुत्र के सकुशल लौट आने के लिये कई मन्नते मानीं ।
२४. इस प्रकार शुद्धोदन, गौतमी और यशोधरा यही मनाते- मनाते अपने दिन गिनने लगे कि हे देव ! हम उसे जल्दी-से-जल्दी फिर कब देखेंगे?

दूसरा भाग : सदा के लिये अभिनिष्क्रमण

१. कपिलवस्तु से राजगृह

१. कपिलवस्तु से निकलकर सिद्धार्थ गौतम ने मगध राज्य की राजधानी राजगृह जाने का विचार किया।
२. उस समय राजा बिम्बिसार का राज्य था। यह एक ऐसा स्थान था जहाँ बड़े-बड़े दार्शनिक और पण्डित रहते थे।
३. इस विचार से उसने गंगा पार की। उसने गंगा की तेज धारा तक की परवाह नहीं की।
४. रास्ते में वह एक ब्राह्मण स्त्री साकी के आश्रम में रूका, उसके बाद पद्म नाम की एक दूसरी ब्राह्मण स्त्री के आश्रम पर रूका और तब रैवत नाम के ब्राह्मण ऋषि के आश्रम पर। सभीने उसका आतिथ्य किया।
५. उसका व्यक्तित्व, उसकी तेजस्विता और उसका अनुपम सौन्दर्य ऐसा था कि उस प्रदेश के सभी लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि उसने संन्यासी के वस्त्र कैसे धारण किये हैं ?
६. उसे देखकर, अन्यत्र जाता हुआ कोई-कोई वहीं खड़ा रह गया, वहीं खड़ा खड़ा कोई शीघ्रता से उसके पीछे हो लिया, जो धीरे-धीरे चल रहा था वह तेजी से दौड़ने लगा और जो बैठा था वह तुरन्त खडा हो गया।
७. कुछ ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया, कुछ ने सिर झुकाकर आदर प्रदर्शित किया, कुछ ने उसे प्रिय-वचनों से सम्बोधित किया; कोई एक भी ऐसा नही था जिसने उसके प्रति अपना आदर का भाव न दिखाया हो।
८. जो रंग-बिरंगे कपड़े पहने थे उन्हें उसे देखकर संकोच हुआ, जो व्यर्थ प्रलाप कर रहे थे वे चुप हो गये; कोई भी ऐसा न था जो व्यर्थ के संकल्प-विकल्पों में लगा रहा हो।
९. उसकी भौंहें, उसका माथा, उसका मुंह, उसका शरीर, उसका हाथ, उसके पाँव, उसकी चाल -- उसके शरीर का किसी ने कोई भी अंग देखा- वह मंत्र-मुग्ध की तरह खड़ा रह गया।
१०. बड़ी लम्बी और कठिन यात्रा के बाद गौतम राजगृह पहूँचे, जो कि पाँच पहाड़ियों से घिरी हुई थी, जो कि पर्वतों से सम्यक सुरक्षित और अलंकृत थी और जहाँ चारों ओर मंगलकारी पवित्र स्थान थे।
११. राजगृह पहुँच कर उसने वहाँ पाण्डव पर्वत के नीचे एक जगह चुनी और वहाँ अपने रहने के लिये पत्तों की एक छोटी-सी झोपड़ी बना ली।
१२. कपिलवस्तु राजगृह पैदल चलकर कोई ४०० मील की से दूरी पर है।
१३. सिद्धार्थ गौतम ने यह सारी यात्रा पैदल की।

२. राजा बिम्बिसार और उसका परामर्श

१. दूसरे दिन वह उठा और उसने भिक्षापात्र हाथ में ले भिक्षाटन के लिये नगर में जाने की तैयारी की। उसके इर्द-गिर्द बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई।
२. मगध-नरेश श्रेणिय बिम्बिसार ने अपने महल के बाहर लोगों का जमघट देखा। उसने कारण जानना चाहा। एक दरबारी ने उसे इस प्रकार कारण बताया।
३. "जिसके बारे में ब्राह्मणों ने भविष्यवाणि की थी कि 'या तो यह बुद्ध होगा या चक्रवर्ती राजा होगा' -- यह वही शाक्य-पुत्र है जो अब संन्यासी हो गया है। उसी पर लोग नजर गडाये हैं।"
४. राजा ने यह बात सुनी और इसके अर्थपर विचार किया तो उसने तुरन्त दरबारी को कहा- "पता लगाओ, यह किधर जा रहा है ?" दरबारी आज्ञा पाकर राजकुमार के पीछे-पीछे चला।
५. स्थिर-दृष्टि, मात्र दो गज ही आगे देखते हुए, शान्त-स्वर, नपे-तुले कदम वाला वह श्रेष्ठ परिव्राजक भिक्षाटन के लिये चला तो उसकी इंद्रियाँ तथा चित्त पूर्णरुप से संयत थे।
६. जैसी भी कुछ भिक्षा मिली उसे ग्रहण कर वह पर्वत के एक एकान्त कोने में जा बैठा और भिक्षान्न खा चुकने के बाद पाण्डव-पहाड़ी पर चढ़ गया।
७. लोध्र वृक्षों से भरे जंगल में जहाँ मयूरों का स्वर गूंज रहा था, वह काषाय वस्त्रधारी, मानवता का सूर्य ऐसे चमक रहा था जैसे पूर्व-दिशा के पर्वतों पर प्रात:कालीन सूर्य।

८. उस राज-दरबारी ने यह सब देखकर, जाकर राजा को सारा वृत्तान्त सुनाया | राजा ने जब यह सब सुना तो अपने साथ कुछ थोडे-से अनुयायी ले वह गौरवपूर्ण भाव सहित उसी ओर चला |

९. पर्वत के समान व्यक्तित्व वाले उस राजा ने पर्वतारोहण किया |

१०. वहाँ उसने जितेन्द्रिय गौतम को पर्यङ्कासन लगाये बैठे देखा | वह ऐसा प्रतीत होता था मानों चलायमान पर्वत का शिखर हो |

११. उसके पास जो सौन्दर्य और शान्त-भाव में विशेष था, आश्चर्य और स्नेह की भावना से परिपूर्ण राजा गया |

१२. विनम्रतापूर्वक उसके समीप पहुँचकर बिम्बिसार ने उसका कुशल-क्षेम पूछा और गौतम ने भी वैसी ही शालीनता के साथ अपने सकुशल होने की बात कही |

१३. तब राजा एक स्वच्छ चट्टान पर बैठ गया और अपना मनोभाव व्यक्त करने के लिये इस प्रकार बोला –

१४. "तुम्हारे कुल से मेरी वंशानुगत प्रगाढ़ मैत्री है | इसीसे मेरे मन में तुम्हें दो शब्द कहने की इच्छा उत्पन्न हुई है | मेरी बात ध्यान से सुने |"

१५. "जब मैं तुम्हारे सूर्य-वंश का विचार करता हूं, तुम्हारे तारुण्य का विचार करता हूँ, तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य का विचार करता हूँ तो मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे मन में संन्यासी का जीवन व्यतीत करने का यह सर्वथा बेमेल संकल्प कहाँ से घर कर गया?"

१६. "तुम्हारे अंग रक्त चन्दन से चर्चित होने के योग्य है, रक्ताम्बर के नहीं; तुम्हारा यह हाथ प्रजा-रक्षण के योग्य है, भिक्षापात्र ग्रहण करने के योग्य नहीं |"

१७. "हे तरुण! यदि तू अपना पैतृक राज्य नहीं ही चाहता तो मैं तुझे अपना आधा राज्य देता हूं | इसे ग्रहण करने की कृपा कर |"

१८. "यदि तू ऐसा करेगा तो इससे तेरे स्वजनों को किसी प्रकार का दु:ख न होगा | समय बीतने पर अन्त में लक्ष्मी स्थिर-चित्तों की ही शरण ग्रहण करती है | इसलिये कृपया मेरी बात मान ले | सत्पुरुषों की सहायता पाकर सत्पुरुषो की श्री बहुत बलवती हो जाती है |"

१९. "यदि अपने कुलाभिमान से मेरा कहना अमान्य हो तो अनन्त सेना के साथ धनुष-बाण का उपयोग कर, मेरी सहायता से अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लो |"

२०. "इसलिये इन तीन पुरूषार्थो में से एक चुन लो | धर्मानुसार अर्थ और काम की प्राप्ति की कामना करो | काम और मोक्ष की उलटे क्रम से अर्थात् पहले काम की और फिर मोक्ष की इच्छा करो | जीवन के धर्म, अर्थ, काम- यही तीन उद्देश्य हैं | आदमी मरता है तो जहाँ तक इस संसार का सम्बन्ध है सभी कुछ निरोप को प्राप्त हो जाता है |"

२१. "इसलिये इन तीन पुरुषार्थो की प्राप्ति का प्रयास करके जीवन को सफल करो | कहा है कि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में ही जीवन की सफलता है |"

२२. "इन धनुष-बाण धारण करने में समर्थ बाहुओं को बेकार न रहने दों | इस पृथ्वी का तो कहना ही क्या इनमें तीनों लोकों को जीत लेने का सामर्थ्य है |"

२३. "मै जो यह सब कह रहा हूँ, इसमें मात्र मेरा स्नेह ही कारण हैं, न तो मैं यह राज्य-लोभ से ही कह रहा हूँ और न तुम्हारा यह तपस्वी भेष देखकर उत्पन्न हुई अभिमान- भावना से ही कह रहा हूँ | मेरे दिल मे दया है और आँखो में आँसू हैं |"

२४. "हे अपने कुल के अभिमान! हे तपस्या के इच्छुक! अभी समय है काम-भोगों का आनन्द ले | बाद में बुढापा आ जायेगा और इस तेरे सौन्दर्य को म्लान कर देगा |"

२५. "बुढापे में आदमी 'पूण्य' करके धर्मार्जन कर सकता है? बुढापे में आदमी विषय-भोग के अयोग्य हो जाता है | इसीलीये कहा है कि तरूण के लिये विषय-भोग है, मध्य-वयस्क के लिये धन है और वृद्ध के लिये धर्म है |"

२६. "इस संसार में तारूण्य का धन और धर्म से विरोध है- क्योंकि काम सुखों को कितना ही सुरक्षित रखे, वे सुरक्षित रखे ही नहीं जा सकते | इसलिये जब और जहाँ भी सुख-भोग प्राप्त हो वहाँ उनका उपभोग कर लेना चाहिए |"

२७. "वार्धक्य विचार-प्रधान होता है | यह स्वभावत: गम्भीर और शान्त रहता हैं | बिना प्रयास के ही यह संयत-भाव को प्राप्त हो जाता है |"

२८. "इसलिये वञ्चक, अस्थिर बाह्य-विषयों में अनुरक्त, असावधान, अधैर्यवान, अदूरदर्शी तारूण्य के गुजर जाने पर लोगों को ऐसा लगता है कि मानों किसी भयानक जंगल में से सुरक्षित निकल आये |"

२१. "इसलिये इस तिमिराच्छन्न तारूण्य को गुजर जाने दो | हमारा आरम्भिक जीवन सुख-भोग के लिये ही है | इस समय इन्द्रियों को काबू में रखा ही नहीं जा सकता |"

३०. "और यदि धर्म में ही तेरी विशेष रूचि है तो अपने कुल-धर्म के अनुसार यज्ञ कर, क्योंकि यज्ञ करने से ऊँचे - से उँचा स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता हैं |"

३१. "बाहुओं पर स्वर्ण-निर्मित बाजू-बन्द बाँधे हुए और नाना वर्ण के आभापूर्ण रत्न जडित मुकुट धारण किये हुए राजर्षि-गण यज्ञों द्वारा उसी पद को प्राप्त कर सके है जिसे अनेक महर्षियो ने तपस्या द्वारा प्राप्त किया है ।"

३. बिम्बिसार को गौतम का उत्तर

१. इन्द्र की तरह स्पष्टता और दृढता से जब मगध-नरेश ने यह कहा, तो उसकी भी बात सुनकर कुमार अपने निश्चय से विचलित नहीं हुआ । वह पर्वत के समान अचल था ।
२. मगध-नरेश से इस तरह सम्बोधित किये जाने पर संयत, स्थिर राजकुमार ने मैत्री-पूर्ण हृदय से यह उत्तर दिया-
३. "राजन! जो कुछ आप ने कहा है वह आपके योग्य है ।"
आपका जन्म उस महान् कुल में हुआ है, जिसका राज-चिन्ह सिंह है । आप मित्रों के हितचिन्तक हैं । आपके लिये यह स्वाभाविक है कि आप अपने एक मित्र को इस तरह कहें ।"
४. "दुश्शीलों की कुलागत मैत्री शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, सुशील ही है जो नये-नये व्यवहार से पुरानी परम्परागत मैत्री को दीर्घकाल तक बनाये रखते है ।"
५. "प्रतिकूल परिस्थिति में ही जो मैत्री का त्याग नहीं करते वे ही सच्चे मित्र हैं । सुख-पूर्ण अवस्था में, वैभव की स्थिति में तो कौन मित्र नहीं होता ।"
६. "सम्पत्ति प्राप्त होने पर अपने मित्रों के लिये तथा धर्म के निमित्त जो उसका उपयोग करते हैं उन्हीं की सम्पत्ति सार्थक है; जब इसका विनाश भी होता है तब भी यह दुःखजनक नहीं सिद्ध होती ।"
७. "हे राजन ! आपने जो भी मेरे बारे में कहा वह आपके औदार्य और मैत्री का ही परिणाम है । मैं भी मैत्री - पूर्ण ढंग से ही आपका समाधान करने का प्रयास करूँगा ।"
८. "मुझे न साँपों से ही उतना भय लगता है और न आकाश से गिरने वाले वज्र से ही उतना भय लगता है, न वायु के झोको से प्रेरित आग के शोलो से ही इतना भय लगता है, जितना भय इन इन्द्रियों के विषयों से लगता है ।"
९. "यह अस्थिर विषय -- हमारे सुख और सम्पत्ति के विनाशक, जो संसार में अन्त:शून्य और माया के सदृश हैं - आशाकाल में ही आदमी के चित्त को चंचल कर देते हैं, जब वे उसे ग्रस लेते हैं तब तो इनका कहना ही क्या?"
१०. "मर्त्य-लोक तो क्या, दिव्य-लोक में भी विषयानुरक्त को संतोष और सुख प्राप्त नहीं होता । जिस प्रकार ईंधन से वायु-प्रेरित आग की कभी तुष्टि नहीं होती उसी प्रकार विषयों की कामना रखने वाले की कभी प्यास नही बुझती ।"
११. "विषयों से बढ़कर संसार में विपत्ति नहीं है, अविद्या में ग्रसे रहने के ही कारण लोग उनमें अनुरक्त होते हैं । एक बार विषयों से भयभीत हो जाने पर कौन बुद्धिमान् फिर उनकी कामना करेगा?"
१२. "समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी जीत लेने पर भी राजा लोग समुद्र के दूसरी और विजयी होने की कामना करते हैं । जिस प्रकार अपने में गिरनेवाली नदियों से समुद्र अतृप्त ही रहता है, उसी प्रकार आदमी की कभी भी विषयों से तृप्ति नहीं होती ।"
१३. "आकाश से स्वर्ण-वर्षा हो चुकने पर भी, चारो समुद्रों को जीत लेने पर भी, शक्र का आधा राज्य हस्तगत हो जाने पर भी राजा मान्धाता विषयों में अतृप्त ही रहा ।"
१४. जब इन्द्र ने वृत्र के भय के मारे अपने आपको छिपा लिया था उस
समय नहुर्ष स्वर्ग-लोक का सुख-भोग कर भी अहंकार के वशीभूत हो से अपनी पालकी उठवा कर भी विषयों मे अतृप्त हो रहा था ।"
१५. "इन विषय-भोग नामधारी शत्रुओं का कौन स्वागत करेगा, जिन्होंने ऐसे ऋषियों पर भी काबू पा लिया जो दुसरे ही पुरुषार्थ मे लगे थे, जो वल्कल वस्त्र धारण करते थे, जो फल-मूल खाकर गुजारा करते थे और जिनकी साँपों जैसी लंबी-लंबी जटाए थी ।"
१६. "विषयासक्त मनुष्यों के दु:खों की जानकारी हो जाने पर जो संयत है उनके लिये यही योग्य है कि वे विषयों के पास न फटके ।"
१७. "विषयासक्त मनुष्यो के लिये विषय-सम्बन्धी सफलता भी एक विपत्ति ही है, क्योंकि इच्छित विषय की प्राप्ति होने पर वह उससे मदमत्त हो जाने पर जो नहीं करना चाहियें, वह करता है और जो करना चाहिये वह नहीं करता, और इससे आहत होकर वह भयानक दुःख को प्राप्त होता है ।"
१८. "ये काम-विषय जो बड़े ही प्रयास से सुरक्षित रख जाते हैं, जो विषयी की वञ्चना के अनन्तर जहाँ से आते हैं वहाँ लौट जाते हैं, जो थोड़ी देर के लिये ऋण लिये जैसे ही होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इनमें आनन्द मनायेगा?"

१९. ये काम-विषय उल्का के समान हैं, इन के पीछे पड़ने पर ये पिपासा में वृद्धि का कारण होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा ।"

२०. "ये काम-विषय फेंके हुए मांस के समान है, जो राजाओं से लेकर सभी के दु:ख का कारण होते है, कौन बुद्धिमान संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर संतुष्ट होगा ।"

२१. "ये काम-विषय इन्द्रियों की ही तरह नाशवान् है, जो भी इनमे रमण करता है, ये उसके लिये विपत्तिजनक ही होते हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा?"

२२. "जो संयमी आदमी इन काम-विषयों से डसा जाता है ये उसका सुख हर लेते है और उसके विनाश का कारण होते है । ये एक क्रुद्ध निर्दय सर्प के समान हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा?"

२३. "जिन काम-विषयों को भोगने से भी वैसे ही तृप्ति नहीं होती जैसी एक कुत्ते की हड्डी चाटने से, जो सूखी हड्डीयों के पंजर के समान हैं, कौन बुद्धिमान् संयत आदमी इन्हें प्राप्त कर सन्तुष्ट होगा?"

२४. "जो दरिद्र कामान्ध है, जो विषयाशा का दास है, वह इसी संसार मे मृत्यु-दु:ख का अधिकारी है ।"

२५. "गीतों के कारण हिरण विनाश को प्राप्त होते हैं, दीपक की चमक के कारण पतंगे आग में जल-भून कर जान गँवाते हैं, माँस-लोभी मछली लोहे का काँटा निगल जाती है; इसलिये संसार के काम-भोग अन्त में विनाश का ही कारण होते हैं ।"

२६. "यह जो सामान्यतया कहा जाता है कि 'काम-भोग भोगने के लिये है' यदि विचार कर देखा जाय तो इनमें से कोई भी भोग्य-पदार्थ नहीं है; अच्छे अच्छे कपड़े और दूसरी भी वैसी ही सभी चिजें अधिक-से अधिक दुःख के मार्जन मात्र है ।"

२७. "पानी प्यास बुझाने के लिये होता है, भोजन भूख मिटाने के लिये, घर हवा-धूप और वर्षा से बचाने के लिये; और वस्त्र शीत से रक्षा करने के लिये तथा नग्नता ढकने के लिये ।"

२८. "इस प्रकार शैया तन्द्रा के विघात के लिये है, वाहन यात्रा की थकावट मिटाने के लिये है, आसन खड़े रहने की थकावट दूर करने के लिये है, इसी प्रकार स्नान शरीर-शुद्धि और स्वास्थ का साधन है ।"

२९. "जितने भी बाह्य-पदार्थ हैं वे आदमियों के दुःख हरण के ही साधन हैं - वे अपने में भोग्य पदार्थ नहीं हैं; कौन बुद्धिमान आदमी इन दुःख के दूर करने के साधनों को भोग्य-वस्तुएँ मान कर भोगेगा ?"

३०. "जो आदमी सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होने पर ठण्डी पट्टी आदि को भोग्यवस्तुएँ मानें - जो कि केवल वेदना को दूर करने के ही उपाय है - वहीं आदमी इन काम-विषयों को भोग्य वस्तुओं का नाम दे सकता है ।"

३१. क्योंकि सभी काम-विषय अनित्य है, इसलिये मै उन्हें भोग्य-विषय मान ही नहीं सकता । जो स्थितियाँ सुख-दायक प्रतीत होती है वही दु:खकारक भी बन जाती हैं ।"

३२. "गर्म-वस्त्र और सुगन्धित धूप शीत ऋतु में सुख पहुँचाते है; किन्तु ग्रीष्म ऋतु में वही अप्रिय बन जाते है; चन्द्रमा की किरणें और चन्दन का लेप गर्मी में सुखकारक होते हैं, किन्तु वही सरदी में अप्रिय बन जाते हैं ।"

३३. "क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ - हानि-लाभ, यश-अपयश, सुख-दु:ख आदि-द्वन्दों के आधीन हैं । इसलिये कोई भी आदमी न नित्य सुखी रहता है और कोई भी आदमी न नित्य दुखी ।"

३४. "जब मैं इस सुख-दुःख के मिश्रण को देखता तो मै राज्य और दासता को समान ही समझता हूँ । क्योंकि न तो राजा ही हमेशा हँसता रहता है और न दास ही हमेशा रोता रहता है ।"

३५. "क्योंकि राजा के सिर पर बड़ी जिम्मेदारी होती है, इसलिये राजा की चिन्ताएँ भी अधिक होती है । क्योंकि राजा तो कपड़े टांगने की खूँटी के समान होता है, उसे दूसरों के लिये ही कष्ट सहन करना पड़ता है ।"

३६. "जो राजा अपने 'राज्य' पर अत्याधिक निर्भर करता है वह अभागा ही है जो कि उसे एक- न एक दिन त्याग देने वाला है और जिसे वक्रगति ही प्रिय है; दूसरी ओर यदि राजा राज्याश्रित नहीं है तो ऐसे कायर नरेश को सुख ही क्या हो सकता है?"

३७. "और क्योकी सारी पृथ्वी का राज्य जीत लेने पर भी राजा एक ही नगरी में रह सकता है और उसमें भी केवल एक ही महल में सो सकता है; बाकी सब कुछ क्या दूसरों के ही लिये नहीं है?"

३८. "और राजा को भी एक जोड़ा कपडा ही लगता है और भूख मिटाने के लिये थोड़ा भोजन अपेक्षित होता हैं; इसी प्रकार एक शैय्या और एक आसन की ही आवश्यकता होती है; शेष सब तो मद के लिये ही है ।"

३९. "यदि इन सब वस्तुओं का उपयोग आदमी का सन्तोष ही है, तो मैं बिना राज्य के भी सन्तुष्ट है तो सन्तुष्ट हूँ । और यदि कोई इनके बिना ही संतुष्ट है तो क्या ये सब बेकार नहीं है?"

४०. "जो मंगलकारी पथ का पथिक है, उसे काम-भोगो में का प्रलोभन देना योग्य नहीं । उस मैत्री का, जिसकी आपने घोषणा की है, ध्यान करके, मै आपसे बार-बार पूछता हूँ कि आप मुझे बतायें कि क्या विषयों मे कुछ भी सार है?"

४१. “मैने रोष में आकर गृह-त्याग नहीं किया है और न इसलिये कि शत्रु के बाणों ने मेरे मुकुट को गिरा दिया है और न मेरी कोई दूसरी फल-आकांक्षा ही है, जिसके कारण मैं आपके प्रस्ताव का स्वागत नहीं कर रहा हूं ।”
४२. “जो कोई किसी भयानक क्रूद्ध सर्प से एक बार बचकर फिर उसी को प्राप्त करने की इच्छा करें जो तेज जलती हुई तुषाग्नि से एक बार बचकर फिर उसी में पडने की इच्छा करे, वही एक बार इन काम-विषयों से बचकर फिर इन्हीं में फँसने की इच्छा कर सकता है ।”
४३. “जो भली प्रकार देखता हुआ भी किसी अन्धे से ईर्षा करे, जो मुक्त होता हुआ भी किसी बँधे हुए से ईर्षा करे, जो धनी होकर भी किसी दरिद्र से ईर्षा करे, जो स्वस्थ-चित्त होकर भी किसी पागल से ईर्षा कर सकता है ।”
४४. “मित्र! जो भिक्षाजीवी है, वह दया का पात्र नहीं है । उसे इस लोक मे परं सुख प्राप्त है, शान्ति प्राप्त है और आगे के लिये भी उसके सग दु:खो का अन्त हो गया है ।”
४५. “किन्तु वही दया का पात्र है जो विशाल धन राशि के बीच गडा हुआ होने पर भी तृष्णा के वशीभूत है, जिसे न इस लोक में परं सुख प्राप्त है, न शान्ति प्राप्त है और न आगे के लिये भी उसके दु:खों का अन्त हुआ है ।”
४६. “जो कुछ तुमने मुझे कहा है वह तुम्हारे शील, तुम्हारी जीवन-चर्या, और तुम्हारे कुल के अनुरूप है । किन्तु अपने निश्चय पर दृढ़ रहना मेरे भी शील, मेरी भी जीवन-चर्या और मेरे भी कुल के अनुरुप है ।”

४. गौतम का उत्तर

१. “मै संसार के कलहों से आहत हूँ । मैं शान्ति की खोज में हूँ । मैं इस दु:ख का अन्त करने के बदले में इस पृथ्वी का राज्य तो क्या दिव्य-लोक का राज्य भी न चाहूंगा ।”
२. “और राजन्! यह जो तुमने कहा है कि धर्म, अर्थ और काम ही मनुष्य के तीन के पुरुषार्थ हैं, और तुम्हारा यह भी कहना है कि मैं दु:ख के मार्ग पर हूँ तो तुम्हारे तीनों पुरूषार्थ अनित्य है और असन्तोषकारक है ।”
३. “और जहाँ आपका यह कहना है कि ‘वार्धक्य आने तक प्रतीक्षा करनी चाहीये, क्योंकि तरुणाई का ठिकाना नहीं’, तो आपका यह कथन ही सुनिश्चित नहीं क्योंकि तरुणाई मे भी दृढता हो सकती है और वार्धक्य में भी नहीं हो सकती ।”
४. “और जब मृत्यु किसी भी समय किसी को भी अपने वश में ले सकती हैं, तो कोई भी शान्ति का खोजी बुद्धिमान किस प्रकार वार्धक्य की प्रतीक्षा कर सकता है जब वह यह जानता ही नहीं कि मृत्यु कब आ धर दबायेगी?”
५. “जब वार्धक्यरूपी शस्त्र हाथ में लीये, रोगों के तीर चारों और बिखेरे मृत्यु प्राणियों को निगल जाने के लिये तैयार खडी है और प्राणी भी उसके मुंह में ऐसे जाते हैं जैसे हिरण जंगल की ओर तो कोई भी दीर्घायू की भी क्या कामना कर सकता है?”
६. “चाहे तरुण हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे लड़का हो, हर किसी के लिये यही योग्य है कि वह करूणा के धार्मिक-पथ पर अग्रसर हो ।”
७. “और जहाँ तक तुम्हारा यह कहना है कि मैं यज्ञ करने में अप्रमादी बनूं, क्योकि वे मेरे कुल के अनुकूल है और महान् फलदायी हैं, तो ऐसे यज्ञों को नमस्कार है जिनमे निरीह प्राणियों का वध होता है ।”
८. “किसी भावी फल के लिये किसी भी निरीह प्राणी की हत्या करना किसी भी कारुणिक शील-सम्पन्न मुनष्य को योग्य नहीं, चाहे फिर वह यज्ञ का फल अनन्तकालीन ही क्यों न हो ।”
९. “और यदि यह भी न स्वीकार किया जाय कि आत्म-संयम, सदाचार और कामजित होना ही सद्धर्म का अनुकरण करना है, तो भी याज्ञिक होना ठीक नहीं, क्योकि यज्ञ-धर्म के अनुसार ऊँचे-से-ऊँचा फल पशुओं की हत्या से ही मिल सकता है ।”
१०. “दुसरों को दु:ख देकर, इसी जन्म में, जो सुख आदमी को प्राप्त होता है वही जब कारूणिक बुद्धिमान पुरुष के लिये काम्य नहीं तो फिर किसी अदृश्य दुसरे लोक मे जो सुख मिलने की बात कही जाती है, उसके बारे में तो कहना ही क्या?”
११. “मैं अगले जन्म में मिलने वाले किसी फल की आशा से कोई कर्म करने में प्रेरित नहीं हो सकता, हे राजन्! मेरे मन को भावी जन्मों की कल्पना में सुख नहीं मिलता, क्योंकि ऐसे कर्मो की दिशा उसी तरह अनिश्चित और अस्थिर है जैसे बादलो से गिरी वर्षा से प्रताड़ित किसी पौंधे की दिशा ।”
१२. राजा ने हाथ जोड़कर कहा- “बिना बाधा के आपका उद्देश्य सफल हो । जब भी कभी आप का जीवनोद्देश्य पूरा हो जाय तब फिर इधर पधारने की कृपा करना ।”
१३. गौतम को फिर अपने राज्य मे आने के लिये वचन-बद्ध कर अपने दरबारियों सहित राजा अपने महल को चला गया ।

५. शान्ति का समाचार

१. जब गौतम राजगृह में कुटी बनाकर ठहरे हुए थे, उसी समय पाँच दूसरे परिव्राजक भी आये और उन्होने भी उसके पास ही एक कुटी बना ली ।
२. इन पाँच परिव्राजको के नाम थे कौण्डिन्य, अश्वजित, बाष्प, महानाम तथा भद्रिक ।
३. वे भी गौतम के व्यक्तिगत से प्रभावित हुए और सोचने लगे कि इसकी प्रव्रज्या का क्या कारण रहा होगा?
४. राजा बिम्बिसार की भाँति ही उन्होंने भी इस विषय में प्रश्न किया ।
५. जब उसने उन्हें वह सारी परिस्थिति समझाई जो कि उसके प्रव्रजित होने का कारण बनी थी, उन्होंने कहा, "हाँ हमने यह सुना हैं, लेकिन क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे चले आने के बाद क्या हुआ?"
६. सिद्धार्थ का उत्तर था, "नहीं ।" तब उन्होने उसे बताया कि उसके चले आने के बाद कोलियों से युद्ध ठानने के विरोध में शाक्यों मे बड़ा आन्दोलन छिडा ।
७. आदमियों, औरतों, लड़कों, लड़कियों ने प्रदर्शन किये और जुलूस निकाले । वे नारे लगा रहे थे कि 'कोलिय और शाक्य भाई भाई है, भाई का भाई के विरूद्ध शस्त्र उठाना अनुचित हैं', 'गौतम के जलावतन हो जाने को याद करो' इत्यादि ।
८. आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि शाक्य-संघ को एक सभा बुलाकर पुनः अपने निर्णय पर विचार करना पड़ा । इस समय बहुमत कोलियों से समझौता कर लेने के पक्ष में था ।
९. शाक्य-संघ ने पाँच जनो को अपना दूत चुना और उन्हें यह काम सौंपा गया कि वे कोलियों के साथ सन्धि-वार्ता चलायें ।
१०. जब कोलियों को इसका पता लगा वे बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने भी अपने में से पाँच जन चुने जो शाक्यों के दूतों के साथ सन्धि-वार्ता चलायें ।
११. दोनों ओर दूत आपस में मिले और दोनों ने तय किया कि एक स्थायी पंचायत की नियुकित की जाय और रोहिणी के जल को लेकर कभी भी यदि कोई झगड़ा हो तो इस पंचायत के सामने ही रखा जाय और पंचायत का निर्णय मान्य किया जाय । इस प्रकार युद्ध का खतरा सदा के लिये शान्त हो गया ।
१२. जो कुछ कपिलवस्तु में हुआ था उससे गौतम को सूचित करने के अनन्तर परिव्राजकों ने कहा- "अब तुम्हारे लिये परिव्राजक बने रहने की कोई आवश्यकता नही । अब तुम अपने परिवार के लोगों के पास वापस जा सकते हो ।"
१३. सिद्धार्थ का उत्तर था- "इस शुभ समाचार से मुझे प्रसन्नता हुई है । यह मेरी विजय है । लेकिन मै वापस घर नहीं जाऊँगा । मुझे नहीं जाना चाहिये ।"
१४. गौतम ने उन पाँच परिव्राजकों से पूछा- "तुम्हारा क्या कार्यक्रम है?" उनका उत्तर था- "हमने तपस्या करने का निश्चय किया है । तुम भी क्यों हमारे साथ शामिल नहीं होते?" सिद्धार्थ ने कहा- "शनैःशनैः पहले मुझे दूसरे पथों की परीक्षा करनी है ।"
१५. तब पाँचो परिव्राजक चले गये ।

६. समस्या की नई पृष्ठ-भूमि

१. पाँच परिव्राजकों द्वारा लाये गये इस समाचार ने कि शाक्यों और कोलियों में युद्ध का होना रूक गया था, गौतम को बड़ा बेचैन बना दिया ।
२. अकेला होने पर वह बड़ी गम्भीरता से सोचने लगा कि क्या अब भी परिव्राजक बने रहने का उसके लिये कोई उचित कारण रह गया है!
३. उसने अपने से प्रश्न किया-वह अपने बन्धु-बान्धवों को क्यों छोड़कर आया था?
४. उसने इसीलिये गृहत्याग किया था क्योंकि वह युद्ध का विरोधी था । "अब जब कि युद्ध समाप्त हो गया है, तब भी क्या मेरे लिये कोई समस्या शेष रह गई है ! क्या युद्ध की समाप्ति के साथ-साथ मेरी समस्या भी समाप्त हो गई?"
५. गहराई से सोचने पर उसे उत्तर मिला - नही;
६. युद्ध की समस्या अनिवार्य तौर पर विरोध की समस्या है । यह एक बड़ी समस्या का एक अंग मात्र है ।
७. "यह विरोध न केवल जातियो और राजाओं में ही विद्यमान है, यह विरोध यह संघर्ष विद्यमान है क्षत्रियों में, ब्राह्मणों मे, गृहस्थो में, माता और पुत्र मे, पुत्र और माता में, पिता और पुत्र में, बहन और भाई में तथा साथी और साथी में ।"

८. जातियों में जो संघर्ष होता है वह तो कभी-कभी होता है लेकिन वर्गों के बीच में जो संघर्ष होता है वह स्थायी है और लगातार जारी है । संसार के कष्टों और दुःख के मूल में यह वर्ग-संघर्ष ही हैं ।

९. यह सत्य है कि मैंने युद्ध के कारण ही गृहत्याग किया था । लेकिन शाक्यो और कोलियों का युद्ध समाप्त हो जाने पर भी मैं घर वापस नही लौट सकता । मैं देखता हूँ कि मेरी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया है । मुझे उस सामाजिक-संघर्ष की समस्या का हल खोज निकालना है ।

१०. पुराने परम्परागत दर्शनों के पास इस सामाजिक संघर्ष की समस्या का हल है या नहीं और यदि हैं तो कहाँ तक?

११. क्या हम इन सामाजिक दर्शनों में से किसी एक को भी सही मान सकते हैं ?

१२. उसने हर परम्परा का, हर मत का, स्वयं परीक्षण करने का निश्चय किया ।

तीसरा भाग : नये प्रकाश की खोज मे

१. भृगु आश्रम पर रूकना

१. अन्य पंथों का परीक्षण करने के उद्देश्य से सिद्धार्थ गौतम ने आलार कालाम से भेंट करने के लिये राजगृह को छोड़ दिया ।
२. मार्ग में उसने भृगु ऋषि का आश्रम देखा और यूं ही जरा देखने के लिये उसमें प्रवेश किया ।
३. आश्रम के ब्राह्मण निवासी जंगल से लकडी चुन कर लाये थे । उनके हाथ 'तपस्या' की अत्यावश्यक वस्तुएँ समिधा, पुष्प तथा कुश के भरे थे । वे बुद्धिमान् अपनी-अपनी कुटियों में न जाकर सिद्धार्थ गौतम की ही ओर मुडे ।
४. आश्रम निवासियों द्वारा समुचित रूप से सम्मानित होकर सिद्धार्थ गौतम ने भी आश्रम के बडे-बुढो के प्रति आदर प्रदर्शित किया ।
५. उस मोक्ष-कामी बुद्धिमान् ने उन स्वर्ग-कामी तपस्वियों की विचित्र विचित्र तपस्याओं का निरीक्षण करते हुए उस आश्रम को देखा ।
६. उस सुकोमल संन्यासी ने उस पवित्र वन में उन तपस्वियो को वैसी नाना प्रकार की तपस्याएँ करते हुए प्रथम बार देखा ।
७. तपस्याओं के रहस्य के श्रेष्ठ ज्ञाता भृगु ब्राम्हण ने उसे सभी प्रकार की तपस्याऐं समझायी और प्रत्येक तपस्या का फल भी बताया ।
८. पानी से उत्पन्न, निरिग्नि-भोजन, मूल और फल- यही धर्मशास्त्रों के अनुसार तपस्वियो का भोजन है, लेकिन तपस्या के भिन्न-भिन्न नाना रूप हैं ।
९. कुछ पक्षियों की भाँति दाने चुग कर गुजारा करते हैं, दूसरे हिरणों की भांति घास चुगते हैं और तीसरे साँपों की भाति वायु-भक्षी होते हैं - मानो वे दीमक की बाम्बी ही बन गये हों ।
१०. दुसरे बड़ी कठिनाई से पत्थरों से अपने शरीर के लिये पोषण प्राप्त करते हैं, दूसरे अपने दांतों से ही पीस कर अन्न खाते हैं, और तीसरे दूसरों के लिये उबालते हैं और उनके लिये भाग्यवश जो कुछ थोड़ा बच रहे उसी पर गुजारा करते है ।
११. कुछ दूसरे निरन्तर पानी में भीगी जटाओं से दो बार अग्नि देवता को अर्ध्य अर्पण करते हैं, कुछ दूसरे मछलियों की तरह पानी मे डूबे रहते हैं । उनके बदनों को कछुए नोचते रहते है ।
१२. कुछ समय तक इस प्रकार के तपस्या के कष्ट सहने से - अधिक कष्ट सहने से स्वर्ग, मध्यम कष्ट सहने से मर्त्य –लोक, वे अन्त में सुख लाभ करते हैं । कहा गया है कि कष्ट सहन ही पुण्य का मूल है ।
१३. यह सब सुना तो गौतम ने उत्तर दिया- "किसी भी ऐसे आश्रम को देखने का यह मेरा पहला अवसर है । मेरी समझ में तुम्हारा यह तपस्या-क्रम नही आता ।"
१४. "अभी तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ । आप की यह निष्ठा स्वर्ग लाभ के लिये है, किन्तु मेरी इच्छा तो यही है कि संसार के दुःख के मूल कारण का और उसके दूर करने का उपाय खोज निकाला जाय । क्या मैं अब आप से विदा ले सकता हूँ? मैं सांख्य-दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ और योग-विधि का भी अभ्यास करना चाहता हूँ और देखना चाहता हूँ कि क्या यह दोनों पद्धतियाँ मेरी समस्या के हल में किसी प्रकार सहायक हो सकती है ?"
१५. "जब मैं सोचता हूं कि मुझे आप लोगों से - जो ऐसी निष्ठा से अपने पथ पर अग्रसर हो रहे है, जिन्होने मेरे प्रति इतने सौहार्द्र का परिचय दिया है -- विदा लेनी होगी, तो मुझे बडा दुःख होता है, वैसा ही दुःख जैसा मुझे अपने सम्बन्धियों को छोडते समय हुआ था ।"
१६. "मैं जो इस उन से विदा ले रहा हूँ यह कोई आपकी कृति के प्रति वितृष्णा के कारण नहीं, क्योंकि आप तो अपने पूर्वज ऋषियों के पथ पर चलने वाले महान ऋषि-गण हैं ।"
१७. "मैं मुनि आलार कालाम के पास जाना चाहता हूँ, जो सुविज्ञ माना जाता हैं ।
१८. उसका यह संकल्प देखकर आश्रम-पति भृगु ने कहा –"राजकुमार तुम्हारा संकल्प महान् है । तुमने तरुण होने के बावजूद स्वर्ग-सुख और मोक्ष के बारे में गम्भीरता से विचार कर लिया है और तुम स्वर्ग-सुख के स्थान पर मोक्ष लाभ करना चाहते हो । तुम निसन्देह वीर हो ।"
१९. "यदि जैसा तुम कहते हो, यही तुम्हारा दृढ़ निश्चय हो तो शीघ्र विंध्य प्रदेश को जाओ । वही वह मुनि आलार कालाम रहता है जो निरपेक्ष सुख के रहस्य का ज्ञाता है ।"

२०. "उससे तुम मार्ग का ज्ञान प्राप्त करोगे । लेकिन जहाँ तक मैं देख सकता हूं तुम वहाँ भी न रूकोगे । तुम उसके सिद्धान्त की भी जानकारी प्राप्त कर और आगे बढ़ जाओगे ।"
२१. गौतम ने उसका धन्यवाद किया और ऋषि-मण्डली के प्रति आदर प्रदर्शित कर वहाँ से विदा हुआ । वे ऋषि-गण भी उसके प्रति यथायोग्य सत्कार सम्मान की भावना प्रदर्शित कर पुनः तपस्या करने के निमित्त वन में जा दाखिल हुए ।

२. सांख्य-परम्परा का अध्ययन

१. भृगु के आश्रम से विदा ले चुकने पर गौतम आलार कालाम के आश्रम का पता लगाने के लिये निकल पड़ा ।
२. आलार कालाम उस समय वैशाली में ठहरा हुआ था । गौतम उधर गया । वैशाली पहुँच कर वह उसके आश्रम पहुँचा ।
३. आलार कालाम के पास पहूँच कर उसने कहा कि मैं आपके सिद्धान्त और अभ्यास में दीक्षित होना चाहता हूँ ।
४. आलार कालाम ने उत्तर दिया- "तुम्हारा स्वागत है । मेरा सिद्धान्त ऐसा है कि तुम्हारे जैसा बुद्धिमान् आदमी इसे अचिरकाल में ही स्वयं समझ ले सकता है । मेरे सिद्धान्त का साक्षात् कर सकता है और तद्नुसार जीवन बिताने लग सकता हैं ।"
५. "निश्चय से, तुम ऊँची-से-उँची शिक्षा ग्रहण करने के पात्र हो ।"
६. आलार कालाम के ये शब्द सुनकर राजकुमार बहुत प्रसख हुआ । उसने उत्तर दिया-
७. "इस असीम करूणा के कारण जो आप मेरे प्रति दिखा रहे हैं, सदोष होने पर भी मुझे लगता है कि ये निर्दोष हुँ ।
८. "क्या आप कृपा कर मुझे अपना सिद्धान्त बतायेंगे?"
९. आलार कालाम बोला- "तुम्हारे शील, तुम्हारे चरित्र और तुम्हारे दृढ़ निश्चय का मेरे मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि ये तुम्हारी पात्रता जाँचने के लिये तुम्हारी कोई परीक्षा नहीं लेना चाहता ।"
१०. "हे सुनने वालों में श्रेष्ठ! हमारे सिद्धान्तों को सुनो ।"
११. तब उसने गौतम को उन सिद्धान्तो से परिचित कराया जो उस समय सांख्य-दर्शन के नाम से ज्ञात थे ।
१२. प्रवचन की समाप्ति पर आलार कालाम ने कहा -- "गौतम ! बस इतने ही हमारे सिद्धान्त हैं । मैने सार रूप में सब बता दिये हैं ।"
१३. गौतम आलार कालाम की स्पष्ट व्याख्या से बडा प्रसन्न हुआ ।

३. समाधि-मार्ग का अभ्यास

१. जिस समय गौतम अपनी समस्या का हल ढूंढ निकालने के लिये नाना तरह के परीक्षण करने में लगा हुआ था, उसे विचार आया कि वह समाधि लगाने का ढंग भी क्यों न सीख ले?
२. ध्यान मार्ग की तीन पद्धतियाँ प्रचलित थीं ।
३. तीनों पद्धतियों में एक बात समान थी । तीनों की मान्यता थी कि सांस पर काबू पा लेने से चित्त की एकाग्रता सिद्ध हो जाती है ।
४. सांस को बस में रखने (?) की एक पद्धति आनापानसति कहलाती थी ।
५. सांस को वश मे रखने की एक दूसरी पद्धति प्रचलित थी जो प्राणायाम कहलाती थी । यह सांस लेने के तीन विभाग करती थी: (१) पूरक (अन्दर सांस खींचना), कुम्भक (सांस को अन्दर रोके रखना), रेचक (सांस को बाहर निकाल देना) । सांस को वश में करने का एक और तीसरा मार्ग समाधि-मार्ग कहलाता था ।
६. आलार कालाम ध्यान-मार्ग में निष्णात समझा जाता था । गौतम को लगा यह अच्छा होगा कि यदि यह आलार कालाम की देख-रेख में ध्यान-मार्ग का कुछ अभ्यास कर ले ।
७. इसलिये उसने आलार कालाम से बातचीत की और प्रार्थना की कि वह कृपया उसे ध्यान-मार्ग का अभ्यास करा दे ।
८. आलारकालाम का उत्तर था- "बड़ी खुशी से ।"
९. आलार कालाम ने उसे अपने ध्यान-मार्ग की विधि सिखाई । इसकी सात 'सिढियाँ' थीं ।
१०. गौतम ने इस विधि का नियमित रूप से प्रतिदिन अभ्यास किया ।
११. इस विधि पर पूरा अधिकार कर चुकने के बाद गौतम ने पूछा- "क्या सीखने के लिये कुछ और शेष है ?"

१२. आलार कालाम का उत्तर था- “मित्र ! नहीं इसके अतिरिक्त मेरे पास सिखाने के लिये और कुछ नहीं ।” गौतम ने आलार कालाम से बिदा ली ।
१३. गौतम ने उद्दक रामपुत्त नाम के एक दूसरे योगी के बारे में सुना जिसकी ख्याति थी कि उसने एक ऐसी ध्यान-विधी का आविष्कार किया है कि उससे ध्यानी आलार-कालाम की ध्यान-विधि की अपेक्षा एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता हैं ।
१४. गौतम ने सोचा कि यह विधि भी सीख कर योगी की अन्तिम अवस्था तक पहुंचना चाहिये । तदनुसार वह उद्दक रामपुत्त आश्रम में पहुंचा और उसके कथनानुसार योगाभ्यास आरम्भ किया ।
१५. थोड़ी देर में ही गौतम ने उद्दक राम-पुत्त के आठवें दर्जे तक भी अधिकार प्राप्त कर लिया । उद्दक रामपुत्त की ध्यान विधि को पूर्ण रुप से हस्तगत करने के अनन्तर गौतम ने उससे भी वही प्रश्न पूछा जो उसने आलार कालाम से पूछा था: “क्या आगे कुछ और भी सीखना शेष है?”
१६. उद्दक रामपुत्त का उत्तर भी पूर्ववत् ही था:- “मित्र! इसके अतिरिक्त तुम्हें सिखाने के लिये और मेरे पास कुछ नहीं ।”
१७. आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त दोनों ध्यानाचार्य के रूप में कोशल “जनपद” में प्रसिद्ध थे । लेकिन गौतम ने सुना था कि मगध जनपद में भी वैसे ही ध्यानाचार्य है । उसने सोचा कि उसे उनकी भी विधि सीख लेनी चाहिये ।
१८. तदनुसार गौतम मगध गया ।
१९. उसने देखा कि यद्यपि उनकी भी ध्यान-विधि का आधार सांस पर काबू पाना ही था, तो भी जो ध्यान- विधि कोशल जनपद मे प्रचलित थी, उससे वह सर्वथा भिन्न थी ।
२०. इस ध्यान-विधी की विशेषता यह थी कि यह सांस का सर्वथा निरोध करके चित्त की एकाग्रता का सम्पादन करती थी ।
२१. गौतम ने यह विधि सीखी । जब उसने सांस को रोक कर चित्त को एकाग्र करने का प्रयास किया तो उसने देखा कि उसके कानों में से बड़ी तीव्र आवाज आती है और अपना सिर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों कोई तेज चाकू से चीर रहा हो ।
२२. यह बड़ी कष्टदायक विधि थी । लेकिन गौतम ने इस पर भी अधिकार प्राप्त कर ही लिया ।
२३. इस प्रकार उसने समाधि-मार्ग का अभ्यास किया ।

४. तपस्या का परीक्षण

१. गौतम ने सांख्य-मार्ग तथा समाधि-मार्ग का परीक्षण कर लिया था । लेकिन वह तपश्चर्या का परीक्षण बिना किये ही भृगुओं के आश्रम से चला आया था ।
२. उसे लगा कि इसके बारे में भी उसका स्वानुभाव होना चाहिए ताकि वह अधिकार से इसकी चर्चा कर सके ।
३. तदनुसार गौतम गया पहुंचा । वहाँ पहुंच कर सबसे पहले उसने घूम फिर कर आस पास का इलाका देखा । बाद में उसने तपश्चर्या के लिये गया के राजर्षि नेंगरी के आश्रम मे - जो कि ऊरूवेला में था - निवास करने का निश्चय किया । तपश्चर्या के लिये नेरञ्जरा नदी के तट पर यह एक एकान्त स्थान था ।
४. उरूवेला में उसे वह पाँच परिव्राजक भी मिले जो उसे राजगृह में मिले थे और जिन्होने उसे ‘शान्ति का समाचार’ लाकर सुनाया था । वे भी तपश्चर्या का अभ्यास कर रहे थे ।
५. उन तपस्वियों ने उसे देखा और उसके पास आकर कहा कि वह उन्हें भी साथ ले ले । गौतम ने स्वीकार किया ।
६. इसके बाद से वे उसकी सेवा करते हुए उसकी आज्ञा में रहने लगे । वे उसके प्रति बड़े विनम्र थे और जैसा वह कहे वैसा करने वाले थे ।
७. गौतम की तपस्या तथा आत्म-क्लेश की प्रक्रिया अत्यन्त उग्र रूप की थी ।
८. कभी कभी वह केवल दो तीन घरो पर ही भिक्षाटन के लिए जाता, सात घरों से अधिक पर कभी नहीं ! और उन घरों में से भी एक एक घर से दो तीन कौर भोजन ही स्वीकार करता, सात कौर से अधिक किसी एक घर से नहीं ।
९. वह दिन में एक दो कटोरी भर भोजन पर ही गुजारा करता; सात कटोरियो से अधिक किसी हालत में नहीं ।
१०. कभी कभी वह सारे दिन में एक ही बार भोजन करता, कभी कभी दो दिनों में एक बार, इसी क्रम से कभी कभी सात दिनों में एक बार, या पन्द्रह दिनों में भी एक बार और बड़ी ही नपी-तुली मात्रामें ।
११. जब उसने तपश्चर्या में और प्रगति की तो उसका आहार जंगल से इकट्ठी की हुई हरी जडें मात्र रह गया था, या अपने से उगे हुए जौ या धान के दाने, या पेड़ों की छाल के टुकडे, या काई, या चावल के गिर्द के अन्दर के लाल कण, या उबले हुए चावल की पीछ, या सरसों की खली ।

१२. वह जडें और जंगली फल खाकर रहता था, या जो स्वयं हवा से अपने आप गिरे ।
१३. उसके कपड़े या तो सन के बने थे, या सन की रस्सी और कूडे के ढेरों पर पड़े हुए चीथड़ो के, या पेड की छाल के, या आधी या पूरी मृग-छाल के या घास के या छाल की लकड़ी की पट्टियों के, या आदमियों या पशुओं के बालों से बने कम्बलों के और या उल्लू के परों के ।
१४. वह अपने सिर और दाढ़ी के बाल नोच-नोच कर उखाडता था, वह हमेशा सीधा और पालथी मार कर बैठता था तथा वह पालथी मारे मारे आगे सरकता था -- वह खडा नहीं होता था ।
१५. इस तरह से तथा और भी नाना प्रकार से वह अपने शरीर को कष्ट और पीडा पहुँचाता था - उस की तपश्चर्या इस सीमा तक पहुँच गई थी ।
१६. अपने शरीर के प्रति उपेक्षा के भाव को वह इस सीमा तक ले गया कि वर्षो तक उसके शरीर पर मैल जमती रही जो कि बाद में अपने आप गिरने लगी ।
१७. वह भयानक घनघोर जंगल में रहता था, ऐसे घनघोर जंगल में कि उसके आरे में कहा जाता था कि एक पागल के सिवा और कोई उस जंगल में प्रवेश करने का साहस नही कर सकता । यदि करेगा तो उसके रोंगटे खडे हो जायेगे ।
१८. शीत ऋतु में जब रातें भयानक ठण्डी हो जाती तो कृष्ण-पक्ष के दिनों में रात को वह खुले में रहता और दिन के समय धुप अन्धेरे में ।
१९. और जब वर्षा के ठीक पहले ग्रीष्म ऋतु की भयानक गरमी पडने लगती तो दिन में वह सूर्य के नीचे रहते और रात को सांस घोट देने वाली गरमी में भीतर जंगल में ।
२०. वह श्मशान-भूमि में मुर्दो की हड्डियों का तकिया बनाकर लेटता ।
२१. इसके बाद गौतम एक दिन में एक फली खाकर दिन बिताने लगा- बाद में एक ही सरसों का दाना - बाद में एक ही चावल का दाना ।
२२. जब वह एक दिन में केवल एक ही दाना खाकर गुजारा करने लगा तो उसका शरीर बहुत क्षीण हो गया ।
२३. यदि वह अपने पेट को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसकी पीठ को जा लगता; यदि व अपनी पीठ को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसके पेट को जा लगता । उसका पेट और पीठ एक दूसरे के इतने नजदीक सट गये थे । यह सब कुछ उसकी अत्यन्त अल्पाहारता के ही कारण हुआ था ।

९. तपश्चर्या का त्याग

१. गौतम की तपश्चर्या और आत्म-पीड़न बड़े ही उग्र रूप का था - इतना उग्र जितना उग्र वह हो सकता था । यह छ: वर्ष के लम्बे अर्से तक जारी रहा ।
२. छः वर्ष बीतने पर उसका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वह हिल डोल तक न सकता था ।
३. तब भी उसे कोई नया-प्रकाश नहीं दिखाई दिया था, और संसार में जो दु:ख की समस्या है और जिस पर उसका मन केन्द्रित था, उस समस्या का कोई हल उसे दिखाई नहीं दिया था ।
४. उसने अपने मन में सोचा- “यह न आत्म विजय का मार्ग है, न पूर्ण बोधि प्राप्त करने का मार्ग है और न मोक्ष का मार्ग है ।”
५. “कुछ इस संसार के सुख-भोग के निमित्त कष्ट उठाते है, कुछ स्वर्ग लाभ के निमित्त कष्ट सहन करते थें; सभी प्राणी आशा के चक्कर में पड़कर अपने उद्देश्य को प्राप्त न हो, सुख को खोजते है, दु:ख के गढ़े में जा गिरते है ।
६. “क्या मेरे साथ भी कुछ कुछ ऐसा ही नहीं हुआ है?”
७. “मैने जो प्रयास किया है मैं उसे दोष नहीं दे रहा हूँ, किन्तु यह आधार को छोड़कर आकाश में उड़ने में उड़ने का प्रयास!”
८. “मै पूछता हूँ क्या शरीर का अधिक से अधिक उत्तापन ‘धर्म’ हो सकता है?”
९. क्योकि मन की प्रेरणा से ही शरीर या तो कार्य करता है अथवा कार्य करने विरत रहता है, इसलिए मात्र मन की साधना ही योग्य है - बिना विचार के शरीर एक कुत्ते के समान है ।
१०. “यदि केवल शरीर की ही बात होती तो शायद भोजन की शुद्धि से ही पवित्रता आ सकती, किन्तु जो कर्ता है, जो मन है - उसका भी तो प्रश्न हैं । लेकिन यह सब किस काम का?”
११. “जिसके शरीर का बल जाता रहा, जो भुख तथा प्यास से परेशान है जिसका मन थकावट के मारे एकाग्र और शान्त नहीं है - ऐसे आदमी को कभी नया-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।”

१२. “जो पूर्ण रूप से शान्त नहीं है वह ऐसे उद्देश्य को जो चित्त द्वारा ही साध्य है कैसे प्राप्त कर सकता है?”
१३. “सच्ची शान्ति और चित्त की एकाग्रता शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ति से ही ठीक ठीक प्राप्त हो सकती हैं ।”
१४. इस समय उरूवेला में सेनानी नाम का एक गृहपति रहता था । उसकी कन्या का नाम था सुजाता ।
१५. सुजाता ने एक न्यग्रोध वृक्ष के प्रति मिन्नत मान रखी थी और यदि उसे पुत्र-लाभ हो तो प्रति-वर्ष भेंट चढ़ाने का संकल्प किया था ।
१६. क्योंकि उसकी इच्छा पूर्ण हुई थी, इसलिए उसने अपनी पुण्णा नाम की दासी को 'पूजा-स्थली' तैयार करने के लिये भेजा था ।
१७. गौतम को न्यग्रोध वृक्ष के नीचे बैठा देख पुण्णा ने सोचा आज वृक्ष देवता ही साकार हो गया है ।
१८. सुजाता स्वयं आई और उसने अपनी बनाई हुई खीर स्वर्ण-पात्र में सिद्धार्थ गौतम को अर्पण की ।
११. उसने स्वर्णपात्र लिया और सुपतिट्ठ नाम के नदी-घाट पर स्नान करने अनन्तर भोजन ग्रहण किया ।
२०. इस प्रकार उसकी 'तपश्चर्या' का अन्त हुआ ।
२१. जो पांच परिव्राजक सिद्धार्थ गौतम के साथ थे, वे उससे रूष्ट हो गये । क्योंकि, उसने तपस्वी तथा आत्म- पीड़न के जीवन का परित्याग कर दिया था । वे सिद्धार्थ गौतम को छोड़ कर चले गये ।

चौथा भाग : ज्ञान- लाभ और नवीन- मार्ग का दर्शन

१. नये प्रकाश के निमित्त ध्यान-साधना

१. अपने आपको उस भोजन से तरो-ताजा करके, गौतम अपने पूर्व-अनुभवों पर विचार करने के लिए बैठा । उसको यह स्पष्ट हो गया कि अभी तक के अपनाये सभी मार्ग विफल रहे ।
२. विफलता इतनी अधिक थी कि यह किसी को भी सम्पूर्ण रुप से निराश कर सकती थी । खेद तो उसे भी था । किन्तु निराशा उसे छू तक न गई थी ।
३. उसे विश्वास था कि उसे रास्ता मिल कर रहेगा । इतना अधिक कि जिस दिन उसने सुजाता की दी हुई खीर ग्रहण की उसने पाच स्वप्न देखे । उसने अपने स्वप्नों की यही व्याख्या की कि उसे 'बोधि' प्राप्त होकर रहेगी ।
४. उसने अपना भविष्य देखने की भी कोशिश की । जिस स्वर्ण-पात्र में सुजाता की दासी उसके लिए खीर लाई थी उसने उस स्वर्ण-पात्र को नेरंजना नदी में फेंका और कहा- "यदि मुझे 'बोधि' प्राप्त होने वाली है तो यह पात्र धारा के ऊपर की ओर जाय, अन्यथा नीचे की ओर ।" पात्र सचमुच धार के विराद्ध ऊपर की ओर जाने लगा और तब काल नाम के नाग- राजा के भवन के पास जाकर पानी में डूब गया ।
५. आशा और दृढ़ संकल्प से सन्नद्ध होकर उसने उरूवेला छोड़ दिया और राज- पथ पर आगे बड़ कर गया जा पहुँचा । वहा उसने एक पीपल का वृक्ष देखा । नये-प्रकाश की आशा में जिससे वह अपनी समस्या का हल निकाल सके उसने इस वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठने की ठानी ।
६. अन्य सभी दिशाओं का विचार कर के उसने पूर्व- दिशा का चुनाव किया । क्लेशों (चित्तमलों) के क्षय के निमित्त ऋषियों ने प्राय: पूर्व दिशा को ही चुना है ।
७. उस पीपल के वृक्ष के नीचे गौतम सीधा पद्मासन लगाकर बैठा! 'बोधि' प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करते हुए उसने निश्चय किया- "चाहे मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही बाकी रह जायें, चाहे मेरा मांस और रक्त शरीर में ही सूख जाय, बिना 'बोधि' प्राप्त किये मै इस स्थान का परित्याग नहीं करूंगा ।"
८. नाग-पति के समान तेजस्वी काल नाम का नाग-राज और उसकी स्वर्ण प्रभा नाम की पत्नी पीपल के वृक्ष के निचे आसनस्थ गौतम के दर्शन से आहत हो उठे थे । इस विश्वास के साथ कि वह निश्चयात्मक रूप से 'बोधि' लाभ करेंगा । उन्होंने इस प्रकार उसकी स्तुति की –
९. "हे मुनि! क्योकि तुम्हारे पाव के नीचे दबी पृथ्वी बार बार गुजायमान होती हैं, और क्योंकि तुम सूर्य के समान तेजस्वी हो, इसलिए तुम निश्चय से 'बुद्ध' होंगे ।"
१०. "क्योकि आकाश में विचरने वाले पक्षी भी तुम्हें नमस्कार कर रहे हैं और क्योंकि आकाश में मन्द मन्द मलयानिल बह रहा है, इसलिए भी हे कमलाक्ष ! तुम निश्चय से 'बुद्ध' होगे ।"
११. जब वह ध्यान करने के लिये दृढ़ आसन लगा कर बैठा तो बुरे-विचारों और बुरी-चेतनाओं के झुण्ड ने - जिन्हें पौराणिक भाषा में मार- पुत्र कहा गया है -- उस पर आक्रमण किया ।
१२. गौतम को डर लगा कि कहीं ये उस पर काबू न पा जाये और उसकी साधना को विफल न कर दें ।
१३. वह जानता था कि इस मार-युद्ध में बहुत से ऋषि-ब्राह्मण पराजित हो चुके हैं ।
१४. इसलिए उसने अपना सारा साहस बटोर कर मार से कहा --"मुझमे श्रद्धा है, मुझमें विर्य्य है, मुझमें प्रज्ञा है । हे मार! तू मुझे कैसे पराजित कर सकता है? चाहे वायु इस नदी के स्त्रोत को सुखाने में भी सफल हो जाय किन्तु तू मुझे मेरे निश्चय से नहीं डिगा सकता । पराजित होकर जीते रहने की अपेक्षा संग्राम मे मर जाना मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर है ।"
१५. उस कौए की भांति जो बहुत सी चर्बी प्राप्त करने की आशा में किसी पत्थर पर जाकर ठोंगे मारता है कि यहां से कुछ मधुर-मधुर मेरे हाथ लगेगा, मार ने भी गौतम पर आक्रमण किया था ।
१६. जब कौये को कहीं भी कुछ मधुर नहीं प्राप्त होता तो वह वहां से चल देता है, ठीक उसी कौए की तरह जब मार को भी कहीं कुछ गुंजाइश न दिखाई दी तो वह निराश होकर गौतम को छोड़ कर चल दिया ।

२. ज्ञान-लाभ

१. ध्यान करने के समय के लिये गौतम ने इतना भोजन इकट्ठा करके पास रख लिया था कि चालीस दिन तक कमी न पडे ।
२. विघ्नकारी अकुशल विचारों का मूलोच्छेद कर सिद्धार्थ गौतम ने अब भोजन ग्रहण करके अपने आप को तरो - ताजा कर लिया था और सशक्त हो गया था । इसी प्रकार उसने 'बोधि' प्राप्त करने के निमित्त ध्यान करने की अपनी तैयारी कर ली थी ।
३. ज्ञान- प्राप्ति के लिए गौतम को चार सप्ताह एक लगातार ध्यान- मग्न रहना पड़ा । उसे अन्तिम अवस्था तक पहुंचने के लिए चार सीढियें पार करनी पडी ।
४. पहली अवस्था वितर्क और विचार प्रधान थी । एकान्त-वास के कारण वह इसे बड़ी सरलता से प्राप्त कर सका ।
५. दूसरी अवस्था में इसमें एकाग्रता आ शामिल हुई ।
६. तीसरी अवस्था में समचित्तता तथा जागरूकता का समावेश हो गया ।
७. चौथी और अन्तिम अवस्था मे समचित्ता तथा पवित्रता का संयोग हो गया और समचित्ता तथा जागरूकता का ।
८. जब उसका चित्त एकाग्र हो गया था, जब वह पवित्र हो गया था, जब वह निर्दोष बन गया था, जब उसमें तनिक भी कलुष नहीं रह गया था, जब वह सुकोमल हो गया था, जब वह दक्ष हो गया था, जब उसमें दृढ़ता आ गई थी, जब वह सर्वथा राग- रहित हो गया था तथा जब उसकी नजर एक- मात्र अपने उद्देश्य पर ही थी, तब गौतम ने अपना सारा ध्यान उस एक समस्या के हल करने में लगाया जो उसे हैरान कर रही थी ।
९. चौथे सप्ताह के अन्तिम दिन उसका पथ कुछ प्रकाशित हुआ । उसे स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके सामने दो समस्यायें हैं -- पहली समस्या यही थी कि संसार में दुःख है और दूसरी समस्या यही थी कि किस प्रकार इस दुःख का अन्त किया जाय और मानव- जाति को सुखी बनाया जाय ?
१०. इस तरह चार सप्ताह तक तगातार चिन्तन करते रहने के बाद अन्धकार विलीन हुआ प्रकाश प्रकट हुआ, अविद्या का नाश हुआ, ज्ञान अस्तित्व में आया; उसे एक नया-पथ दिखाई दिया ।

३. नये-धम्म का अविष्कार

१. जिस समय गौतम ध्यान लगाकर बैठा उस समय उस पर सांख्य-दर्शन का बड़ा प्रभाव था ।
२. संसार में कष्ट और दु:ख है -- यह तो एक ऐसा यथार्थ सत्य था, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता था ।
३. लेकिन गौतम इस बात का पता लगाना चाहता था कि दु:ख को दूर कैसे किया जाए ? सांख्य- दर्शन के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर न था ।
४. इसलिए उसने अपना सारा ध्यान इसी एक प्रश्न के हल करने में लगाया कि संसार के कष्ट और दु:ख को कैसे दूर किया जाय?
५. स्वाभाविक तौर पर पहला प्रश्न जो उसने अपने आप से पूछा, वह यही था कि वे कौन से कारण है, वे कौन से हेतु है जिनकी वजह से एक व्यक्ति कष्ट उठाता और दुःख भोगता है?
६. उसका दूसरा प्रश्न था- दुःख का नाश कैसे किया जाय?
७. इन दोनों प्रश्नों का ही उसे सही-सही उत्तर मिल गया- - यही सम्यक् सम्बोधि कहलाता हैं ।
८. इसी कारण पीपल का वह वृक्ष भी -- जिसके नीचे बैठ कर सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया था -- बोधि- वृक्ष कहलाता है ।

४. सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके बोधिसत्व गौतम सम्यक् सम्बुद्ध हो गये

१. ज्ञान- प्राप्ति के पूर्व गौतम केवल एक बोधिसत्व थे । ज्ञान-प्राप्ति के बाद ही वह बुद्ध बने ।
२. बोधिसत्व कौन और क्या होता है?
३. जो प्राणी बुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है उसे 'बोधिसत्व' कहते है ।
४. एक बोधिसत्व 'बुद्ध' कैसे बनता है?
५. बोधिसत्व को लगातार दस जन्मों तक 'बोधिसत्व' रहना पड़ता है । 'बुद्ध' बनने के लिए एक 'बोधिसत्व' को क्या करना होता है?

६. एक जन्म में वह 'मुदिता' प्राप्त करता है। जैसे सुनार सोने-चांदी के मैल को दूर करता है। उसी प्रकार एक 'बोधिसत्व' अपने चित्त के मैल का दूर करके इस बात को स्पष्ट रूप से देखता है कि जो आदमी चाहे पहले प्रमादी रहा हो, लेकिन यदि वह प्रमाद का त्याग कर देता है तो वह बादल-मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है। जब उसे इस बात का बोध होता है तो उस के मन में मुदिता उत्पन्न होती है और उस के मन में सभी प्राणियों का कल्याण करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है।
७. अपने दूसरे जन्म में वह 'विमला- भूमि' को प्राप्त होता है। इन समय बोधिसत्व काम-चेतना से सर्वथा मुक्त हुआ रहता है। वह कारूणिक होता है, सब के प्रति कारुणिक। न वह किसी के अवगुण को बढ़ावा देता है और न किसी के गुण को घटाता है।
८. अपने तीसरे जीवन में व प्रभाकारी- भूमि प्राप्त करता है। इस समय
बोधिसत्व की प्रज्ञा दर्पण के समान स्वच्छ हो जाती है। वह अनात्म और अनित्यता के सिद्धान्त को पूरी तरह से समझ लेता है और हृदयङ्गम कर लेता है। उसकी एकमात्र आकांक्षा ऊँची से ऊँची प्रज्ञा प्राप्त करने की होती है और इसके लिये वह बड़े से बडे त्याग करने के लिये तैयार रहता हैं।
९. अपने चौथे जीवन में वह अर्चिष्मती-भूमि को प्राप्त करता है। इस जन्म में बोधिसत्व अपना सारा ध्यान अष्टांगिक मार्ग पर केन्द्रित करता है, चार सम्यक व्यायामों पर केन्द्रित करता है, चार प्रयत्नों पर केन्द्रित करता है तथा चार प्रकार के ऋद्धि-बल पर केन्द्रित करता है और पाँच प्रकार के शील पर केन्द्रित करता है।
१०. पांचवें जीवन में वह सुदुर्जया भूमि को प्राप्त करता है। वह सापेक्ष तथा निरपेक्ष के बीच के सम्बन्ध को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेता है।
११. अपने छठे जीवन में वह अभिमुखी- भूमि प्राप्त होता है। अब इस अवस्था में चीजों के विकास, उनके कारण बारह निदानों को हृदयङ्गम करने की बोधिसत्व की पूरी तैयारी हो चुकी है, और यह 'अभिमुखी' नामक विद्या उसके मन में सभी अविद्या-ग्रस्त प्राणियों के लिये असीम करूणा का संचार कर देती है।
१२. अपने सातवें जीवन में बोधिसत्व दूरङ्गमा- भूमि प्राप्त करता है। अब बोधिसत्व देश, काल के बन्धनों से परे है, वह अनन्त के साथ एक हो गया हैं, किन्तु अभी भी वह सभी प्राणियों के प्रति करूणा का भाव रखने के कारण देह-धारी है। वह दूसरों से इसी बात में पृथक है कि अब उसे भव-तृष्णा उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती जैसे पानी किसी कँवल को। वह तृष्णा-मुक्त होता है, वह दान- शील होता है, वह क्षमा- शील होता है, वह कुशल है, वह वीर्यवान होता है, वह शान्त होता है, वह बुद्धिमान होता है तथा वह प्रज्ञावान होत है।
१३. अपने इस जीवन में वह धम्म का जानकार होता है लेकिन लोगों के सामने वह उसे इस ढंग से रखता है कि उनकी समझ में आ जाय। वह जानता है कि उसे कुशल तथा क्षमाशील होना चाहिये। दूसरे आदमी उसके साथ कुछ भी व्यवहार करें वह उद्विग्नता-रहित होकर उसे सह लेता है क्योंकि वह जानता है कि अज्ञान के कारण ही वह उसके मंशा को ठीक-ठाक नहीं समझ पा रहे हैं। इसके साथ- साथ वह दूसरों का भला करने के अपने प्रयास में तनिक भी शिथिलता नहीं आने देता, और न वह अपने चित्त को प्रज्ञा से इधर- उधर भटकने देता है; इसलिये उस तर कितनी भी विपत्तियाँ आयें वे उसे सुपथ से कभी नहीं हटा सकतीं।
१४. अपने आठवें जीवन में वह 'अचल' हो जाता है। 'अचल' अवस्था में बोधिसत्व कोई प्रयास नहीं करता। वह कृत- कृत्य हो जाता है। उससे जो भी कुशल- कर्म होते हैं वे सब अनायास होते हैं। जो कुछ भी वह करता है उसमें सफल होता है।
१५. अपने नौवें जीवन में वह साधुमती-भूमि प्राप्त हो जाता है।
जिसने तमाम धर्मो को या पद्धतियो को जीत लिया है अथवा उनके भीतर प्रवेश पा लिया है, सब दिशाओं को जीत लिया है, समय की सीमाओं को लांघ गया है, वही 'साधुमती' अवस्था प्राप्त कहलाता है।
१६. अपने दसवें जीवन में बोधिसत्व 'धम्म-मेधा' बन जाता है। उसे 'बुद्ध' की दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है।
१७. बुद्ध होने की अवस्था के लिये आवश्यक इन दसों बलों (भूमियों) को बोधिसत्व प्राप्त करता है।
१८. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होने पर बोधिसत्व को न केवल इन दस भूमियों को प्राप्त करना होता है बल्कि उसे दस पारमिताओं को भी पूर्णता को पहुंचाना होता है।
१९. एक जन्म में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है। पारमिताओं की पूर्ति क्रमश: करनी होती है। एक जीवन में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है, ऐसा नहीं कि थोड़ी एक, थोड़ी दूसरी।
२०. जब दोनों तरह से वह समर्थ सिद्ध होता है तभी एक बोधिसत्व बुद्ध बनता है। बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा ही 'बुद्ध' बनना है।
२१. जातकों का सिद्धान्त अथवा बोधिसत्व के अनेक जन्मों का सिद्धान्त ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त सर्वथा प्रतिकूल है अर्थात् ईश्वर के अवतार धारण करने के सिद्धान्त से।

२२. जातक- कथाओं का आधार है कि बुद्ध के व्यक्तित्व में गुणों की पराकाष्ठा का समावेश हुआ ।
२३. अवतार-वाद के अनुसार भगवान् को अपने अस्तित्व में निर्मल होने की आवश्यकता नहीं । ब्राह्मणी अवतारवाद का ब्राह्मणी-सिद्धान्त यही कहता है कि ईश्वरावतार चाहे अपने आचरण में अपवित्र और अनैतिक ही क्यों न हो, किन्तु वह अपने अनुयायायो की -- अपने भक्तों की --रक्षा करता है ।
२४. बुद्ध बनने से पूर्व बोधिसत्व के लिये इस जन्मों तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्त और किसी धर्म में भी नहीं है । यह अनुपम है । कोई भी दूसरा धर्म अपने संस्थापक के लिये इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं ठहराता ।

पाचवा भाग : बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती

१. बुद्ध और वैदिक ऋषि

१. वेद, मंत्रों अर्थात् ऋचाओं या स्तुतियों का संग्रह है। इन ऋचाओं का उच्चारण करने वालों को 'ऋषि' कहते हैं।
२. मन्त्र देवताओं को सम्बोधन करके की गई प्रार्थनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है जैसे, इन्द्र, वरूण, अग्नि, सोम, ईशान, प्रजापति, ब्रह्म; महद्धि , यम तथा अन्य।
३. प्रार्थनयें प्रायः शत्रुओं से रक्षा वा शत्रुओं के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिये हैं, धन प्राप्ति के लिये हैं, भक्तों से भोजन, मांस और सुरा की भेट स्वीकार करने के लिये हैं।
४. वेदों में दर्शन की मात्रा कुछ विशेष नहीं है। लेकिन कुछ वैदिक ऋषियों के गीत हैं जिनमें कुछ दार्शनिक ढंग की काल्पनिक उड़ान दिखाई देती है।
५. इन वैदिक ऋषियों के नाम है: (१) अधमर्षण, (२) प्रजापति परमेष्ठी, (३) ब्रह्मणस्पति वा बृहस्पति, (४) अनिल, (५) दीर्घतमा, (६) नारायण, (७) हिरण्यगर्भ तथा (८) विश्वकर्मा।
६. इन वैदिक दार्शनिकों की मुख्य समस्यायें थीं: यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? अलग-अलग चीजें कैसे उत्पन्न की गई? उनकी एकता और अस्तित्व क्यों है? किसने उत्पन्न की और किसने व्यवस्था की? यह संसार किसमें से उत्पन्न हुआ और फिर किसमें विलीन हो जायेगा?
७. अधमर्षण का कथन था कि संसार की उत्पत्ति तपस (ताप) से हुई है। तपस ही वह नित्य तत्व है जिससे नित्य धर्म और ऋत (सत्य) की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं से तम (अंधकार, रात्रि) की उत्पत्ति है। तम से जल की उत्पत्ति हुई और जल से काल की। काल से ही सूर्य तथा चन्द्रमा पैदा हुए तथा द्यौ और पृथ्वी ने जन्म धारण किया। काल ने ही अन्तरिक्ष को प्रकाश को जन्म दिया तथा रात और दिन की व्यवस्था की।
८. ब्रह्मणस्पति की कल्पना थी कि सृष्टि असत के सत रूप में आई। असत् से कदाचित उसका आशय अनंत से था। सत् मूल रूप से असत् से ही उत्पन्न हुआ। समस्त सत् का मूलाधार असत् ही था और समस्त भावी सत् का तो इस समय असत् है।
९. प्रजापति परमेष्ठी ने जिस समस्या को उठाया वह थी कि क्या सत् की उत्पत्ति असत् से हुई ? उसका मत था कि इस प्रश्न का प्रस्तुत विषय से कोई सम्बन्ध नहीं। उसके मत के अनुसार समस्त जगत का मूलाधार जल है। उसकी दृष्टि से जो जगत का मूलाधार - -जल है वह न सत् के अन्तर्गत आता है और न असत् के।
१०. परमेष्ठी ने जडतत्व और चेतन को लेकर कोई विभाजक रेखा नहीं खींची। उसके मत के अनुसार किसी निहित तत्व के ही कारण जल भिन्न-भिन्न वस्तुओं का आकार ग्रहण करता है। उसने इस निहित-तत्व को 'काम' कहा है -- विश्व-व्यापी इच्छा-शक्ति।
११. एक दूसरे वैदिक दार्शनिक का नाम था अनिल। उसके लिये वायु ही मुख्य तत्व था। इसमें चलन अन्तर्निहित था। उसीमें उत्पन्न करने की शक्ति है।
१२. दीर्घतमा का मत था कि अन्त में सभी चिजों का मूलाधार सूर्य है। सूर्य अपनी अन्तर्निहित शक्ति से ही आगे पीछे सरकता है।
१३. सूर्य किसी भूरी शक्र के पदार्थ से निर्मित है और वैसे ही विद्युत तथा अग्नि।
१४. सूर्य, विद्युत और अग्नि में जल का बीजांकुर विद्यमान है और जल पौधों का बीजाङ्कुर है। ऐसा ही कुछ दीर्घतमा का मत था।
१५. नारायण के मत के अनुसार पुरूष ही जगत का आदि कारण है। पुरुष से ही सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आकाश, क्षेत्र, ऋतु, वायु के जीव, सभी प्राणी, सभी वर्गो के मनुष्य तथा सभी मानवीय संस्थान उत्पन्न हुए हैं।
१६. हिरण्य-गर्भ सिद्धान्त की दृष्टि से हिरण्य-गर्भ परमेष्ठी और नारायण के बीच में था। हिरण्य-गर्भ का मतलब है स्वर्ण-गर्भ। यही विश्व की वह महान् शक्ति थी, जिसे तमाम दूसरी पार्थिव तथा दिव्य शक्तियों तथा अस्तित्व का मूल स्रोत माना जाता था।
१७. हिरण्य-गर्भ का अर्थ अग्नि भी है। यह अग्नि ही है जो सौर-मण्डल का उपादान-कारण है, विश्व की उत्पादक शक्ति।
१८. विश्वकर्मा की सृष्टि में यह मानना की जल ही हर वस्तु के मूल में है और जल ही से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है ऐसा समझना और यह समझना कि संचरण उसका स्वभाव- धर्म ही है, योग्य नहीं था। यदि हम जल को ही मूल अपादान मानें तो पहले हमें यह बताना होगा कि जल की उत्पत्ति कैसे हुई और जल में वह शक्ति, यह उत्पादक-शक्ति कहाँ से आई और पृथ्वी, आप, तेज, आदि की यह शक्तियाँ, अन्य नियम और शेष सब कुछ कैसे अस्तित्व में आये?

१९. विश्वकर्मा का कहना था कि 'पुरुष' ही है जो सब किसी का मूलाधार है । 'पुरुष' आदि में हैं, 'पुरुष' अन्त में है । वह इस दृश्य संसार के पहले से है, इन सभी विश्व-शक्तियों के अस्तित्व में आने से भी पहले से उसका अस्तित्व है । अकेले पुरुष द्वारा ही यह विश्व उत्पन्न है और संचालित है । पुरुष एक और केवल एक है । वह अज है और उसीमें सभी उत्पन्न चीजों का निवास है । वही है जिसका चेतस भी महान् है और सामर्थ्य भी महान है । वही उत्पन्न करने वाला है, वही विनाश करने वाला है । पिता की हैसियत से उसने हमें उत्पन्न किया और यमराज की तरह वह हम सब के अन्त से परिचित हैं ।
२०. बुद्ध सभी वैदक ऋषियों को आदरणीय नहीं मानते थे । वह उनमें से कोई दस ही ऋषियों को सर्वाधिक प्राचीन तथा मन्त्र रचयिता मानते थे ।
२१. लेकिन उन मन्त्रों में उन्हें ऐसा कुछ नहीं दिखाई दिया जो मानव के नैतिक उत्थान में सहायक हो सके ।
२२. बुद्ध की दृष्टि में वेद बालू के कान्तार के समान निष्प्रयोजन थे ।
२३. इसलिये बुद्ध ने वेदों को इस योग्य नहीं समझा कि उनमें कुछ सीखा जा सके वा ग्रहण भी किया जा सके ।
२४. इसी प्रकार बुद्ध को वैदिक ऋषियों के दर्शन में भी कुछ सार नहीं दिखाई देता था । निस्संदेह उन्हें (ऋषियो को) सत्य की खोज थी । वे उसे अन्धेरे में टटोल रहे थे । किन्तु उन्हें सत्य मिला न था ।
२५. उनके सिद्धान्त केवल मानसिक उड़ाने थी, जिनका तर्क या यथार्थ बातों से कोई सम्बन्ध न था । दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने किसी नये सामाजिक-चिंतन की देन नहीं दी ।
२६. इसलिये उसने वैदिक ऋषियों के दर्शन को बेकार जान उसकी सम्पूर्ण रूप से अवहेलना की ।

२. कपिल-दार्शनिक

१. प्राचीन भारतीय दार्शनिकों में कपिल सर्वाधिक प्रधान है ।
२. उसका दार्शनिक दृष्टिकोण अनुपम था । वह एक अकेला दार्शनिक नहीं था, वह अपने में मानो एक दार्शनिक वर्ग ही था ।
३. उसका दर्शन सांख्य-दर्शन कहा जाता था ।
४. सत्य के लिये प्रमाण आवश्यक है । सांख्य का यह प्रथम सिद्धान्त है । बिना प्रमाण के सत्य का अस्तित्व नहीं ।
५. सत्य को सिद्ध करने के लिये कपिल ने केवल दो प्रमाण स्वीकार किये -- (१) प्रत्यक्ष और अनुमान ।
६. प्रत्यक्ष से मतलब है (इन्द्रियों के माध्यम से) विद्यमान वस्तु की चित्त को जानकारी ।
७. अनुमान तीन प्रकार का है -- १) कारण से कार्य का अनुमान, जैसे बादलों के अस्तित्व से वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है; (२) कार्य से कारण का अनुमान, जैसे यदि नीचे नदी में बाढ़ दिखाई दे तो हम ऊपर पहाड़ पर वर्षा होने का अनुमान लगा सकते हैं; ३) सामान्यतोदृष्ट अनुमान, जैसे हम आदमी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से यह समझते हैं कि वह स्थान-परिवर्तन करता है, उसी प्रकार हम तारों को भी भिन्न-भिन्न जगहों पर देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि वे भी स्थान परिवर्तित होते हैं ।
८. उसका अगला सिद्धान्त सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में था । सृष्टि की उत्पति और उसका कारण ।
९. कपिल को किसी सृष्टि-कर्ता का अस्तित्व स्वीकार न था । उसका मत था कि उत्पन्न वस्तु पहले से ही अपने कारण में विद्यमान रहती है जैसे मिट्टी से बरतन बनता है अथवा धागों से एक कपड़े का टुकड़ा बनता है ।
१०. यह एक तर्क था जिसकी वजह से कपिल को किसी सृष्टि-कर्ता का अस्तित्व मान्य न था ।
११. उसने अपने मत के समर्थन में और भी तर्क दिये हैं ।
१२. असत् कभी किसी कार्य का कारण नहीं हो सकता । वास्तव में नई उत्पत्ती कुछ होती ही नहीं । वस्तु उस सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिससे वह निर्मित हुई है; वस्तु अपने अस्तित्व में आने से पहले उस सामग्री के रूप में विद्यमान रहती है कि जिससे उसका निर्माण होता है । किसी एक निश्चित सामग्री से किसी एक निश्चित वस्तु का ही निर्माण हो सकता है । और केवल एक निश्चित सामग्री ही किसी निश्चित वस्तु के रूप में परिणति को प्राप्त हो सकती है ।
१३. तो इस वास्तविक संसार का मूल स्रोत क्या है?
१४. कपिल का कहना था कि वास्तविक संसार के दो रूप है -- १) व्यक्त (विकसित) तथा अव्यक्त (-अविकसित)
१५. व्यक्त वस्तु अव्यक्त वस्तुओं का स्रोत नहीं हो सकती ।
१६. व्यक्त वस्तुएँ ससीम होती हैं और यह सृष्टि के मूल स्रोत बमेल हैं ।

१७. तमाम व्यक्त वस्तुएँ परस्पर समान होतीं हैं । इसलिये कोई भी एक व्यक्त वस्तु किसी दूसरी व्यक्त वस्तु का स्रोत नहीं मानी जा सकती । और फिर क्योंकि वे स्वयं किसी एक ही मूल स्रोत से उत्पन्न होती हैं, इसलिये वे स्वयं वह मूल स्त्रोत नहीं हो सकतीं ।
१८. कपिल का दूसरा तर्क था कि एक कार्य को अपने कारण से भिन्न होना ही चाहिये । यद्यपि उस कार्य में कारण निहित रहता ही है । जब यह ऐसा है तो विश्व स्वयं ही अन्तिम कारण नहीं हो सकता । इसे किसी अन्तिम कारण का परिणाम होना चाहिये ।
१९. जब पूछा गया कि अव्यक्त की अनुभूति क्यों नहीं होती, इसकी कोई भी किया इन्द्रिय-गोचर क्यों नहीं होती, तो कपिल का उत्तर था–
२०. यह अनेक कारणों से हो सकता है । हो सकता है अनेक दूसरी अतिसूक्ष्म वस्तुओं की तरह जिनकी सीधी अनुभूति नहीं होती,इसकी भी अनुभूति न होती हो, अथवा अत्याधिक दूरी के कारण अनुभुति न होती हो; अथवा अनुभूति में कोई एक तिसरी वस्तु बाधक हो, अथवा किसी तादृश वस्तु की मिलावट हो; अथवा किसी तीव्रतर वेदना (अनुभूति) के कारण अनुभुति न होती हो; अथवा अन्धेपन वा किसी अन्य इन्द्रिय-दोष के कारण अनुभूति न होती हो अथवा द्रष्टा के मस्तिष्क की विकलता के ही कारण अनुभूति न होती हो ।
२१. जब पूछा गया तो विश्व का मूल स्रोत क्या है? विश्व के व्यक्त-रूप तथा अव्यक्त-रूप में क्या अन्तर है?
२२. कपिल का उत्तर था --"व्यक्त-रूप का भी कारण होता है तथा अव्यक्त रूप का भी कारण होता है । लेकिन दोनों के मूल स्त्रोत स्वतन्त्र हैं और उनका कोई कारण नहीं ।"
२३. व्यक्त वस्तुओं की संख्या अनेक है । वे देश काल से सीमित हैं । उनका स्रोत एक ही है, वह नित्य है और सर्व व्यापक है । व्यक्त वस्तुएँ क्रियाशील होती हैं, उनके अंग व हिस्से होते हैं । सबका मूल-स्त्रोत सटा ही रहता है, लेकिन वह क्रियाशील होता है और न उसके अंग व हिस्से होते हैं ।
२४. कपिल का तर्क था कि अव्यक्त की व्यक्त में परिणति उन तीन गुणों की क्रियाशीलता का परिणाम है जिनसे उसका निर्माण हुआ है । वे तीन गुण हैं, सत्व, रज, तम ।
२५. इन तीन गुणों में प्रथम अर्थात् सत्व प्रकृति में प्रकाश के समान है जो प्रकट करता है, जो मनुष्यों को सुख देता है; दूसरा गुण रज है जो प्रेरित करता है, जो संचालित करता है, जो क्रियाशीलता का कारण होता है; तीसरा गुण तम है जो भारीपन का द्योतक है, जो रोकता है, जो अपेक्षा वा निष्क्रियता को उत्पन्न करता है ।
२६. तीनों गुण परस्पर सम्बद्ध होकर ही क्रियाशील होते हैं । वे एक दूसरे पर हावी हो जाते हैं । वे एक दूसरे के सहायक होते है । वे एक दूसरे से मिले रहते हैं । जिस प्रकार लौ, तेल और बत्ती के परस्पर सहयोग से ही दीपक जलता है, उसी प्रकार यह तीनों गुण भी मिलकर ही क्रियाशील होते है ।
२७. जब तीनों गुण एकदम बराबर मात्रा में होते है, कोई भी एक गुण दूसरे पर हावी नहीं होता, उस समय यह विश्व अचेतन प्रतीत होता है, उसमें विकास नहीं होता ।
२८. जब तीनों गुण एकदम बराबर मात्रा में नहीं होते, एक गुण दूसरे पर हावी हो जाता है, तब विश्व सचेतन हो जाता है, उसमें विकास होना आरम्भ हो जाता है ।
२९. यह पूछे जाने पर कि गुणों की मात्रा में कमी-बेशी क्यों हो जाती है, कपिल का उत्तर था कि उसका कारण दु:ख है ।
३०. कपिल के दर्शन सिद्धान्त कुछ-कुछ ऐसे ही थे ।
३१. अन्य सभी दार्शनिकों की अपेक्षा बुद्ध कपिल के सिद्धान्तो से ही विशेष रूप से प्रभावित थे ।
३२. कपिल ही एक ऐसा दार्शनिक था जिसकी शिक्षायें बुद्ध को तर्कसंगत और कुछ-कुछ यथार्थता पर आश्रित जान पड़ी ।
३३. लेकिन बुद्ध ने कपिल की सभी शिक्षाओं को स्वीकार नहीं किया । कपिल की उन्हें केवल तीन ही बातें ग्राह्य थी ।
३४. उन्हें यह बात मान्य थी कि सत्य प्रमाणाश्रित होना चाहिये । यथार्थता का आधार बुद्धिवाद होना चाहिये ।
३५. उन्हे यह बात मान्य थी कि किसी ईश्वर के अस्तित्व व उसके सृष्टिकर्ता होने का कोई तर्कानुकूल वा यथार्थताश्रित कारण विद्यमान नहीं है ।
३६. उन्हें यह बात मान्य थी कि संसार में दु:ख है ।
३७. कपिल की शेष शिक्षाओं की उन्होंने उपेक्षा की क्योकि उनका उनके लिये कोई उपयोग न था ।

३. ब्राम्हण-ग्रन्थ

१. वेदों के बाद उस धार्मिक-साहित्य का नम्बर आता है जो ब्राह्मण-ग्रन्थो के नाम से प्रसिद्ध है । दोनों ही पवित्र ग्रन्थ माने जाते थे । वास्तव में ब्राह्मण भी वेदों का एक भाग ही है । दोनों साथ-साथ है और दोनों का एक सम्मिलित नाम 'श्रुति' है ।
२. ब्राह्मणो के दर्शन के चार स्तम्भ हैं ।
३. सब से पहला स्तम्भ है कि वेद न केवल पवित्र है, बल्कि अपौरूषेय है? उनके किसी एक भी शब्द पर प्रश्न-चिन्ह नहीं लग सकता ।
४. ब्राह्मणी-दर्शन का दूसरा स्तम्भ वा दूसरी आधार-शिला थी कि आत्मा की मुक्ति जन्म-मरण के संबंध से वा संसरण से मुक्ति वैदिक यज्ञों तथा दूसरी धार्मिक क्रियाओं के उचित ढंग से पूरा करने और ब्राह्मणों को दान देने से ही हो सकती हैं ।
५. 'ब्राह्मणों' के पास न केवल एक आदर्श-धर्म की ही कल्पना थी, बल्कि उन्होंने अपनी एक 'आदर्श-समाज' की कल्पना भी गढ़ रखी थी ।
६. इस 'आदर्श-समाज' के ढांचे का उनका अपना नाम था चातुवर्ण । यहा वेदों में जड़ा हुआ है, और क्योंकि वेद तर्कातील हैं और क्योंकि वेदों के किसी भी शब्द पर प्रश्न-चिन्ह लग ही नहीं सकता, इसलिए एक आदर्श-समाज के नमूने के रूप में चातुर्वर्ण भी तर्कातीत है और उस पर भी अंगुली नहीं उठाई जा सकती ।
७. समाज के इस के कुछ आधार-भूत नियम हैं ।
८. पहला नियम था समाज चार भागों में विभक्त होना चाहिए । (१) ब्राह्मण; (२) क्षत्रिय; (३) वैश्य; और (४) शूद्र ।
९. दूसरा नियम था कि इन चारों वर्गो मे सामाजिक समानता नहीं हो सकती । इन सबको क्रमिक असमानता के नियम से परस्पर बंधा रहना होगा ।
१०. ब्राह्मण सर्वोपरि । ब्राह्मणों के नीचे क्षत्रिय, किन्तु वैश्यों से ऊपर । क्षत्रियों के नीचे वैश्य किन्तु शूद्रो से ऊपर । सब के नीचे शूद्र ।
११. यह चारों वर्ग अधिकार और विशेष सुविधाओं के मामले में एक दूसरे से समानता का दावा नहीं कर सकते थे । अधिकारों और विशेष सुविधाओं का उपयोग क्रमिक असमानता के नियम के अनुसार ही हो सकता था ।
१२. ब्राह्मण को वह सभी अधिकार और विशेष-सुविधाएँ प्राप्त थीं जिन की वह इच्छा कर सकता था । लेकिन एक क्षत्रिया उन्हीं अधिकारों और विशेष सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक ब्राह्मण को प्राप्त थी । एक वैश्य की अपेक्षा उसे अधिक अधिकार और विशेष-सुविधायें प्राप्त थीं । वैश्य को एक शूद्र की अपेक्षा अधिक अधिकार और सुविधायें प्राप्त थीं । लेकिन वह उन्ही अधिकारों और विशेष-सुविधाओं की मांग नहीं कर सकता था जो एक क्षत्रिय को प्राप्त थीं । और जहाँ तक शूद्र की बात है, उसे किसी विशेष-सुविधा का तो कहना ही क्या कोई अधिकार ही नहीं प्राप्त था । उसके लिए यही बहुत था कि वह ऊपर के तीनों वर्गो को बिना रूष्ट किये किसी न किसी तरह जीता रहा सके ।
१३. चातुर्वर्ण्य के तीसरे नियम का सम्बन्ध पेशों वा जीविका के साधनों से था । ब्राह्मण का पेशा था पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक-संस्कार कराना । क्षत्रिय का पेशा था लड़ना, मरना- मारना । वैश्य का पेशा था व्यापार । शूद्र का पेशा था ऊपर के तीनों वर्गो की सेवा करना । इन चारों वर्गो का यह विभाजन ऐसा न था कि एक वर्ग किसी दूसरे का पेशा कर सके । हर वर्ग केवल अपना अपना ही पेशा कर सकता था । कोई भी एक वर्ग किसी दूसरे के पेशे मे दखल न दे सकता था ।
१४. चातुर्वर्ण्य का चौथा नियम शिक्षा के अधिकार से सम्बन्धित था । चातुर्वर्ण्य के नमूने के अनुसार केवल पहले तीन वर्ग - ब्राह्मण, क्षत्रिय और
वैश्य -- ही शिक्षा के अधिकारी थे । शूद्रों के लिये शिक्षित होना निशिद्ध था । इस चातुर्वर्ण्य के नियम के केवल शूद्रो के ही शिक्षित होने को वर्जित नहीं किया था. बल्कि सभी स्त्रियों के शिक्षित होने को वर्जित किया था, जिनमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों की भी स्त्रियाँ शामिल थीं ।
१५. एक पांचवां नियम भी था । इसके अनुसार आदमी के जीवन के चार हिस्से किये गये थे । पहली अवस्था ब्रह्मचर्याश्रिम थी, दूसरी अवस्था गृहस्थाश्रम कहलाती थी, तीसरी वानप्रस्थाश्रम और चौथी संन्यासाश्रम ।
१६. प्रथम आश्रम का उद्देश्य था अध्ययन और शिक्षा । दूसरे आश्रम का उद्देश्य था वैवाहिक जीवन व्यतीत करना । तीसरे आश्रम का उद्देश्य था आदमी को वन- वासी जीवन से परिचित कराना -- बिना गृह-त्याग किये पारिवारिक बन्धनों से मुक्त हो जाना । चौथे आश्रम का उद्देश्य था ईश्वर की खोज और उससे मिलने का प्रयास ।
१७. इन आश्रमों से तीनों ऊँचे वर्गो के पुरुष-मात्र लाभान्वित हो सकते थे । शूद्रो और स्त्रियों के लिये पहला आश्रम व्रर्जित था । इसी प्रकार शूद्रों और स्त्रियों के लिए अन्तिम आश्रम भी वर्जित था ।

१८. ऐसा था यह दिव्य 'आदर्श-समाज' का नमूना जिसे चातुर्वर्ण्य का नाम दिया गया था। ब्राह्मणों ने इस नियम को ऊंचे आदर्श वाद में परिणाम कर दिया था और इस बात की पूरी सावधानी रखी थी कि इसमें कही कोई कोर-कसर न बाकी रह जाय।
१९. ब्राह्मणी-दर्शन का एक चौथा स्तम्भ था 'कर्म' का सिद्धान्त। यह आत्मा के संसरण के सिद्धान्त का एक भाग था। ब्राह्मणों का 'कर्म-वाद' इस एक प्रश्न का उनकी ओर से दिया गया उत्तर था- "जन्मान्तर होने पर नये शरीर को लेकर आत्मा कहीं नया जन्म ग्रहण करती है?" ब्राह्मणी-दर्शन का उत्तर था कि "यह उसके पिछले जन्म के कर्मो पर निर्भर करता है।" दूसरे शब्दों में इसका यही मतलब है कि यह उसके कर्मो का परिणाम है।
२०. ब्राह्मणी-धर्म के प्रथम सिद्धान्त के बुद्ध कड़े विरोधी थे। उन्होंने ब्राह्मणों के इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि वेद अपौरूषेय हैं और उन पर प्रश्न चिन्ह नहीं लग सकता।
२१. उनकी सम्मति में कोई बात ऐसी हो ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से परे हो। किसी भी विषय में कोई बात अन्तिम हो ही नहीं सकती। यथावश्यकता समय-समय पर हर बात का परीक्षण हो सकना चाहिये।
२२. आदमी को सत्य और यथार्थ सत्य जानना चाहिये। बुद्ध के लिए विचार स्वातंत्र सर्वाधिक महत्व की बात थी। और उन्हें इस बात का निश्चय था कि विचार-स्वातन्त्र ही सत्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।
२३. वेदों की अपौरूषेयता को मान लेने का मतलब था विचार-स्वातन्त्र को सर्वधा अस्वीकार कर देना।
२४. इन्ही कारणों से ब्राह्मणी-दर्शन की उक्त स्थापना उन्हे सर्वाधिक अप्रिय थी।
२५. बुद्ध को ब्राह्मणी-दर्शन की दूसरी स्थापना भी उतनी ही अप्रिय थी। बुद्ध ने यह तो स्वीकार किया कि 'यज्ञ' करना भी उचित है, किन्तु उन्होंने 'सच्चे यज्ञ' और 'झुठे यज्ञ' करना भी उचित है, किन्तु उन्होंने 'सच्चे यज्ञ' और 'झूठे यज्ञ' में विभाजक रेखा खींच दी।
२६. दूसरों के कल्याण के लिये 'आत्म-परित्याग' को ही बुद्ध ने 'सच्चा यज्ञ' माना। आत्म-स्वार्थ के लिये किसी देवता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से किसी पशु की बलि देना बुद्ध ने 'झूठा यज्ञ' बताया।
२७. आधिकांश ब्राह्मणी "यज्ञ" देवताओं को प्रसन्न करने के लिये दी जाने वाली पशुओं की बलियाँ ही थीं। बुद्ध ने इन्हें 'झूठे यज्ञ' कहकर इनकी निन्दा की। यज्ञ यदि 'आत्मा' के 'मोक्ष' लाभ के लिए ही किये जायें तो भी बुद्ध उसके करने के पक्ष में न थे।
२८. यज्ञ-विरोधी लोग यह कहकर ब्राह्मणों का उपहास किया करते थे, "यदि कोई एक पशु की बलि देने से 'स्वर्ग' जा सकता है, तो फिर शीघ्रतर स्वर्ग जाने के लिये अपने पिता का ही बलिदान क्यों नहीं किया जाता?"
२९. बुद्ध इस मत से सर्वथा सहमत थे।
३०. "यज्ञ" का सिद्धान्त बुद्ध को जितना बुरा लगता था उतनी ही बुरी बुद्ध को यह चातुर्वर्ण्य की स्थापना लगती थी।
३१. ब्राह्मणवाद ने चातुर्वर्ण्य के नाम पर जिस प्रकार के समाज-संगठन की कल्पना की, वह बुद्ध को सर्वथा अप्राकृतिक लगता था। इसका वर्गाश्रित स्वरूप अनिवार्य था और मनमाना था। यह किसी के हुक्म से रच दिये गये समाज के समान था। बुद्ध एक खुले और एक स्वतंन्त्र-समाज के पक्षपाती थे।
३२. ब्राह्मण-वाद का चातुर्वर्ण्य एक जड समाज-रचना थी, अपरिवर्तनशील। एक बार ब्राह्मण के घर में जन्म ले लिया हमेशा के लिये ब्राह्मण। एक बार क्षत्रिय के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए क्षत्रिय। एक बार वैश्य के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिए वैश्य। और एक बार शूद्र के घर में जन्म ले लिया, हमेशा के लिये शूद्र। समाज- रचना का आधार व्यक्ति का वह पद था, वह दर्जा था जो उसे गृह-विशेष में जन्म ग्रहण कर लेने मात्र से प्राप्त था। कोई बड़े से बड़ा "पाप-कर्म" भी उसे उसके दर्जे से गिरा न सकता था, इसी प्रकार कोई बड़े से बडा "पुण्य-कर्म" भी किसी को ऊपर न उठा सकता था। न गुण की ही कहीं पूजा थी और न विकास की ही कहीं गुंजाईश थी।
३३. कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें असमानता न हो। लेकिन ब्राह्मणवाद की बात ही दूसरी है। ब्राह्मण-वाद द्वारा जिस असमानता के सिद्धान्त का प्रचार किया गया है, वह उसका धार्मिक मान्य सिद्धान्त है। यह असमानता अपने आप यूंही प्रतिष्ठित नहीं हो गई है। ब्राह्मण-वाद समानता को मानता ही नहीं रहा। वास्तव में यह समानता के सिद्धान्त का शत्रु है।
३४. ब्राह्मण-वाद केवल असमानता से ही सन्तुष्ट नहीं रहा। ब्राह्मण-वाद का प्राण क्रमिक-असमानता में ही बसा था।
३५. समन्वय तथा मेल- जोल की भावना की बजाय, बुद्ध ने सोचा कि यह क्रमिक-असमानता एक तो नीचे, उसके ऊपर, उसके और ऊपर, सब के ऊपर के वर्गों में क्रमिक घृणा की भावना पैदा कर देगी, दूसरी और उसी तरह सब के ऊपर, उसके नीचे, उससे और नीचे तथा सब के नीचे के वर्ग में क्रमिक जुगुप्सा की भावना पैदा कर देगी और इससे समाज में स्थायी संघर्ष बना रह सकता है।

३६. चारों वर्गों के पेशे भी निश्चित थे। चुनाव की स्वतन्त्रता नहीं थी। इतना ही नहीं, यह पेशे कमोवेश सामर्थ्य या हुनर के हिसाब से निश्चित नहीं किय गये थे, बल्कि जन्म के हिसाब से।
३७. चातुर्वर्ण्य के नियमों को ध्यानपूर्वक समझने-बूझने से बुद्ध इस परिणाम पर पहुंचे कि ब्राह्मण-वाद की सामाजिक व्यवस्था का दार्शनिक आधार यदि स्वार्थाश्रित नहीं था, तो गलत अवश्य था।
३८. बुद्ध को स्पष्ट हो गया था कि इस व्यवस्था से सब के कल्याण की तो आशा की ही नहीं जा सकती, सब की स्वार्थपूर्ति भी नहीं हो सकती। निश्चय से जान बूझकर इसकी कल्पना ही इस ढंग की की गई है कि बहुत से लोग चन्द लोगों के स्वार्थो की पूर्ति में निरत रहे। इस व्यवस्था मे आदमी को स्वयं अपने आप मानव प्रवर (भू-सुर) बने हुए मानवों की सेवा में झोंक दिया गया था।
३९. इसका उद्देश्य कमजोरों को दबाना और उनका शोषण था और उनको सर्वथा गुलाम बनाये रखना।
४०. बुद्ध ने सोचा कि जिस "कर्म-वाद" की ब्राह्मण-वाद में रचना की है वह भी विद्रोह की भावना को सर्वथा सीख जाने के लिए ही है। अपने दु:ख के लिए स्वयं आदमी ही जिम्मेवार है। विद्रोह करने से भी कष्ट दूर नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसके पूर्वजन्म के कर्म में यह पहले ही निश्चय कर दिया है कि वह इस जन्म में दुखी रहेगा!
४१. शूद्र और स्त्रियाँ -- जिनकी मानवता को ब्राह्मण-वाद ने बुरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया था-सर्वथा शक्तिहीन थीं। वह इस पद्धति के विरुद्ध जरा सिर न उठा सकती थीं।
४२. उन्हे ज्ञान-प्राप्त करने तक का अधिकार न था। इस जबर्दस्ती के अज्ञान का ही यह दुष्परिणाम था कि वे यह कभी जान ही न सकते थे कि किसने उन्हें इस दुरवस्था तक पहुंचाया है ? वे यह जान नहीं सकते थे कि ब्राह्मण-वाद ने उनका सारा जीवन-रस सीख लिया है। ब्राह्मण-वाद के विरूद्ध विद्रोह कर उठने की बजायें वे ब्राम्हण-वाद के भक्त और समर्थक बन गये।
४३. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के निमित्त शस्त्र उठाने का अधिकार आदमी का अन्तिम अधिकार है। लेकिन शूद्रो से शस्त्र धारण करने का अधिकार भी छीन लिया गया था।
४४. ब्राह्मण-वाद के अधीन बेचारे शूद्र स्वार्थी ब्राह्मणों, शक्तिशाली क्षत्रियों और धनी वैश्यों के एक भयानक षडयन्त्र के शिकार-मात्र बन कर रहे गये।
४५. क्या उसमें सुधार हो सकता था? बुद्ध जानते थे कि यह 'भगवान की बनाई हुई' सामाजिक व्यवस्था बताई जाती है, इसलिये इसमें सुधार नहीं हो सकता है। इसे केवल समाप्त ही किया जा सकता है।
४६. इन्हीं कारणों से बुद्ध ने ब्राह्मणवाद को सद्धम्म का --जीवन के सच्चे धम्म का --परम विरोधी मान कर अस्वीकार कर दिया।

४. उपनिषद् तथा उनकी शिक्षा

१. उपनिषद् भी वैदिक- वाङ्गमय का एक हिस्सा माने जाते हें। यह वेद का हिस्सा नहीं है। यह श्रुति-बाह्य से हैं।
२. यह सब होने पर भी यह धार्मिक वाङमय का एक हिस्सा हैं।
३. उपनिषदों की संख्या काफी बड़ी है। कुछ महत्व के, कुछ यूँ ही।
४. कुछ में वैदिक सिद्धान्तियों का -- ब्राह्मण-पुरोहितों का काफी विरोध है।
५. सभी एक बात में सहमत थे कि वैदिक अध्ययन 'अविद्या' का ही अध्ययन हैं।
६. वेदों और वैदिक विज्ञान को सभी अपरा (नीचे दर्जे की) विद्या ही मानते थे।
७. वे सभी वेद को अपौरूषेय न मानने के समर्थक थे।
८. ब्राह्मणी-दर्शन की ऐसी प्रधान स्थापनाओं- जैसे यज्ञ और उनके फल, श्राद्ध, और ब्राह्मण-पुरोहितों को दिये जाने वाले दोनों के माहात्म्य -- को अस्वीकार करने में सभी एकमत थे।
९. किन्तु यह कोई उपनिषदों का मुख्य विषय न था। उनकी चर्चो का मुख्य विषय है ब्रह्म और आत्मा।
१०. ब्रह्म ही वह सर्वव्यापक तत्व है जो विश्व को बांधे हुए है और आदमी की मुक्ति भी इसी बात में है कि उसके आत्मा को इस बात का बोध हो जाय कि वह भी 'ब्रह्म' है।
११. उपनिषदों की मुख्य स्थापना यही थी कि 'ब्रह्म' ही सत्य है, तथा 'आत्मा' और 'ब्रह्म' एक ही है। उपाधि-ग्रस्त होने के कारण ही 'आत्मा' को इस बात का बोध नहीं होता कि वह 'ब्रह्म' है।
१२. प्रश्न पैदा हुआ: क्या 'ब्रह्म' एक वास्तविकता है? उपनिषदों की सारी स्थापना इसी एक प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करती है।
१३. बुद्ध को 'ब्रह्म' की वास्तविकता का कोई प्रमाण नहीं मिला। इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को अस्वीकार कर दिया।
१४. ऐसा नहीं है कि स्वंय उपनिषदों के रचयिताओं से इस बारे में प्रश्न न पूछे गये हों। वे पूछे गये थे।

१५. इस तरह के प्रश्न याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषि से भी पूछे गये थे, जिसका वृहदारण्यक उपनिषद् में उतना महत्वपूर्ण स्थान है ।

१६. उससे पूछा गया था "ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है?" याज्ञवल्क्य इतना ही उत्तर दे सका था- "मै नहीं जानता, मै नहीं जानता -- नेति, नेति ।"

१७. बुद्ध को शंका थी कि जिसके विषय में कोई कुछ जानता ही नहीं, वह 'वास्तविकता' कैसे हो सकती है? इसलिए उन्होंने उपनिषदों की स्थापना को भी शुद्ध कल्पना समझ अस्वीकार कर दिया ।

छठाँ भाग : बुद्ध और उनके समकालीन

१. उनके समकालीन

१. जिस समय गौतम ने प्रव्रज्या ली, देश में बड़ी मानसिक उथल-पुथल मची हुई थी। ब्राह्मणी-दर्शन के अतिरिक्त कोई बासठ दार्शनिक मत और थे। ये सभी ब्राह्मणी-दर्शन के विरोधी थे। उनमें से कम से कम छ: ध्यान देने योग्य थे।
२. इन दार्शनिक-परम्पराओं में से एक के मुखिया का नाम पूर्ण-काश्यप था। उसका मत अक्रिया-वाद कहलाता था। उसकी स्थापना थी कि 'कर्म' का 'आत्मा' पर किसी भी तरह से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चाहे कोई किसी काम को करे, चाहे कराये। चाहे कोई किसी को स्वयं मार डाले, चाहे मरवाये। चाहे कोई स्वयँ चोरी करे और डाका डाले, चाहे किसी से करवाये। चाहे कोई स्वयं झूठ बोले, चाहे किसी से बुलवाये। 'आत्मा' पर किसी बात का कोई प्रभाव नहीं पडता। कोई कार्य कितना भी जघन्य हो 'आत्मा' को पाप से लिप्त नहीं करता। कोई कार्य कितना भी अच्छा हो 'आत्मा' को पुण्य से युक्त नहीं करता। 'आत्मा' पर कोई 'क्रिया' ही नहीं होती। जब आदमी मरता है तो उसके शरीर के सभी तत्व उन मूल तत्वों से जा मिलते है, जिनसे उसका शरीर बना है। मरने के बाद कुछ नहीं बचता, न 'शरीर' और न 'आत्मा'।
३. एक दूसरी विचार-धारा का नाम था नियति-वाद। इसके मुख्य उपदेशक का नाम था मक्खली गोसाल। उसका मत एक प्रकार का 'पूर्व निश्चयावाद' था। उसका मत था कि न कोई कुछ कर सकता है और न होने से रोक ही सकता है। घटनाये घटती हैं। कोई स्वेच्छा से उन घटनाओं को घटा नहीं सकता है। न कोई दुःख को दूर कर सकता है और न कोई उसे घटा-बढ़ा सकता है। आदमी पर, संसार में जो कुछ बीतने को हो, वह बीत कर रहता है।
४. तीसरा मत उच्छेदवाद कहलाता था। इसका मुख्य उपदेशक अजित केस-कम्बल था। उसका मत एक प्रकार का सम्पूर्ण-नाशवाद था। उसकी शिक्षा थी कि यदि यज्ञ और होम बेकार हैं। कर्मों के कोई ऐसे फल नहीं होते जिन्हे 'आत्मा' भोग सके वा उसे भुगतने पड़े। न कहीं कोई 'स्वर्ग' है और न 'नरक'। आदमी का निर्माण दुःख के कुछ तत्वों से हुआ हैं। 'आत्मा' उससे बच नहीं सकता। संसार में जितना भी कष्ट है, जितना भी दुःख है 'आत्मा' का उससे कहीं किसी तरह त्राण नहीं। यह कष्ट या दुःख, स्वयं अनायास समाप्त हो जायेगा। 'आत्मा' की चौरासी लाख योनियां धारण करनी पडेगी। तभी 'आत्मा' के कष्टों और दुःख का अवसान होगा, इससे पहले किसी तरह नहीं।
५. चौथा मत अन्योन्य-बाद कहलाता था। इस मत के मुखिया का नाम पकुध कच्चायन था। उसका उपदेश था कि सात तत्वों से प्राणी का निर्माण होता है -- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, सुख, दुःख तथा आत्मा। प्रत्येक तत्व दूसरे से स्वतन्त्र है। एक का दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपने में सम्पूर्ण हैं और वे सभी नित्य है। उनका किसी भी तरह नाश हो ही नहीं सकता। यदि कोई आदमी किसी का सिर भी काट दे तो यह कोई 'मारना' नहीं होता। यह तो इतना ही है कि शस्त्र सात तत्वों में प्रवेश कर गया है।
६. सञ्जय बेलट्ठिपुत्र का अपना ही एक निजी दार्शनिक मत था। यह 'विक्षेप-वाद' कहलाता था। यह अंतिम दर्जे का सन्देह-वाद था। उसका तर्क था, "यदि कोई मुझे पूछे कि स्वर्ग है, और यदि मुझे लगे कि है तो मैं कहूँगा कि हाँ है। यदि मुझे लगे कि स्वर्ग नही, है तो मै कहूंगा कि नहीं है। यदि कोई मुझे पूछे कि क्या आदमी बनाये जाते है, क्या आदमी को अच्छे-बुरे कर्मो का फल भोगना पडता है, क्या मृत्यु के अनन्तर 'आत्मा' रहती है, मैं इन सब का नकारात्मक उत्तर दूगा, क्योंकि मैं नही समझता कि ये है।" कुछ कुछ इसी प्रकार संजय का तर्क चलता था।
७. छठा दार्शनिक मत चातुर्यामंसवर-वाद कहलाता था। इस मत के संस्थापक या मुख्याचार्य उस समय जीवित थे, जब गौतम प्रकाश की खोज में संलग्न थे। आचार्य का नाम महावीर था, वह जो निगण्ठनाथ पुत्त भी कहलाते थे। महावीर का शिक्षण था कि 'आत्मा' को अपने पूर्व-जन्मो के कर्म तथा इस जन्म के कर्मो के परिणाम-स्वरूप की 'पुनर्जन्म' ग्रहण करना पड़ता है। इसलिये उसका कहना था कि तपश्चर्या के द्वारा पूर्वकर्मो का नाश कर डालना चाहिये। बुरे कर्मो का होना रोकने के लिये महावीर ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया अर्थात् चार नियमों के पालन करने का -- (१) हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) झूठ नही बोलना, (४) अपरिग्रह रखना और ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना।

२. अपने समकालानो के प्रति उनका विचार

१. बुद्ध ने इन नये दार्शनिकों के मत को स्वीकार नहीं किया।

२. बुद्ध का उनकी शिक्षाओं को अस्वीकार करना सकारण था | बुद्ध का कहना था:
३. यदि पूर्ण काश्यप या पकुध कच्चायन के सिद्धान्तो को सत्य माना जाय तो फिर आदमी कोई भी बुराई कर सकता है, किसी को कुछ भी हानि पहुंच सकता है; बिना किसी भी तरह की सामाजिक जिम्मेदारी स्वीकार किये या बिना किसी भी तरह के सामाजिक परिणाम का विचार किये एक आदमी दूसरे की हत्या भी कर ही सकता है ।
४. यदि मक्खली गोसाल का सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय तो आदमी भाग्य के हाथ का खिलौना बन जाता है | आदमी किसी भी तरह अपने बंधनो को नहीं काट सकता ।
५. यदि अजित केस कम्बल का सिद्धान्त ठीक माना जाय तो आदमी के लिये खाने ,पीने और मौज उडाने के अतिरिक्त शेष कुछ करने के लिये रह ही नहीं जाता ।
६. यदि सञ्जय बेलट्ठिपुत्त का सिद्धान्त सही हो तो फिर पानी पर यूं ही बहते रहने की तरह आदमी का जीवन निरुद्देश्य हो जाएगा ।
७. यदि निगण्ठनाथपुत्त का सिद्धान्त सही हो तो आदमी का जीवन कायक्लेश तथा तपश्चर्या के आधीन हो जायेगा -- आदमी की इच्छाओं और स्वाभाविक प्रवृतियों का सर्वथा मूलोच्छेद ।
८. इसलिये उन दार्शनिकों का कोई एक भी मत बुद्ध को अच्छा नहीं लगा | उनको ऐसा लगा कि ये सब ऐसे आदमियों के ही विचार थे जो या तो निराशावादी थे, या असहाय थे या किसी भी भले-बुरे परिणाम की ओर से सर्वथा उदासीन थे | इसलिये उन्होंने अन्यत्र ही कहीं से प्रकाश पाने की आशा रखी ।

सातवाँ भाग : समानता तथा विषमता

१. वे बातें जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग किया

१. दार्शनिक तथा धार्मिक विचार-सारणी के इस पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट है कि जिस समय बुद्ध ने अपने शासन की नींव रखी, उस समय कुछ विचार और मान्यतायें ऐसी थीं जिन्होंने लोगों के दिमाग में घर बना रखा था । वे विचार और मान्यताये थीं ।
(क) वेदों को स्वत: प्रमाण मानना ।
(ख) आत्मा के मोक्ष में विश्वास, अर्थात् पुनर्जन्म न होना ।
(ग) धार्मिक- संस्कारों तथा यज्ञादि के करने को 'आत्मा' के मोक्ष का साधन मानना ।
(घ) सामाजिक-संगठन के निमित्त चातुर्वणी- व्यवस्था को आदर्श मानना ।
(ङ) ईश्वर को सृष्टि- कर्ता और 'ब्रम्ह' को विश्व का मूलाधार तत्व मानना ।
(च) 'आत्मा' में विश्वास ।
(छ) 'संसरण' अर्थात् 'आत्मा' के एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने पर विश्वास ।
(ज) कर्म मे विश्वास अर्थात् इस जन्म में आदमी की जो भी स्थिति परिस्थिति है उस सब को पूर्व-जन्म का परिणाम मानना ।
२. अपने बुद्ध शासन के स्तम्भों की स्थापना करते समय बुद्ध ने इन परम्परागत-मान्य विचारों के साथ अपने ही अनोखे ढंग से बरताव किया ।
३. ये वे बातें है जिनका बुद्ध ने सर्वथा त्याग कर दिया ।
(क) मैं कहाँ से आया हूँ, किधर से आया हूं, मैं क्या हूं - इस प्रकार के व्यर्थ के मानसिक संकल्प-विकल्प उठाते रहने की बुद्ध ने निन्दा की ।
(ख) उन्होंने 'आत्मा' के बारे में सभी मान्यताओं का त्याग किया । उन्होंने 'आत्मा' को न शरीर ही माना, न वेदनाए ही माना, न संज्ञा ही माना, न संस्कार ही माना और विज्ञान ही माना ।
(ग) कुछ धार्मिक उपदेशकों द्वारा प्रतिपादित सभी उच्छेदवादी मतों का तिरस्कार किया ।
(घ) उन्होंने 'नास्तिको' के मत का त्याग किया ।
(ङ) उन्होंने इस बात को मान्य नहीं ठहराया कि विश्व के विकास का आरम्भ किसी के 'ज्ञान' से बंधा हुआ है ।
(च) उन्होंने इस सिद्धान्त का खण्डन किया कि किसी ईश्वर ने आदमी का निर्माण किया है अथवा वह किसी 'ब्रह्म' के शरीर का अंश है ।
(छ) 'आत्मा' के अस्तित्व की तो उन्होने उपेक्षा की और उससे सर्वथा इनकार किया ।

२. वे बातें जिनमें बुद्ध ने परिवर्तन किया

(क) उन्होंने कार्य-कारण के महान् नियम को अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं सहित प्रतीत्यसमुत्पाद के रूप में मान्य ठहराया ।
(ख) उन्होंने जीवन के निराशावादी दृष्टि कोन का खण्डन किया और साथ ही इस मूर्खता पूर्ण दृष्टिकोण का भी कि किसी ईश्वर ने आदमी और संसार का भविष्य पहले से निश्चित कर रखा है ।
(ग) उन्होंने इस सिद्धान्त को भी अस्वीकार किया कि किसी पूर्व-जन्म में किये गये किन्हीं कार्यों में कुछ ऐसी सामर्थ्य है कि वे दु:ख और कष्ट का कारण होते हैं और उन के रहते इस जन्म के कर्म कुछ नहीं कर सकते - वे सभी बेकार है । उन्होंने 'कर्म' के इस निराशावादी दृष्टि-कोण का त्याग किया । उन्होंने पुराने 'कर्म-वाद' के स्थान पर एक बहुत ही अधिक वैज्ञानिक 'कर्म-वाद' की स्थापना की --एक प्रकार से बोतल तो पुरानी थी, किन्तु भीतर की सुरा नई थी ।
(घ) संसरण अर्थात् आत्मा के एक शरीर से निकल कर दूसरे में जाने की बात के स्थान पर संसरण-रहित पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया ।
(ङ) उन्होंने 'मोक्ष' अथवा 'आत्मा' की मुक्ति के सिद्धान्त के स्थान पर बौद्ध 'निर्वाण' की स्थापना की ।
(५) इस प्रकार बुद्ध का शासन अपनी मौलिकता लिये हुए है । इसमें जो कुछ थोड़ा-बहुत पुराना है वह या तो बदल दिया गया है या उसकी नई व्याख्या कर दी गई है ।

३. वे बातें जिन्हें बुद्ध ने स्वीकार किया

१. उनकी शिक्षा की पहली विशेषता थी कि मन को सभी चीजों का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया गया था ।

२. मन चीजों का पूर्वगामी है वह उस पर प्रभाव डालता है । वह उन्हें उत्पन्न करता है । यदि मन काबू में है तो सब में कुछ काबू है ।

३. मन ही सब मानसिक-क्रियाओं में प्रधान है । मन ही मुख्य है । मन उन चैतसिक-क्रियाओं की ही उपज है ।

४. इसलिये सब से मुख्य मन की साधना है ।

५. बुद्ध की शिक्षाओं की दूसरी विशेषता यह है कि उनके अनुसार मन ही उन सब भलाइयो और बुराइयों का स्रोत है जो हमारे भीतर उत्पन्न होती है और जिन का हमें बाहर से शिकार होना पडता है ।

६. जो कुछ भी बुराई है - जिसका बुराई से सम्बन्ध हैं, जो बुराई से समन्वित है - वह सब मन की ही उपज है । जो कुछ भी भलाई है - जिसका भलाई से सम्बन्ध है, जो भलाई में समन्वित है - वह सब मन की ही उपज है ।

७. यदि आदमी बुरे मन से कुछ भी बोलता या करता है तो दु:ख उसके पीछे-पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी को खींचने वाले बैलों के पीछे पीछे । इसलिये अपने चित्त को निर्मल बनाये रखना ही धम्म का सार है ।

८. उनकी शिक्षाओं की तीसरी विशेषता है सभी पाप-कर्मो से विरति ।

९. उनकी शिक्षाओं की चौथी विशेषता है कि धम्मिक धार्मिक-ग्रन्थों के पाठ में नहीं है, बल्कि धम्मिक जीवन बिताने में है ।

१०. क्या कोई कह सकता है कि बुद्ध का धम्म उनका अपना आविष्कार न था? उनकी अपनी कृति न थी ?

द्वितीय खंड

धम्म-दीक्षाओं का आंदोलन

पहला भाग - बुद्ध और उनका विषाद योग
दुसरा भाग - परिव्राजकों की धम्म-दीक्षा
तीसरा भाग - कुलीनों तथा धार्मिकों की धम्म-दीक्षा
चौथा भाग - जन्म- भूमि का आवाहन
पाँचवा भाग - धम्म-दीक्षाओ को पुनरावृत्ति
छठा भाग - निम्नतर-स्तर के लोगों की धम्म-दीक्षा
सातवाँ भाग - स्त्रियों की धम्म-दीक्षा
आठवाँ भाग - पतितों तथा मुजरिमों की धम्म-दीक्षा

पहला भाग : बुद्ध और उनका विषाद योग

१. उपदेश देना अथवा नही देना

१. बोधि प्राप्त करने के अनन्तर और अपने सद्धर्म की रूप-रेखा निश्चित कर लेने अनन्तर बुद्ध के मन में एक विचार आया । क्या उसे दूसरों को अपने धम्म का उपदेश देना चाहिये, अथवा अपने ही कल्याण में रत रहना चाहिये?

२. उन्होंने सोचा, निस्संदेह मैने एक नया सद्धम्म पा लिया है । लेकिन हर सामान्य आदमी के लिये इसका समझ सकना और अनुकरण कठिन है । बुद्धिमानों तक के लिये यह अति सूक्ष्म है ।

३. आदमियों के लिये अपने आप को 'आत्मा' और 'परमात्मा' के मायाजाल से मुक्त कर सकना कठिन है । आदमियों के लिये रस्मों और रीति-रिवाजों और धार्मिक-संस्कारों के बन्धनों से मुक्त होना कठिन है । आदमियों के लिये ब्राह्मणी 'कर्मवाद' से मुक्त होना कठिन है ।

४. आदमियों के लिये आत्मा को 'नित्य' मानने के सिद्धांत से मुक्त होना कठिन है और मेरे इस सिद्धान्त को मानना भी कठिन है कि 'आत्मा' का कहीं कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है और मरणान्तर भी कहीं कोई 'आत्मा' शेष नहीं रहती ।

५. आदमी स्वार्थ-रत है । वे इसी में मजा लेते और आनन्द मानते हैं । आदमियों के लिये मेरे सद्धर्म को स्वार्थ - परता के ऊपर स्थान देने के सिद्धान्त को समझना कठिन है ।

६. यदि मै अपने सिद्धान्त का उपदेश दूं, और दूसरे इसे समझ न सकें, अथवा समझ कर स्वीकार न कर सकें, अथवा स्वीकार करके भी तद्नुसार आचरण न कर सकें, तो इस से दूसरों को भी व्यर्थ की थकावट होगी और मुझे भी व्यर्थ की हैराणी ।

७. "मैं संसार से दूर रहकर एक संन्यासी का ही जीवन क्यों न बिताऊँ? मैं अपने कल्याण में ही क्यो न लगा रहूं? मै कम से कम अपना कल्याण तो कर ही सकता हूँ ।"

८. इस प्रकार विचार करने से बुद्ध का मन सद्धर्म प्रचार की ओर न झुक कर निष्क्रियता की ओर ही झुका ।

९. ब्रह्मा सहम्पति ने जब यह जाना कि बुद्ध के मन में क्या विचार चक्कर काट रहा है, उसने सोचा: 'निश्चय से संसार का नाश होने जा रहा है, निश्चय से संसार विनाश को प्राप्त होने जा रहा है, यदि सम्यक सम्बुद्ध तथागत का मन धम्म प्रचार की ओर न झुक कर निष्क्रियता की ओर झुक जाता है ।'

१०. इस चिंता से घबराकर ब्रह्मा सहम्पति ब्रह्म-लोक से विदा होकर बुद्ध के सामने प्रकट हुआ । अपने वस्त्र को एक कँधे पर करके वह झुका और हाथ जोड़कर बोला "आप अब सिद्धार्थ गौतम नहीं है । आप बुद्ध हैं । आप सम्यक् सम्बुद्ध हैं । आप तथागत हैं । आप संसार को अन्धकार मुक्त करने के प्रयास से कैसे विमुख हो सकते हैं ? आप संसार को सत्यपथ पर ले चलने से कैसे विमुख हो सकते हैं?"

११. "बहुत से प्राणी हैं, जो बहुत मलिन नहीं हैं, उन्हें सद्धम्म श्रवण करना नहीं मिलेगा तो वे विनाश को प्राप्त होंगे ।"

१२. "आप जानते हैं भगवान कि मगध में एक पुराना 'धर्म' पैदा हुआ था जिसमें बहुत दोष थे ।"

१३. "क्या भगवान्! अब उन लोगों के लिये अमृत-द्धार नही खोलेंगे?"

१४. "जैसे पर्वत के शिखर पर खड़ा हुआ कोई अपने आस-पास के नीचे खडे हुए लोगो को देखता है, उसी तरह के प्रज्ञा के शिखर पर चढ़े हुए भगवान! हे दुःख का क्षय किये हुए भगवान् । अपने आस पास के उन लोगों की ओर देखें जो दु:ख के सागर में निमग्न हैं ।"

१५. "हे वीर! हे सार्थवाह! हे जाति-क्षय ! आप उठें । संसार के कल्याणार्थ विचरे । उसकी ओर से विमुख न हों ।"

१६. "हे भगवान; आप दया करके देवताओं और मनुष्यों को सद्धम्म का उपदेश दें ।"

१७. बुद्ध ने उत्तर दिया- "हे मनुष्यों में ज्येष्ठ- श्रेष्ठ ब्रह्म! यदि मैने धम्मोपदेश देने का संकल्प नही किया तो यह केवल व्यर्थ की हैरानी से बचने के ख्याल से नहीं किया ।"

१८. यह जानकर कि संसार में इतना दुःख है बुद्ध ने निश्चय किया कि संन्यासी की तरह हाथ पर हाथ धरे वैठे रहना और जो कुछ दुनिया में हो रहा है उसे वैसे ही होते रहने देना, उसके लिये ठीक न होगा ।

१९. उन्हें तपश्चर्या तथा आत्म-पिडन का पथ व्यर्थ जान पडा था । संसार से भाग खड़े होना बेकार था । एक तपस्वी के लिये भी संसार से भाग खड़े होना संभव नहीं । उन्होंने निश्चय किया कि संसार से भाग खड़े होने की जरूरत नहीं है । जरूरत है संसार को बदलकर श्रेष्ठतर बनाने की ।

२०. बुद्ध ने अनुभव किया कि उन्होंने संसार का त्याग इसीलिये किया था कि वहाँ इतना संघर्ष है और वह इतने अधिक दु:ख का कारण है,
और जिसका उनके पास कोई इलाज न था। यदि वह सद्धम्म के प्रचार से, संसार के कष्ट और दु:ख को दूर कर सके तो यह उनका कर्तव्य था कि वह संसाराभिमुख होकर उसकी सेवा करें, न कि निष्क्रियता की मुर्ति बनकर चुपचाप बैठे रहे।
२१. इसलिये बुद्ध ने ब्रह्मा सहम्पति की प्रार्थना स्वीकार की ओर सद्धम्म का उपदेश देने का निश्चय किया।

२. ब्रम्हा सहम्पति द्वारा शुभ-घोषणा

१. ब्रह्मा सहम्पति यह सोचकर कि "मै जनता को उपदेश देने के लिये बुद्ध को प्रेरित करने में सफल हो गया हूँ", बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बुद्ध को नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और विदा हो गया।
२. वापस लौटते समय जाते जाते वह यह घोषणा करता रहा, "इस शुभ संवाद को सुनकर प्रसन्न होओ। हमारे भगवान् बुद्ध ने संसार की बुराई और कष्ट का मूल कारण जान लिया है। उन्हे इससे मुक्त होने का उपाय भी ज्ञात है।"
३. "जो निराश है, जो दु:खी हैं उन्हे बुद्ध संतोष प्रदान करेंगे। जो युद्ध त्रस्त है उन्हे शान्त करेंगे। जिनकी हिम्मत टूट गई है उनकी हिम्मत बंधायेगे। जो दलित है, जिनपर अत्याचार हुए है, उन्हे वह आशावान् बनायेंगे।"
४. "आप लोग जिन्हे दुनिया के झंझट सहन करने पड़ते हैं, आप लोग जिन्हे दुनिया में भयानक संघर्ष करना पड़ता है, आप लोग जो न्याय की आशा लगाये रहते है; आप यह सुखद-संवाद सुनकर प्रसन्न हों।"
५. "जो आहत हैं वे अपने जखमों को भरा समझें। जो भूखे हैं वे अपने को भोजन प्राप्त हुआ समझें। जो अन्धकार- ग्रस्त हैं वे अपने आपको प्रकाश में समझें। जो परित्यक्त है वे अब खुशी मनावे।"
६. "बुद्ध के सिद्धान्त में एक ऐसी उत्कट प्रेरणा है कि जो परित्यक्त है अथवा जिनका कोई नहीं हैं, उन्हें अपना बना लेने की इच्छा होती है, जो नीचे गिरा दिये गये हैं उन्हें ऊपर उठाने की इच्छा होती है और जो पददलित हैं उनके लिये आगे बढ़ने का समता का राज-पथ है।"
७. "उनका धम्म सद्धम्म है और उनका उद्देश्य है कि पृथ्वी पर सद्धम्म का साम्राज्य स्थापित हो।"
८. "उनका धम्म सत्य है, सम्पूर्ण सत्य है सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं अर्थात् सत्य ही सत्य है।"
९. "धन्य है भगवान् बुद्ध, क्योंकि उनका पथ बुद्धि का पथ है और वह मिथ्या विश्वासों से मुक्ति का मार्ग है। धन्य है वे भगवान् बुद्ध जो मध्यम-मार्ग का उपदेश करते है। धन्य है वे भगवान् बुद्ध जो सद्धम्म का उपदेश करते हैं। धन्य है वे भगवान् बुद्ध जो शान्ति-प्रद निर्वाण का उपदेश देते हैं। धन्य हैं वे भगवान् बुद्ध जो मैत्री, करूणा की शिक्षा देते हैं और भ्रातृभाव की ताकि आदमी अपने मानव-बान्धवों को बन्धनों से मुक्ति लाभ करने में सहायक हो सके।"

३. दो तरह की धम्म-दीक्षा

१. बुद्ध की धम्म-प्रचार की योजना में धम्म-दीक्षा के दो अर्थ हैं।
२. पहली तो 'भिक्षु' की दीक्षा है, जिनको सामूहिक रूप से 'संघ' कहा जाता है।
३. दूसरी दीक्षा 'उपासक' की दीक्षा है अर्थात् गृहस्थ बौद्ध की।
४. एक भिक्षु और एक उपासक के जीवन में मुख्य भेद चार ही बातों को लेकर है।
५. एक उपासक गृहस्थ बना रहता है। एक भिक्षु गृह-त्यागी परिव्राजक बन जाता हैं।
६. उपासक और भिक्षु दोनों को ही कुछ नियमों का पालन करना होता है।
७. भिक्षु के लिये वे 'व्रत' हैं और उनका पालन न करना दण्डनीय है, उपासक के लिये वे केवल 'शील' हैं जिन्हे वह अपनी सामर्थ्य भर अधिक से अधिक पालन करने का प्रयास करता हैं।
८. एक उपासक सम्पत्ति रख सकता है। एक भिक्षु कोई सम्पति नहीं रख सकता हैं।
९. एक उपासक बनने के लिये किसी 'संस्कार' की आवश्यकता नहीं।
१०. एक भिक्षु बनने के लिये 'उपसम्पन्न' होना आवश्यक है।
११. बुद्ध ने दीक्षा की इच्छा रखने वालों की इच्छा के अनुसार ही किन्हीं को 'उपासक', किन्ही को 'भिक्षु' बनाया।

१२. एक उपासक जब चाहे भिक्षु बन सकता है ।
१३. एक भिक्षु को 'भिक्षु' नही रहना होता यदि वह अपने मुख्य-व्रतों में से किसी एक का भी भंग कर दे अथवा वह स्वेच्छा से संघ का सदस्य न रहना चाहे ।
१४. यह नही समझना चाहिए कि आगे के पृष्ठों में जिनके नाम आये हैं, बुद्ध ने केवल उन्हे ही दीक्षित किया ।
१५. जो चन्द उदाहरण चुने गये हैं वे केवल यह दिखाने के लिये कि दीक्षा देने अथवा अपने सद्धम्म का प्रचार करने के सिलसिले में बुद्ध न किसी की 'जाति' का विचार करते थे और न किसी के 'पुरुष' व 'स्त्री' होने का ।

दुसरा भाग : परिव्राजको की दीक्षा

१. सारनाथ आगमन

१. धम्मोपदेश का निश्चय कर चुकने के अनन्तर बुद्ध ने अपने आप से प्रश्न किया कि मैं सर्व प्रथम किसे धम्मोपदेश दूं? उन्हे सब से पहले आलार-कालाम का ख्याल आया जो बुद्ध की सम्मति में विद्वान् था, बुद्धिमान था, समझदार था और काफी निर्मल था । बुद्ध ने सोचा यह कैसा हो, यदि मै सर्वप्रथम उसे ही धम्मोपदेश करूं? लेकिन बुद्ध को पता लगा कि आलार-कालाम की मृत्यु हो चुकी है ।
२. तब उन्होंने उद्दक रामपुत्त को भी उपदेश देने का विचार किया । किन्तु उसका भी शरीरान्त हो चुका था ।
३. तब उन्हे अपने उन पाँच साथियों का ध्यान आया जो निरञ्जना नदी के तट पर उनकी सेवा में थे, और जो सिद्धार्थ गौतम के तपस्या और काय-क्लेश का पथ त्याग देने पर असन्तुष्ट हो उन्हें छोड़ कर चले गये थे ।
४. उन्होंने सोचा “उन्होंने मेरे लिये बहुत किया, मेरी बडी सेवा की, मेरे लिये बहुत कष्ट उठाया । कैसा हो यदि मैं उन्हें ही सर्व प्रथम धम्म का उपदेश दु?”
५. उन्होनें उनके ठोर-ठिकाने का पता लगाया । जब उन्हें पता लगा कि वे वाराणसी (सारनाथ) के इसिपतन के मृगदाय में रहते है, तो बुद्ध उधर ही चले दिये ।
६. उन पांचों ने जब बुद्ध को आते देखा तो आपस में तय किया कि बुद्ध का स्वागत नहीं करेंगे । उनमें से एक बोला, “मित्रो, वह श्रमण गौतम चला आ रहा है, जो पथ-भ्रष्ट हो गया है, जिस ने तपस्या का मार्ग त्याग आराम-तलबी और कामभोग का पंथ अपना लिया है । वह पापी है । इसलिये हमें न उसका स्वागत करना चाहिये न उसके सम्मान में उठ कर खड़ा होना चाहिये । न उसका पात्र और चीवर ग्रहण करना चाहिये । हम उसके लिये एक आसन रख देते हैं, इच्छा होगी तो उस पर बैठ जायेगा ।“ वे सब सहमत थे ।
७. लेकिन जब बुद्ध समीप पहुचे तो वह पांचों परिव्राजक अपने संकल्प पर दृढ़ न रह सके । बुद्ध के व्यक्तित्व ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे सभी अपने आसन से उठ खड़े हुए । एक ने बुद्ध का पात्र लिया, एक ने चीवर लिया, एक ने आसन बिछाया और दूसरा पांव धोने के लिये पानी ले लाया ।
८. यह सचमुच एक अप्रिय अतिथि का असाधारण स्वागत था ।
९. इस प्रकार तो उपेक्षावान थे, श्रद्धावान बन गये ।

२. धम्मचक्र प्रवर्तन

१. कुशल-क्षेम की बातचीत हो चुकने के बाद परिव्राजकों ने बुद्ध से प्रश्न किया -- “क्या आप अब भी तपश्चर्य्या तथा काय-क्लेश में विश्वास रखते है?”
२. बुद्ध ने कहा -- दो सिरे की बातें है, दोनो किनारों की -एक तो काम-भोग का जीवन और दूसरा काय-क्लेश का जीवन ।
३. एक का कहना है, खाओ पीयो मौज उडाओ क्योंकि कल तो मरना ही है । दूसरे का कहना है तमाम वासनाओं का मूलोच्छेद कर दो क्योकि वे पुनर्जन्म का कारण है । उन्होंने दोनों को आदमी की शान के योग्य नहीं माना ।
४. वे मध्यम-मार्ग को मानने वाले थे -- बीच का मार्ग; जो कि न तो कामभोग का मार्ग है और न काय-क्लेश का मार्ग है ।
५. बुद्ध ने परिव्राजको से प्रश्न किया -- मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो कि जब तक किसी के मन में पार्थिव वा स्वर्गीय भोगों की कामना बनी रहेगी, तब तक क्या उसका समस्त काय-क्लेश व्यर्थ नही होगा? उनका उत्तर था-“जैसा आप कहते है वैसा ही है ।”
६. “यदि आप काय-क्लेश द्वारा काम-तृष्णा को शान्त नहीं कर सकते तो काय-क्लेश का दरिद्री जीवन बिताने से आप अपने को कैसे जीत सकते हैं?”
७. “जब आप अपने आप पर विजय पा लेंगे तभी आप काम-तृष्णा से मुक्त होंगे, तब आप को काम-भोग की कामना न रहेंगी, और तब प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति विकार पैदा नहीं करेगी । आप अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के हिसाब से खाना-पीना ग्रहण करें ।
८. “सभी तरह की काम-वासना उत्तेजक होती है । कामुक अपनी काम वासना का गुलाम होता है । सभी काम-भोगों के चक्कर में पड़े रहना गँवारपन और नीच कर्म है । लेकिन मैं तुम्हे कहता हूँ कि शरीर की स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति में बुराई नहीं है

। शरीर को स्वस्थ बनाये रखना एक कर्तव्य है । अन्यथा तुम अपने मनोबल को दृढ़ बनाये न रख सकोगे और प्रज्ञा रूपी प्रदीप भी प्रज्ज्वलित न रह सकेगा ।"

९. हे परिव्राजको इस बात को समझ लो कि आदमी को इन दोनों अन्त की बातों से सदा बचना चाहिये -- एक तो उन चीजों के चक्कर में पडे रहने से जिनका आकर्षण काम-भोग सम्बन्धी तृष्णा पर निर्भर करता है -- यह एक बहुत निम्न कोटि की बात है; अयोग्य है, हानिकर है तथा दूसरी और तपश्चर्या अथवा काय-क्लेश से, क्योंकि वह भी कष्ट-प्रद है, अयोग्य है तथा हानिकार है ।

१०. इन दोनों अन्तों से, इन दोनों सिरे की बातों के बीच में एक मध्यम मार्ग है -- बीच का रास्ता । यह समझ लो कि मैं उसी मध्यम मार्ग का उपदेष्टा हूँ ।

११. पांचों परिव्राजकों ने उनकी बात ध्यान से सुनी । वे यह नहीं जानते थे कि बुद्ध के मध्यम मार्ग के बारे में क्या कहे । इसलिये उन्होंने प्रश्न किया -- जब हम आपका साथ छोड़कर चले आये, उस के बाद से आप कहाँ कहाँ रहे, क्या क्या किया? तब बुद्ध ने उन्हे बताया कि किस प्रकार गया पहुँचे, कैसे उस पीपल के पेड़ के नीचे ध्यान लगाकर बैठे और कैसे चार सप्ताह की निरन्तर समाधि के बाद उन्हें वह नया बोध प्राप्त हुआ जिससे वह नये मार्ग का आविष्कार कर सके ।

१२. यह सुना तो परिव्राजक उस नये-मार्ग को विस्तारपूर्वक जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठे । उन्होंने बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उन्हें बतायें ।

१३. बुद्ध ने स्वीकार किया ।

१४. बुद्ध ने पहली बात यह बताई कि उनके सद्धर्म को आत्मा,परमात्मा से कुछ लेना देना नहीं है । उनके सद्धर्म को मरने के बाद (आत्मा का) क्या होता है इससे कुछ सरोकार नहीं है । उनके सद्धर्म को कर्म-काण्ड के क्रिया-कलापों से भी कुछ लेना-देना नहीं ।

१५. बुद्ध के धम्म का केन्द्र-बिन्दु है आदमी और इस पृथ्वी पर रहते समय आदमी का आदमी के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिये?

१६. बुद्ध ने कहा, यह उनकी पहली स्थापना है ।

१७. उनकी दूसरी स्थापना है कि आदमी दु:खी हैं, कष्ट में हैं और दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं । संसार दुःख से भरा पड़ा है और धम्म का उद्देश इस दुःख का नाश करना ही है । इसके अतिरिक्त सद्धर्म और कुछ नहीं है ।

१८. दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुःख के नाश करने का उपाय -- यही धम्म की आधार शिला है ।

१९. धम्म के लिये एकमात्र यही सही आधार हो सकता है । जो धर्म इस प्राथमिक बात को भी अंगीकारी नहीं कर सकता, धम्म ही नहीं है ।

२०. हे परिव्राजैको! जो भी श्रमण या ब्राह्मण (धर्मोपदेष्टा) यह भी नहीं समझ पाते कि संसार मे दुःख है और उस दुःख के नाश का उपाय है । ऐसे श्रमण ब्राह्मण मेरी सम्मति में श्रमण-ब्राह्मण ही नहीं हैं, न वे अपने को ज्येष्ठ-श्रेष्ठ समझने वाले इतना भी समझ पाये हैं कि धम्म का सही अर्थ क्या है?

२१. तब परिव्राजकों ने पूछा: दु:ख और दुःख का विनाश ही यदि आप के धम्म की आधार-शिला है तो हमें बताइये कि आप का धम्म कैसे दु:ख का नाश कर सकता है?

२२. तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि उनके धम्म के अनुसार यदि हर आदमी (१) पवित्रता के पथ पर चले, (२) धम्म के पथ पर चले, (३) शील-मार्ग पर चले तो इस दु:ख का एकान्तिक निरोध हो सकता है ।

२३. और उन्होने कहा कि उन्होंने ऐसे धम्म का आविष्कार कर लिया है ।

३. धम्मचक्र प्रवर्तन

१. परिव्राजकों ने तब बुद्ध से अपने धम्म की व्याख्या करने की प्रार्थना की ।

२. बुद्ध ने कृपया इसे स्वीकार किया ।

३. उन्होंने सब से पहले उन्हें पवित्रता का पथ ही समझाया ।

४. उन्होंने परिव्राजकों से कहा 'कोई भी आदमी जो अच्छा बनना चाहता है उसके लिये यह आवश्यक है कि वह कोई अच्छाई का माप-दण्ड स्वीकार करे ।'

५. "मेरे पवित्रता के पथ के अनुसार अच्छे जीवन के पांच माप दण्ड हैं –

(१) किसी प्राणी की हिंसा न करना (२) चोरी न करना अर्थात् दूसरे की चीज को अपनी न बना लेना, (३) व्यभिचार न करना, (४) असत्य न बोलना, (५) नशीली चीजों का ग्रहण न करना ।

६. मैं कहता हूँ कि हर आदमी के लिये यह परमावश्यक है कि वह इन पाच शीलो को स्वीकार करे । क्योकि हर आदमी के लिये जीवन का कोई मापदण्ड होना चाहिये, जिससे वह अपनी अच्छाई-बुराई को माप सके; मेरे धम्म के अनुसार ये पांच शील जीवन की अच्छाई-बुराई मापने के माप-दण्ड ही है ।
७. दुनिया में हर जगह पतित (गिरे हुए) लोग होते ही हैं । लेकिन पतित दो तरह के होते है; एक तो पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड होता है, दूसरे पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप-दण्ड नहीं होता ।
८. जिसके जीवन का कोई माप-दण्ड नहीं होता वह 'पतित' होने पर भी यह नहीं जानता कि वह 'पतित' है । इसलिये वह हमेशा 'पतित' ही रहता है, दूसरी ओर जिसके जीवन का कोई माप-दण्ड होता है वह हमेशा इस बात की कोशिश करता रहता है कि पतितावस्था से ऊपर उठे । क्यों? इसका उत्तर यही है कि वह जानता है कि वह पतित है, गिर गया है ।
९. आदमी के लिये जीवन-सुधार का कोई माप-दण्ड होने और न होने का यही बड़ा अन्तर है । आदमी अपने स्तर से नीचे गिर पड़े यह इतनी बडी बात नहीं है जितनी यह कि, आदमी के जीवन का कोई स्तर ही न हो ।
१०. हे परिव्राजको । तुम पूछ सकते हो कि इन पाँच शीलों को जीवन का माप-दण्ड ही क्यों स्वीकार किया जाय?
११. इस प्रश्न को उत्तर तुम्हे स्वयं ही मिल जायेगा यदि तुम अपने से ही यह प्रश्न पूछो -क्या यह शील व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है? और साथ ही यह भी पूछों, क्या इन शीलों का पालन करना समाज के लिए कल्याणकारी है?
१२. यदि इन दोनों प्रश्नों का तुम्हारा उत्तर स्वीकारात्मक है तो इस से यह सीधा परिणाम निकलता है कि मेरे पवित्रता के पथ के ये पांच शील इस योग्य है कि उन्हें जीवन का सच्चा माप-दण्ड मान लिया जाय ।

४. धम्मचक्र प्रवर्तन

अष्टांगिक-मार्ग या सम्यकमार्ग

१. इसके आगे बुद्ध ने उन परिव्राजकों को अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया । बुद्ध ने कहा -- इस मार्ग के आठ अंग हैं ।
२. बुद्ध ने सर्वप्रथम सम्मा दिट्ठी (-सम्यक् दृष्टि) की व्याख्या की जो अष्टांगिक मार्ग में प्रथम है और प्रधान हैं ।
३. सम्यक् बुद्ध ने परिव्राजकों से दृष्टि का महत्व समझाने के लिये कहा –
४. "हे परिव्राजको! तुम्हे इस का बोध होना चाहिये कि यह संसार एक कारागार है और आदमी इस कारागार में एक कैदी है ।"
५. इस कारागार में इतना अधिक अन्धकार है कि यहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देता । कैदी को यहा तक दिखाई नहीं देता कि वह कैदी है ।
६. इतना ही नहीं कि बहुत अधिक समय तक इस अन्धेरी कोठरी में ही पड़े रहने के कारण आदमी एकदम अन्धा हो गया हो, बल्कि उसे इस बात मे भी बड़ा सन्देह हो गया है कि प्रकाश नाम की कोई चीज भी कभी कहीं हो सकती है?
७. मन ही एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से आदमी को प्रकाश की प्राप्ति हो सकती है ।
८. लेकिन इन कारागार-वासियों के दिमाग की भी अवस्था ऐसी नहीं है कि यह उद्देश्य पूरा हो सके ।
९. इनका दिमाग जरासा प्रकाश मात्र आने देती है, इतना ही है कि जिनके पास आँख है वह यह देख सकें कि अन्धकार नाम की भी कोई वस्तु है ।
१०. इसलिये ऐसी समझ बड़ी सदोष है ।
११. लेकिन हे परिव्राजको! कैदी की स्थिति ऐसी निराशजनक नहीं है जैसी यह प्रतीत होती है ।
१२. क्योंकि आदमी में एक बल है, एक शक्ति है जिसे संकल्प-बल वा इच्छा-शक्ति
कहा जाता है । जब आदमी के सम्मुख कोई उपयुक्त आदर्श उपस्थित होता है तो इस इच्छा-शक्ति को जागृत और क्रिया-शील बनाया जा सकता है ।
१३. आदमी को यदि कहीं से इतना भी प्रकाश मिल जाये कि वह यह देख सके कि उसे अपनी इच्छा-शक्ति का ऐसा संचालन कर सकता है कि वह अन्त में उसे बन्धन-मुक्त कर दे ।
१४. इसलिये यद्यपि आदमी बन्धन में है तो भी वह स्वतन्त्र हो सकता है; वह किसी भी समय ऐसा पहला कदम उठा सकता है कि एक न एक दीन वह स्वतन्त्र होकर रहे ।
१५. यह इसलिये कि हम जिस किसी दिशा में भी अपने मन को ले जाना चाहे, हम उसे उस दिशा में ले जा सकते हें । मन ही है जो हमें जीवन-रूपी कारागार का कैदी बनाता है और यह मन ही है जो हमें कैदी बनाये रखता है ।

१६. लेकिन मन ने ही जिसे बनाया है मन ही उसे नष्ट भी कर सकता है, मन अपनी कृति को मटियामेट भी कर सकता है। यदि इसने आदमी को बंधन में बांधा है तो ठीक दिशा में अग्रसर होने पर यही आदमी को बंधन-मुक्त कर सकता हैं।
१७. यह है जो सम्यक् दृष्टि कर सकती है।
१८. तब परिव्राजकों ने प्रश्न किया "सम्यक्-दृष्टि का अन्तिम उद्देश्य क्या है?" बुद्ध ने उत्तर दिया-"अविद्या का विनाश ही सम्यक-दृष्टि का उद्देश्य है। यह मिथ्या-दृष्टि की विरोधिनी है।"
१९. "और अविद्या का अर्थ है कि आदमी दु:ख को न जान सके, आदमी दु:ख के निरोध के उपाय को न जान सके -- आदमी इन आर्य-सत्यों को न जान सके।"
२०. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी कर्म-काण्ड के क्रिया-कलाप को व्यर्थ समझे, आदमी शास्त्रों की पवित्रता की मिथ्या-धारण से मुक्त हो।
२१. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी ऐसी सब मिथ्या-विश्वास से मुक्त हो, आदमी यह न समझता रहे कि कोई भी बात प्रकृति के नियमों के विरुद्ध घट सकती है।
२२. सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी ऐसी सब मिथ्या-धारणाओं से मुक्त हो जो आदमी के मन की कल्पना-मात्र है और जिनका आदमी के अनुभव या यथार्थता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।
२३. सम्यक्-दृष्टि का मतलब है कि आदमी का मन स्वतन्त्र हो, आदमी विचार स्वतन्त्र हों।
२४. हर आदमी की कुछ आशायें होती हैं, आकांक्षायें होती है;
महत्वाकांक्षायें होती है। सम्यक् संकल्प का मतलब है कि हमारी आशायें, हमारी आकांक्षायें ऊंचे स्तर की हों, निम्नस्तर की न हों, हमारे योग्य हों, अयोग्य न हों।
२५. सम्यकवाणी का मतलब है कि आदमी (१) सत्य ही बोले, (२) आदमी असत्य न बोले, (३) आदमी दूसरों की बुराई न करता फिरे, (४) आदमी दूसरों के बारे में झूठी बाते न फैलाता फिरे, (५) आदमी किसी के प्रति गाली-गलौज का वा कठोर वचनों का व्यवहार न करे, (६) आदमी सभी के साथ विनम्र वाणी का व्यवहार करे, (७) आदमी व्यर्थ की, बेमतलब बातें न करता रहे, बल्कि उसकी वाणी बुद्धिसंगत हो, सार्थक हो और सोद्देश्य हो।
२६. जैसा मैने समझाया सम्यक-वाणी का व्यवहार न किसी के भय की अपेक्षा रखता है, और न किसी के पक्षपात की। इसका इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिये कि कोई "बड़ा आदमी" उसके बारे में क्या सोचने लगेगा अथवा सम्यक-वाणी के व्यवहार से उसकी क्या हानि हो सकती है।
२७. सम्यक-वाणी का माप-दण्ड न किसी "ऊपर के आदमी" की आज्ञा है, और न किसी व्यक्ति को हो सकनेवाला व्यक्तिगत लाभ।
२८. सम्यक-कर्मान्त योग्य व्यवहार की शिक्षा देता है। हमारा हर कार्य ऐसा हो जिसके करते समय हम दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का ख्याल रखें।
२९. सम्यक-कर्मान्त का माप-दण्ड क्या है? सम्यक् कर्मान्त का माप-दण्ड यही है कि हमारा कार्य जीवन के जो मुख्य नियम हैं उनसे अधिक से अधिक समन्वय रखता हो।
३०. जब किसी आदमी के कार्य इन नियमों से समन्वय रखते हों, तो उन्हें हम सम्यक्-कर्म कह सकते हैं।
३१. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका कमानी ही होती है। लेकिन जीविका कमाने के ढंगों और ढंगों में अन्तर है। कुछ बुरे हैं, कुछ भले हैं। बुरे ढंग वे है जिनसे किसी की हानि होती है अथवा किसी के प्रति अन्याय होता है। अच्छे ढंग वे हैं जिनसे आदमी बिना किसी को हानि पहुंचाये अथवा बिना किसी के साथ अन्याय किये अपनी जीविका कमा सकता है। यही सम्यक्-आजीविका है।
३२. सम्यक् व्यायाम; अविद्या को नष्ट करने के प्रयास की प्रथम सीढी है, इस दु:खद कारागार के द्वार तक पहुंचने का रास्ता ताकि उसे खोला जा सके।
३३. सम्यक्-व्यायाम के चार उद्देश्य हैं।
३४. एक है अष्टांगिक-मार्ग विरोधी चित्त-प्रवृत्तियों की उत्पत्ति को रोकना।
३५. दूसरा है ऐसी चित्त-प्रवृत्तियों को दबाना जो उत्पन्न हो गई हो।
३६. तीसरा है चित्त-प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना जो अष्टांगिक मार्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों।
३७. चौथा है ऐसी उत्पन्न चित्त-प्रवृत्तियों में और भी अधिक वृद्धि करना तथा उनका विकास करना।

३८. सम्यक् स्मृति का मतलब है हर बात पर ध्यान दे सकना । यह मन की सतत् जागरूकता है । मन में जो अकुशल विचार उठते है, उन की चौकीदारी करना सम्यक्-समृति का ही एक दूसरा नाम है ।
३९. "हे परिव्राजको! जो आदमी सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक्-व्यायाम और सम्यक् स्मृति को प्राप्त करना चाहता है, उसके मार्ग में पांच बाधाएँ या बन्धन आते हैं । ४०. ये हैं लोभ, द्वेष, आलस्य, विचिकित्सा तथा अनिश्चय । इन बाधाओं को जो वास्तव में कडे बंधन ही हैं जीत लेना या तोड़ना आवश्यक है । इन बंधनों से मुक्त होने का उपाय समाधि है । लेकिन परिव्राजको! यह समझ लेना चाहिये कि समाधि और 'सम्यक समाधि' एक ही बात नहीं । दोनों में बड़ा अन्तर हैं ।
४१. समाधि का मतलब है केवल चित्त की एकाग्रता । इसमें सन्देह नहीं कि इससे वैसे ध्यानों को प्राप्त किया जा सकता है कि जिनके रहते ये पांचों संयोजन या बन्धन स्थगित रहते हैं ।
४२. लेकिन ध्यान की ये अवस्थायें अस्थायी है । इसलिये संयोजन या बंधन भी अस्थायी तौर पर ही स्थगित रहते हें । आवश्यकता है चित्त में स्थायी परिवर्तन लाने की । इस प्रकार का स्थायी-परिवर्तन सम्यक् समाधि के द्वारा ही लाया जा सकता है ।
४३. खाली समाधि एक नकारात्मक स्थिति है, क्योंकि यह इतना ही तो करती है कि संयोजनों को अस्थायी तौर पर स्थगित रखे । इसमें मन का स्थायी परिवर्तन निहित नहीं है । सम्यक् समाधि एक भावात्मक वस्तु है ।
यह मन को कुशल-कर्मो का एकाग्रता के साथ चिन्तन करने का अभ्यास डालती है और इस प्रकार मन की संयोजनोत्पन्न अकुशल-कर्मों की ओर आकर्षित होने की प्रवृत्ति को ही समाप्त कर देते हैं ।
४४. सम्यक् समाधि मन को कुशल और हमेशा कुशल ही कुशल (भलाई ही भलाई) सोचने की आदत डाल देती है । सम्यक् समाधि मन को वह अपेक्षित शक्ति देती है, जिससे आदमी कत्याणरत रह सके ।

९. धम्मचक्र प्रवर्तन

शील का मार्ग

१. तदनन्तर बुद्ध ने उन परिव्राजकों को शील का पथ वा सद्गुणों का मार्ग समझाया ।
२. उन्होंने उन्हे बताया कि शील के पथ का पथिक होने का मतलब है इन सद्गुणों का अभ्यास करना; (१) शील, (२) दान, (३) उपेक्षा, (४) नैष्क्रम्य, (५) वीर्य, (६) शान्ति, (७) सत्य, (८) अधिष्ठान, (९) करूणा, और (१०) मैत्री ।
३. उन परिव्राजकों ने बुद्ध से इन सद्गुणों का यथार्थ अर्थ समझना चाहा ।
४. तब बुद्ध ने उनकी शंका मिटा कर उन्हे सन्तुष्ट करने के लिये कहा-
५. "शील का मतलब है नैतिकता, अकुशल न करने की प्रवृत्ति और कुशल करने की प्रवृत्ति; बुराई करने में लज्जा-भय मानना । लज्जा-भय के कारण पाप से बचे रहने का प्रयास करना शील है । शील का मतलब है पापभीरूता ।
६. नैष्क्रम्य का मतलब है सांसारिक काम-भोगों का त्याग ।
७. दान का मतलब है बदले में किसी भी प्रकार की स्वार्थ-पूर्ति की आशा के बिना दूसरों की भलाई के निमित्त अपनी सम्पत्ति का ही नहीं, अपने रक्त, अपने शरीर के अंगों और यहाँ तक कि अपने प्राणों तक का बलिदान कर देना ।
८. वीर्य का मतलब है सम्यक् प्रयत्न । जो कुछ एक बार करने का निश्चय कर लिया अथवा जो कुछ करने का संकल्प कर लिया उसे अपनी पूरी सामर्थ्य से करने का प्रयास करना और बिना उसे पूरा किये पीछे मुडकर नहीं देखना ।
९. शान्ति का मतलब है क्षमा-शीलता । घृणा के उत्तर में घृणा नहीं करना यही इसका सार है । क्योंकि घृणा से तो घृणा कभी मिटती ही नहीं । क्षमा शीलता से ही घृणा का मर्दन होता है ।
१०. सत्य का मतलब है मृषावादी न होना । आदमी को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये । उसे सत्य और केवल सत्य ही बोलना चाहिये ।
११. अधिष्ठान का मतलब है अपने उद्देश्य तक पहुंचने का दृढ़ निश्चय ।
१२. करूणा का मतलब है सभी मानवों के प्रति प्रेमभरी दया ।
१३. मैत्री का मतलब है कि सभी प्राणियों के प्रति भ्रातृ-भावना हो, मित्रों के प्रति ही नहीं, शत्रुओं तक के प्रति; आदमियों के प्रति ही नहीं, सभी विश्वशेष प्राणियों के प्रति ।

१४. उपेक्षा का मतलब है अनासक्ति, यह दूसरों के सुख-दुःख के प्रति निरपेक्ष-भाव रखने से सर्वथा भिन्न वस्तु है । यह चित्त की वह अवस्था है जिसमें प्रिय-अप्रिय कुछ नहीं है । फल कुछ भी हो -उसकी ओर से निरपेक्ष रहकर साधना में रत रहना ।
१५. इन सद्गुणों का आदमी को अपनी पूरी सामर्थ्य भर अभ्यास करना होता है । इसीलिये उन्हे 'पारमिता' कहा गया है ।

६. धम्मचक्र प्रवर्तन

१. अपने धम्म का उपदेश देकर और उसकी सम्यक् व्याख्या करके बुद्ध ने परिव्राजकों से प्रश्न किया-
२. "क्या आदमी के चरित्र की पवित्रता ही संसार की भलाई की आधारशिला नहीं है?" उनका उत्तर था -- "हाँ, यह ऐसा ही है ।"
३. और फिर बुद्ध ने पूछा "क्या ईर्षा, राग, अज्ञान, हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य चरित्र की पवित्रता की जड नहीं खोद देते? क्या व्यक्तिगत पवित्रता के लिये यह आवश्यक नहीं है कि आदमी में इतना चारित्रिक बल हो कि वह इस प्रकार की बुराइयों के वश में न आ सके? यदि किसी आदमी में व्यक्तिगत पवित्रता ही नहीं है तो वह जन-कल्याण कैसे कर सकता है?" उनका उत्तर था-"हाँ, यह ऐसा ही है ।"
४. "और आदमी दूसरों को अपना गुलाम बनाना, दूसरों को अपने वश मे रखना क्यों चाहते हैं? आदमी दूसरों के सुख-दुःख की ओर से उदासीन क्यों है? क्या यह इसलिये नहीं है कि एक आदमी दूसरे के प्रति योग्य व्यवहार नहीं करता?" उनका उत्तर था, "हाँ, यह ऐसा ही है ।"
५. "तो क्या अष्टांग मार्ग का अनुसरण सम्यक्-दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् आजीविका, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि -- संक्षेप में सद्धम्म के अनुसार जीवन यापन -- यदि प्रत्येक उस पथ पर चले उस सारी अमानवता का, उस सारे अन्याय का, जो एक आदमी दूसरे के प्रति करता है, अन्त नहीं कर देगा? उनका उत्तर था "हाँ, यह ऐसा ही है ।"
६. अब शील या सद्गुणों का उल्लेख करते हुए कहा -- "क्या अभाव-ग्रस्तों का अभाव दूर करने के लिये, क्या दरिद्रों की दरिद्रता दूर करने के लिये और सामान्य जन-कल्याण करने के लिये दान आवश्यक नहीं है? क्या जहां कष्ट है, जहां दरिद्रता है, उधर ध्यान देकर उसे दूर करने के लिये करूणा की आवश्यकता नहीं हैं? क्या निस्वार्थ-भाव से काम करने के लिये निष्काम-भाव की आवश्यकता नहीं हैं? क्या व्यक्तिगत लाभ न होने पर भी सतत् प्रयत्न में लगे रहने के लिये उपेक्षा की आवश्यकता नहीं है?"
७. "क्या आदमी से प्रेम करना आवश्यक नहीं है?" उनका उत्तर था, "हाँ ।"
८. मैं एक कदम आगे बढ़कर कहता हूँ, प्रेम करना पर्याप्त नहीं है, जिस चीज की आवश्यकता है, वह मैत्री है । प्रेम की अपेक्षा इस का क्षेत्र व्यापक है । इस का मतलब है न केवल आदमियों के प्रति मैत्री बल्कि प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री । यह आदमियों में ही सीमित नहीं है । क्या ऐसी मैत्री
अपेक्षित नहीं है? इसके अतिरिक्त दूसरी कौन सी चीज है जो सभी आदमियों को वह सुख प्रदान कर सके जो सुख आदमी अपने लिये चाहता है, आदमी का चित्त पक्षपातरहित रहे, सभी के लिये खुला, सभी के लिये प्रेम और घृणा किसी से भी नहीं?"
९. उन सब ने कहा, "हाँ ।"
१०. "लेकिन इन सद्गुणों के आचरण के साथ प्रज्ञा जुड़ी रहनी चाहिये—निर्मल बुद्धि ।"
११. "क्या प्रज्ञा आवश्यक नहीं है?" परिव्राजक मौन रहे, उन्हे अपने प्रश्न का उत्तर देने के लिये मजबूर करने की दृष्टि से तथागत ने अपना कथन जारी रखा । उन्होंने कहा :-"भला आदमी हम उसीको कहेंगे जो कोई बुरा काम न करे, बुरी बात न सोचे, बुरे तरीके से अपनी जीविका न कमाये और मुंह से कोई ऐसी बात भी न निकाले जिससे किसी की हानि हो अथवा किसी को कष्ट पहुंचे ।" परिव्राजक बोले, "हाँ, यह ऐसा ही है ।"
१२. "लेकिन क्या सत्कर्म भी एक अन्धे की भाँति किये जाने चाहिये? मैं कहता हूँ कि नहीं । यह पर्याप्त नहीं है । यदि यह पर्याप्त होता तो हम एक छोटे बच्चे के बारे में कह सकते कि वह हमेशा भला ही भला है । क्योंकि अभी एक छोटा बच्चा यह भी नहीं जानता कि शरीर क्या होता है, वह लात चलाते रहने के अतिरिक्त और शरीर से कर ही क्या सकता है? वह यह भी नहीं जानता कि वाणी क्या है? वह चिल्लाने के अतिरिक्त और उससे कोई बुरी बात कर ही क्या सकता है? वह यह भी नहीं जानता कि विचार क्या होता है? वह ज्यादा से ज्यादा प्रसन्नता के मारे किलकारी भर मार सकता है । वह यह नहीं जानता कि जीविकार्जन क्या होता है? वह किसी बुरे तरीके से अपनी जीविका क्या कमा सकता है? वह अपनी मां की छाती से दूध पीने के अतिरिक्त और कुछ जानता ही नहीं ।"
१३. "इसलिये सद्गुणों का अनुसरण भी प्रज्ञा-पूर्वक होना चाहिए, अर्थात् निम्रल बुद्धि के साथ ।"

१४. "एक और कारण भी है जिसकी वजह से प्रज्ञा पारमिता इतनी अधिक महत्वपूर्ण और इतनी अधिक आवश्यक है । दान तो होना ही चाहिये । किन्तु बिना प्रज्ञा के दान का भी दुष्परिणाम हो सकता है । करूणा तो होनी ही चाहिये । किन्तु बिना प्रज्ञा के करूणा भी बुराई की समर्थक बन जाती है । सभी दूसरी पारमिताये प्रज्ञा-पारमिता की कसौटी पर खरी उतरनी चाहिये । निर्मल-बुद्धि का ही दूसरा नाम प्रज्ञा पारमिता है ।"
१५. "मेरी स्थापना है कि आदमी को अकुशल-कर्म का ज्ञान होना चाहिये, अकुशल-कर्म की उत्पत्ति किस प्रकार होती है; इसी तरह उसे कुशल-कर्म का भी ज्ञान होना चाहिये, कुशल-कर्म की उत्पत्ति कैसे होती है? इसी प्रकार आदमी को कुशल-कर्म और अकुशल-कर्म का भेद भी
स्पष्ट ज्ञात होना चाहिये । इस प्रकार के ज्ञान के बिना चाहे कम-विशेष अपने में शुभ-कर्म ही कुशल कर्म ही क्यों न हो, चाहे शुभ-कर्म अपने में शुभ-कर्म ही क्यों न हो, तब भी यथार्थ कुशल-भाव या यथार्थ शुभ-भाव नहीं ही है । इसीलिये मैं कहता हूँ कि प्रज्ञा एक आवश्यक सद्गुण है ।
१६. तब बुद्ध ने परिव्राजकों को इस प्रकार की प्रेरणा देते हुए अपना प्रवचन समाप्त किया :-
१७. "हो सकता है कि तुम मेरे धम्म को निराशावादी धम्म समझ बैठो, क्योंकि मैं आदमियों का ध्यान मानव-जाति के दु:ख की ओर आकर्षित करता हूँ । मेरे धम्म के बारे में ऐसी धारणा बनाना गलती होगी ।"
१८. "निस्सन्देह मेरा धम्म दु:ख के अस्तित्व को स्वीकार करता है, किन्तु यह उतना ही जोर उस दु:ख के दूर करने पर भी देता है ।"
१९. "मेरे धम्म में दोनों बातें है -- इस में मानव जीवन का उद्देश्य भी निहित है और यह अपने में आशा का संदेश भी है ।"
२०. "इसका उद्देश्य है अविद्या का नाश, जिसकी मतलब है दु:ख के अस्तित्व के सम्बन्ध में अज्ञान का नाश ।"
२१. "यह आशा का संदेश भी है क्योंकि यह दु:ख के नाश का मार्ग बताता है ।"
२२. "क्या तुम इस सब से सहमत हो या नहीं?" परिव्राजको का उत्तर था-"हाँ ।"

७. परिव्राजकों की धम्म-दीक्षा

१. उन पांचों परिव्राजकों ने यह तुरन्त देख लिया कि यह वास्तव में एक नया धम्म है । जीवन की समस्या के प्रति इस नये दृष्टि-कोण से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि सभी एक साथ कहने लगे "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी भी धर्म के संस्थापक ने कभी यह शिक्षा नहीं दी कि दुनिया के दु:ख की स्वीकृति ही धम्म का वास्तविक आधार है ।"
२. "संसार के इतिहास में इससे पहले कभी किसी भी धम्म के संस्थापक ने यह शिक्षा नहीं दी कि दुनिया के इस दु:ख को दूर करना ही धम्म का वास्तविक उद्देश्य हैं ।"
३. "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी मुक्ति का ऐसा मार्ग नहीं सुझाया था जो इतना सरल हो, जो मिथ्या विश्वास और 'अपौरूषेय' शक्तियों की मध्यस्थता से इतना मुक्त हो, जो इतना स्वतन्त्र ही नहीं बल्कि जो किसी 'आत्मा' या 'परमात्मा' के विश्वास का इतना विरोधी हो और जो मोक्ष लाभ के लिये मरणान्तर किसी जीवन में विश्वास रखना या न रखना भी अनिवार्य न मानता हो ।"
४. "संसार के इतिहास में इससे पहले किसीने भी कभी ऐसे धम्म की स्थापना नहीं की, जिसका 'इलहाम' या 'ईश्वर-वचन' से किसी भी तरह का कुछ भी सम्बन्ध न हो और जिसके 'अनुशासन' आदमी की
सामाजिक आवश्यकताओं के अध्ययन के परिणाम हों और जो किसी 'ईश्वर' की आज्ञायें न हों ।"
५. "संसार के इतिहास में इससे पहले किसी ने भी कभी 'मोक्ष' का यह अर्थ नहीं किया कि वह एक ऐसा 'सुख' है जिसे आदमी धम्मानुसार जीवन व्यतीत करने से, अपने ही प्रयत्न द्वारा यहीं इसी पृथ्वी पर प्राप्त कर सकता है ।"
६. उन परिव्राजकों ने जब भगवान् बुद्ध से उनके द्वारा उपदिष्ट नया सद्धम्म सुना तो इसी प्रकार अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की ।
७. उन्हे लगा कि बुद्ध के रूप में उन्हें एक ऐसे जीवन-सुधारक मिल गये हैं, जिनका रोम-रोम धम्म की भावना से ओत-प्रोत है, और जो अपने युग के बौद्धिक ज्ञान से सुपरिचित हैं, जिन में ऐसी मौलिकता है और साहस है कि वे विरोधी विचारों की जानकारी रखने के बावजूद मुक्ति के एक ऐसे मार्ग का प्रतिपादन कर सकें, जिस मुक्ति को यहीं, इसी जीवन में आत्म-साधना और आत्म-संयम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ।

८. बुद्ध के लिये उनके मन में एसी असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई कि उन्होंने उनके प्रति तुरन्त आत्म-समर्पण कर दिया और प्रार्थना की कि बुद्ध उन्हें अपना शिष्य बना लें।

९. बुद्ध ने उन्हे 'एहि भिक्खवे' (भिक्षुओ, आओ) कहकर भिक्षु संघ में दीक्षित कर लिया। वे पंचवर्गीय भिक्षु नाम से प्रसिद्ध हुए।

तीसरा भाग : कुलीनों तथा धार्मिकों की धम्म-दीक्षा

१. यश कुल-पुत्र की धम्म-दीक्षा

१. उस समय वाराणसी में यश नाम का एक गृहपतिपुत्र रहता था। वह तरूण था और उसकी आकृति बहुत आकर्षक थी। वह अपने माता-पिता को बहुत प्यारा था और बहुत श्री-सम्पन्न था। उसके बहुत से नौकर-चाकर थे, बहुत सी पत्नियाँ थीं और उसका सारा समय नाचने-गाने, सुरा पान करने आदि में ही बीतता था। वह विलासमय-जीवन व्यतीत करता था।
२. कुछ समय बीतने पर उसे विरति ने आ घेरा। उसे इस बेहोशी से कैसे छुटकारा मिले? क्या जो जीवन वह व्यतीत कर रहा था, उससे कोई श्रेष्ठतर जीवन भी था? यह न सोच सकने के कारण कि वह क्या करे, उसने अपने पिता का घर छोड़ देने का निश्चय किया।
३. एक रात उसने अपने पिता का घर छोड़ दिया और यों ही भटकने लगा; वह घूमता घूमता ऋषिपतन की ओर ही चला आया।
४. क्लान्ति के मारे वह एक जगह बैठ गया और बैठा बैठा अकेला ही जोर जोर से बड़बड़ाने लगा "मैं कहाँ हूँ? कौन-सा रास्ता है? ओह! कितनी परेशानी है? ओ! कितना दु:ख है?"
५. वह घटना उसी रात की है जिस दिन तथागत ने ऋषिपतन में पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना उपदेश दिया था। ठीक उस समय जब यश ऋषिपतन की ओर बढ़ा चला आ रहा था, तथागत, जो कि ऋषिपतन में ही विराजमान थे, बहुत सबेरे उठकर, खुली हवा में टहल रहे थे। और तथागत ने देखा कि इस प्रकार के दु:खद वचन कहता हुआ यश कुल-पुत्र चला आ रहा है।
६. और तथागत ने उसकी दु:खभरी आवाज सुनकर कहा "कहीं कोई परेशानी नहीं है, कहीं कोई दु:ख नहीं हैं, आ मैं तुझे रास्ता दिखाऊंगा।" तब तथागत ने यश कुल-पुत्र को अपना उपदेश दिया।
७. और जब यश ने वह उपदेश सुना, वह हर्षित हुआ, वह प्रमुदित हुआ। उसने अपने सुनहरे जूते छोड़ दिये और जाकर तथागत के पास बैठ उन्हें नमस्कार किया।
८. बुद्ध के वचन हृदयङ्गम कर यश ने तथागत से प्रार्थना की वह उसे शिष्य रूप में स्वीकार करें।
९. तब तथागत ने उसे "आ" कहा और उसे भी भिक्षु धम्म की दीक्षा दे दी।
१०. यश के माता-पिता बड़े परेशान थे कि यश कहीं चला गया। पिता यश की खोज में निकला। यश का पिता ठीक उसी जगह से गुजरा जहाँ स्वयं भगवान् बुद्ध और भिक्षु-वेष में यश कुल-पुत्र बैठा था। यश पिता ने तथागत से प्रश्न किया- " कृपया कहें कि क्या आपने मेरे पुत्र यश को कहीं देखा है?"
११. तथागत का उत्तर था- " आर्ये आप अपने पुत्र को देख सकेंगे।" यश का पिता आया और अपने पुत्र यश के पास ही बैठा, किन्तु उसे पहचान नहीं सका।
१२. तथागत ने उसे बताया कि कैसे यश उनके पास आया था और कैसे उनका प्रवचन सुनकर वह भिक्षु बन गया है। तब पिता ने अपने पुत्र को पहचान लिया। उसे इस बात से प्रसन्नता हुई कि उसके पुत्र ने शील ग्रहण किये हैं।
१३. "पुत्र यश!" यश का पिता बोला, "तुम्हारी मां तुम्हारे वियोग के दु:ख से बहुत दु:खी है। घर आकर उसे सुखी करो।"
१४. तब यश ने तथागत की ओर देखा, और तथागत ने यश के पिता से पूछा- "गृहपति! क्या तुम यह चाहते हो कि यश फिर गृहस्थ बन जाये और जैसे पहले काम-भोग का जीवन व्यतीत करता था, वैसा ही अब करे?"
१५. यश के पिता ने उत्तर दिया -- "यदि मेरे पुत्र यश को आप के साथ ठहरना ही अच्छा लगता है, तो वह आप के साथ ही ठहरे।" यश ने एक भिक्षु ही बने रहना ठीक समझा।
१६. विदा लेने से पहले, यश के पिता ने कहा- "भिक्षु संघ सहित तथागत मेरे घर पर भोजन करना स्वीकार करें।"
१७. चीवर-धारण कर, भिक्षा पात्र हाथ में ले, यश कुल-पुत्र सहित तथागत यश गृहपति के घर पहुँचे।
१८. घर आने पर मां और यश कुल-पुत्र की पूर्व भार्या ने भी तथागत के दर्शन किये। भोजनान्तर तथागत ने यश गृहपति के परिवार के लोगों को धम्मोपदेश दिया। वे बहुत प्रमुदित हुए और उन्होंने तथागत की शरण ग्रहण की।
१९. यश के चार मित्र थे, जो वाराणसी के ही धनियों के पुत्र थे। उनके नाम थे विमल, पूर्णजित् तथा गवाम्पति।
२०. जब यश के मित्रों ने सुना कि यश ने 'बुद्ध' और उनके धम्म की शरण ग्रहण की है, तो उन्हें लगा कि जो बात यश के लिये अच्छी है, वही उनके लिये भी अच्छी होगी।
२१. इसलिये वे यश के पास गये और उससे कहा कि वह भगवान् बुद्ध से उनकी ओर से प्रार्थना करे कि वे उन्हें भी अपना शिष्य बना लें।

२२. यश ने स्वीकार किया और भगवान् से प्रार्थना की- “कृपया इन मेरे चार मित्रों को धर्मोपदेश देकर कृतार्थ करें ।” भगवान् ने स्वीकार किया । यश के मित्रों ने भी ‘धम्म’ की दीक्षा ग्रहण की ।

२. काश्यप-बन्धुओं की धम्म-दीक्षा

१. काश्यप-परिवार नामक वाराणसी में एक प्रसिद्ध परिवार था । उस परिवार में तीन भाई थे । तीनों बहुत शिक्षित थे और अत्यन्त धार्मिक ।
२. कुछ समय बाद ज्येष्ठ पुत्र ने संन्यास लेने की सोची । तदनुसार उसने गृह-त्याग किया, संन्यास ग्रहण किया और उरूवेल की ओर गया, जहां पहुंच कर उसने अपना एक आश्रम स्थापित किया ।
३. उसके दोनों छोटे भाइयों ने भी उसका अनुसरण किया और वे भी संन्यासी बन गये ।
४. वे सभी अग्निहोत्री अर्थात आग की पूजा करने वाले थे । बडी-बड़ी जटायें धारण करने के कारण वे जटिल कहलाते थे ।
५. तीनों भाइयों में से एक उरूवेल काश्यप कहलाता था, दूसरा नदी-काश्यप तीसरा गया-काश्यप ।
६. इन तीनों में से उरूवेल काश्यप के पांच सौ जटिल शिष्य थे, नदी काश्यप के तीन सौ जटिल शिष्य थे और गया-काश्यप के दो सौ जटिल शिष्य थे । इनमें से मुख्य उरूवेल काश्यप ही था ।
७. उरूवेल काश्यप की दूर-दूर तक ख्याति हो गई थी । उसके बारे में कहा जाता था कि उसे जीते जी मुक्ति प्राप्त हो गई है । फल्गु नदी के तट पर स्थित उसके आश्रम में बहुत दूर-दूर के लोग आते थे ।
८. जब भगवान् बुद्ध को उरूवेल काश्यप की ख्याति का पता लगा तो उनके मन में आया कि उरूवेल काश्यप को धम्मोपदेश दिया जाय और सम्भव हो तो धम्म-दीक्षा भी ।
९. उसके निवास का पता-ठिकाना पाकर तथागत उरूवेल पहुँचे ।
१०. तथागत उससे मिले और उसे शिक्षित करने तथा दीक्षित करने का योग्य अवसर पाने के लिये बोले – “काश्यप । यदि तुम्हें असुविधा न हो तो एक रात मैं तुम्हारी आश्रम में रहूँ ।”
११. काश्यप का उत्तर था, “मै इस से सहमत नहीं हूँ । मुचलिंद नाम का एक जंगली नागराजा यहां रहता है । उसी का यहाँ शासन चलता है । वह बड़ा भयानक है । वह सभी अग्नि-पूजक साधुओं का विशेष विरोधी है । वह रात को इस आश्रम में आता है और बड़ी हानि पहुंचाता है ।मुझे डर है कि वह तुम्हें भी वैसा ही कष्ट न दे जैसा वह मुझे देता है ।”
१२. काश्यप को यह पता नहीं था कि नाग लोग बुद्ध के मित्र और अनुयायी बन चुके थे । लेकिन तथागत इसे जानते थे ।
१३. इसलिये तथागत ने पुन: आग्रह किया : “इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि वह मुझे किसी तरह का कष्ट देगा । काश्यप! एक रात मुझे अपनी अग्निशाला में रहने दे ।”
१४. काश्यप बार-बार इनकार करता रहा और तथागत बार-बार आग्रह करते रहे ।
१५. तब काश्यप ने कहा, “मै अधिक विवाद नहीं करना चाहता । किन्तु मुझे डर बहुत है । जो अच्छा समझें, करे ।”
१६. तथागत ने उसी समय अग्नि-शाला में प्रवेश किया और अपना आसन जमा लिया ।
१७. नागराज मुचलिन्द ने अपने समय पर शाला में प्रवेश किया । लेकिन काश्यप के स्थान पर वहाँ उसने तथागत को बैठे देखा ।
१८. तथागत की शान्त गम्भीर मुद्रा को देखकर मुचलिन्द को ऐसा लगा मानो वह किसी दिव्य पुरुष के सामने है । उसने सिर झुका कर तथागत की पूजा की ।
१९. उस रात काश्यप को ठीक-ठीक नींद नहीं आई । वह यही सोचता रहा कि उसके अतिथि के साथ क्या बीती होगी? इसलिये वह बड़ी घबराहट लिये जागा । उसे डर था कि शायद उस रात उसका अतिथि जला ही दिया गया हो ।
२०. प्रात:काल होने पर अपने अनुयायियों सहित काश्यप देखने के लिये आया । मुचलिन्द द्वारा भगवान् बुद्ध को हानि पहुंचाये जाने की तो बात ही क्या उन्होंने देखा कि मुचलिन्द भगवान् बुद्ध की पूजा कर रहा है ।
२१. यह दृश्य देखा तो काश्यप को लगा कि वह कोई चमत्कार देख रहा है, उसकी आंखों के सामने कोई प्रातिहार्य घट रहा है ।
२२. उस चमत्कार से प्रभावित होकर काश्यप ने भगवान् बुद्ध से प्रार्थना की कि वे वहीं एक आश्रम में रहें और वह स्वयं उनकी देख-भाल करेगा ।
२३. भगवान बुद्ध ने वहां ठहरना स्वीकार किया ।
२४. लेकिन दोनों के दो भिन्न दृष्टि-कोन थे । काश्यप ने समझा कि उसे मुचलिन्द नागराज के विरुद्ध संरक्षण मिल गया । लेकिन भगवान् बुद्ध ने सोचा कि एक न एक दिन काश्यप को धम्मोपदेश देने का अवसर आयेगा ही ।

२५. लेकिन काश्यप ने कभी कोई ऐसा अवसर नहीं दिया । वह समझता था कि तथागत एक चमत्कार कर सकने वाले के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं ।
२६. एक दिन तथागत ने स्वयं ही काश्यप से पूछा "क्या तुम अर्हत् हो?"
२७. "यदि अर्हत् नहीं हो, तो यह अग्नि-होत्र तुम्हारा क्या कल्याण करेगा?"
२८. काश्यप बोला- "मै नहीं जानता कि अर्हत् क्या होता है? कृपया मुझे समझायें ।"
२९. तब भगवान् ने कहा- "आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलने वाले पथिक के पथ के बाधक सभी राग-द्वेषों को जिसने जीत लिया है, वह अर्हत् है । अग्नि होत्र किसी को पाप मुक्त नहीं कर सकता ।"
३०. यू काश्यप अभिमानी स्वभाव का था । लेकिन असके मन पर तथागत के तर्क का प्रभाव पड़ा । अपने मन को कुछ झुकाकर और विनम्र बनाकर, यहां तक कि उसे सद्धम्म के ग्रहण करने का पात्र बनाकर उसने कहा कि लोक-गुरु बुद्ध की बुद्धि और उसकी बुद्धि का कोई मुकाबला नहीं ।
३१. और इस प्रकार, अंत में सभी शंकाओं का समाधान होने पर, उरूवेल काश्यप ने तथागत के धम्म को स्वीकार किया और उनका अनुयायी हो गया ।
३२. अपने गुरु के अनुगामी बन, काश्यप के सभी शिष्यों ने भी सद्धम्म ग्रहण किया । इस प्रकार काश्यप और उसके सभी शिष्य दीक्षित हो गये ।
३३. तब उरूवेल काश्यप ने अग्निहोत्र करने के अपने सभी पात्र आदि उठाकर नदी में फेंक दिये जो जाकर पानी में तैरने लगे ।
३४. नदी-काश्यप और गया -काश्यप ने जो नदी के नीचे की ओर रहते थे अग्निहोत्र के सामान को नदी में बहते जाते देखा । वे बोले- "यह सारा सामान हमारे भाई का है । उसने यह सारा सामान फेंक क्यों दिया है? कोई न कोई असाधारण घटना घटी होगी ।" वे बहुत अधिक बेचैन हो गये । अपने पांच सौ अनुयायियों सहित वे अपने भाई से मिलने के लिये नदी के ऊपर की ओर आगे बढ़े ।
३५. सभी अनुयायियों सहित अपने भाई को श्रमण-वेष पहने देख उनके मन में नाना तरह के विचार उठे । तब उन्होंने इसका कारण जानना चाहा । उरूवेल काश्यप ने उन्हें बताया कि उसने किस प्रकार बुद्ध के धम्म को अंगिकार कर लिया है ।
३६. वे बोले- "अब हमारे भाई ने बुद्ध के धम्म को स्वीकार कर लिया है, तो हमें अभी उसका अनुकरण करना चाहिये ।"
३७. उन्होंने अपने बड़े भाई से अपनी इच्छा व्यक्त की । तब अपने सभी अनुयायियों सहित वे दोनों भाई तथागत का प्रवचन सुनने के
लिये सामने उपस्थित किये गये । तथागत ने अग्निहोत्री धर्म और अपने धम्म की तुलना करते हुए प्रवचन किया ।
३८. उन दोनों भाइयों को उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा- "जिस प्रकार लकड़ी से लकडी के रगड़ खाने पर आग पैदा होती है उसी प्रकार असम्यक् विचार जब आपस में रगड़ खाते हैं तो अविद्या का जन्म होता है ।"
३९. "काम, क्रोध तथा अविद्या ये ही वह अग्नि हैं जो सभी चीजों को भस्मसात् कर देती है और संसार में दु:ख और शोक का कारण बनती है ।"
४०. "लेकिन यदि एक बार आदमी सही रास्ते पर चल सके और काम, क्रोध तथा अविद्या रूपी आग को बुझा सके तो फिर विद्या और पवित्र आचरण जन्म लेते है ।"
४१. "इसलिये जब एक बार आदमी को अकुशल कर्मो से घृणा हो जाती है तो उससे तृष्णा का क्षय होता है । तृष्णा का क्षय करने से ही आदमी श्रमण बनता है ।"
४२. उन बड़े ऋषियों ने जब ये बुद्ध-वचन सुने तो अग्निहोत्र से उनकी सर्वथा उपेक्षा हो गई । उन्होंने भी बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार करने की इच्छा की ।
४३. काश्यप-बन्धुओं की दीक्षा भगवान बुद्ध की बड़ी विजय थी । क्योंकि जनता के मन पर उनका बड़ा प्रभाव था ।

३. सारिपुत्र तथा मौगल्यायन की धम्म-दीक्षा

१. जिस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में निवास करते थे, उसी समय अपने ढाई सौ अनुयायियों के साथ सञ्जय नाम का एक प्रसिद्ध परिव्राजक भी वहीं रहता था ।
२. उसके शिष्यों में दो ब्राह्मण तरूण भी थे - सारिपुत्र और मौगल्यायन ।
३. सारिपुत्र और मौगल्यायन सञ्जय की शिक्षाओं से सन्तुष्ट न थे और किसी श्रेष्ठतर धर्म की खोज में थे ।

४. एक दिन की बात है । पञ्चवर्गीय भिक्षुओं में से एक भिक्षु अश्वजित् पूर्वाहन में अपना चीवर पहन तथा पात्र और चीवर ले, भिक्षाटन करने के लिये राजगृह नगर में प्रविष्ट हुए ।
५. सारिपुत्र पर अश्वजित की गम्भीर गति-विधि का बडा प्रभाव हुआ । अश्वजित् स्थविर को देख सारिपुत्र ने सोचा "निश्चय से यह भिक्षु उन भिक्षुओं में से एक होगा, जो संसार में इस पद के योग्य हैं । यह कैसा होगा, यदि मै इस भिक्षु के पास जाऊं और इससे पूंछू कि मित्र, तुम किसके नाम से प्रव्रजित हुए हो? तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किस का धर्म मानते हो?"

६. फिर सारिपुत्र ने सोचा- "यह समय इस भिक्षु से कुछ पूछने का नही? यह भिक्षाटन के लिये भीतरी आँगन में प्रवेश कर चुका है । कैसा हो यदि सभी अर्थियों की तरह मैं इस भिक्षु के पीछे पीछे हो लू?"
७. राजगृह में भिक्षाटन कर चुकने पर अश्वजित स्थविर प्राप्त भिक्षा ग्रहण कर वापस लौट गये । तब सारिपुत्र वहीं पहुंचे जहाँ अश्वजित् थे । समीप पहुंच कर कुशल-क्षेम पूछ एक ओर खड़े हो गये ।
८. एक और खड़े हुए सारिपुत्र परिव्राजक ने अश्वजित स्थविर से कहा- "मित्र! आपकी शक्ल शान्त है । आपकी छबि आभा-पूर्ण है । मित्र! आप किसके नाम से प्रव्रजित हुए है? आपका गुरु कौन है? आप किस के धर्म को, मानते हैं?"
९. अश्वजित् का उत्तर था- "मित्र! निश्चय से जो शाक्य-कुल-प्रव्रजित महान् श्रमण हैं, मैं उन्हीं के नाम से प्रव्रजित हुआ हूँ, वे ही मेरे गुरु है और मैं उन्हीं के धम्म को मानता हूँ ।"
१०. "और हे पूज्यवर! आपके गुरु का सिद्धान्त क्या है? वह आपको किस बात की शिक्षा देते हैं?"
११. "मित्र! मैं एक नया ही शिष्य हूँ, मुझे प्रव्रजित हुए थोडा ही समय हुआ है । मैंने अभी-अभी -कुछ ही समय पूर्व - इस धम्म-विनय को ग्रहण किया है । मैं विस्तार-पूर्वक तो आपको धम्म बता नहीं सकता । लेकिन मै आप को संक्षेप में ही बताऊँगा ।"
१२. तब परिव्राजक सारिपुत्र ने स्थविर अश्वजित से कहा- "मित्र! कम या अधिक आप जितना चाहे मुझे बतायें, लेकिन मुझे उसका सार अवश्य बता दें । मैं सार ही चाहता हूं । बहुत से शब्दो को लेकर क्या करूंगा?"
१३. तब अश्वजित् ने सारिपुत्र को तथागत की शिक्षाओं का सार बताया, जिससे सारिपुत्र का पूर्ण संतोष हो गया ।
१४. यद्यपि सारिपुत्र और मौगल्यायन भाई भाई नहीं थे । लेकिन वे दोनों दो भाइयों के ही समान थे । उन्होंने परस्पर एक दूसरे को वचन दे रखा था । जिसे सत्य की पहले प्राप्ति हो वह दूसरे को इसकी सूचना देगा । यही दोनों की आपस की वचन-बद्धता थी ।
१५. तदनुसार सारिपुत्र वहाँ पहुँचे जहाँ मौगल्यायन थे । उन्हें देखकर मौगल्यायन ने सारिपुत्र से कहा – "मित्र! आपकी शकल शान्त है । आपकी दबि आभा-पूर्ण है । तो क्या आपने सत्य प्राप्त कर लिया है?"
१६. "हाँ मित्र! मैंने सत्य प्राप्त कर लिया है ।" "और मित्र! आपने सत्य कैसे पा लिया है?" तब सारिपुत्र ने वह सारी घटना कह सुनाई जो उसके और अश्वजित के साथ घटी थी ।
१७. तब मौगल्यायन से सारिपुत्र से कहा- "तो मित्र! हम भगवान तथागत के पास चलें ताकि वह हमारे शास्ता बनें ।"
१८. सारिपुत्र ने कहा- "मित्र! यह जो ढाई सौ परिव्राजक यहाँ रहते हैं, ये हमारी ओर ही देखकर यहाँ रहते हें । इससे पहले कि हम उन्हें छोड़कर जायें, हमारे लिये यह उचित है कि हम उन्हें बता दें । वे जो चाहेंगे करेंगें ।"
१९. तब सारिपुत्र और मौगल्यायन वहाँ गये जहाँ वे थे । उनके पास जाकर उन्होंने कहा- "हम महाश्रमण की शरण ग्रहण करने जा रहे है । वह महाश्रमण ही हमारे शास्ता हैं ।"
२०. उन्होंने उत्तर दिया:- "आपके ही कारण हम यहाँ रहते रहे हैं और आप को ही मानते रहे हें । यदि आप महाश्रमण के अधीन ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करेंगे, तो हम सब भी यही करेंगे ।"
२१. तब सारिपुत्र और मौगल्यायन सञ्जय के पास गये और पहुंचकर सञ्जय से कहा:- "मित्र! हम तथागत की शरण में जाते हैं । वह तथागत ही हमारे शास्ता हैं ।"
२२. सञ्जय बोला -- "आप मत जायें । हम तीनों मिलकर इन सबकी गुरुवाई करेंगे ।"
२३. दूसरी और तीसरी बार भी सारिपुत्र और मौदगल्यायन ने अपनी बात दोहराई । सञ्जय का भी वही उत्तर था ।
२४. तब इन ढाई सौ परिव्राजकों सहित सारिपुत्र और मौगल्यायन राजगृह के वेळुवन उद्यान में वहाँ पहुंचे जहाँ तथागत विराजमान थे ।
२५. तथागत ने उन्हें -- सारिपुत्र और मौगल्यायन को - दूर से आते देखा । उन्हें देखकर तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधन किया- "भिक्षुओ, ये दो मित्र चले आ रहे हैं, सारिपुत्र और मौगल्यायन, ये दोनों मेरे श्रावक- युगल होंगे, श्रेष्ठ शिष्य-युगल ।"
२६. जब वे वेळुवन पहुंचे तो वह जहाँ तथागत थे वहाँ गये । वहा पहुँचकर उन्होंने तथागत के चरणों में सिर से वन्दना की ओर प्रार्थना की- "भगवान! हमें आप से प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।"

२७. तब भगवान् ने धम्म-दीक्षा के निश्चित शब्द- भिक्षुओं! आओ (एहि भिक्खवे) कहे और ढाई सौ जटाधारियों सहित सारिपुत्र और मौगल्यायन भगवान् बुद्ध की शरण आये ।

४. राजा बिम्बिसार की धम्म-दीक्षा

१. राजगृह मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी थी ।
२. जटिलों की इतनी बडी संख्या के बुद्ध की शरण में चले जाने से हर किसी की जबान पर तथागत की चर्चा थी ।
३. इस प्रकार बिम्बिसार को तथागत के नगर में आगमन का पता लग गया ।
४. बिम्बिसार नरेश ने सोचा- "उन कट्टर जटिलों के मत को बदल देना, हँसी-खेल नहीं है । निश्चय से वह भगवान होंगे, अर्हत होंगे, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे, विद्या और आचरण से युक्त होंगे, सुगति-प्राप्त होंगे, लोक के जानकार होंगे, सर्वश्रेष्ठ होंगे, आदमियों के मार्ग-दर्शक होंगे, देवता और आदमियों के शास्ता होंगे । वे निश्चय से स्व-बुद्ध धम्म की शिक्षा दे रहे होंगे ।"
५. "वह आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अन्त में कल्याणकारक धम्म की शिक्षा दे रहे होंगे । वे अर्थो और शब्दों सहित धम्म का ज्ञान करा रहे होंगे । वे पूर्ण परिशुद्ध श्रेष्ठ जीवन प्रकाशित कर रहे होंगे । ऐसे दिव्य पुरुष का दर्शन करना अच्छा है ।"
६. इस प्रकार मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियो के साथ मगध नरेश बिम्बिसार जहां भगवान थे वहाँ पहुँचा । उनके पास पहुंच और विनम्रता पूर्वक अभिवादन कर वह उनके निकट बैठ गया । उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियो में से भी कुछ ने भगवान् को विनम्रता पूर्वक अभिवादन किया और पास बैठ गये, कुछ ने भगवान का कुशल-क्षेम पूछा और निकट बैठ गये, कुछ ने भगवान् को हाथ जोडकर नमस्कार किया और निकट बैठ गये, कुछ ने अपना नाम और गोत्र कहा और भगवान् के निकट बैठ गये और कुछ यूंही चुपचाप समीप आ बैठे ।
७. मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों ने उरूवेल काश्यप को भी महाश्रमण के भिक्षुओं में देखा । उनमें से कुछ सोचने लगे । "क्या उरूवेल काश्यप महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है, अथवा महाश्रमण ही उरूवेल काश्यप की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है?"
८. मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों के मन की बात जान तथागत ने उरूवेल काश्यप को सम्बोधित कर कहा- "हे उरूवेलवासी! तूने क्या देखा जो अग्नि-परिचर्य्या छोड़ दी? यह कैसे हुआ कि तुने अग्निहोत्र का परित्याग कर दिया?"
९. काश्यप ने उत्तर दिया- "यज्ञों से रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्त्री स्पर्श की ही आशा की जा सकती थी । जब मैने समझ लिया कि मैं वासनामय रूप, रस, शब्द, गन्ध और स्पर्श अविशुद्ध हैं तो फिर मैने यज्ञ-त्याग की कामना नहीं की ।"
१०. "लेकिन यदि हर्ज न हो, तो यह बताओं कि तुम्हारा यह विचार कैसे बदल गया?"
११. तब ऊरूवेल काश्यप ने अपने स्थान से उठ, अपने एक कंधे को नंगा किया और भगवान् बुद्ध के चरणों में सिर रखकर वन्दना की और निवेदन
किया: "मै शिष्य हूँ और तथागत मेरे शास्ता है ।" तब मगध के उन असंख्य ब्राह्मणी और गृहपतियों ने जाना कि उरूवेल काश्यप ही महाश्रमण की अधीनता में श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है ।
१२. तब मगध के उन बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियो के मन की बात को जानकर भगवान् बुद्ध ने उन्हें धम्मोपदेश दिया । जिस प्रकार बिना धब्बों का स्वच्छ कपडा रंग को अच्छी तरह पकड़ लेता है, उसी तरह बिम्बिसार प्रमुख उन मगध के बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों को विरज, विमल ज्ञान-चक्षु प्राप्त हो गया । उनमें से एक लाख ने अपने उपासकत्व की घोषणा की ।
१३. इस दृश्य का साक्षी होकर, धम्म को समझ कर, धम्म की तह तक जाकर, सन्देह रहित होकर, विचिकित्सा को जीतकर और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मगध-नरेश बिम्बिसार बोला:- "भगवान! जिस समय मै राजकुमार था, उस समय मेरी पांच आकांक्षायें थीं, वे पांचों अब पूरी हो गई ।"
१४. "पूर्व समय में, भगवान! जब मैं राजकुमार था, मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरा राज्याभिषेक हो जाता । भगवान! यह मेरी पहली इच्छा थी, जो अब पूरी हो गई । और तब अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मेरे राज्य में आते! यह मेरी दूसरी इच्छा थी । भगवान! जो अब पूरी हो गई । और मैं उन भगवान् की सेवा में उपस्थित होता! यह मेरी तीसरी इच्छा थी, भगवान! जो अब पूरी हो गई । और वह भगवान मुझे धम्मोपदेश देते! यह मेरी चौथी इच्छा थी भगवान! जो अब पूरी हो गई । और मैं उन भगवान् का धम्म हृदयंगम कर पाता! यह मेरी पाँचवी इच्छा थी भगवान! जो अब पूरी हो गई । भगवान! जिस समय मैं राजकुमार था, उस समय मेरी ये पाँच इच्छाये थीं जो अब पूरी हो गई ।"

१५. “अद्भुत है भगवान्! अद्भुत है। जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, अथवा ढके हुए को उघाड दे, अथवा पथ-भ्रष्ट को मार्ग दिखा दे, अथवा अंधेरे में प्रदीप जला दे ताकि आँख वाले रास्ता देख सकें, उसी तरह से भगवान ने नाना प्रकार से धम्मोपदेश दिया है। मैं भगवान् की शरण ग्रहण करता हूं। आज दिन से जब तक इस शरीर में प्राण है, तब तक के लिये भगवान् मुझे अपना शरणागत उपासक माने।”

५. अनाथपिण्डिक की धम्म-दीक्षा

१. सुदत्त कोसल जनपद की राजधानी श्रावस्ती का एक नागरिक था। कोसल जनपद पर राजा प्रसेनजित् का अधिकार था। सुदत्त प्रसेनजित्
का श्रेष्ठी (खजांची) था। क्योंकि वह दरिद्रों को बहुत दान देता था, इसलिये उसका नाम अनाथपिण्डक पड गया था।
२. जिस समय भगवान् राजगृह में ठहरे हुए थे, उस समय सुदत्त किसी निजी काम से राजगृह गया। वह राजगृह श्रेष्ठी के यहाँ ठहरा था, जिसकी बहन से उसका विवाह हुआ था।
३. जब वह वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि उसका साला श्रेष्ठी भिक्षुसंघ तथा भगवान् बुद्ध को भोजन कराने के लिए इतनी बड़ी तैयारी करा रहा है कि उसने सोचा कि या तो किसी आवाह-विवाह की तैयारी है या राजा को निमंत्रण दिया गया है।
४. जब उसे ठीक बात की जानाकरी हुई तो वह भगवान बुद्ध का दर्शन करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठा। वह उसी रात भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ निकल पड़ा।
५. और तथागत ने अनाथपिण्डक के हृदय की निर्मलता को तुरन्त भाँप लिया। उन्होंने उसका सांत्वना भरे शब्दों में स्वागत किया। अपने आसन पर बैठ चुकने पर अनाथपिण्डक ने भगवान् से कुछ सदुपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की।
६. तथागत ने उसकी इच्छापूर्ति करने के निमित्त एक प्रश्न से आरम्भ किया। “कौन है जो हमारा निर्माण करता है, और हमें -- जैसे चाहता है -- चलाता है? क्या यह कोई ईश्वर है? कोई सृष्टिकर्ता? यदि ईश्वर निर्माणकर्ता है तो सभी प्राणियों को चुपचाप केवल उसकी इच्छा के अधीन चलना होगा। वे कुम्हार के बनाये हुए बरतनों के समान होंगे। यदि यह संसार ईश्वर द्वारा निर्मित होता तो उसमें दु:ख, आपत्तियां और पाप कैसे होते? क्योंकि पवित्र-अपवित्र दोनों का तो रचयिता उसीको मानना होगा। यदि दु:ख, आपत्तियों और पाप का मूल-स्त्रोत ईश्वर को न माना जाय, तो उससे भिन्न और उससे स्वतन्त्र एक दूसरा कारण स्वीकार करना होगा। तब ईश्वर सर्व-शक्तिमान नहीं रहेगा। इस प्रकार तुमने देखा कि ईश्वर के विचार की ही जड खुद गई।”
७. “तो फिर क्या ‘ब्रह्मा’ से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है? ‘ब्रह्म’ भी सृष्टि का कारण नहीं हो सकता। जिस प्रकार बीज में से पौधे की उत्पत्ति होती है- उसी प्रकार सभी चीजों की उत्पत्ति होती है। तो फिर एक ही ‘ब्रह्म’ से सभी चीजें कैसे उत्पन्न हो सकती है? यदि ‘ब्रह्म’ सर्वव्यापक है, तो फिर वह निश्चय से उनका निर्माता तो नहीं ही है।”
८. “फिर यह भी कहा जाता है कि ‘आत्मा’ से ही उत्पति हुई है। यदि ‘आत्मा’ ही निर्माता है तो उसने सभी वस्तुओं को वाञ्छनीय रूप ही क्यों नहीं दिया? दु:ख सुख वास्तविक सत्य है, और उनका बाह्य अस्तित्व है। वह ‘आत्मा’ की कृति कैसे हो सकते है?”
९. “यदि तुम यही मत बना लो कि न कहीं कोई सृष्टि-कर्ता है और न कहीं कोई हेतु-प्रत्यय है तो फिर जीवन में जो साधना की जाती है, जो साधनों तथा साध्य का मेल बिठाने का प्रयत्न किया जाता है, उस सब का कोई प्रयोजन नहीं होगा?”
१०. “इसलिये हमारा कहना है कि जो भी चीजें अस्तित्व में आती हैं वे सब सहेतुक होती हैं। न वे ईश्वर द्वारा निर्मित होती है, न ‘ब्रह्म’ द्वारा, न ‘आत्मा’ द्वारा और न बिना हेतु के यूंही अस्तित्व में आती हैं। हमारे अपने कर्म ही हैं जो अच्छे बुरे परिणामों को जन्म देते हैं।”
११. “सारा संसार ‘प्रतीत्य-समुत्पाद’ के नियम से बंधा है और जितने भी हेतु हैं वे अचैतसिक नहीं हैं। जिस सोने से सोने का प्याला निर्मित होता है वह आदि से अंत तक सोना ही सोना होता हैं।”
१२. “इसलिये हम ‘ईश्वर’ और उससे प्रार्थना करने सम्बन्धी मिथ्या- धारणाओं का त्याग करें, हम व्यर्थ की सूक्ष्म काल्पनिक उड़ानों में न उलझे रहें, हम ‘आत्मा’ और ‘आत्मार्थ’ से मुक्त हों क्योंकि सभी चीजें सहेतुक हैं, इसलिए हम कुशल-कर्म करें ताकि उनका परिणाम भी कुशल ही हो।”
१३. अनाथपिण्डक बोला- “तथागत के वचनों का सत्य मैं हृदयंगम कर रहा हूँ। मैं अपने अज्ञान को और भी अधिक दूर करना चाहता हूँ। जो कुछ मै निवेदन करना चाहता हूँ, उसे सुनकर भगवान् मुझे मेरे कर्तव्य का आदेश दें।”

१४. "मुझे काम-काम बहुत रहता है और क्योंकि मैंने बहुत धन इकट्ठा कर रखा है, इसलिए बहुत बातों की फिकर करनी पड़ती है। तो भी मैं अपने कार्य को आनन्दपूर्वक करता हूँ और बिना किसी प्रमाद के उसमें लगा रहता हूँ। मेरे बहुत से नौकर-चाकर हैं और उन सब की जीविका मेरे ही व्यापार की सफलता पर निर्भर करती है।"
१५. "अब मैंने सुना है कि आपके शिष्य प्रव्रज्या के सुखों के गुण गाते हैं और गृहस्थ जीवन की गर्हा करते हैं। वे कहते हैं कि 'तथागत ने अपना राज्य और परम्परागत ऐश्वर्य का त्याग कर दिया और सद्धम्म का पथ प्राप्त किया है। इस प्रकार उन्होंने सारे संसार को निर्वाण का रास्ता दिखाया है।"
१६. "मै जो उचीत हो वही करना चाहता हूँ और मेरी उत्कट अभिलाषा है कि अपने मानव-बन्धुओं की कुछ सेवा कर सकू। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मेरे लिये यह उचित है कि मैं अपनी सम्पत्ति, अपने घर और अपने कार-बार का त्याग कर दू और आपकी तरह ही धम्म-जीवन का सुख प्राप्त करने के लिये घर से बे-घर हो जाऊँ?"
१७. तथागत का उत्तर था- "धम्म-जीवन का सुख हर उस व्यक्ति के लिये प्राप्य है जो आर्य-अष्टांगिक मार्ग का पथिक हैं। जो धन से चिपका हुआ है उसके लिये यही अच्छा है कि धन की आसक्ति से अपने हृदय को विषाक्त बनाने के बजाय धन का त्याग कर दे; लेकिन जिसकी धन में आसक्ति नहीं है और जिसके पास धन है तथा वह उसका उचित उपयोग करता है, ऐसा आदमी अपने मानव-बन्धुओं के किए एक वरदान है।"
१८. "मै तुम्हें कहता हूँ कि गृहस्थ ही बने रहो। अपने कारोबार में अप्रमाद पूर्वक लगे रहो। आदमी का जीवन, ऐश्वर्य और अधिकार उसे अपना दास नहीं बनाते किन्तु जीवन, ऐश्वर्य और अधिकार के प्रति जो आदमी की आसक्ति है, वह उसे अपना दास बना लेती है।"
१९. "जो भिक्षु इसलिये संसार का त्याग करता है कि भिक्षु बनकर आराम तलबी का जीवन व्यतीत करे, उसे इससे कुछ लाभ नहीं होगा। क्योंकि आलस्य का जीवन घृणित जीवन है और शक्ति का अभाव स्पृहणीय नहीं है।"
२०. "जब तक अन्तःप्रेरणा न हो तब तक तथागत का धम्म किसी को भी प्रव्रजित होने वा संसार का त्याग करने के लिये नहीं कहता, तथागत का धम्म हर आदमी से यही मांग करता है कि वह 'आत्म-दृष्टि' से मुक्त हो, उसका हृदय शुद्ध हो, उसे काम-भोगादि सुखों की प्यास न हो और वह श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करे।"
२१. "और आदमी चाहे जो करें, चाहे वे शिल्पी रहें, चाहे व्यापार करें, चाहे सरकारी नौकरी करें अथवा संसार त्याग कर ध्यान-भावना में रत रहें, उन्हें अपना कार्य पूरे दिल से करना चाहिए। उन्हें परिश्रमी और उत्साही होना चाहिए। और यदि वे उस कमल की तरह जो पानी में रहता हुआ भी पानी से अछूता रहता है, जीवन- संघर्ष में लगे रहने पर भी अपने मन में ईर्षा और घृणा को जगह नहीं देते, यदि वह संसार में रहते हुए भी स्वार्थ-भरा नहीं बल्कि परमार्थ-भरा जीवन व्यतीत करते हैं तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उनका मन आनन्द, शान्ति और सुख से भर जाएगा।"
२२. अनाथपिण्डक को लगा कि यह सत्य का धम्म है, सरलता का धम्म है और प्रज्ञा का धम्म है।
२३. उसकी तथागत के सद्धम्म में प्रगाढ़ आस्था हो गई। वह तथागत के चरणों पर नतमस्तक हुआ और प्रार्थना की कि उसे प्राण रहने तक शरणागत उपासक जाने।

६. महाराजा प्रसेनजित की धम्म-दीक्षा

१. जब यह सुना कि शाक्य मुनि गौतम बुद्ध पधारे हैं तो राजा
प्रसेनजित् अपने रथ पर चढ़कर जेतवन पहुँचा। दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने के अनन्तर उसने कहा-
२. "यह मेरे राज्य का भाग्य है कि आप यहां पधारे हैं। आपके समान धम्मराजा के रहते मेरे राज्य पर कोई भी आपत्ति आ ही कैसे सकती है?"
३. "अब जब आपके दर्शन हो गये तो कुछ धम्मामृत भी पान करने को मिले।"
४. "सांसारिक सम्पति अनित्य है और नाशवान् है, किन्तु जो धम्म रूपी धन है वह अनन्त है और नाशवान् नहीं है। राजा होने पर भी संसारी आदमी दु:खी ही रहता है। किन्तु एक साधारण आदमी भी, यदि वह धम्मपरायण है, सुखी रहता है।"
५. धन और काम-भोग की तृष्णा के कारण भारी हुए राजा के चित्त की अवस्था पहचान कर तथागत ने उपदेश दिया-
६. "जिनका जन्म अति सामान्य स्थिति में हुआ रहता है वे भी जब किसी धम्म-परायण आदमी को देखते है तो उनके मन में उस आदमी के लिये आदर की भावना पैदा हो जाती है, तो फिर जिसने पहले बहुत पुण्य अर्जित किये है, ऐसे राजा का तो क्या ही कहना?"

७. "और अब जब मैं संक्षेप में धर्मोपदेश देने जा रहा हूं, महाराज! मेरे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनें और उन्हें हृदयगम करें!"
८. "हमारे अच्छे या बुरे कर्म छाया की तरह हमारा पीछा करते रहते हैं ।"
९. "जिस चीज की सर्वाधिक आवश्यकता है, वह है मैत्री-पूर्ण हृदय ।"
१०. "अपनी प्रजा को अपनी अकेली सन्तान के समान समझें । उन्हे कष्ट न दें, उन्हें नष्ट न करें । अपने शरीर के सभी अंगों को संयत रखें । कुमार्ग छोड़कर, सन्मार्ग पर चलें । दूसरों को नीचे गिराकर अपने को ऊपर न उठायें । दु:खी को सुख और सान्तवना दें ।"
११. "राजकीय ठाट-बाट को अधिक महत्व न दे और खुशामदियों की मीठी लगने वाली बातें न सुनें ।"
१२. "अपने आपको काय-क्लेश द्वारा पीड़ित करने से कुछ लाभ नहीं है, लेकिन 'धम्म' और 'सुपथ' का विचार करें ।"
१३. "हम चारों ओर से शोक तथा दु:ख को चट्टानों में घिरे हुए हैं और धम्म का विचार करने से ही हम इस दु:खों के पर्वत को लांघ सकते हैं ।"
१४. "तब अन्याय करने में लाभ ही क्या है?"
१५. "सभी बुद्धिमान शारीरिक ऐशो आराम की उपेक्षा करते हैं । वे कामनाओं से दूर रहकर अपना आध्यात्मिक विकास करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं ।"
१६. "जब कोई वृक्ष आग से झुलस रहा हो तो पक्षी उस पर अपने घोंसले कैसे बना सकते हैं? जहां राग का निवास है, वहां सत्य कैसे टिक सकता है? यदि किसी को इस बात का ज्ञान नहीं तो किसी विद्वान् को ऋषि मानकर चाहे उसकी प्रशंसा ही क्यों न की जाती हो, वह अज्ञानी ही है ।"
१७. "जिसे यह ज्ञान प्राप्त है, उसे ही प्रज्ञा की प्राप्ति होती है । प्रज्ञा की प्राप्ति ही मानव-जीवन का एकमात्र उद्देश्य है । इसकी उपेक्षा, जीवन की असफलता की द्योतक है ।"
१८. "सभी धार्मिक मतों की शिक्षाओं का यही एक केन्द्र-बिन्दू होना चाहिये । इसके बिना सब निरर्थक है ।"
१९. "यह सत्य कोई प्रव्रजितों के ही लिए नहीं है, इसका सम्बन्ध मानव-मात्र से है, साधु और गृहस्थ से समानरूप से । व्रतधारी प्रव्रजित में और गृहस्थ में मूलतः कोई भेद नहीं है । प्रव्रजित भी पतित होकर विनाश को प्राप्त होते हैं और गृहस्थ भी 'ऋषियों' के दर्जे तक पहुँचते हैं ।"
२०. "कामाग्नि का खतरा सभी के लिये समान है, यह दुनिया को बाढ़ की तरह बहा ले जाता है । जो एक बार इस भँवर-जाल में फस गया, उस का बच निकलना कठिन है । लेकिन प्रज्ञा की नौका विद्यमान है और विचार शक्ति का चप्पु । धम्म की यही मांग है कि आप अपने आप को मार रूपी शत्रु से सुरक्षित रखें ।"
२१. "क्योंकि कर्मो के फल से बच निकलना असम्भव है, इसलिए हम शुभ कर्म ही करें ।"
२२. "हम अपने विचारों की चौकसी रखें ताकि हम से कोई बुरा काम न हो, क्योंकि जैसा हम बोयेंगे वैसा ही हम काटेंगे ।"
२३. "आदमी प्रकाश से अंधेरे में और फिर अंधेरे से प्रकाश में जा सकता है । अंधेरे से और भी अधिक अंधेरे की ओर अग्रसर होने के भी मार्ग है; इसी प्रकार प्रकाश से अधिक प्रकाश की ओर बुद्धिमान् आदमी ज्ञान के अनुसार आचरण करेगा ताकि उसे और भी अधिक ज्ञान प्राप्त हो । वह लगातार सत्य की ओर अग्रसर होता रहेगा ।"
२४. "बुद्धिसंगत-व्यवहार और सदाचार-परायण जीवन द्वारा सच्चे श्रेष्ठत्व का प्रकाश हो । भौतिक वस्तुओं की तुच्छता पर गहराई से विचार किया जाय और जीवन की अस्थिरता को अच्छी तरह समझ लिया जाय ।"
२५. "अपने विचारों को ऊंचा उठाओ, श्रद्धा और दृढ़ता को अपनाओ । राजधम्म के नियमों का उल्लंघन न करो । अपनी प्रसन्नता का आधार बाह्य-पदार्थो को नहीं, बल्कि अपने प्रीती-युक्त मन को ही बनाओ । इससे सुदूर भविष्य तक के लिये तुम्हारा यश अमर रहेगा ।"
२६. राजा ने बड़े ध्यान से तथागत के अमृत वचनों का पान किया और हर वचन को हृदयंगम किया । उसने जीवन पर्यन्त 'उपासक' बने रहने की इच्छा से तथागत की शरण ग्रहण की ।

७. राज वैद्य जीवक की धम्म-दीक्षा

१. जीवक ने राजगृह की एक वेश्या शालवती के गर्भ से जन्म धारण किया था ।
२. जन्म के तुरन्त बाद ही, उसे एक टोकरी में डाल कर कूडे के एक ढेरी पर फेंक दिया गया --अज्ञात पिता का पुत्र जो था ।

३. बहुत से लोग कुडे के ढेर के पास खड़े होकर 'बच्चे' को देख रहे थे । राजकुमार 'अभय' का उधर से गुजरना हुआ । उसने लोगों से पूछा । लोगों ने बताया 'यह जीवित है' ।
४. इसीलीये उस का नाम जीवक पड़ा । अभय ने उसे अपना लिया और पालन-पोषण कर बड़ा किया ।
५. जब जीवक बड़ा हुआ तो उसे पता लगा कि किस प्रकार उसका जीवन सुरक्षित रहा था । उसकी उत्कट अभिलाषा हूई कि वह अपने आप को दूसरों का जीवन बचाने के ही अधिकाधिक योग्य बनाये ।
६. इसलिये वह अभय को बिना बताये ही तक्षशिला विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये चला गया और वहां उसने अध्ययन में सात वर्ष बिताये ।
७. राजगृह लौट कर उसने चिकित्सा करनी आरम्भ की और अचिरकाल में ही बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली ।
८. सर्वप्रथम उसने सांकेत के एक सेठ की स्त्री की चिकित्सा की । उसके अच्छा हो जाने पर उसे सोलह हजार कार्षापण, एक दास, एक दासी और घोडे सहित एक गाड़ी मिली ।
९. उसकी योग्यता जान, अभय ने उसे अपने ही भवन में रख लिया ।
१०. राजगृह में ही उसने राजा बिम्बिसार का भयानक भगन्दर रोग अच्छा किया । कहा जाता है कि इससे प्रसन्न होकर राजा की सभी पाँच सौ रानियो ने अपने अपने सभी गहने जीवक को दे दिये ।
११. उल्लेख करने लायक चिकित्साओं में उसकी एक वह शल्यचिकित्सा थी जो जीवक ने राजगृह के एक सेठ की खोपड़ी की की थी, और दूसरी बनारस के उस श्रेष्ठी के लड़के की जो अन्तडियो के रोग से चिर-काल से दु:खी था ।
१२. जीवक को राजा ने अपना तथा अपने रनिवास का 'राज-वैद्य' नियुक्त किया ।
१३. लेकिन जीवक की तथागत में बडी भक्ति थी । वह शाक्य मुनि गौतम बुद्ध और संघ का भी चिकित्सक था ।
१४. वह तथागत का उपासक बना । भगवान बुद्ध ने उसे भिक्षु नहीं बनाया, क्योंकि वह चाहते थे कि वह चिकित्सा द्वारा रोगियों और जीवकों की सेवा करता रहे ।
१५. बिम्बिसार की मृत्यु के अनन्तर जीवक उसके पुत्र अजात-शत्रु का भी चिकित्सक रहा । पितृ-हत्या का पाप कर चुकने के बाद अजात-शत्रु को तथागत के समीप लाने में मुख्य हाथ जीवक का ही था ।

८. रट्ठपाल की धम्म-दीक्षा

१. एक बार जब भिक्षुसंघ सहित भगवान बुद्ध कुरु देश में चारिका कर रहे थे तो वह कुरु-जनपद के ही थुल्लकोट्ठित नाम के एक निगम में ठहरे ।
२. जब कुरु-वासियों को इसका पता लगा तो वे भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ पहुँचे ।
३. जब वे आकर बैठ गये, तब तथागत ने उन्हें धम्मोपदेश दिया । उपदेश श्रवण कर चुकने पर थुल्लकोट्ठित के ब्राह्मण गृहपति उठे और श्रद्धा- भक्तिपूर्वक नमस्कार कर चले गये ।
४. उन ब्राह्मण गृहपतियों के बीच रट्ठपाल नाम का एक तरूण बैठा था, जो कि एक श्रेष्ठ कुलोत्पन्न था । उस के मन में आया, जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ जिस धम्म का भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया है, गृहस्थी में रहते हुए उसे उतनी पवित्रता, उतनी सम्पूर्णता के साथ आचरण में लाना आसान नहीं ।
५. यह कैसा हो यदि मैं बाल-दाढी मुण्डा, काषाय वस्त्र धारण कर गृहस्थ न रह प्रव्रजित बन जाऊं -घर-बारी से बे-घर-बारी ।
६. जब ब्राह्मण गृहपति अभी बहुत दूर नहीं भी गये होंगे, रट्ठपाल भगवान बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर उसने अपना विचार तथागत की सेवा में निवेदन किया । उसने प्रार्थना की कि उसे प्रव्रज्या मिले और उपसम्पदा मिले ।
७. तथागत ने पूछा, "रट्ठपाल! इसके लिये क्या तुम्हें अपने माता-पिता की अनुज्ञा है?"
८. "भगवान! नहीं ।"
९. "जिन्हे माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त नहीं होती उन्हे में प्रव्रजित नहीं करता ।"
१०. तरूण बोला, "मै अनुज्ञा प्राप्त करने का प्रयास करुंगा ।" वह उठा और अत्यन्त विनम्रता पूर्वक भगवान् बुद्ध से विदा ग्रहण की । घर पहुंचकर उसने माता-पिता से अपना विचार प्रकट किया और उनसे भिक्षु बनने के लिये अनुज्ञा मांगी ।
११. माता पिता बोले -- "रट्ठपाल! तू हमारा प्रिय पुत्र है, अत्यन्त प्रिय पुत्र । तू ही हमारा एकमात्र पुत्र है । तू आराम में रहा है, आराम में पला है । तुझे दु:ख का कुछ अनुभव नहीं । जा खा, पी, मौज कर और जितने चाहे पुण्य कार्य कर । हम तुम्हें प्रव्रजित होने की अनुज्ञा नहीं देते ।"

१२. “तुम नहीं रहोगे तो हमारा जीना दूभर हो जायेगा । हमारे लिये जीने में कुछ आनन्द नहीं रहेगा । हम तुम्हें जीते जी, घर से बेघर हो भिक्षु बनने की अनुज्ञा क्यों दें?”
१३. रट्ठपाल ने दूसरी और तीसरी बार भी अपनी प्रार्थना दोहराई । उसके माता पिता का एक ही उत्तर था ।
१४. जब वह इस प्रकार अपने माता-पिता की अनुज्ञा प्राप्त करने में असफल रहा, तो वह तरूण नंगी जमीन पर लेट गया और बोला- “या तो मैं भिक्षु बनूंगा, या यहीं पड़ा पडा मर जाऊंगा ।”
१५. उसके माता-पिता ने भिक्षु बनने के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए उससे उठ बैठने का बहूत आग्रह किया । लेकिन रट्ठपाल मुंह से एक शब्द नहीं बोला । उन्होंने दूसरी बार, और तीसरी बार भी - इस प्रकार बार-बार आग्रह किया, तब भी रट्ठपाल चुप ही रहा ।
१६. उसके माता-पिता ने रट्ठपाल के मित्रों को सारी बात बता कर उनसे कहा कि वे अपनी और से रट्ठपाल से आग्रह करें ।
१७. उसके मित्रों ने तीन बार प्रयास किया, किन्तु वह एक शब्द नहीं बोला । तब उसके मित्र रट्ठपाल के माता-पिता के पास गये और बोले- “वहाँ वह नंगी जमीन पर पड़ा है । कहता है या तो भिक्षु बनूंगा, या वहीं पडा मर जाऊंगा । यदि तुम अनुज्ञा नहीं दोगे तो वह जीते जी कभी नहीं उठेगा । लेकिन यदि तुम अनुज्ञा दे दोगे तो उसे भिक्षु बनने पर भी देख सकोगे । यदि भिक्षु-जीवन में उसका मन नहीं रमेगा अर्थात् उसे भिक्षु रहना अच्छा नहीं लगेगा तो यहीं वापस चले आने के अतिरिक्त दूसरा क्या करेगा? आप उसे अपनी अनुज्ञा दे ही दे ।”
१८. “अच्छा, हम अपनी अनुज्ञा देते हैं । किन्तु भिक्षु बन चुकने के बाद हमें मिलने के लिये आना होगा ।”
१९. उस के मित्र तुरन्त रट्ठपाल के पास गये । उन्होंने उसे जाकर कहा- “तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें इस शर्त पर भिक्षु बनने की अनुमति दे दी है कि भिक्षु बनने पर तुम उनसे मिलने आओगे ।”
२०. तब रट्ठपाल उठ बैठा और सशक्त होने पर तथागत के पास पहुंच और अभिवादन कर चुकने पर एक ओर बैठकर निवेदन किया -- “मुझे अपने माता-पिता से भिक्षु बनने की अनुज्ञा मिल गई है । मेरी प्रार्थना है कि भगवान् मुझे संघ में दीक्षित कर लें ।”
२१. रट्ठपाल ने प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की । थुल्लकोट्ठित में यथेच्छ ठहर कर, इसके दो सप्ताह बाद, भगवान बुद्ध चारिका के लिये श्रावस्ती की ओर चल पड़े । श्रावस्ती वे अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार करने लगे ।
२२. अकेले, एकान्त में रहते हुए सतत प्रयत्न-शील रट्ठपाल ने अचिर काल में ही उस उद्देश्य को प्राप्त कर लिया जिसकी प्राप्ति के लिये कुल-पुत्र घर से बेघर हो भिक्षु-जीवन ग्रहण करते हैं - मानव का श्रेष्ठतम आदर्श ।
२३. तब वह भगवान् बुद्ध के पास गया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर बोला- “आप की अनुज्ञा से मैं अपने माता-पिता को देख आना चाहता हूँ ।”
२४. अपने चित्त से रट्ठपाल के चित्त को जान कर और रट्ठपाल के पुन: गृहस्थ न बनने के बारे में पूरी तरह आश्वस्त होकर तथागत ने उसे जब चाहे जाने की अनुमति दे दी ।
२५. तब अत्यन्त विनम्रतापूर्वक भगवान बुद्ध से विदा ग्रहण कर, अपना पात्र चीवर ले रट्ठपाल थुलकोट्ठित की ओर चारिका के लिये निकल पड़ा जहां पहुँच कर उसने कुरु-नरेश के मृगोद्यन में विहार किया ।
२६. दूसरे दिन प्रात:काल जब वह भिक्षाटन के लिये निकला तो प्रत्येक घर के सामने भिक्षा के निमित्त खडा होता हुआ रट्ठपाल अपने ही घर के द्वार पर आ पहुंचा ।
२७. अन्दर, कमरे के बीच दरवाजे में, उसका पिता कंघी से अपने बाल सँवार रहा था । रट्ठपाल को दूर से आता देख कर बोला- ऐसे ही सिरमुंडोने मेरे इकलौते प्रिय पुत्र को घर से बेघर बना दिया ।
२८. इसलिये अपने ही पिता के घर से रट्ठपाल को कुछ नहीं मिला, एक इनकार तक नहीं; मात्र गालियाँ ।
२९. ठीक उसी समय घर की एक दासी पहले दिन का बासी चावल फेंकने जा रही थी । रट्ठपाल ने उसे कहा:-“बहन यदि इसे फेंकने जा रही है तो इसे मेरे पात्र में ही डाल दे ।”
३०. जब दासी उसके पात्र में बासी चावल डाल रही थी, उसने रट्ठपाल के हाथ, पाँव और स्वर पहचान लिया । वह दौडी दौडी अपनी मालकिन के पास गई और बोली -- “मालकिन! मालुम होता है कि छोटे मालिक वापस लौट आये हैं ।”
३१. मां बोली, “यदि तेरा कहना ठीक है तो तू दास्ता के बंधन से इसी क्षण मुक्त हुई ।” वह दौडी दौडी अपने पति के पास गई और कहा कि उसने सुना है कि उसका पुत्र लौट आया है ।
३२. झाड़ी के नीचे बैठा रट्ठपाल वह बासी चावल खा रहा था कि पिता आ पहुंचा । बोला -- “प्रिय पुत्र । क्या यह हो सकता है कि तुम ही बैठे यह बासी भात खा रहे हो? क्या तुम्हें अपने घर नहीं आना चाहिये था?”

३३. रट्ठपाल का उत्तर था, “गृहपति । हम बेघरों का क्या घर? हम तो घर छोड़ चुके । हाँ, मैं तुम्हारे घर आया था, जहां मुझे कुछ नहीं मिला, इन्कार भी नही; मात्र गालियां ।”

३४. “पुत्र! आओ । घर चलें ।” “नहीं गृहपति! मेरा आज का भोजन समाप्त हो गया ।”

३५. “अच्छा तो, पुत्र कल का भोजन ग्रहण करने का वचन दो ।”

३६. भिक्षु रट्ठपाल ने मौन से स्वीकार कर लिया ।

३७. तब पिता घर के भीतर गया । उसने आज्ञा दी कि सोने का ढेर लगाकर उसे चटाई से ढक दिया जाय । उसके बाद उसने अपनी पुत्र-वधु से जो रट्ठपाल की पूर्व-भार्या थी कहा कि वह अपने को अच्छे से अच्छे उस शृंगार से अलंकृत करे जिस में अलंकृत देखकर उसका पति उससे प्रसन्न होता था ।

३८. रात के बीतने पर घर में अच्छे से अच्छा भोजन तैयार कर, रट्ठपाल को तैयारी की सूचना दी गई । उस पूर्वाह्न में रट्ठपाल उचित ढंग से चीवर धारण किये तथा अपना पात्र- चीवर लिये आकर अपने लिये सज्जित आसन पर विराजमान हुए ।

३९. तब उस सोने के ढेर पर से चटाई हटवाकर रट्ठपाल के पिता ने कहा- “यह तुम्हारा मातृ-धन है । यह पीतृ-धन है । यह तुम्हारे दादा के समय से चला आया है । तुम्हारे पास भोगने के लिये बहुत है और पुण्य करने के लिये भी बहुत है ।”

४०. “पुत्र । आ । अपनी श्रमण-चर्या को त्याग दो । गृही के निम्नस्तर के जीवन को पुन: अंगीकार कर ले । भोग भी भोग और पुण्य भी कर ।”

४१. रट्ठपाल का उत्तर था:- “गृहपति! यदि मेरा कहना मानो तो सोने के इस सारे ढेर को गाड़ी में लदवाकर बीच गंगा में फेंकवा दो । यह किस लिये? क्योंकि इस से तुम्हें दु:ख दौर्मनस्य, क्लेश, मन और शरीर की पीड़ा और कष्ट ही होने वाला है ।”

४२. उसके पांव पकड कर रट्ठपाल की अन्य पत्नियां पूछने लगीं कि आखिर वे अप्सरायें कैसी हैं जिनके लिये वह यह ब्रह्मचर्य वास कर रहा है?

४३. रट्ठपाल का उत्तर था- “बहनों । किन्हीं अप्सराओं के लिये नहीं ।”

४४. अपने लिये “बहनों” सम्बोधन सुना तो सभी देवियां मूर्छित होकर जमीन पर गिर पडी ।

४५. रट्ठपाल ने पिता से कहा, “गृहपति । यदि भोजन कराना है तो दो, कष्ट मत दो ।”

४६. “पुत्र! भोजन तैयार है, करो”, कहकर पिता ने रट्ठपाल को यथेच्छ भोजन करावाया ।

४७. भोजनान्तर रट्ठपाल कुरु-नरेश के मृगोद्यान में चला गया और वहाँ पहुचकर मध्यान्ह की कड़ी धूप के समय एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गया ।

४८. अब राजा ने अपने माली को आज्ञा दे रखी थी कि उसके बाग को देखने आने से पहले वह उसे ठीक-ठाक करके रखे । माली अपना काम कर रहा था, उसने रट्ठपाल को एक वृक्ष के नीचे बैठा देखा । उसने राजा को सूचना दी कि बाग और तो सब तरह से ठीक-ठाक है, लेकिन, एक वृक्ष के नीचे वह रट्ठपाल विराजमान है जिन के बारे में महाराज ने सुना हैं ।

४९. “आज उद्यान-यात्रा रहने दो । आज मैं उन श्रमण के दर्शन करूंगा ।” जितना भी पाथेय आवश्यक था, उस सब की तैयारी की आज्ञा दे, अपने अनुयायियों को साथ ले वह राजकीय रथ पर चढ़ा और रट्ठपाल को देखने के लिये नगर से बाहर निकला ।

५०. जहां तक रथ से जाना योग्य था, वही तक रथ से जाकर और आगे पैदल चलकर, अपने अनुयायियों सहित राजा वहां पहुँचा जहां रट्ठपाल विराजमान थे । कुशल-क्षेम की बात-चीत हो चुकने पर स्वयं अभी भी खडे हुए राजा ने रट्ठपाल को फूलों की एक ढेरी पर बैठने का निमंत्रण दिया ।

५१. “नही राजन् । आप वहां बैठे । मै अपने स्थान पर बैठा हूँ ।”

५२. संकेत किये गये स्थान पर बैठकर राजा ने कहा- “रट्ठपाल! चार तरह की हानियाँ हैं जिन के कारण आदमी दाढ़ी मूछ मुड़वा, काषाय वस्त्र धारण कर घर से बेघर हो जाते हैं - (१) बुढापा, (२) गिरता हुआ स्वास्थ्य, (३) दरिद्रता, (४) निकट सम्बन्धियों का मरण ।”

५३. “एक आदमी को लो, जो वृद्ध होने पर, बहुत आयु प्राप्त हो जाने पर, जरा-जीर्ण हो जाने पर, अन्तिम समय के नजदीक आ पहुँचने पर उसे या तो और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उस से गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होने का निश्चय कर लेता है । इसे बुढापे से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं । लेकिन तुम्हारी तो अभी चढ़ती जवानी है, काले काले केश हैं जिन्हे सफेदी छू भी नहीं गई है; तुम्हे तो वार्धक्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि का खतरा नहीं । तुमने क्या जाना, देखा या सुना है कि तुम घर से बेघर हो गये?”

५४. “या एक आदमी को लो जो रोग-ग्रस्त है, जिसे बड़ा कष्ट है और जो बहुत बीमार है, उसे या तो और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बे घर होने का निश्चय कर लेता है । इसे गिरते हुए

स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली हानि कहते हैं। लेकिन तुम न तो बीमार ही हो और न तुम्हें कष्ट ही है, तुम्हारा हाजमा अच्छा है ... तुम्हें गिरते हुए स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं। तुमने क्या जाना, देखा या सुना है कि तुम घर से बेघर हो गये हो?"

५५. "या एक आदमी को जो बड़ा धनी रहा है, जिसके पास बड़ी सम्पत्ति रही है और धीरे धीरे उसका नाश हो गया है या तो उसे और कमाने में कष्ट अनुभव होता है या जो कुछ उसके पास है उससे गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर होनें का निश्चय कर लेता है। इसे दरिद्रता से उत्पनन होने वाली हानि कहते हें। लेकिन तुम तो न दरिद्र हो न सम्पत्ति शून्य हो... तुम्हें तो दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नही, तुमने क्या जाना, देखा या सुना कि तुम घर से बेघर हो गये हो?"

५६. "या एक आदमी को लो जिसके सगे-सम्बन्धी जाते रहे हैं, जिसके रिश्तेदारों का मरण हो गया है उसे या तो और कमाने में कष्ट होने लगता है या जो कुछ उसके पास है उस से गुजारा नहीं चलता, तो वह घर से बेघर

होने का निश्चय कर लेता है। इसे सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली हानि कहते है। लेकिन तुम्हारे तो मित्रों और सगे-सम्बन्धियों की कमी नहीं। तुम्हे तो सगे-सम्बन्धियों के मरण से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं। तुमने क्या जाना देखा या सुना कि तुम घर से बेघर हो गये?"

५७. "राजन! मै घर से बेघर इसलिये हो गया कि मैने मैं चार बाते जानी देखी और जानने वाले तथा देखने वाले सम्यक सम्बुद्ध से सुनी-

(क) संसार अनित्य है, निरन्तर परिवर्तनशील हैं।

(ख) संसार का कोई मालिक वा संरक्षक नहीं।

(ग) हमारा कुछ भी नहीं, हमें सभी कुछ पीछे छोड़ जाना है।

(घ) तृष्णा के वशीभूत होने से ही संसार दुःखी हैं।"

५८. "यह अद्भुत है। यह अद्भुत है," राजा कह उठा, "तथागत का कथन कितना सत्य है!"

चौथा भाग : जन्मभूमि का आवाहन

१. शुद्धोदन से (अन्तिम) भेंट

१. सारिपुत्र और मौगल्यायन की दीक्षा के बाद दो महीने तक भगवान बुद्ध राजगृह में ही रहें ।
२. यह सुनकर कि तथागत राजगृह में विराजमान हैं, उनके पिता शुद्धोदन ने संदेश भिजवाया- "मैं मरने से पूर्व अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ । दूसरों को उसका धम्मामृत पान करने को मिला है उसके पिता को नहीं, उसके सम्बन्धियों को नहीं ।"
३. शुद्धोदन के दरबारियों में से एक का पुत्र कालुदायिन ही यह संदेश लेकर गया था ।
४. संदेश-वाहक ने आकर कहा- "हे लोक-पूज्य! आपका पिता आपको देखने के लिये उतना ही उत्सुक है जैसे कमलिनी सूर्योदय के लिये ।"
५. तथागत ने पिता की प्रार्थना स्वीकार कर ली और बड़े भिक्षुसंघ को साथ ले पितृ-गृह की और प्रस्थान किया ।
६. भगवान बुद्ध जगह जगह ठहरते हुए आगे बढ़ रहे थे, लेकिन कालुदायिन तेजी से चलकर पहले पहुँच गया ताकि शुद्धोदन को यह सूचना दे सके कि भगवान् बुद्ध आ रहे है और रास्ते पर है ।
७. शीघ्र ही यह समाचार शाक्य जनपद में फैल गया । हर किसी की जबान पर था कि राजकुमार सिद्धार्थ- जो बोध प्राप्त करने के लिये गृह त्याग कर चला गया था अब ज्ञान प्राप्त कर वापस कपिलवस्तु आ रहा है ।
८. अपने सम्बन्धियों और मन्त्रियों को लेकर शुद्धोदन और महाप्रजापति अपने पुत्र की अगवानी के लिये गये । जब उन्होंने दूर से ही अपने पुत्र को देखा, उसके सौन्दर्य, उसके व्यक्तित्व, उसके तेज का उनके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा । वे मन ही मन बडे प्रमुदित हुए । किन्तु उनके पास शब्द न थे कि वे उसे व्यक्त कर सकें ।
९. निश्चय से वह उनका पुत्र था, उसकी शक्ल-सूरत वहीं थी ।
महान् श्रमण उनके हृदय के कितना समीप था और तब भी उनके बीच की दूरी कितनी अधिक थी! वह महामुनि, अब उनका पुत्र सिद्धार्थ नहीं रहा था, अब वह बुद्ध था, सम्यक् संबुद्ध था, अर्हत था, लोक-गुरु था ।
१०. अपने पुत्र के धाम्मिक पद का ध्यान कर शुद्धोदन रथ से उतरा और सर्वप्रथम अभिवादन किया । बोला -- "तुम्हें देखे सात वर्ष बीत गये । इस क्षण की हम कितनी प्रतीक्षा करते रहे!"
११. तब शुद्धोदन के सामने सिद्धार्थ विराजमान हुए । राजा आँखे फाडफाड कर अपने पुत्र की ओर देखता रहा । उसकी इच्छा हुई कि उसे नाम लेकर पुकारे किन्तु उसका साहस नहीं हुआ । सिद्धार्थ, वह मन ही मन बोला, सिद्धार्थ अपने पिता के पास लौट आओ, और फिर उसके पुत्र बन जाओ । लेकिन अपने पुत्र की दृढ़ता देखकर उसने अपनी भावनाओं को वश में रखा । शुद्धोदन तथा प्रजापति दोनों निराश हो गये ।
१२. इस प्रकार अपने पुत्र के ठीक सामने पिता बैठा था -- अपने दुःख में वह सुखी था, अपने सुख में वह दु:खी । उसे अपने पुत्र पर अभिमान था, किन्तु वह अभिमान चूर चूर हो गया जब उसे ध्यान आया कि उसका पुत्र कभी उसका उत्तराधिकारी न बनेगा ।
१३. "मै तुम्हारे चरणों पर अपना राज्य रख दूँ", उसने कहा, "किन्तु यदि मैंने ऐसा किया तो तुम उसे मिट्टी के मोल का भी न समझोगे ।"
१४. तथागत ने सान्त्वना दी- "मै जानता हूँ राजन्! तुम्हारा हृदय प्रेम से गदगद हैं । तुम्हे अपने पुत्र के लिये महान दुःख हैं । लेकिन प्रेम के जो धागे तुम्हें अपने उस पुत्र से बांधे हुए हैं, जो तुम्हे छोड़ कर चला गया, उसी प्रेम के अन्तर्गत तुम अपने सारे मानव-बन्धुओं को बांध लो । तब तुम्हे अपने पुत्र सिद्धार्थ से भी बडे किसी की प्राप्ति होगी, तुम्हे मिलेगा वह जो सत्य का संस्थापक है; तुम्हें मिलेगा वह जो धम्म का मार्ग-दर्शक है और तुम्हे मिलेगा वह जो शान्ति का लाने वाला है । तब तुम्हारा हृदय निर्वाण से भर जायेगा ।"
१५. जब शुद्धोदन ने अपने पुत्र, बुद्ध के ये वचन सुने वह प्रसन्नता के मारे कांपने लगा । उसकी आंखों में आंसू थे और उस के हाथ जुडे थे, जब उसने कहा -- "अद्भुत परिवर्तन है! संतप्त हृदय शान्त हो गया । पहले मेरे हृदय पर पत्थर पड़ा था, किन्तु, अब मैं तुम्हारे महान् त्याग का मधुर फल चख रहा हूँ । तुम्हारे लिये यही उचित था कि तुम अपनी महान् करूणा से प्रेरित होकर राज्य के सुख-भोग का त्याग करते और धम्म-राज्य के संस्थापक बनते । अब धम्म-पथ के जानकार की हैसियत से तुम सभी का मोक्ष-मार्ग का उपदेश दे सकते हो ।"
१६. भिक्षु संघ सहित भगवान बुद्ध उस उद्यान में ही विराजमान रहे, जबकि शुद्धोदन वापस घर लौट आया ।
१७. अगले दिन तथागत ने भिक्षा-पात्र लिया और कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये निकले ।

१८. बात तुरन्त फैल गई:- जिस नगर में कभी सिद्धार्थ रथ में बैठ कर सवारी के लिये निकलते थे, आज उसी नगर में भिक्षा-पात्र हाथ मे लिये घर-घर विचर रहे हैं। चीवर का रंग भी लाल-मिट्टी के ही समान है और हाथ का भिक्षा-पात्र भी मिट्टी का ही है।
१९. इस विचित्र वार्ता को सुना तो शुद्धोदन घबराया हुआ दौड़ा गया; तुम इस प्रकार मुझे क्यों लजाते हो? क्या तुम इतना नही जानते कि मै तुम्हे और तुम्हारे संघ को भोजन करा सकता हूँ ?
२०. तथागत का उत्तर था- "यह हमारी वंश-परम्परा है।"
२१. "यह कैसे हो सकता है? हमारे वंश में कभी किसी एक ने भी भिक्षाटन नहीं किया है।"
२२. "राजन! निश्चय से तुम और तुम्हारा वंश क्षत्रियों का वंश है। किन्तु मेरा वंश बुद्धों का वंश है। उन्होंने भिक्षाटन किया है और हमेशा भिक्षा पर ही निर्भर रहे हैं।"
२३. शुद्धोदन निरुत्तर था। तथागत कहते रहे -- "किसी को कहीं कुछ खजाना मिले तो उस में जो बहुमूल्य रत्न होगा वह लाकर उसे अपने पिता को ही भेंट करेगा। मैं तुम्हें यह धम्म-निधि अर्पण करता हूँ।"
२४. और तब तथागत ने अपने पिता को कहा- "यदि तुम अपने आपको इन मिथ्या स्वप्न-जालो से मुक्त करो, यदि तुम सत्य को अंगीकार करो,यदि तुम अप्रमादी रहो और यदि तुम धम्म-पथ पर ही चलो तो तुम्हे अक्षय-सुख प्राप्त होगा।"
२५. शुद्धोदन ने निःशब्द रहकर शब्द सुने और बोला, "पुत्र! मैं तुम्हारे कथनानुसार आचरण करने का प्रयास करूँगा।"

२. यशोधरा और राहुल से भेंट

१. तब तथागत को शुद्धोदन घरमें लिवा ले गया। परिवार के सभी लोगों ने उन्हें अभिवादन किया।
२. लेकिन राहुल-माता यशोधरा नही आई। जब शुद्धोदन ने सूचना भिजवाई तो उसने कहला भेजा:- "मै किसी योग्य समझी जाऊंगी तो सिद्धार्थ यहीं मुझे मिलने आयेगे।"
३. अपने सभी सम्बन्धियों से भेंट हो चुकने पर सिद्धार्थ ने पुछा- "यशोधरा कहां है?" उत्तर दिया गया- "उसने आने से इनकार कर दिया है।" सिद्धार्थ तुरन्त उठे और सीधे उसके भवन में गये।
४. सारिपुत्र और मौगल्यायन को,जिन्हे वे यशोधरा के कमरे में भीतर तक साथ ले गये थे, तथागत ने कहा- "मै तो मुक्त हूँ। लेकिन यशोधरा अभी मुक्त नहीं है। इतने लम्बे अर्से तक मुझे नहीं देखा है, इसलिये वह बहुत दु:खी है। जब तक उसका दु:ख आँसुओं के मार्ग से बह न जायेगा, उसका जी भारी रहेगा। यदि वह तथागत का स्पर्श भी कर ले तो उसे रोकना नहीं।"
५. यशोधरा, सोच-विचार में गहरी डूबी हुई अपने कमरे में बैठी थी। तथागत ने प्रवेश किया तो भक्ति-बाहुल्य से उसका वही हाल था जो किसी लबालब भरे पात्र का हो और जो अपने में समा न सके।
६. वह यह भूल गई कि उसका स्नेहभाजन महामानव बुद्ध है, लोक-गुरू हैं, सत्य का महान् उपदेष्टा है। उसने बड़े जोर से उसके चरण धरे और जोर-जोर रोने लगी।
७. लेकिन जब उसे इसका ध्यान आया कि शुद्धोदन भी वहाँ आ गया है तो उसे लज्जा आई। वह उठी और बड़ी भक्ति-भावना सहित एक और बैठ गई।
८. शुद्धोदन ने यशोधरा की ओर से बोलते हुए कहा- "इसका यह व्यवहार कुछ क्षणिक भावना का परिणाम नहीं है। इसने बड़ी गहरी भक्ति का परिचय दिया है। इन सात वर्षो में, जब से तुम इसे छोड़ कर चले गये, जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने अपना सिर मुंडवा लिया है, इसने भी वैसा ही किया; जब इसने सुना कि सिद्धार्थ ने गहनों और सुगन्धित द्रव्यों का परित्याग कर दिया, इसने भी वैसा ही किया; और जब इसने सुना कि सिद्धार्थ एकाहारी हो गये, तब से यह भी मृत्तिका पात्र में एक ही बार आहार ग्रहण करने लगी।"
९. "यदि यह क्षणिक भावुकता नहीं है, तो यह सब इसके साहस की ही परिचायक है।"
१०. तब सिद्धार्थ ने यशोधरा को असके महान् पुण्य की याद दिलाई और उस महान् साहस की जिसका परिचय उसने सिद्धार्थ की प्रव्रज्या के समय दिया था। उन्होंने कहा कि जब वे बोधिसत्व की अवस्था मे बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे, उस समय उसकी पवित्रता, उसकी कोमलता तथा उसकी भक्ति ही उनका सबसे बड़ा संबल सिद्ध हुई थी। यह उसीका "कर्म" था और यह महान् पुण्य का परिणाम था।
११. यशोधरा की वेदना वचनों से परे की बात थी। किन्तु उसने जो धीरता और वीरता दिखाई उसने उसके आध्यात्मिक उत्तराधिकार को चार चाँद लगा दिये और उसे भी अनुपम पद प्रदान किया।
१२. तब यशोधरा ने सात वर्ष के राहुल को एक राजकुमार की तरह सजाया और बोली-

१३. "यह श्रमण, जो ब्रह्मा के समान है, तुम्हारे पिता है। उनके पास अक्षय निधि है जिसे मैंने अभी तक नहीं देखा हैं। उनके पास जा और वह अक्षय निधि माँग, क्योंकि वह तेरा उत्तराधिकार है।"
१४. राहुल बोला - "मेरा पिता कौन है? मैं तो एक बाबा शुद्धोदन को ही पिता जानता हूँ।"
१५. यशोधरा ने बच्चे को गोद में लिया और खिड़की में से दिखाया- "वह देख, वह तेरे पिता हैं, और शुद्धोदन नहीं।" उस समय तथागत भिक्षुसंघ के बीच बैठे भिक्षा ग्रहण कर रहे थे और वहाँ से दूर नहीं थे।
१६. तब राहुल उनके पास गया और ऊपर मुंह उठाकर निर्भयतापूर्वक, किन्तु बड़े ही स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोला-
१७. "क्या तुम मेरे पिता नहीं हो?" और उनके पास खड़ा ही खड़ा कहने लगा- "श्रमण! तुम्हारी छाया बड़ी सुखकर है!" तथागत निःशब्द रहे।
१८. जब भोजन समाप्त हो गया, तथागत ने आशीर्वाद दिया और महल से विदा हुए। राहुल पीछे-पीछे हो लिया और अपना उत्तराधिकार माँगता रहा।
१९. राहुल को किसी ने नही रोका, न स्वयं तथागत ने ही।
२०. तथागत ने सारिपुत्र की ओर देखा और कहा- "राहुल उत्तराधिकार चाहता है। मैं उसको वह नाश्वान् निधि नहीं दे सकता जो अपने साथ चिन्तायें लाती हैं, लेकिन मैं इसे श्रेष्ठ जीवन का उत्तराधिकार दे सकता हूँ जो अपने में एक अक्षय निधि है।"
२१. तब राहुल को ही संबोधित करके तथागत बोले- "सोना, चाँदी और हीरे मेरे पास नहीं हैं। किन्तु यदि तू आध्यात्मिक निधि चाहता है और उसे ले सकने तथा संभाल कर रखने में समर्थ है तो वह मेरे पास बहुत है। मेरी अध्यात्म निधि मेरे धम्म का मार्ग ही है। क्या तू उन के संघ में प्रविष्ट होना चाहता है जो अपना जीवन साधना में व्यतीत करते है और जो भी ऊंचे से ऊँचा आदर्श हैं - ऊंचे से ऊंचा सुख है, और जो प्राप्य है, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं?"
२२. राहुल ने दृढ़तापूर्वक कहा - "प्रविष्ट होना चाहता हूँ।"
२३. जब शुद्धोदन ने सुना कि राहुल भी भिक्षु-संघ में शामिल हो गया, उसे बड़ा क्लेश हुआ।

३. शाक्यों द्वारा स्वागत

१. जब तथागत अपने शाक्य जनपद में पधारे तो उन्होंने देखा कि उनके जनपदवासी दो भागों में विभक्त हैं- कुछ अनुकूल हैं, कुछ प्रतिकूल।
२. इससे उन्हें उस पुराने मतभेद की याद आई, जिसका परिचय शाक्यों ने उस समय दिया था जब कि कोलियों के विरूद्ध युद्ध छेड़ने का प्रश्न शाक्यों के विचाराधीन था और जिस चर्चा में उसने ऐसा महत्वपूर्ण भाग लिया था।
३. जो उस समय उसके विरोधी थे उन्होंने अभी भी उसकी महानता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था और उसे साधारण अभिवादन तक नहीं किया था। जो उसके अनुकूल थे, उन्होंने प्रति परिवार एक-एक तरूण उसके संघ में दीक्षित होने के लिए देना तय किया था। इन सबने अब संघ में दीक्षित होकर, तथागत के साथ ही राजगृह जाने का संकल्प किया।
४. जिन परिवारों ने अपने अपने यहाँ से एक एक पुत्र देने का निश्चय किया था, उनमें एक परिवार शुक्लोदन का भी था।
५. शुक्लोदन के दो पुत्र थे, एक था अनुरुद्ध जो बहुत ही सुकुमार था, और दूसरा था महानाम।
६. तब महानाम अनुरुद्ध के पास गया- "या तो तुम गृह-त्याग करो, या मै करता हूँ।" अनुरुद्ध का उत्तर था- "मैं सुकुमार हूँ। मेरे लिए गृहस्थी का त्याग करना कठिन है। तुम त्याग कर दो।"
७. "लेकिन अनुरुद्ध! मुझसे यह तो सुनो कि गृहस्थी में क्या क्या करना पड़ता है? पहले तो तुम्हें खेत में हल जुतवाना होता है। जब यह हो गया तब खेतों में बीज डलवाना होता है। जब यह हो गया, तब खेतों को पानी से सिंचवाना होता है। जब यह हो गया, तब पानी निकलवाना होता है। जब यह हो गया, तब पौधों की निराई करानी होती है। जब यह हो गयी, तो फसल को कटवाना होता है। जब यह हो गया, तो फसल को ढोकर उठवा ले जाना होता है। जब यह हो गया, तो उसकी पूली बंधवाना होता है। जब यह हो गया, तो बैलों से रौंदवाना होता है। जब यह हो गया, तो तिनके पृथक कराना होता है। जब यह हो गया, तो भूसी पृथक करना होता है। जब यह हो गया तो उसे फटकवाना होता है। जब यह हो गया तो फसल को कोठों में भरवाना होता है। जब यह हो गया, तो फिर अगले वर्ष यही क्रम दोहराना होता है। और यह कम प्रत्येक वर्ष चालू रखना होता है।"
८. "कामों का तो कोई अन्त नहीं। आदमी के कामों की समाप्ति तो कभी होती ही नहीं। ओह! हमारे काम कब खत्म होंगे? ओह! हमारे काम कब समाप्त होंगे? इन पाँचो इन्द्रियों और उनके भोगों के रहते हुए, हम कब आराम से रह सकेंगे? हाँ, प्रिय अनुरुद्ध कामों का तो कोई अन्त नहीं। आदमी के कामों की समाप्ति तो कभी होती नहीं।"

९. अनुरुद्ध बोला-- "तो गृहस्थी को तुम ही संभालो । मैं ही घर से बेघर होता हूँ ।"
१०. तब अनुरुद्ध शाक्य अपनी मां के पास गया -- "मां, मैं गृह-त्याग कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ । मुझे अनुमति दे दो ।"
११. अनुरुद्ध शाक्य के ऐसा कहने पर उसकी मां बोली- " अनुरुद्ध! तुम दोनों मेरे प्रिय पुत्र हो । तुम दोनों में से मै किसी में कोई दोष नहीं देखती । मै जानती हूँ कि मृत्यु आयेगी तो मुझे तुमसे खुदा कर देगी, किन्तु मैं जीते जी प्रव्रजित होने की अनुमति कैसे दे सकती हूं?"
१२ दूसरी बार फिर अनुरुद्ध ने अपनी प्रार्थना दोहराई । दूसरी बार भी उसे वही उत्तर मिला । तिसरी बार फिर अनुरूद्ध ने अपनी मां से प्रार्थना की ।
१३. उस समय शाक्य जनपद पर भद्दिय शाक्य राज्य करता था । वह अनुरुद्ध शाक्य का मित्र था । अनुरूद्ध की मां ने सोचा कि भद्दिय-शाक्य कभी अपने राज्य को छोड़ कर नही जा सकता । इसलिये बोली -- "अनुरुद्ध! यदि शाक्य राजा भद्दिय राज्य का त्याग करे तो तू भी उसके साथ प्रव्रज्ञित हो जा सकता है ।"
१४. तब अनुरुद्ध भद्दिय के पास पहूंचा और उससे कहा -- "मित्र! मेरी प्रव्रज्या में तुम बाधक हो रहे हो ।"
१५. "मित्र! यदि मै बाधक हूं, तो वह बाधा दूर हो । मै तुम्हारे साथ हूँ । प्रसन्नतापूर्वक संसार त्याग कर दो ।"
१६. "प्रिय मित्र! आ, हम दोनों इकट्ठे संसार त्याग करें ।"
१७. भद्दिय बोला -- "मित्र! मै, करूँगा । मैं संसार त्याग करने में असमर्थ हूँ । और जो कुछ तुम मुझे करने के लिये कहो, मैं करूँगा । तुम अकेले ही प्रवजित हो जाओ ।"
१८. "मित्र! मां ने मुझे कहा है कि यदि तुम प्रव्रजित होओ, तो मै भी हो सकता हूँ । और तुमने अभी अभी कहा है 'यदि मैं बाधक हूँ, तो वह बाधा दूर हो । मैं तुम्हारे साथ हूँ । प्रसन्नतापूर्वक संसार त्याग कर दो ।' इसलिए मित्र! आओ, हम दोनों इकट्ठे संसार त्याग करें ।"
१९. तब शाक्य-राजा भद्दिय अनुरुद्ध से बोला- "मित्र! सात वर्ष तक प्रतीक्षा करो । सात वर्ष की समाप्ति कर हम इकट्ठे प्रव्रजित होंगे ।"
२०. "मित्र! सात वर्ष का समय बहुत होता है । मै सात वर्ष प्रतीक्षा नहीं कर सकता ।"
२१. भद्दिय ने छ: वर्ष, पाँच वर्ष और इस प्रकार घटाते घटाते एक वर्ष प्रतीक्षा करने की बात कही । फिर ग्यारह महीने, इस महीने और इस प्रकार घटाते घटाते पन्द्रह दिन प्रतीक्षा करने की बात कही । अनुरुद्ध का एक ही उत्तर था- "इतना समय बहुत होता है ।"
२२. तब भद्दिय बोला- "अच्छा मित्र! एक सप्ताह प्रतीक्षा करो । इतने समय में मैं अपने भाइयों और पुत्रों को राज्य सौंप दूं ।"
२३. अनुरूद्ध बोला- "सात दिन बहुत नहीं होते । इतने दिन मैं प्रतीक्षा करुंगा ।"
२४. तब शाक्य राजा भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त जैसे कभी वह अपनी चतुरंगिणी सेना सहित उद्यान-क्रिड़ा के लिये साथ साथ जाते थे, उसी प्रकार अब भी वह अपनी चतुरंगिणी सेना को साथ ले घर से निकले । उपाली नाई भी साथ हो लिया । सब मिलाकर उनकी संख्या सात हो गई ।
२५. कुछ दूर जाने पर उन्होंने अपनी सेना को वापिस लौटा दिया और सीमा पार कर दूसरे जनपद में प्रवेश किया । उन्होने अपने सुन्दर गहने कपड़े उतारे, उनकी गठरी बनाई और उपाली नाई से बोले- 'उपाली! तुम वापिस कपिलवस्तु चले जाओ । तुम्हारे जीने के लिए यह सब पर्याप्त है । हम तथागत की शरण ग्रहण करने जा रहे हैं ।' और वे चले गये ।
२६. वे चले गये और वापिस कपिलवस्तु लौटने के लिए उपाली ने विदा ली ।

४. सिद्धार्थ को गृहस्थ बनाने का अंतिम प्रयास

१. यह सोच कि अब वह अपने पुत्र को फिर कभी न देख सकेगा, शुद्धोदन जोर जोर रोया ।
२. तब शुद्धोदन ने अपने मन्त्री और अपने पुरोहित से पूछा कि क्या वे जाकर सिद्धार्थ को यहीं रोके रखने का और अपने परिवार में ही सम्मिलित हो जाने का प्रयास कर सकते हैं?
३. राजा की इच्छा के अनुसार मन्त्री और पुरोहित विदा हुए और अभी भगवान बुद्ध रास्ते में ही थे कि उनके पास जा पहुँचे ।
४. उन्होंने यथोचित अभिवादन किया और उनकी अनुज्ञा पाकर एक और बैठ गये ।
५. जिस समय तथागत वृक्ष की छाया के नीचे बैठे थे, राज-पुरोहित ने निवेदन किया- -

६. “हे राजकुमार! जिस राजा के हृदय को आपकी विदाई के तीर ने बुरी तरह बांधा है और जिस की आंखों से आंसुओं की धारा बहती रहती है, उस राजा की भावनाओं का जरा तो ख्याल करें । उसकी कामना है कि आप फिर घर में चले आयें । वह तभी शान्ति से मर सकेगा ।” उसका कथन हैं--
७. “मैं जानता हूँ कि आप धम्म-स्थित है और मैं यह भी जानता हूँ कि आपका यह संकल्प वज्र के समान दृढ़ है । लेकिन इस प्रकार घर छोड़ कर चले जाने से उत्पन्न वियोगाग्नि से मेरा दिल जल रहा है ।”
८. “हे धम्म-प्रिय, धम्म के लिए ही आप अपने इस संकल्प को छोड़ दें ।”
९. “कुछ समय के लिए पृथ्वी के राज्य का उपभोग करें; बाद में शास्त्र सम्मत विधि से आरण्यवास भी कर सकते हैं । अपने दुःखी सम्बन्धियों के प्रति निर्दयी न बनें । सभी के प्रति दयावान होना ही धर्म है।”
१०. “धम्म की साधना अनिवार्य तौर पर जंगल में ही नही होती, साधु नगर में रहकर भी मोक्ष-लाभ कर सकता है । ज्ञान और आचरण ही धम्म के यथार्थ साधन हैं । साधु-भेष और वनवास तो केवल कायरता के द्योतक हैं ।”
११. “शाक्य-राजा दु:ख के सागर में डूबा हुआ है, जिसमें तीव्र वेदना की लहरे उठ रही है । इसलिए तुम उसका उद्धार करो, क्योंकि उसकी वही दुरवस्था है जो समुद्र में डूबती हुई गौ की ।”
१२. “और उस रानी- उस प्रजापति गौतमी- की और भी ध्यान दें, जिसने आपको पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, जो अभी तक अगस्त्य-लोक को नहीं पधारी है । क्या आप उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करेंगे जो बिना बछडे की गौ की तरह निरन्तर रँभाती रहती हैं?”
१३. “निश्चय से आप अपने दर्शन से अपनी पत्नी को तो संतुष्ट रखना ही चाहेंगे, जो अपने पति के जीवित रहते भी एक विधवा की तरह दुःखी रहती हैं, अथवा एक हंसिनी की तरह जिसका हंस उससे पृथक कर दिया गया हो, अथवा उस हथिनी की तरह जिसका हाथी उसे जंगल मैं छोड़ कर चला गया हो ।”
१४. राज-पुरोहित के ये वचन सुन उस धम्म-ज्ञाता ने उन पर क्षण भर विचार किया और तब उसे इस प्रकार उत्तर दिया-

९. भगवान बुद्ध का उत्तर

१. “मेरे प्रति राजा का जो वात्सल्य-भाव है, उससे मैं सुपरिचित हूँ, विशेष रूप से वह जो उसने मेरे प्रति दरसाया है, लेकिन यह सब होते हुए भी, क्योंकि मैं संसार के दुःखमय रुप से भी सुपरिचित हूँ, इसीलिए मैं अपने संबंधियों का त्याग करने के लिये मजबूर हूँ ।”
२. “यदि संसार में प्रियजनों से यह अनिवार्य वियोग न होता तो कौन है जो अपने प्रियजनों के साथ ही न रहता? लेकिन, एक बार होने पर भी, यह वियोग फिर दुबारा होकर रहेगा, इसीलिए मैं अपने प्रिय पिता को छोड़ कर जा रहा हूँ ।”
३. “लेकिन मैं इसे ठीक नहीं समझता कि तुम यह सोचो कि मैं ही राजा के दुःख का कारण हूँ, क्योंकि वह अपने इस स्वप्नवत् समागम में भावी वियोग की चिन्ता करता हैं ।”
४. “इसलिए इस विषय में तुम्हारा मत निश्चित होना चाहिऐ । वियोग के नाना रूपों को देखकर तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि न कोई पुत्र और न कोई दूसरा सम्बन्धी ही दुःख का कारण है । सारा दुःख अज्ञान-जनित हैं ।
५. “जिस प्रकार जो राही सड़क पर इकट्ठे होते है वे आगे चल कर पृथक होते ही हैं, इसी प्रकार जब आज या कल सभी का परस्पर वियोग अनिवार्य हैं, तो कोई भी बुद्धिमान आदमी किसी भी स्वजन से पृथक होने पर दुःखी क्यों होगा - भले ही वह स्वजन उसका कितना ही प्रिय क्यों न हो?”
६. “अपने सम्बन्धियों को दूसरे लोक मे छोड कर आदमी यहां इसमें चला आता हैं, और फिर इसमें उन्हें छोड़ कर दूसरे में चला जाता है, और वहां जाकर, वहाँ से भी अन्यत्र चला जाता है -- यही मानव-मात्र का हाल है । एक मुक्त पुरुष इस सबके लिये दुःखी क्यों हो?”
७. “जब मां के गर्भ से निकलते ही, मृत्यु प्राणी का पीछा करने लग जाती हैं, तो तुमने अपने स्नेह में मेरे वनगमन को ‘असमय’ क्यों कहा?”
८. “किसी सांसारिक वस्तु को प्राप्त करने के लिए ‘समय-असमय’ हो सकता है, समय हर चीज के साथ लगा ही है, समय संसार को नाना परिवर्तनों में से गुजारता है; लेकिन जब जीवन अस्थिर है, तो ‘धम्म’ करने के लिए कोई असमय नहीं हैं ।”
९. “राजा का तो यह संकल्प ठीक ही है, एक पिता के योग्य है कि वह मुझे राज्य देना चाहे; लेकिन मेरे लिए यह ऐसे ही होगा जैसे कोई लोभी रोगी प्रतिकूल भोजन ग्रहण कर ले ।”

१०. “किसी भी बुद्धिमान् के लिए ‘राज्याधिकार’ कैसे उचित हो सकता है, जहां चिन्ता है, राग- द्वेष है, क्लान्ति है और है दूसरों के प्रति अन्याय ।”
११. “सोने का महल तो मुझे लगता है जैसे उसमें आग लगी है, अच्छे से अच्छे भोजन विष मिले प्रतीत होते है और कमलों के फूल से आच्छादित शय्या पर, लगता है, जैसे मगरमच्छ लोट रहे हों ।”

६. मन्त्री का उत्तर

१. उसके ज्ञान और गरिमा के अनुरुप, तृष्णा-विमुत्त,तर्कपूर्ण कथन सुना तो मन्त्री बोला --
२. “आपका यह संकल्प तो सर्वथा योग्य है और किसी भी तरह आपके अयोग्य नहीं, किन्तु केवल समय की दृष्टि से यह इस समय अयोग्य है । यह किसी भी तरह तुम्हारा धम्म नहीं हो सकता कि अपने वृद्ध पिता को दुःख में छोड़कर चल दो ।”
३. “निश्चय से तुम्हारी बुद्धि बहुत सूक्ष्म नहीं है, कम से कम धर्म, अर्थ और काम के मामले में तो सूक्ष्म नहीं हैं । जब कि किसी अविद्यमान अदृश्य वस्तु के लिए आप विद्यमान दृश्य का त्याग करने के लिए तैयार हैं ।”
४. “फिर कोई कहता है कि पुनर्जन्म है, कोई उतने ही विश्वास के साथ कहता है कि नहीं है, जब इस विषय में इतना सन्देह है तो फिर यही उचित है कि वर्तमान भोगों को भोगा जाय ।”
५. “यदि कोई परलोक होगा, तो हम परलोक में भी आनन्द मनायेंगे, किन्तु यदि कोई परलोक नही होगा तो फिर सारा सँसार ही निश्चित रूप से अनायास मुक्त है ।”
६. “कुछ ऐसे है जो पुनर्जन्म तो मानते हैं, किन्तु मोक्ष की कोई सम्भावना नहीं मानते । उनका कहना है कि जैसे अग्नि स्वभाव से ही उष्ण होती है और पानी स्वभाव से ही तरल होता है, इसी प्रकार यह संसार स्वभाव ही संसरण- शील है ।”
७. “कुछ का मत है कि सभी वस्तुएं स्वभावज हैं- चाहे अच्छी हों, चाहे बुरी हो: चाहे सत् हों, चाहे असत् हों- और जब यह सारा संसार ही स्वभावज हैं, इसलिए भी हमारे सब प्रयास व्यर्थ हैं ।”
८. “जब इन्द्रियों की प्रक्रिया निश्चित है और बाह्य पदार्थो की अनुकुलता प्रतिकूलता भी- तो फिर जिसका वृद्धावस्था और कष्ट से अटूट सम्बन्ध हैं, उसे कौन कैसे पृथक् कर सकता है? क्या यह सब प्राकृतिक ही नहीं है?”
९. “पानी आग को बुझा देता है और आग पानी को भाप बना कर उडा देती है । ये सभी तत्व जब इकट्ठे हो जाते हैं तो संसार का निर्माण करते हैं ।”
१०. “गर्भ में ही हाथ, पांव, पेट, पीठ और सिर की रचना हो जाती हैं- बुद्धिमानों का कहना हैं कि यह सब प्राकृतिक ही हैं ।”
११. “कांटों के तीखेपन का कौन निर्माण करता है? अथवा पशुओं और पक्षियों के स्वभाव की ही कौन रचना करता है? यह सब प्राकृतिक है । कोई भी कार्य ऐसा नहीं जिसमें चेतना कारण हो, तो फिर ‘चेतना’ का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है?”
१२. “कुछ का कहना है कि सृष्टि ईश्वर की रचना है । यदि ऐसा है तो फिर किसी चेतन आत्मा के प्रयत्नशील होने की आवश्यकता ही क्या है? जो सृष्टि को गति प्रदान करेगा, वही उस गति को अवरूद्ध भी करेगा?”
१३. “कुछ कहते हैं कि प्राणी का जन्म और मरण दोनों ‘आत्मा’ पर निर्भर करते हैं । किन्तु उनका कहना है कि प्राणी का जन्म तो अनायास होता हैं, किन्तु मोक्ष प्रयास-सिद्ध हैं ।”
१४. “आदमी संतानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से उऋण होता है, शास्त्र अध्ययन द्वारा ऋषि-ऋण से और यज्ञों द्वारा देव-ऋण से - जो इन तीनों ऋणों से मुक्त है, वही वास्तव में मुक्त हैं ।”
१५. “इसलिए बुद्धिमानों का कहना है कि जो इस क्रम से मोक्ष के लिए प्रयास करते है, उन्हें ही मोक्ष प्राप्त होता है । जो इस क्रम से प्रयास नहीं करते, उन्हें व्यर्थ का आयास ही होता हैं ।”
१६. “इसलिये हे सौम्य! यदि मोक्ष की ही चाह है तो शास्त्र-क्रम से उसकी और अग्रसर हों; इस प्रकार आपको भी ‘मोक्ष’ प्राप्त हो जायेगा और राजा भी दुःख से ‘मोक्ष’ पा जायेगा ।”
१७. “और जहाँ तक आपको वन से दुबारा घर वापिस आने के बारे में आशंका है, तो इसका विचार करने की आवश्यकता नहीं । पूर्व समय में भी लोग वन जाकर वापस घर लौटे ही है- अम्बरीश लौटा है, द्रुमकेश लौटा है, राम लौटा है और भी बहुत लौटे हैं ।”

७. भगवान बुद्ध का दृढ़ता

१. तब मन्त्री के प्रिय और वफादारी से भरे वचन सुनकर -- उस मन्त्री को जो राजा की आँखों के समान था -- दृढव्रती बुद्ध ने अपना उत्तर दिया -- यथोचित, न उकताने वाला और न जल्दबाजी से युक्त।
२. "कुछ है वा नहीं, इसमें मेरे लिये कोई दूसरा प्रमाण नहीं है, तपस्या और साधना द्वारा मैंने स्वयं सत्य को जान लिया हैं।"
३. "मै किसी ऐसे सिद्धान्त को सही स्वीकार नहीं कर सकता जो अज्ञानश्रित है और जिसका सिर नीचे और पैर ऊपर की तरफ है। मैं किसी ऐसे सिद्धान्त को सही स्वीकार नहीं कर सकता, जिसमें सैकड़ो बातों को यूं ही पहले से सही मानकर चलना होता है। कौन बुद्धिमान आदमी केवल किसी दूसरे पर आश्रित होकर किसी बात में विश्वास करेगा? मानव जाति तो अंधेरे में एक अन्धे के पीछे चलने वाली चक्षुहीन जाति बनी हुई हैं।"
४. "लेकिन यदि कोई सत्य और झूठ में विवेक न कर सके, यदि कोई भलाई और बुराई के विषय में संदिग्ध हो तो उसे भी अपना चित्त भलाई में ही लगाये रहना चाहिये। सद्वृत्ति वाले के लिये थोड़ा व्यर्थ का परिश्रम भी कल्याणकारी ही होता है।"
५. "लेकिन यह देखकर कि इस 'पवित्र परंम्परा' का भी ठिकाना नहीं, यह समझ लो कि ठीक वही होता है जो विश्वसनीय लोगों का वचन हो, और विश्वसनीयता का मतलब है निर्दोषता। जो सर्वथा निर्दोष है वह सत्य का अपलाप कर ही नहीं सकता।"
६. "और जो कुछ तुम मुझे घर लौट चलने के बारे में कह रहे हो और अपने पक्ष के समर्थन में कुछ लोगों के उदाहरण दे रहे हो तो ऐसे लोगों की क्या प्रामाणिकता जिन्होंने अपने व्रत को ही तोड़ दिया।"
७. "चाहे सूर्य पृथ्वी पर आ गिरे और चाहे हिमालय भी अपने स्थान से हट जाये, तो भी मैं किसी हालत में भी इन्द्रिय-विषयोन्मुख होकर घर नहीं लौट सकता।"
८. "मै जलती हुई आग में प्रविष्ट हो जाऊंगा, किन्तु बिना अपने (मानवता के कल्याण के) उद्देश्य को पूरा किये घर नहीं लौट सकता।" इतना कहा और अपने दृढ़ निश्चय के कारण तथागत सर्वथा उपेक्षावान् होकर उठकर चल दिये।
९. तब आँखो में आँसू लिये मन्त्री और पुरोहित निराश होकर कपिलवस्तु लौट आये। उन्होंने सिद्धार्थ का अडिग निश्चय सुन लिया था।
१०. राजपुत्र के प्रति हृदय में प्रेम होने के कारण और राजा के प्रति हृदय में भक्ति होने के कारण वे लौट आये, किन्तु बार बार पीछे मुड़ कर देखते थे। वे न उन्हें देखते ही रह सकते थे, न उन्हें आँखों से ओझल होने दे सकते थे - जो कि सूर्य की भाँति अपने तेज से तेजस्वी थे।
११. राजपुत्र को वापिस लौटा लाने में असमर्थ सिद्ध हो मन्त्री और पुरोहित लडखड़ाते कदमों से वापिस लौटे। वे आपस में कह रहे थे- "हम उस राजा को चल कर अब क्या मुंह दिखायेंगे, जो अपने पुत्र का मुँह देखने के लिये ही तड़प रहा है।"

पाँचवाँ भाग : धम्म- दीक्षा का पुनरारम्भ

१. गँवार ब्राह्मणों की धम्म-दीक्षा

१. राजगृह के समीप ही, गृद्धकूट पर्वत के पीछे एक गाँव था, जिसमें कोई सत्तर ब्राह्मण परिवार रहते थे ।
२. इन लोगों को धम्म-दीक्षा देने के उद्देश्य से भगवान बुद्ध आकर एक वृक्ष के नीचे विराजमान हुए ।
३. लोगों ने जब तथागत का तेज और गम्भीर व्यक्तित्व देखा तो उससे प्रभावित होकर उनके गिर्द आ इकट्ठे हुए । तथागत ने प्रश्न किया- "तुम कब से इस पर्वत के नीचे रहते आये हो, और तुम्हारा पेशा क्या है?"
४. उनका उत्तर था- "पिछली तीस पीढ़ियों से हम यहीं रहते आये हैं, और हमारा पेशा पशु-पालन है ।"
५. और जब उनके धाम्मिक-विश्वासों के बारे में प्रश्न किया गया तो उनका उत्तर था -- "हम ऋतु भेद के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, वरूण, अग्नि आदि देवताओं की पूजा करते हैं ।"
६. "यदि हममें से किसी की मृत्यु हो जाती है तो हम इकट्ठे होते है और प्रार्थना करते हैं कि वह ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो जिससे उसे पुन: पुनर्जन्म न ग्रहण करना पड़े ।"
७. भगवान बुद्ध ने कहा -- "यह क्षेमकर मार्ग नहीं है । इससे तुम्हारा कुछ लाभ नहीं हो सकता । मेरे मार्ग का अनुसरण करने से, सच्चा श्रमण बनने से, आत्म-संयम का अभ्यास करने से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है ।"
८. "जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझ बैठते हैं, ऐसे मिथ्या दृष्टि-सम्पन्न लोगों की कभी सदगति नहीं हो सकती ।"
९. "जो सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जान लेते हैं, ऐसे सम्यक् दृष्टि-सम्पन्न लोगों को ही सदगति की प्राप्ति होती है ।"
१०. "संसार में सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं, कोई उससे बच नहीं सकता ।"
११. "यह समझ लेना कि जो पैदा हुआ है, उसे एक न एक दिन मरना अवश्य है, और इसलिये जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाने की इच्छा करना -- यही सच्ची धम्म-साधना हैं ।"
१२. उन सत्तर ब्राह्मणों को जब यह बुद्ध-वचन सुनने के लिए मिला तो उन्होंने तुरन्त श्रमण बनने की इच्छा प्रकट की । बुद्ध द्वारा अनुमति प्राप्त होने पर उनका केश-छेदन हो गया । उनकी वेश-भूषा सच्चे श्रमण की हो गई ।
१३. तब वे सब विहार की ओर चल पड़े । रास्ते में उन्हें अपनी पत्नियों की याद आई और अपने परिवार की याद आई । उसी समय भारी वर्षा ने उनका आगे बढ़ना रोक दिया ।
१४. रास्ते में कोई दस मकान थे । उन्होंने उनमें आश्रय खोजा । एक मकान के भीतर जाने पर मालूम हुआ कि क्योकि उसकी छत चू रही थी, इसलिये उसके भीतर घुसना निष्प्रयोजन था ।
१५. इस अवसर के उपयुक्त भगवान बुद्ध ने कहा- -"जिस प्रकार यदि छत ठीक से छाई न गई हो तो उसमें से वर्षा का पानी अन्दर घुस आता है, इसी प्रकार यदि चित्त को ठीक ठीक साधा न गया हो तो उसमें (काम-) राग का प्रवेश हो जाता है ।"
१६. "लेकिन जिस प्रकार यदि छत ठीक से छाई गई हो । तो उसमें से वर्षा का पानी अन्दर नहीं आ सकता, उसी प्रकार यदि चित्त को ठीक ठीक साधा गया हो तो उसमें (काम-) राग का प्रवेश नहीं हो सकता ।"
१७. इन वाक्यो को सुना तो उन सत्तर ब्राह्मणों को यह लगा तो सही कि उनके मन के संकल्प-विकल्प शुभ नहीं हैं, तो भी अभी वह विचिकित्सा से मुक्त नहीं थे । इतना होने पर भी वे आगे बढ़े चले गये ।
१८. आगे बढ़े तो उन्होने पृथ्वी पर कुछ सुगन्धित द्रव्य पड़ा देखा । बुद्ध ने उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया । थोड़ी ही दूर और आगे जाने पर कुछ कूड़ा-करकट भी पड़ा दिखाई दिया । बुद्ध ने उसकी ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया और साथ साथ यह भी कहा-
१९. "जो दु:शीलो की संगति में रहता है वह उसी प्रकार दु:शील हो जाता है जैसे किसी दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को ग्रहण करने वाला स्वयं गंधाने लगता है; वह उत्तरोत्तर निकृष्ट होता जाता है और अकुशल ही अकुशल करने में दक्ष हो जाता है ।"
२०. "लेकिन जो बुद्धिमान् बुद्धिमानों की संगति करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है, ठीक जैसे किसी सुगन्धित पदार्थ को ग्रहण करने वाले के शरीर से भी सुगन्ध आने लगती है; वह उत्तरोत्तर बुद्धिमान होता जाता है, शीलवान् होता जाता है, गुणवान् होता जाता है और संतोष को प्राप्त करता हैं ।"
२१. इन सब गाथाओं को सुनकर, उन सत्तर ब्राह्मणों को निश्चय हो गया कि उनके मन में जो घर लौट कर काम-भोग जीवन व्यतीत करने के ख्याल

आने लगे थे वे उचित नही थे। ऐसे विचारों से सर्वथा मुक्त हो वे विहार आये और साधना कर अचिर काल में ही अर्हत्व को प्राप्त हुए।

२. उत्तरवती के ब्राह्मणो की धम्म-दीक्षा

१. जिस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे और देवताओं तथा मनुष्यों के कल्याणार्थ धम्मोपदेश दे रहे थे, ठीक उस समय श्रावस्ती के पूर्व के उत्तरावती नाम नगर में पाँच सौ ब्राह्मण रहते थे।
२. उन सबने इकट्ठे होकर एक गंगातट निवासी निग्रंन्थ तपस्वी के पास जाने का संकल्प किया, जो अपने शरीर पर धूल आदि लपेट कर 'ऋषि' बना हुआ था।
३. रास्ते में एक कान्तार में पहुंचने पर उन्हें जोर की प्यास लगी। दूरी पर उन्हें एक पेड़ दिखाई दिया। उन्होंने सोचा, वहाँ कुछ बस्ती जरूर होगी और पानी मिलेगा। किन्तु जब वे वहाँ पहुंचे तो वहाँ कोई बस्ती न थी। केवल एक पेड़ ही था।
४. ऐसी परिस्थिति में वे जोर जोर से रोने-चिल्लाने लगे। तब तक उस वृक्ष पर से उन्हें अचानक वृक्ष-देवता का स्वर सुनाई दिया। वृक्ष-देवता ने पूछा -- "तुम क्यों रो-चिल्ला रहे हो?" लोगों ने कारण बताया तो वृक्ष-देवता ने उन्हे यथेच्छा खाने-पीने को दिया।
५. आगे बढ़ने से पूर्व उन ब्राह्मणों ने उस वृक्ष-देवता से पूछा कि उसने पूर्व जन्म में ऐसा क्या कर्म किया था कि वह वृक्ष-देवता होकर पैदा हुआ?
६. उसने उत्तर दिया कि जिस समय (अनाथ पिण्डक) सुदत्त ने तथागत को जेतवनाराम का दान दिया था, उस समय वह वहाँ सारी रात धम्म सुनता रहा था। लौटते समय उसने अपने पात्र में भिक्षुओं को पानी का दान किया था।
७. दूसरे दिन प्रातःकाल घर लौटने पर उसकी स्त्री ने पूछा कि उससे क्या अपराध हो गया था कि वह सारी रात बाहर रहा। उसने कहा कि वह गुस्से में नहीं था बल्कि वह सारी रात जेतवन में बुद्ध का उपदेश सुनता रहा था।
८. यह सुन उसकी स्त्री ने तथागत को बेहिसाब सुनाई--"यह गौतम पागल है। यह केवल लोगों को ठगता है।"
९. "उसके ऐसा बोलने पर भी," वृक्ष-देवता ने कहा, "मैने उसका विरोध नहीं किया। इसी कारण मरणानन्तर मैं प्रेत होकर पैदा हुआ, और अपनी उस कायरता के ही परिणामस्वरूप मेरा क्षेत्र इस पेड तक ही सीमित हैं।"
१०. "यज्ञ-यागादि सभी दिन-रात दुःख ही देनेवाले हैं, चिन्ता के जनक हैं।"
११. "चिन्ता से मुक्त होने के लिए और दुःख का क्षय करने के लिये आदमी को (बुद्ध के) धम्म को ही स्वीकार करना चाहिये और जो यह ऋषियों का सांसारिक धर्म हैं, उससे मुक्ति पानी चाहिए।"
१२. ब्राह्मणों ने जब वृक्ष-देवता के ये वचन सुने तो उन्होंने श्रावस्ती जाने का निश्चय किया। वह वहाँ पहुंचे और तथागत को अपने आने का उद्देश्य कहा। उनकी प्रार्थना सुनी, तब तथागत ने कहा--
१३. "चाहे आदमी नग्न रहता हो, चाहे बड़ी बड़ी जटायें बढ़ाकर रहता हो, चाहे कुछ पत्तो अथवा बल्कल चीर से ही अपना शरीर ढकता हो, चाहे वह शरीर पर धूल ही रमाता हो और पत्थरों पर सोता हो; किन्तु इस सबसे वह तृष्णा से मुक्त नहीं हो सकता।"
१४. "लेकिन जो न किसी से कलह करता है और न किसी की हत्या करता है, जो अग्नि से भी किसी का नाश नहीं करता, जो किसी को पराजित करके स्वयं विजयी भी नहीं होना चाहता, जिसकी सभी के प्रति मैत्री भावना है -- ऐसे आदमी के मन में किसी के लिये द्वेष या घृणा का भाव नहीं होता।"
१५. "प्रेतों को बलि चढ़ाना ताकि पुण्य लाभ हो, वा परलोक में फल मिले सत्युसषों का सत्कार करने के चौथे हिस्से के भी बराबर नहीं।"
१६. "जो सदाचारी है, जो ज्येष्ठों के प्रति -- वृद्धों के प्रति -- सदा आदर की भावना प्रदर्शित करता है -- उसे इन चार चीजों की प्राप्ति होती है--आयु की, वर्ण की, सुख की तथा बल की।"
१७. अपने पति से यह सब सुना, तो पत्नी शान्त हो गई।

छठा भाग : निम्नस्तर के लोगों की धम्म-दीक्षा

१. नाई उपालि की धम्म-दीक्षा

१. वापिस लौटते समय नाई उपाली ने सोचा- "शाक्य प्रचण्ड स्वभाव के हैं | यदि मैं इन गहनों को लेकर वापस लौटा तो यह सोचकर कि मैं अपने साथियों की हत्या करके और उनके गहने लेकर भाग आया, वे मेरी हत्या भी कर डाल सकते हैं | तो मैं भी उसी रास्ते क्यों न जाऊं जिस रास्ते ये शाक्य कुल-पुत्र गये हैं?"

२. "सचमुच मुझे क्यों उनके पीछे पीछे नहीं जाना चाहिये?" नई उपाली ने अपने से पूछा | तब उसने अपनी पीठ पर से गहनों की गठरी उतारी और उसे एक पेड़ पर लटका दिया | उसने कहा -- "जिसे यह गठरी मिले, वह इसे अपनी समझ कर ले जाये |" इसके बाद वह शाक्यों के पीछे-पीछे जाने के लिये वापस लौट पड़ा |

३. शाक्यों ने उसे दूर से आते देखा, तो बोले -- "उपाली! तू लौट किसलिये आया है?"

४. तब उसने अपने मन की बात कही | शाक्य कुल-पुत्र बोले -- "उपाली! तूने अच्छा किया है कि तू वापस नहीं लौटा | क्योंकि शाक्य निस्सन्देह चण्ड है वे तुझे मार भी डाल सकते थे |"

५. और वे उपालि को अपने साथ लिये वहाँ पहुंचे जहाँ तथागत ठहरे हुए थे | वहाँ पहुँच कर उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और एक और जा बैठे | इस प्रकार बैठ चुकने पर उन्होंने तथागत से निवेदन किया --

६. "भगवान! हम शाक्य लोग बड़े अभिमानी स्वभाव के हैं | और यह उपालि नाई चिरकाल से हमारी सेवा करता चला आ रहा है | भगवान् पहले इसे ही प्रव्रजित उपसम्पन्न करें ताकि हम इसे अपने से बड़ा मान इसका अभिवादन करें, इसे हाथ फैलाकर नमस्कार करें और इस प्रकार हम शाक्यों के अभिमान में कुछ कमी आये |"

७. तब तथागत ने पहले तो नाई उपालि को ही प्रव्रजित और उपसम्पन्न किया | इसके बाद उन दूसरे शाक्य-कुल-पुत्रों को भिक्षु संघ में दीक्षित किया |

२. भंगी सुणीत की धम्म-दीक्षा

१. राजगृह में एक सुणीत नाम का भंगी रहता था | गृहस्थों द्वारा सड़क पर फेंका गया कूड़ा-कचरा साफ करना ही उसकी जीविका का साधन था | यह उसका परम्परागत नीच पेशा था |

२. एक दिन प्रातःकाल तथागत उठे, चीवर धारण किये और बहुत से भिक्षुओं को साथ लिये भिक्षाटन के लिए निकले |

३. अब उस समय सुणीत कूडा-कचरा इकट्ठा कर के ढेर लगा रहा था, जिसे वह बाद में ओकरी से गाड़ी में डालने वाला था और उस गाड़ी को खींच कर ले जाने वाला था |

४. और जब उसने अनुयायियों सहित तथागत को आते देखा, उसका हृदय प्रसन्नता से भर गया; किन्तु साथ ही वह डर भी गया था |

५. सडक पर छिपने की कोई जगह न देख, उसने अपनी गाड़ी को दीवार से जा सटाया और खुद भी दीवार से सट कर हाथ जोड़े हुए खड़ा हुआ |

६. तथागत जब कुछ समीप आये तो उन्होंने अमृत भरी वाणी में उसे सम्बोधित किया -- "सुणीत! यह तुम्हारा दरिद्र जीविका की साधन क्या है? क्या तुम घर छोड़ कर संघ में प्रविष्ट हो सकते हो?"

७. सुणीत को ऐसा लगा जैसे किसी ने उस पर अमृत वर्षा की हो | बोला -- "जिस संघ में भगवान् बुद्ध हैं, उसमें मैं कैसे नहीं आ सकता? कृपया आप मुझे संघ में प्रविष्ट कर लें |"

८. तब तथागत के श्रीमुख से निकला "भिक्षु आ |" इस एक वचन से ही सुणीत को प्रवज्या और उपसम्पदा मिली तथा वह पात्र-चीवर युक्त हो गया |

९. भगवान बुद्ध उसे विहार ले गये तथा धम्म और विनम्र की शिक्षा दी | "शील, संयम, और दमन से प्राणि शुद्ध हो जाते है |"

१०. जब पूछा गया कि सुणीत इतना महान् कैसे हो गया, तो तथागत ने कहा- "जिस प्रकार रास्ते पड़े किसी कूडे-कचरे के ढेर पर एक सुगन्धित कंवल भी उग सकता है, उसी प्रकार इस अंधे-जगत में, इस कुड़ा-कचरे संसार में बुद्ध-पुत्र भी प्रकाशित हो सकता है |"

३. सोपाक तथा सुप्पिय अछूतों की धम्म-दीक्षा

१. सोपाक श्रावस्ती का एक अछूत बालक था । प्रसव-वेदना के समय उसकी मां बेहोश हो गई । उसके पति और सम्बन्धियोंने सोचा कि वह मर गई । वे उसे श्मशान में ले गये और वहाँ उसके लिये चिता तैयार की ।
२. लेकिन उस समय इतना पानी बरसा और ऐसा तूफान आया कि चिता में आग लगा सकना असम्भव हो गया । इसलिये लोग उसे यूं ही चिता पर पड़ा छोड चले गये ।
३. सोपाक की मां उस समय तक मरी नहीं थी । वह बाद में मरी । मृत्यु से पहले वह बालक को जन्म दे गई ।
४. उस बच्चे का श्मशान के रखवाले ने ही अपने बच्चे सुप्पिय के साथ पालन पोषण किया । मां की जाति के नाम पर बच्चे का नाम भी सोपाक ही पड गया ।
५. एक दिन भगवान बुद्ध श्मशान के पास से गुजर रहे थे । सोपाक उन्हें देखकर उनके पास चला गया । भगवान् को अभिवादन कर, उसने भगवान से संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा मांगी ।
६. उस समय सोपाक की आयु केवल सात वर्ष की थी । भगवान् बुद्ध ने उसे अपने पिता की अनुमति लाने के लिये कहा ।
७. सोपाक जाकर अपने पिता को ही ले आया । पिता ने भगवान् को अभिवादन किया और प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र को संघ में प्रविष्ट कर लें ।
८. इस बात का ख्याल न कर कि वह "अछूत" है, भगवान् बुद्ध ने उसे संघ में प्रविष्ट कर लिया तथा उसे धम्म और विनय की शिक्षा दी ।
९. बाद में सोपाक एक स्थविर हुआ ।
१०. सुप्पिय और सोपाक बचपन से साथ ही साथ बड़े हुए थे । और क्योंकि सुप्पिय के पिता ने ही सोपाक का भी पालन-पोषण किया था, इसलिये सुप्पिय ने भी अपने साथी सोपाक से भगवान बुद्ध के धम्म की शिक्षा ग्रहण कर ली । उसने सोपाक से ही उसे प्रव्रजित करने की प्रार्थना भी की । जाति-वाद के हिसाब से सोपाक सुप्पिय की भी अपेक्षा 'निच' जाति का था ।
११. सोपाक ने स्वीकार किया, और सुप्पिय जो एक 'नीच' जाति का था और जिसका परम्परागत पेशा श्मशान की रखवाली था-- भी एक भिक्षु बन गया ।

४. सुमंगल तथा अन्य 'नीच' जाति वालों की धम्म-दीक्षा

१. सुमंगल श्रावस्ती का एक किसान था । वह दराती, हल और कुदाली से खेत मे काम कर के ही अपनी जीविका कमाता था ।
२. छन्न कपिलवस्तु का ही एक अधिवासी था और शुद्धोदन के ही घर का एक दास ।
३. धनिय राजगृह का रहने वाला था । वह एक कुम्हार था ।
४. 'कप्पर-कूर' श्रावस्ती में ही रहता था । बदन पर चीथडे, हाथ में खपर लिये भीख मांगते फिरना ही उसकी जीविका का एकमात्र साधन था । उसका नाम ही पड़ गया था -- "चीथडे-चावल" । बड़े होने पर वह घास बेच कर गुजारा करने लगा था ।
५. इन सभी ने भगवान् बुद्ध से संघ में प्रविष्ट होने की अनुज्ञा चाही । बिना उनकी नीच जाति की ओर देखे और बिना उनके पहले के पेशे की ओर देखे भगवान बुद्ध ने सभी को संघ में प्रविष्ट कर लिया ।

५. कुष्ठ-रोगी सुप्रबुद्ध की धर्म-दीक्षा

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेळुवन में विराजमान थे, जहाँ गिलहरियों को दाना चुगाया जाता था ।
२. उस समय राजगृह में एक आदमी रहता था, एक कोढी, नाम सुप्रबुद्ध । वह अत्यन्त अभागा था, अत्यन्त दरिद्र था और अत्यन्त दुःखी था ।
३. और ऐसा हुआ कि उस समय तथागत बड़े भारी जन-समूह से घिरे हूए धर्मोपदेश दे रहे थे ।

४. उस कृष्ट-रोगी सुप्रबुद्ध ने जब कुछ दूर से वह भीड देखी तो उसके मन में हुआ- "निस्सन्देह वहाँ लोगों को भीख बाँट रही होगी । मै भी यदि वहाँ निकट चला जाऊं तो मुझे भी खाने को कुछ न कुछ अवश्य मिल ही जायेगा ।"

५. इस प्रकार कोढी सुप्रबुद्ध उस भीड़ के समीप पहुंचा । वहाँ जाकर उसने देखा कि बड़े जन-समूह के मध्य बैठे तथागत धर्मोपदेश दे रहे हैं । उसने सोचा--"यहाँ भीख तो नहीं बँट रही है । यहाँ तो श्रमण गौतम का धर्मोपदेश हो रहा है । अच्छा, मैं धर्मोपदेश ही सुनूं ।"

६. वह यह निश्चय करके, एक ओर बैठ गया "मैं भी धर्मोपदेश सुनूंगा ।"

७. अपने चित्त से सभी उपस्थित लोगों के चित्त की दशा जानकर तथागत ने सोचा- "इन उपस्थित लोगों में कौन है जिसे धर्मविबोध हो सकता है?" तब तथागत ने वहीं एक ओर बैठे कोढी सुप्रबुद्ध को देखा । उसे देख कर तथागत ने जाना- "इसे धर्मविबोध हो सकता है ।"

८. तब उस कोढी सुप्रबुद्ध के लिए ही तथागत ने धर्मोपदेश दिया -- दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा आदि । उन्होंने काम-सुखों की तुच्छता और आस्रवों से मुक्ति-लाभ करने पर जोर दिया ।

९. जब तथागत ने देखा कि कोढी सुप्रबुद्ध का चित्त नरमा गया है, कमाया गया हैं, उपर उठ आया है तथा श्रद्धायुक्त हो गया है तब जो बुद्धों की सर्वोत्कृष्ट देशना है उसका उपदेश दिया- दुःख, दुःख का समुदाय, दुःख का निरोध तथा दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग ।

१०. जिस प्रकार एक स्वच्छ कपड़ा रंग को अच्छी तरह ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार उसी स्थान पर बैठे बैठे कोढी सुप्रबुद्ध को विरल, विमल प्रज्ञा प्राप्त हुई -- जो कुछ भी समुदय-धम्म है, वह सब निरोध-धम्म है । और कोढी सुप्रबुद्ध को सत्य के दर्शन हो गये, वह सत्य को प्राप्त हो गया, वह सत्य में निमग्न हो गया । वह सन्देह के उस पार चला गया । उसकी विचिकित्सा शान्त हो गई । उसमें विश्वास उत्पन्न हो गया । अब उसे और कुछ करणीय नहीं रहा । वह तथागत की देशना में सुप्रतिष्ठित हो गया । तब कोढी सुप्रबुद्ध अपने आसन से उठा और तथागत के कुछ समीप जाकर एक ओर बैठ गया ।

११. इस प्रकार बैठे हुए उसने तथागत से निवेदन किया- "अद्भुत है भगवान! अद्भुत है । जैसे कोई गिरे को ऊपर उठा ले, छिपे को उघाड़ दे, पथ-भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे, अन्धकार में प्रदीप प्रज्वलित कर दे ताकि जिन्हे आँख हैं वे रास्ता देख लें, इसी प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से धम्म की व्याख्या कर दी । मैं बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ग्रहण करता हूँ । भगवान् आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना शरणागत उपासक समझें ।"

१२. तब तथागत की वाणी द्वारा चेतनता और प्रसन्नता को प्राप्त हुआ कोढी सुप्रबुद्ध अपने स्थान से उठा और भगवान् को अभिवादन कर वहाँ से विदा हुआ ।

१३. दुर्भाग्यवश एक दुर्घटना हो गई । एक तरुण बछड़े ने रास्ते में उस कोढ़ी सुप्रबुद्ध को सींग खोभ कर जान से मार डाला ।

सातवाँ भाग : स्त्रियों की धम्म-दीक्षा

१. महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा तथा अन्य स्त्रियों की धम्म-दीक्षा

१ जब सिद्धार्थ कपिलवस्तु लौटे तो शाक्य स्त्रियाँ भी 'संघ' में प्रविष्ट होने के लिए उतनी ही उत्सुक थी जितने पुरुष ।
२. ऐसी स्त्रियों की अगुआ स्वयं महाप्रजापति गौतमी थी ।
३. जिस समय तथागत शाक्यों के न्यग्रोधाराम में ठहरे हुए थे, महाप्रजापति गौतमी उनके पास पहुँची और बोली- "भगवान! यह अच्छा होगा यदि स्त्रियों को भी तथागत के धम्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले ।"
४. "गौतमी! रहने दे । ऐसे विचार को मन में उत्पन्न न होने दे ।" दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने अपनी प्रार्थना दोहराई । दूसरी और तीसरी बार भी उसे वही उत्तर मिला ।
५. तब महाप्रजापति गौतमी बहुत ही दुःखित, चिन्तित हुई । उसने तथागत के सामने सिर झुकाया और आंखों मे आँसू लिए, रोती हुई चली गई ।
६. जब तथागत न्यग्रोधाराम से चारिका के लिये निकल पडे, तो महाप्रजापति गौतमी और शाक्य स्त्रियाँ इक्ट्ठी हुई और विचार करने लगी कि तथागत के प्रार्थना स्वीकार न करने पर, अब आगे क्या किया जाये ?
७. शाक्य स्त्रियों ने सोचा कि वे तथागत के इस इनकार को उनका "अन्तिम निर्णय" नहीं मानेंगी और किसी न किसी तरह तथागत को राजी करेंगी । उन्होने यह भी निर्णय किया कि वे एक कदम आगे जायेंगी और स्वयं 'परिव्राजिका' बनकर तथागत के सामने उपस्थित होंगी ।
८. तदनुसार महाप्रजापति गौतमी ने अपने बाल काटे, काषाय-वस्त्र पहना और दूसरी अनेक स्त्रियों को साथ लिये तथागत से भेंट करने के लिये निकली ।
९. धीरे-धीरे अन्य स्त्रियों के साथ महाप्रजापति गौतमी वैशाली के कूटागार- भवन में पहुंची । उस समय उसके पांव सूजे हुए थे और उन पर धूल चढी थी ।
१०. उसने अपनी वही प्रार्थना, जो उसने उस समय की थी, जब तथागत न्यग्रोधाराम में ठहरे हुए थे, दोहराई और तथागत ने भी फिर उसे पूर्ववत् ही अस्वीकार कर दिया ।
११. प्रार्थना के दुबारा अस्वीकृत हो जाने से प्रजापति गौतमी बहुत खिन्न हुई और कूटागार के दरवाजे के बाहर जाकर खड़ी हो गई । वह नहीं जानतीं थी कि अब वह क्या करे? जिस समय वह इस प्रकार खड़ी हुई थी, आनन्द ने कूटागार की ओर जाते समय, उसे देखा और पहचान लिया ।
१२. उसने महाप्रजापति से प्रश्न किया -- "तू यहाँ इस प्रकार बरामदे के बाहर क्यों खड़ी है? तेरे पाँव सूजे हैं । उन पर धूल चढी है । चेहरा दुःखी हैं । आंखों से आंसू बह रहे हैं ।" "आनन्द! क्योकि तथागत स्त्रियों को घर से बेघर हो उनके धम्म और विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की आज्ञा नही देते ।"
१३. तब आनन्द स्थविर वहां गये जहाँ तथागत थे और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । इस प्रकार बैठ कर आनन्द ने तथागत से निवेदन किया, "भगवान! महाप्रजापति गौतमी बरामदे के बाहर खड़ी है । उसके पाँव सूजे हैं । उन पर धूल चढी है । चेहरा दुःखी है । आँखो से आँसू बह रहे हैं । क्योकि तथागत स्त्रियों को, घर से बेघर हो तथागत के धम्म और विनय के अनुसार, प्रव्रजित होने की आज्ञा नहीं देते । भगवान यह अच्छा हो यदि महाप्रजापति गौतमी की इच्छा के अनुसार स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने की आज्ञा मिल जाये ।"
१४. "क्या महाप्रजापति गौतमी ने तथागत की विशेष सेवा नही की है जब मौसी की हैसियत से, तथागत की माता का शरीरान्त हो जाने पर, वह अपने स्तन से ही तथागत को दुग्ध-पान कराती रही है? यह अच्छा होगा, भगवान! यदि स्त्रियों को भी, घर से बेघर हो, तथागत के धम्म और विनय के अनुसार प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले ।"
१५. "आनन्द! रहने दो । तुम्हे यह न रूचे कि स्त्रियों को भी प्रव्रजित होने की अनुज्ञा मिले ।" दूसरी बार और तिसरी बार भी आनन्द ने अपनी प्रार्थना दोहराई और दूसरी तथा तीसरी बार भी आनन्द की प्रार्थना अस्वीकृत ही हुई ।
१६. तब आनन्द स्थविर ने तथागत से प्रश्न किया -- "भगवान! आपके द्वारा स्त्रियों को प्रव्रजित न होने देने का क्या कारण हो सकता है?"

१७. “भगवान जानते है कि ब्राह्मण का यह मत है कि शूद्र और स्त्रिया कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकतीं क्योकि वे अपरिशुद्ध होती है और पुरुषो के मुकाबले में निम्न जाति की होती है । इसीलीये वे शूद्रों और स्त्रियों को प्रव्रज्या नहीं लेने देते? तो क्या तथागत की दृष्टि भी ब्राह्मणों के समान ही है?”

१८. “क्या तथागत ने ठीक उसी प्रकार शूद्रों को भी संघ में प्रविष्ट नहीं किया है जैसे ब्राह्मणो को? भगवान! स्त्रियों से ही ऐसा भेद-भाव करने का क्या कारण है?”

१९. “क्या तथागत का यह मत है कि तथागत के धम्म और विनय के अनुसार चलकर स्त्रिया निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकती?”

२०. तथागत बोले -- “आनन्द! मुझे गलत तौर पर मत समझो । मेरा मत है कि पुरूषों की तरह ही स्त्रिया भी निर्वाण प्राप्त कर सकती है । आनन्द! मुझे गलत तौर पर मत समझो । मैं पुरूषों को स्त्रियों की अपेक्षा किसी भी तरह विशेष नहीं मानता । महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना को जो मैने स्वीकार नही किया है, वह स्त्रियों को पुरुषो की अपेक्षा हेय समझने के कारण नहीं, बल्कि व्यवहारिक कारणों से ही ।”

२१. “भगवान! मैं बड़ा प्रसन्न हूँ कि तथागत ने मुझ पर यथार्थ कारण प्रकट कर दिया है । लेकिन क्या व्यवहारिक कारणों से महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना सर्वथा अस्वीकृत होनी चाहिये? क्या ऐसा करने से लोग धम्म की निन्दा नहीं करेंगे? क्या लोग ऐसा नहीं कहेंगे कि तथागत के धम्म-विनय में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को हेय माना जाता है? क्या जिन व्यवहारिक कठिनाइयों की तथागत को चिन्ता है, उनसे बचने के लिए कुछ नियम नहीं बनाये जा सकते?”

२२. “अच्छा! आनन्द! यदि महाप्रजापति का इतना आग्रह है कि मेरे धम्म-विनय में उन्हें प्रव्रजित होने की अनुमति मिलनी चाहिये, तो मै इसे स्वीकार करता हूँ । लेकिन इसके लिये महाप्रजापति गौतमी को स्त्रियों की ओर से आठ बातें स्वीकार करनी होगी और स्त्रियों से उनका पालन कराना भी उसकी जिम्मेदारी होगी । यही महाप्रजापति की दीक्षा होगी ।”

२३. तब आनन्द स्थविर ने तथागत से उन आठ नियमों की जानकारी प्राप्त की और जाकर प्रजापति गौतमी को वह सब बातचीत सुना दी जो तथागत से हुई थी ।

२४. महाप्रजापति गौतमी बोली -- “आनन्द! जिस प्रकार अलंकार-प्रिय कोई कुमार या कुमारी, यदि स्तानान्तर उसे कमल के फूलों की, वा चमेली के फूलों की, वा अतिमुक्त की माला दी जाय और वह उसे दोनों हाथों में लेकर सिर पर रखे, उसी प्रकार आनन्द! मै इन आठो नियमों को अपने सिर पर जीवन-पर्यन्त पालन करने के लिये, धारण करती हूँ ।”

२५. तब आनन्द स्थविर तथागत के पास आये और अभिवादन कर एक और बैठ गये । एक और बैठ कर आनन्द स्थविर ने तथागत को कहा -- “महाप्रजापति गौतमी ने इन आठों नियमों के पालन कराने की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले ली है । इसलिये अब यह उसकी उपसम्पदा मान ली जाय ।”

२६. अब महाप्रजापति गौतमी ने प्रव्रज्या- उपसम्पदा ग्रहण की और उसके साथ ही उन पांच सौ शाक्य देवियों ने भी जो महाप्रजापति गौतमी के साथ चलकर आई थी । इस प्रकार प्रव्रजित-उपसम्पन्न होकर प्रजापति गौतमी तथागत के सामने आई और तथागत को अभिवादन किया । तथागत ने उसे धम्म और विनय की शिक्षा दी ।

२७. शेष पाँच सौ भिक्षुणियों को तथागत के ही एक शिष्य नन्दक ने धम्म और विनय की शिक्षा दी ।

२८. महाप्रजापति गौतमी के साथ जिन शाक्य-देवियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की अर्थात् भिक्षुणियां बनीं, उनमें यशोधरा भी थी । भिक्षुणी होने पर उसका नाम भद्दा कच्चाना (भद्रा कात्यायना) हुआ ।

२. प्रकृति नामक चंडालिका की धम्म-दीक्षा

१. उस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डक के जेतवनाराम में विराज रहे थे ।

२. तथागत का शिष्य आनन्द भिक्षार्थ नगर में गया था । भोजनानन्तर आनन्द पानी पीने के लिये नदी की ओर जा रहा था ।

३. उसने एक लड़की को देखा जो नदी से घड़े में पानी भर रही थी । आनन्द ने उससे पानी मांगा ।

४. लड़की का नाम प्रकृति था । बोली- “मैं चाण्डाल-कन्या हूँ । मैं पानी नहीं दे सकती ।”

५. आनन्द ने उत्तर दिया--“मुझे पानी चाहिऐ । मुझे तुम्हारी जाति नही चाहिये ।” तब लड़की ने आनन्द को अपने बरतन से कुछ पानी दिया ।

६. तब आनन्द जेतवन लौट आये । वह लड़की भी आनन्द के पीछे पीछे आई और आनन्द के निवास-स्थान का पता लगा लिया । उसने यह भी मालूम कर लिया कि उसका नाम आनन्द है और वह बुद्ध-शिष्य है ।

७. घर लौट कर उसने अपनी मां मातंगी से सारा वृत्तान्त कहा और जमीन पर लेट कर रोने लगी ।

८. मां ने रोने का कारण पूछा । लडकी बोली--"यदि तुम मेरा विवाह करना चाहती हो, तो मैं केवल आनन्द से करूँगी, मै किसी अन्य से नहीं करूँगी ।"

९. माता ने पता लगाया । लौट कर लड़की से बोली -- "विवाह असम्भव हैं । क्योकि आनन्द ने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर रखा हैं ।"

१०. यह बात सुनी तो लड़की बहुत दुःखी हुई । उसने खाना-पीना छोड दिया । वह इसे भाग्य-रेखा स्वीकार करने को तैयार न थी । इसलिये उसने कहा -- "मां! तुम जादू-टोना जानती हो । क्यों नहीं? तो तुम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्यो जादू-टोना नहीं करतीं?" मां बोली -- "मै देखूंगी कि क्या हो सकता है ।"

११. मातंगी ने आनन्द को भोजन के लिए निमंत्रण दिया । लड़की बहुत प्रसन्न हुई । मातंगी ने तब आनन्द को कहा कि उसकी लड़की उससे शादी करने लिये अत्यन्त व्याकुल है । आनन्द ने उत्तर दिया, " मै ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर चुका हूँ । मै किसी भी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता ।"

१२. मातंगी बोली -- "यदि तुम मेरी लडकी से विवाह नहीं करते, तो वह आत्महत्या कर लेगी । उसकी तुम्हारी प्रति इतनी अधिक आसक्ति है ।" आनन्द का उत्तर था- "मै असमर्थ हूँ ।"

१३. मातंगी घर में गई और लडकी से कहा कि आनन्द तो विवाह करने से इनकार करता है ।

१४. लड़की चिल्लाई -- "मां! तुम्हारा मन्तर-जन्तर कहां गया?" मातंगी बोली- "मेरा मन्तर-जन्तर तथागत के मन्तर-जन्तर के विरुद्ध असर नहीं करता ।"

१५. लड़की चिल्लाई -- "मां! दरवाजा बन्द कर दे । उसे बाहर न जाने दे । मैं देखूंगी कि आज ही रात को वह मुझे पत्नी रूप में कैसे नहीं ग्रहण करता?"

१६. मां ने वैसा ही किया, जैसा लड़की चाहती थी । रात होने पर मां ने कमरे में बिस्तर लगा दिया । लड़की ने अपने आप को अच्छी से अच्छी तरह अलंकृत किया और अन्दर आई । आनन्द पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पडा ।

१७. अन्त में मां ने अपने जादू-टोने का प्रयोग किया । परिणाम- स्वरूप कमरे में आग जल उठी । मां ने आनन्द के कपड़ों को पकड़ा और बोली-- "यदि तुम अब भी मेरी लड़की से विवाह करना स्वीकार नहीं करते तो मैं तुम्हें आग में झोंक दूंगी ।" तब भी आनन्द झुका नहीं । मां और लड़की दोनों को हार माननी पड़ी । उन्होंने आनन्द को स्वतन्त्र कर दिया ।

१८. वापिस लौटकर आनन्द ने सारी आप-बीती तथागत को कह सुनाई ।

१९. दूसरे दिन वह लड़की आनन्द को खोजती हुई जेतवन पहुंची । आनन्द भिक्षाटन लिए निकल रहे थे । उसे देखा तो उससे बच निकलना चाहा । लेकिन जहां जहां आनन्द गया, लड़की ने पीछा किया ।

२०. जब आनन्द लौटा तो उसने देखा कि लड़की जेतवन बिहार के दरवाजे पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है ।

२१. आनन्द ने तथागत से कहा कि किसी प्रकार वह लड़की उसका पीछा नहीं छोड़ती हैं । तथागत ने उसे बुलावा भेजा ।

२२. जब लड़की सामने आई तथागत ने प्रश्न किया -- "तू आनन्द का पीछा किसलिये कर रही है?" लडकी का उत्तर था कि वह उससे विवाह करके रहेगी । बोली -- "मैने सुना है कि वह अविवाहित है । मै भी अविवाहित हूँ ।"

२३. भगवान बुद्ध बोले -- "आनन्द! भिक्षु है । उसके सिर पर बाल नहीं हैं । यदि तुम भी उसी की तरह मुण्डन करा लो तो मैं देखूंगा कि कुछ हो सकता है ।"

२४. लड़की बोली -- "मै इसके लिए तैयार हूँ ।" भगवान बुद्ध ने कहा- "मुण्डन कराने से पूर्व तुम्हें अपनी मां से अनुमति लेनी होगी ।"

२५. लडकी मां के पास आई और बोली -- "मां! जो तुम नहीं कर सकी, वह मै कर सकी हूँ । भगवान बुद्ध ने वचन दिया है कि यदि मै मुण्डन करा लू तो वह आनन्द से मेरा विवाह करा देंगें ।"

२६ मां क्रुद्ध होकर बोली, "तुम्हे ऐसा नहीं करना चाहिए । तुम मेरी लड़की हो और तुम्हें सर के बाल रखने चाहिए । तुम आनन्द जैसे श्रमण से शादी करने के लिए इतना क्यों तड़पती हो? मै किसी अच्छे आदमी से तुम्हारी शादी करा दूंगी ।"

२७. उसका उत्तर था -- "या तो मै आनन्द से शादी करूंगी, या मर जाऊंगी । तीसरी बात होने को ही नहीं है ।"

२८. मां बोली -- "तुम मेरा अपमान क्यों कर रही हो?" लड़की बोली -- "यदि मैं तुम्हे प्रिय हूँ तो जैसा मैं चाहूँ वैसा मुझे करने दो ।"

२९. मां ने अपना विरोध वापस ले लिया और लड़की ने मुण्डन करा लिया ।

३०. तब लड़की तथागत के सामने उपस्थित हुई । बोली- "आपके आदेश के अनुसार मैंने अपना मुण्डन करा लिया है ।"

३१. तथागत ने कहा -- "आखिर तू चाहती क्या है? उसके शरीर का कौन सा हिस्सा है जिससे तुझे प्रेम है?" लड़की बोली- "मै उसकी नाक से प्यार करती हूँ । मैं उसके मुंह से प्यार करती हूँ । मैं उसके कानों से प्यार करती हूँ । मै उसकी आवाज से प्यार करती हूं । मैं उसकी आंखों से प्यार करती हू । मैं उसकी चाल से प्यार करती हूँ ।"

३२. तब तथागत बोले, “क्या तुम जानती हो कि आखें आँसुओं का अड्डा मात्र हैं । नाक सींढ का घर है । मुंह मे थुक ही भरा रहता है । कानों में मैल ही मैल होता है और शरीर मल-मूत्र का खजाना मात्र हैं ।”
३३. जब स्त्री-पुरुष सहवास करते हैं वे बच्चों को जन्म देते हैं । जहा जन्म है वहीं मृत्यु भी हैं । जहा मृत्यु है वहीं दु:ख भी है । लडकी! मै नहीं जानता, कि आनन्द से शादी करके तू क्या पायेगी?”
३४. लडकी गम्भीरतापूर्वक सोचने लगी और इस परिणाम पर पहुँची कि आनन्द से शादी करना बेकार है, जिसके लिये वह मरी जा रही थी । उसने अपना यह मत तथागत पर प्रकट कर दिया ।
३५. तथागत को अभिवादन कर लड़की बोली- “अज्ञान के वशीभूत होकर ही मैं आनन्द के पीछे लगी थी । अब मेरी आंखे खुल गई हैं । मैं उस नाविक की तरह हूँ जिसकी नौका एक दुर्घटना के बाद दूसरे किनारे जा लगी है । मैं एक आरक्षित वृद्ध पुरुष की तरह हूँ जिसे सुरक्षा मिल गई है । मैं उस अन्धे पुरुष की तरह हूँ जिसे दृष्टि प्राप्त हो गई है । तथागत के ज्ञानामृत ने मेरी निद्रा भंग कर दी है ।”
३६. “भाग्यवान् है हे प्रकृति! यद्यपि तू चाण्डाल-कन्या है किन्तु तू श्रेष्ठ पुरुषो और स्त्रियों के लिये आदर्श का काम देगी । तू ‘नीच’ जाति की है सही, लेकिन ब्राह्मण तुझसे शिक्षा ग्रहण करेंगे । न्याय तथा धम्म के पथ से विचलित न होना । तेरी कीर्ति राज-सिंहासन पर बैठी हुई रानियों की कीर्ति से बढ़ जायेगी ।”
३७. शादी की बात जाती रही तो अब उसके सामने ‘भिक्षुणी-संघ’ में प्रविष्ट होने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग न था ।
३८. उसने इच्छा प्रकट की तो वह भिक्षुणी-संघ में ले ली गई । यूं निस्सन्देह वह ‘नीचतम’ जाति की थी ।

आठवाँ भाग : पतितों तथा अपराधियों की धम्म-दीक्षा

१. एक आवारे की धम्म-दीक्षा

१. उस समय राजगृह में एक अत्यन्त असंयत आदमी रहता था, जो न अपने माता-पिता का ही आदर करता था, न दूसरे बड़े बूढ़ों का। जब भी उससे कोई पाप-कर्म हो जाता तो वह सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि-देवता की ही पूजा किया करता था ताकि उसे पुण्य लाभ हो और वह अपने में मस्त रहे।
२. तीन साल तक लगातार पूजा और बलिदान आदि में इतना शरीरिक कष्ट उठाने पर भी उसे किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिली।
३. अन्त में उसने श्रावस्ती पहुंचकर तथागत से भेट करने की सोची। वहां पहुंचा और जब उसने तथागत के तेजपूर्ण व्यक्तित्व के दर्शन किये, वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और अपनी अपरिमित प्रसन्नता प्रकट की।
४. तब तथागत ने उसे बताया कि पशुओं की बलि देना मूर्खता है, और ऐसे उपचारों में भी जिनमें आदरणीयों का आदर नहीं होता। अन्त में उन्होंने कुछ गाथायें कहीं। उस समय वह सारा स्थान उनके तेज से प्रकाशित हो गया।
५. तब उस गांव के रहने वाले, विशेष रूप से बच्चों के माता-पिता तथागत की सेवा के लिये आये।
६. बच्चों के माता-पिता को देखकर और उन्होंने अपने बच्चों के बारे में जो कुछ बताया उसे सुनकर तथागत मुस्कराये और ये गाथायें कहीं-
७. "श्रेष्ठ आदमी ईर्षा से सर्वथा मुक्त होता है। उसका दिमाग खुला होता है और वह खुले प्रकाशयुक्त स्थान पर ही रहता है। यदि कभी उस पर कोई मुसीबत भी आ पड़ती है, वह घबराता नहीं, वह विचलित नहीं होता। उस समय भी वह अपनी बुद्धि का ही परिचय देता हैं।"
८. "श्रेष्ठ आदमी सांसारिक बातों से सरोकार नहीं रखता। वह न धन की इच्छा रखता है, न संतान की और न जगह-जमीन की। वह सावधान रहकर शील का पालन करता है। वह प्रज्ञा के पथ पर चलता है और विचित्र-विचित्र सिद्धान्तो का अनुसरण नहीं करता।"
९. "श्रेष्ठ आदमी अनित्यता के रूप को भली प्रकार समझ कर और यह जानकर कि यह संसार बालू में जमे वृक्ष के समान है, अपने अस्थिर चित्त मित्र को स्थिरता के पथ पर और अपने अपवित्र-शील मित्र को पवित्रता के पथ पर लाने का पूरा पूरा प्रयास करता है।"

२. डाकू अंगुलिमाल की धम्म-दीक्षा

१. कोशल-नरेश प्रसेनजित् के राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता था, जिसके हाथ सदा रक्त से रंगे रहते, जिसका काम ही था आदमियों को सदा जख्मी करते रहना और उनकी जान लेते रहना और जिसके मन में किसी भी प्राणी के लिये कोई दया न थी। उसके कारण जो पहले गांव थे, वे अब गांव नहीं रहे थे; जो पहले नगर थे, वे अब नगर नहीं रहे थे; जो पहले इलाके थे, वे अब इलाके नहीं रहे थे।
२. जिस किसि आदमी की भी वह हत्या करता था, वह उसकी एक अँगुली काट कर अपनी माला में पिरो लेता था - इसीलिये उसका नाम अंगुलिमाल पड़ा।
३. एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवनाराम में विराजमान थे, उन्होनें डाकू अंगुलिमाल के अत्याचारों की कहानी सुनी। तथागत ने उस डाकू को एक संत पुरुष में बदल देने का निश्चय किया। इसलिये एक दिन भोजनान्तर, पात्र-चीवर धारण कर, जिधर अंगुलिमाल के होने की बात सुनी जाती थी, उधर ही चल दिये।
४. उन्हें उधर जाते देख, ग्वाले, बकरियां चराने वाले, हल जोतने वाले और दूसरे रास्ता चलने वाले सभी मुसाफिर चिल्ला उठे- "श्रमण! उधर मत जा। अंगुलिमाल के हाथ में पड़ जायेगा।"
५. "जब दस, बीस, तीस और चालीस आदमी तक भी इकट्ठे मिलकर यात्रा करते है; तब भी वह उस डाकू के काबू में आ जाते हैं।" लेकीन तथागत बिना एक भी शब्द बोले अपने पथपर आगे बढते ही रहे।

६. दुसरी और तीसरी बार भी इन आस-पास के लोगो ने तथा अन्य भी सभी लोगो ने तथागत को सावधान किया। किन्तु तथागत अपने पथ पर आगे बढते ही गये।
७. कुछ दूर से डाकू ने तथागत को उस ओर आगे बढ़ते आते देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब दस-बीस..... चालिस, पचास आदमी तक भी इकट्ठे मिल कर उस और आने का साहस नहीं करते, यह 'श्रमण' अकेला ही उस और आगे बढ़ा चला आ रहा है! डाकू ने 'श्रमण' की हत्या करने का विचार किया। उसने अपनी ढाल-तलवार ली, तीर और तूणीर संभाले और तथागत का पीछा किया।
८. तथागत अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़े चले जा रहे थे, किन्तु डाकू अपने पूरे जोर से उनका पीछा करने पर भी उनको पकड़ नहीं पा रहा था।
९. डाकू ने सोचा- "यह विचित्र बात है! यह अद्भुत बात है! अभी तक ऐसा था कि पूरी गति से भागे जाते हुए एक हाथी, एक घोडे, एक गाड़ी और एक हिरण तक को मैं पा ले सकता था, और अब मैं पूरा जोर लगाकर भी स्वाभाविक गति से जाते हुए इस श्रमण को भी नहीं पकड पा रहा हूँ।" तो वह रूक गया और उसने चिल्लाकर तथागत को भी कहा- "रूको।"
१०. जब दोनों मिले, तथागत ने कहा- "अंगुलिमाल। मैं तो रुका हूँ। अब तू भी पाप-कर्म करने से रूक। मै इसीलिये यहा तक आया हूँ कि तू भी सत्यपथ का अनुगामी बन जाये। तेरे अन्दर का 'कुशल' अभी मरा नहीं है। यदि तू इसे केवल एक अवसर देगा तो यह तुम्हारी काया पलट देगा।"
११. अंगुलिमाल पर तथागत के वचनामृत का प्रभाव पडा। बोला- "आखिर इस मुनि ने मुझे जीत ही लिया।
१२. "और अब जब आपकी दिव्य वाणी मुझे हमेशा के लिये पाप-विरत होने को कह रही है, तो मै इस अनुशासन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।"
१३. अंगुलिमाल ने अपने गले में से अंगुलियों की माला उतार कर दूर फेंक दी और तथागत के चरणों पर गिर कर 'धम्म-दीक्षा' की याचना की।
१४. देवताओं और मनुष्यों के शास्ता तथागत बोले- "भिक्षु! आ।" अंगुलिमाल उसी समय "भिक्षु" बन गया।
१५. भिक्षु अंगुलिमाल को अपना अनुचर बनाकर तथागत श्रावस्ती के जेतवनाराम को वापिस लौट गये। ठीक उसी समय राजा प्रसेनजित के महल के आँगन में एक बड़ी भारी भीड चिल्ला-चिल्ला कर राजा से कर रही थी- "तुम्हारे राज्य में जो अंगुलिमाल डाकू है, वह बहुत अत्याचार कर रहा है, जुल्म ढा रहा हैं, निर्दोष लोगों को जान से मार रहा है और उन्हे जख्मी बना रहा है। जिन लोगो को वह जान से मारता है, उनकी अंगुलियां काट- काटकर वह माला में पिरो लेता है और उसे अभिमान पूर्वक धारण करता है। महाराज! उसका दमन करें।" प्रसेनजित् ने उसका मूलोच्छेद कर डालने का आश्वासन दिया। लेकिन वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ रहा।
१६. एक दिन राजा प्रसेनजित तथागत के दर्शनार्थ जेतवन गया। तथागत ने प्रश्न किया- "राजन्! क्या मगध के नरेश सेनिय बिम्बिसार के साथ मामला कुछ गड़बड़ाया है या वैशाली के लिच्छवियों के साथ अथवा किसी अन्य विरोधी शक्ति के साथ?"
१७. "भगवान! इस प्रकार की तो कोई बात नहीं हैं। किन्तु मेरे राज्य मे अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता है, जो मेरी प्रजा कों बहुत कष्ट दे रहा है। मैं उसका दमन करना चाहता हूँ, किन्तु मैं असमर्थ सिद्ध हुआ हूँ।"
१८. "राजन्! यदि आप अब देखें कि अंगुलिमाल के दाढ़ी-मूंछ मुण्डे हैं, उसने काषाय वस्त्र धारण कर रखा है, वह एक भिक्षु है, न वह किसी को मारता है, न चोरी करता है, न झूठ बोलता है, एकाहारी है और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है तो आप उससे कैसा व्यवहार करें?"
१९. "भगवान! या तो मै उसे अभिवादन करूँगा, या उसके आगमन पर खडा हो जाऊँगा, या उसे बैठने का निमंत्रण दूंगा, या उसे चीवर तथा भिक्षु की अन्य आवश्यकतायें स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करूंगा अथवा मैं उसकी रक्षा सुरक्षा की व्यवस्था करूँगा- जिसका वह अधिकारी है। लेकिन इतना दुष्ट और इतना पतित ऐसा शीलवान् हो ही कैसे सकता है?"
२०. उस समय भिक्षु ने अंगुलिमाल भगवान् से नातिदूर ही थे। भगवान् अपना दाहिना हाथ निकाला और उसकी ओर संकेत करके कहा- "राजन! यह है अंगुलिमाल।"
२१. राजा ने यह देखा तो वह जैसे गूंगा ही हो गया। उसके रोंगटे खड़े हो गये। यह देख तथागत ने कहा -- "राजन्! भय मत मानें। यहाँ भय का कोई कारण नहीं है।"
२२. राजा का भय और घबराहट दूर हुई तो वह अंगुलिमाल के पास गया और बोला- "पूज्यवर! क्या आप सचमुच अंगुलिमाल है?" "राजन्! हाँ।"

२३. "आपके पिता का क्या गोत्र था? और आपकी माता का क्या गोत्र था?" "राजन्! मेरा पिता गार्ग्य था और मेरी माता मैत्रायणी ।"
२४. "गार्ग्य-मैत्रायणी-पुत्र! प्रसन्न हो । मैं अब से आप की सब आवश्यकतायें पूरी करूँगा ।"
२५. उस समय अंगुलिमाल ने व्रत ले लिया था कि वह अरण्य में ही रहेगा, भिक्षा पर ही निर्वाह करेगा और तीन से अधिक चीवरों का व्यवहार नहीं करेगा और मैं तीन चीवर भी पंसू-कूलिक होंगे अर्थात् कूड़े-कचरे के ढ़ेर पर पड़े मिले हुए कपड़े के बने होंगे । उसने यह कहकर कि उसके तीन चीवर उसके पास हैं, राजा का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया ।
२६. तब राजा भगवान के पास गया और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर एक और बैठ कर बोला- "भगवान! यह आश्चर्य है । यह अदभूत है । आप जंगली को पालतू बना लेते हैं । अदान्त को दान्त कर देते है । अशान्त को शान्त बना देते हैं । यही यह है जिसे मै लाठी-तलवार से वश में नही कर सका । लेकिन! भगवान ने उसे बिना किसी लाठी-तलवार के वश में कर लिया है । भगवान! अब मैं आपसे विदा मांगता हूँ । मुझे बहुत से कार्य हैं ।"
२७. "आप जिसका समय समझें ।" तब राजा प्रसेनजित् अपने स्थान से उठा और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अभिवादन कर विदा हुआ ।
२८. एक दिन जब पात्रचीवर धारण किये अंगुलिमाल श्रावस्ती में भिक्षाटन कर रहा था, एक आदमी ने उसके सिर पर ढेला फेंक कर मारा, दूसरे ने एक डण्डा फेंक कर मारा और तीसरे ने एक ठीकरा फेंक कर मारा । सिर से रक्त बहने लगा । भिक्षा-पात्र टूट गया । वस्त्र फट गये । ऐसी ही अवस्था में अंगुलिमाल भगवान बुद्ध के पास पहुँचा । वह समीप आया तो भगवान् बुद्ध ने कहा- "अंगुलिमाल! यह सब सहन कर । अंगुलिमाल! यह सब सहन कर ।"
२९. इस प्रकार भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को अंगीकार करने से अंगुलिमाल डाकू एक सन्त-पुरूष बन गया ।
३०. मुक्ति-सुख का आनन्द लेते हुए उसने कहा- "जो पहले प्रमादी रहकर भी बाद में अप्रमादी हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चन्द्रमा की तरह लोक को प्रकाशित कर देता है ।"
३१. "मेरे शत्रु भी इस शिक्षा को सीखें, इस मत को मानें और प्रज्ञा के पथ को अंगीकार करें । मेरे शत्रु भी समय रहते मैत्री, विनम्रता और क्षमा-शीलता की शिक्षा ग्रहण करें । वे तद्नुसार आचरण करें ।"
३२. "अंगुलिमाल के रूप में मैं पतनोन्मुख था, मेरी अधोगति थी, मैं धारा में नीचे की और बहा जा रहा था । तथागत ने मुझे स्थल पर लाकर खड़ा कर दिया । अंगुलिमाल के रूप में मैं खून रँगे हाथ वाला था; अब मैं सम्पूर्ण रूप से मुक्त हूँ ।"

३. दूसरे अपराधियो की धम्म-दीक्षा

१. राजगृह के दक्षिण की ओर एक बड़ा पर्वत था- नगर से कोई पचहत्तर मील ।
२. इस पर्वत में से होकर एक दर्रा जाता था- बड़ा गहरा और बड़ा सूना । दक्षिण-भारत का रास्ता इसी दर्रे में से होकर गुजरता था ।
३. इस तंग दर्रे में पांच सौ डाकू रहते थे, जो इस दर्रे में से गुजरने वाले राहियों की लूट-मार करते थे ।
४. राजा ने उनका दमन करने के लिये सेनायें भेजीं । लेकिन हर बार वे बच निकलते थे ।
५. क्योकि बुद्ध इस स्थान से बहुत दूर नही थे, इसलिये उन्होंने उन लोगों की स्थिति पर विचार किया । उन्होंने सोचा कि ये लोग यह भी नहीं जानते हैं कि इनका आचरण दुराचरण है । यद्यपि इन्ही जैसे लोगों को शिक्षित करने के लिये मैंने जन्म धारण किया है, तब भी न तो इन लोगों ने मुझे देखा है और न मेरी सीख सुनी है । तथागत ने उनके पास पहुँचने का निश्चय किया ।
६. उन्होंने एक धनी घुड-सवार का रूप बनाया और एक अच्छे घोड़े पर सवार हुए । कन्धे पर धनुष और तलवार थी, खुलीं में सोना-चाँदी भरा था और घोड़े की लगाम आदि को कीमती जवाहरात जड़े थे ।
७. उस तंग दर्रे में प्रवेश करने पर घोड़ा जोर से हिनहिनाया । उसकी आवाज सुनकर पांच सौ डाकू उठ खड़े हुए और उस घुड़सवार को देखकर बोले- "हमें लूटने के लिये इतना माल एक साथ कभी नही मिला । इसे हम पकड़े ।"
८. उन्होंने घुड़सवार को घेर लेना चाहा ताकि वह बचकर भाग न जाय, लेकिन उसे देखकर वह जमीन पर गिर पड़े ।
९. जब वे जमीन पर गिरे तो सभी चिल्लाने लगे- "हे भगवान्! यह क्या है? हे भगवान्! यह क्या है?"
१०. तब उस घुडसवार ने उन्हे समझाया कि उस दुःख के मुकाबले में, जो सारे संसार को घेरे हुए है तुम जो दुसरों को दुःख देते हो स्वयं उठाते हो, कुछ नहीं; और इसी प्रकार अश्रद्धा और विचिकित्सा की चोट के सामने वह चोट जो स्वयं खाते हो और दूसरों को पहुँचाते हो, वह भी कुछ नहीं । धम्म-देशना के प्रति पूरी एकाग्रता ही इन जख्मों को भर सकती हैं ।

११. मानसिक दु:ख के समान कोई जख्म नहीं । मूर्खता के समान कोई चुभने वाला तीर नहीं । धम्म-शिक्षा ही इनकी चिकित्सा है । इसी से अन्धों को आंख मिलती है और अज्ञानियों को ज्ञान मिलता हैं ।
१२. आदमी इसी प्रकाश के पीछे-पीछे चलते हैं, जैसे अंधों को आंख मिल गई हो ।
१३. इससे अश्रद्धा का नाश होता है, यह मानसिक दु:ख को दूर करती हैं, इससे प्रीती प्राप्त होती है, और यह विमल-प्रज्ञा उसीको प्राप्त होती है जो ध्यान से (धम्मोपदेश) सुनता हैं ।
१४. जिसने सबसे अधिक पुण्य प्राप्त किया है, वही इस पद का अधिकारी है ।
१५. यह सुना तो डाकुओं ने अपने दुष्कृत्यों पर पश्चाताप किया । उनके शरीर में तो तीर लगे थे, वे अपने आप निकल आये, और उनके जख्म भर गये ।
१६. तब वे श्रावक बन गये । उन्हें शान्ति प्राप्त हो गई ।

४. धम्म-दीक्षा में खतरा

१. पुराने समय में भगवान् बुद्ध राजगृह से कोई पौने दो सौ मील की
दूरी पर पर्वतों से भरे एक प्रदेश में रहते थे । इन पर्वतों में कोई १२२ आदमियों का एक गिरोह रहता था, जो जानवरों को मार कर उनके मांस से ही अपना काम चलाता था ।
२. बुद्ध वहाँ पहुँचते हैं और जिस समय पुरूष बाहर शिकार खेलने गये हुए थे, उनकी अनुपस्थिति में उनकी स्त्रियों को धम्म-दीक्षित कर देते हैं । तदनन्तर वे कहते हैं-
३. जो दयावान है वह किसी प्राणी की हत्या नहीं करता, वह प्राणियों के जीवन को सुरक्षित रखता है ।
४. धम्म अमर है । जो धम्मानुसार आचरण करता है, उसे किसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता ।
५. "विनम्रता, सांसारिक भोगों के प्रति उपेक्षा, किसी को कष्ट न पहुँचाना, किसी को क्रोधित नहीं करना- यह ब्रह्मलोकवासियो के लक्षण हैं ।"
६. दुर्बलों के प्रति सदा मैत्री, बुद्ध की शिक्षा के अनुसार निर्मलता, पर्याप्ति खा चुकने पर भोजन की मात्रा की जानकारी - यह सब बार बार जन्म लेने और मरने से छूटने के साधन हैं । इन बुद्ध वचनों को सुनकर स्त्रियाँ अपने घर वालों की अनुपस्थिति में ही बुद्ध के धम्म में दीक्षित हो गई । जब उनके पुरूष लौटे तो वे बुद्ध को मार ही डालना चाहते थे, किन्तु उनकी स्त्रियों ने रोक लिया । बाद में मैत्री- सूक्त के पदों को सुन के भी धम्म-दीक्षित हो गये ।
७. और तब भगवान् बुद्ध ने ये पंक्तियाँ भी कहीं :
८. "जो मैत्री-भावना का अभ्यास करता है और सबके प्रति दयालू रहता है उसे ग्यारह लाभ होते हैं ।"
९. "उसका शरीर सदा सुखी रहता है, वह हमेशा मीठी नींद सोता है, उसका चित्त एकाग्र रहता है ।"
१०. "उसे दु:स्वप्न नहीं हैं । उसकी देवता भी रक्षा करते हैं । वह आदमियों का प्रिय होता है । उसे विषैले जीवों का खतरा नहीं होता । वह युद्ध-कष्ट से बचा रहता है । अग्नि या जल से उसकी हानि नहीं होती ।"
११. "वह जहां भी रहता है (अपने कार्य में) सफल होता है । मरने पर ब्रह्मलोकगामी होता है, ये ग्यारह लाभ (आनिसंस) हैं ।"
१२. इन वचनों का उपदेश ग्रहण कर चुकने पर, स्त्रियो तथा पुरूषों ने सभी ने- धम्म-दीक्षा ग्रहण की । वे संघ में सम्मिलित हो गये । और उन्होंने शान्ति-लाभ किया ।

तृतीय खंड

बुद्ध ने क्या सिखाया

पहला भाग - धम्म मैं भगवान बुद्ध का अपना स्थान

दुसरा भाग - भगवान बुद्ध के धम्म के बारे मे विविध मत

तीसरा भाग - धम्म क्या है?

चवथा भाग - अ-धम्म क्या है?

पाचवा भाग - सद्धम्म क्या है?

प्रथम भाग : 'धम्म' मे भगवान बुद्ध का अपना स्थान

१. भगवान बुद्ध ने अपने धम्म में, अपने लिये कुछ भी विशेष स्थान नहीं रखा।

१. ईसा ने ईसाइयत का पैगम्बर होने का दावा किया।
२. इससे आगे उसने यह भी दावा किया कि वह खुदा का बेटा है।
३. ईसा ने यह भी कहा कि जब तक कोई आदमी यह न स्वीकार करे कि ईसा खुदा का बेटा है, तब तक उसकी मुक्ति हो ही नहीं सकती।
४. इस प्रकार ईसा ने किसी भी ईसाई की मुक्ति के लिये अपने आपको ईश्वर का पैगम्बर और बेटा मानने की अनिवार्य शर्त रख कर, ईसाइयत में अपने लिये एक खास स्थान सुरक्षित कर लिया।
५. इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद साहब का दावा था कि वह खुदा द्वारा भेजे गये इस्लाम के पैगाम-बर थे।
६. उनका यह भी दावा था कि कोई आदमी निजात (-मुक्ति) लाभ नहीं कर सकता जब तक वह ये दो बातें और न स्वीकार करे।
७. जो इस्लाम में रह कर मुक्ति-लाभ करना चाहता हो, उसे यह स्वीकार करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के पैगम्बर हैं।
८. जो इस्लाम मे रह कर मुक्ति-लाभ करना चाहता हो, उसे आगे यह भी स्वीकार करना होगा कि मुहम्मद साहब खुदा के आखिरी पैगम्बर थे।
९. इस प्रकार इस्लाम में मुक्ति केवल उन्ही के लिये सम्भव है जो ऊपर की दो बातें स्वीकार करें।
१०. इस तरह मुहम्मद साहब ने किसी भी मुसलमान की मुक्ति अपने को खुदा का पैगम्बर मानने की अनिवार्य शर्त पर निर्भर करके अपने लिये इस्लाम मे एक खास स्थान सुरक्षित कर लिया।
११. भगवान् बुद्ध ने कभी कोई ऐसी शर्त नहीं रखी।
१२. उन्होने शुद्धोदन और महामाया का प्राकृतिक-पुत्र होने के अतिरिक्त कभी कोई दूसरा दावा नहीं किया।
१३. उन्होंने ईसा मसीह या मुहम्मद साहब की तरह की शर्ते लगा कर अपने धम्म-शासन में अपने लिये कोई खास स्थान सुरक्षित नहीं रखा।
१४. यही कारण है कि इतना वाङमय रहते हुए भी हमें बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन के बारे में इतनी कम जानकारी हैं।
१५. जैसा ज्ञात ही है कि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर राजगृह में प्रथम संगीति (कान्फ्रेंस) हुई थी।
१६. उस संगीति में महाकाश्यप अध्यक्ष थे। आनन्द, उपालि और अन्य दूसरे लोग, जो कपिलवस्तु के ही थे, जो जहां-जहां वे गये प्राय: हर जगह उनके साथ थे, घूमे और मृत्यु-पर्यन्त साथ रहे, वहां उपस्थित थे।
१७. लेकिन अध्यक्ष महाकाश्यप ने क्या किया?
१८. उन्होंने आनन्द को "धम्म" का संगायन करने के लिये कहा और तब 'संगीति-कारकों' से पूछा कि "क्या यह ठीक है?" उन्होंने "हां" में उत्तर दिया। महाकाश्यप ने तब प्रश्न को समाप्त कर दिया।
१९. तब महाकाश्यप ने उपालि को "विनय" का संगायन करने के लिये कहा और संगीति-कारकों से पूछा कि "क्या यह ठीक है?" उन्होंने "हाँ" में उत्तर दिया। महाकाश्यप ने तब प्रश्न समाप्त कर दिया।
२०. तब महाकाश्यप को चाहिये था कि वह किसी तीसरे को जो संगीति में उपस्थित था, आज्ञा देते कि वह भगवान् बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का संगायन करे।
२१. लेकिन महाकाश्यप ने ऐसा नहीं किया। उन्होने सोचा कि "धम्म" और "विनय" - यही दो विषय ऐसे है जिनसे संघ का सरोकार है।
२२. यदि महाकाश्यप ने भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनाओं का एक ब्योरा तैयार करा लिया होता, तो आज हमारे पास भगवान् बुद्ध का एक पूरा जीवन चरित्र होता।
२३. भगवान् बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का एक ब्योरा तैयार करा लेने की बात महाकाश्यप को क्यों नहीं सूझी?
२४. इसका कारण उपेक्षा नहीं हो सकती। इसका केवल एक ही उत्तर है कि भगवान बुद्ध ने अपने ये 'धम्म-शासन' में अपने लिये कोई विशेष स्थान सुरक्षित नहीं रखा था।
२५. भगवान् बुद्ध अपने धम्म से सर्वथा पृथक थे। उनका अपना स्थान था, धम्म का अपना।
२६. भगवान् बुद्ध ने किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाने से इनकार किया, यह भी इस बात का उदाहरण या प्रमाण है कि वह अपने 'धम्म-शासन' में अपने लिये कोई स्थान सुरक्षित रखना नहीं चाहते थे।

२७. दो तीन बार भगवान् बुद्ध के अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की कि वे किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें ।
२८. हर बार भगवान् बुद्ध ने अस्वीकार किया ।
२९. उनका उत्तर था, "धम्म ही धम्म का उत्तरधिकारी हैं ।"
३०. "धम्म को अपने ही तेज से जीवित रहना चाहिये; किसी मानवीय अधिकार के बल से नहीं ।"
३१. "यदि धम्म को मानवीय अधिकार पर निर्भर रहने की आवश्यकता है, तो वह धम्म नहीं ।"
३२. "यदि धम्म की प्रतिष्ठा के लिये हर बार इसके संस्थापक का नाम रटते रहने की आवश्यकता है, तो वह धम्म नहीं ।"
३३. अपने धम्म को लेकर स्वयं अपने बारे में भगवान् बुद्ध का यही दृष्टिकोण था ।

२. भगवान बुद्ध ने कभी किसी को मुक्त करने का आश्वासन नहीं दिया । उन्होंने कहा कि वे मार्ग-दाता हैं, मोक्ष-दाता नहीं

१. बहुत से धर्म "इल्हामी धर्म" माने जाते है । भगवान बुद्ध का धम्म "इल्हामी धर्म" नहीं ।
२. कोई धर्म "इल्हामी धर्म" इसीलिये कहलाता है कि वह भगवान का 'संदेश' वा 'पैगाम' समझा जाता है ताकि, वे अपने रचयिता की पूजा करें कि वह उनकी आत्माओं को मुक्त करे ।
३. अक्सर यह पैगाम किसी चुने हुए व्यक्ति के द्वारा प्राप्त माना जाता है, जो पैगाम-बर कहलाता है, जिसे यह पैगाम प्राप्त होता है और जो फिर उस पैगाम को लोगों तक पहुंचाता हैं ।
४. यह पैगम्बर का काम है कि जो उसके धर्म पर ईमान लाने वाले लोग हों, उनके लिये मोक्ष लाभ निश्चित कर दे ।
५. जो धर्म पर ईमान लाते हैं, उनकी मुक्ति का मतलब है, उनकी रुहों की निजात, ताकि वे अब दोजखं में न जा सकें, लेकिन उसके लिये शर्त है कि उन्हें खुदा के हुकमों की तामील करनी होगी और यह स्वीकार करना होगा कि पैगम्बर खुदा का पैगाम-बर है ।
६. बुद्ध ने कभी भी अपने को 'खुदा का पैगाम-बर' होने का दावा नहीं किया । यदि कभी किसी ने ऐसा समझा तो भगवान बुद्ध ने उसका खण्डन किया ।
७. इससे भी बडी महत्वपूर्ण बात यह है कि भगवान बुद्ध का धम्म एक आविष्कार (discovery) है, एक खोज है । इसलिये ऐसे किसी धर्म से जो "इल्हामी" कहा जाता है, इसका भेद पूरी-पूरी तरह स्पष्ट हो जाना चाहिये ।
८. भगवान् बुद्ध का धम्म इन अर्थो में एक आविष्कार है या एक खोज है क्योंकि यह पृथ्वी पर जो मानवीय- जीवन है उसके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है, और जिन स्वाभाविक प्रवृत्तियों (instincts) को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है उन्हें पूरी-पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है, और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी जिन्हे आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश की कारण बनी हुई हैं ।
९. सभी पैगम्बरों ने "मुक्ति-दाता" होने का दावा किया है । भगवान बुद्ध ही एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने इस प्रकार का कोई दावा नहीं किया । उन्होंने 'मोक्ष-दाता' को 'मार्ग-दाता' से सर्वथा पृथक रखा है - एक तो 'मोक्ष' देने वाला, दूसरा केवल उसका 'मार्ग' बता देने वाला ।
१०. भगवान् बुद्ध केवल मार्ग-दाता थे । अपनी मुक्ति के लिये हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है ।
११. उन्होंने इस एक सुत्त में ब्राह्मण मोग्गल्लान को यह बात सर्वथा स्पष्ट कर दी थी ।
१२. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में मिगारमाता के प्रासाद पूर्वारात में ठहरे हुए थे ।
१३. उस समय ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक तथागत के पास आया और कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया । इस प्रकार बैठकर ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा:-
१४. "श्रमण गौतम! जिस प्रकार किसी भी आदमी को इस प्रासाद का परिचय क्रमशः प्राप्त होता है, एक क्रम के अनुसार एक के बाद दूसरा, यहाँ तक कि आदमी उपर की अंतिम सीढ़ी तक जा पहुँचता है । इसी प्रकार हम ब्राह्मणों का शिक्षा-क्रम भी क्रमिक है, क्रमशः है । अर्थात् हमारे वेदों के अध्ययन में ।"
१५. "श्रमण गौतम! जैसे धनुर्विद्या में उसी प्रकार हम ब्राह्मणों में शिक्षा क्रम क्रमिक हैं, क्रमशः है, जैसे गणना में ।"

१६. “जब हम विद्यार्थी को लेते हैं तो हम उसे गणना सिखाते हैं, ‘एक एक, दो दूनी (चार), तीन तिया (नौ), चार चौके (सोलह) और इसी प्रकार सौ तक । अब श्रमण गौतम! क्या आप के लिये भी यह सम्भव है कि आप ऐसे भी शिक्षण-क्रम का परिचय दे सकें जो क्रमिक हो, जो क्रमशः हो और जिसके अनुसार आपके अनुयायी शिक्षा ग्रहण करते हों?”

१७. “ब्राह्मण! यह ऐसा ही है! ब्राह्मण! एक चतुर अश्व-शिक्षक को ही लो । वह एक श्रेष्ठ बछड़े को हाथ में लेता है । सबसे पहले वह उस के मुंह में लगाम लगाकर उसे साधता है । फिर धीरे-धीरे दूसरी बातें सिखाता हैं ।

१८. “इसी प्रकार हे ब्राह्मण! जो शिक्षाकामी है, ऐसे आदमी को तथागत लेते हैं और सर्वप्रथम यही शिक्षा देते हैं कि शीलवान रहो... प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करो ।”

१९. “सदाचरण में दृढ़ हो जाओ, छोटे-छोटे दोषों को भी बड़ा समझो, शिक्षा ग्रहण करो और विनय में पक्के हो जाओ ।”

२०. “जब वह इस प्रकार शिक्षा में दृढ़ हो जाता है तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं, श्रमण! आओ आँख से किसी रूप को देखकर उसके सामान्य स्वरूप वा उसके ब्योरे से आकर्षित न होओ ।”

२१. “उस प्रवृत्ति पर काबू रखो, जो तृष्णा का परिणाम हैं, जो असंयम होकर चक्षु-इन्द्रिय से रूप देखने से उत्पन्न होती है, ये कु-प्रवृत्तियाँ, ये चित्त की अकुशल अवस्थायें आदमी पर बाढ़ की तरह काबू पा लेती हैं । चक्षु इन्द्रिय को संयत रखो । चक्षु-इन्द्रिय को काबू में रखो ।”

२२. “और इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियों के विषय में भी सावधान रहो । जब तुम कान से कोई शब्द सुनो, या नाक से कोई गन्ध सूंघो, या जिव्हा से कोई चीज चखो, या शरीर से किसी का स्पर्श करो, और जब तुम्हारे मन में तत्सम्बन्धी संज्ञा पैदा हो तो उस वस्तु के सामान्य स्वरूप अथवा उसके ब्योरे से आकर्षित मत हो ।”

२३. “ज्यों ही वह उसका पूर्ण अभ्यास कर लेता है, तो तथागत उसे अगला पाठ देते हैं: श्रमण! आओ । भोजन के विषय में मात्रज्ञ हो, न खेल के लिये, न मद के लिए, न शरीर को सजाने के लिये, बल्कि जब तक इस शरीर की स्थिति है तब तक इसे स्थिर बनाये रखने, विहिंसा से बचे रहने के लिये तथा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिये ही भोजन ग्रहण करो । भोजन ग्रहण करते समय मन में यह विचार रहना चाहिए कि मैं पहले की वेदना का नाश कर रहा हूँ, नई वेदना नही उत्पन्न होने दे रहा हूँ... मेरी जीवन-यात्रा निर्दोष होगी और सुख-पूर्ण होगी ।”

२४. “ब्राह्मण! जब वह भोजन के विषय में संयत हो जाता है, तब तथागत उसे अगला पाठ पढ़ाते है: श्रमण! आओ! जागरूकता - (सति) का अभ्यास करो । दिन के समय, चलते हुए वा बैठे-बैठे अपने चित्त को चित्त- मलो से परिशुद्ध करो । रात के पहले पहर में भी चलते-फिरते रहकर वा एक जगह बैठकर ऐसा ही करो । रात के दूसरे पहर मे सिंह-शैय्या से दाहिनी करवट लेट जाकर एक पैर को दूसरे पाँव पर रखे हुए, जागरूकता तथा सम्यक् जानकारी से युक्त, अप्रमादरत । रात के तीसरे पहर में जागकर चलते हूए वा बैठे-बैठे अपने चित्त को चित्तमलों से परिशुद्ध करो ।”

२५. “और ब्राह्मण! जब वह जागरुकता का अभ्यासी हो जाता है, तो तथागत उसे अगला पाठ देते है: श्रमण! आओ जागरूकता और स्मृति (सम्यक् जानकारी) से युक्त हो । आगे चलते हुए या पीछे हटते हुए- अपने आपको संयत रखो । आगे देखते हुए, पीछे देखते हुए, झुकते हुए, शिथिल होते हुए, चीवर धारण करते हुए, पात्र-चीवर ले जाते हुए, खाते हुए, चबाते हुए, चखते हुए, शौच जाते हुए, चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, लेटते हुए, सोते हुए, जागते हुए, बोलते हुए या मौन रहते हुए, स्मृति सम्यक जानकारी से युक्त हो ।”

२६. “ब्राह्मण ! जब वह आत्म-संयमी हो जाता है तब तथागत उसे अगली शिक्षा देते हैं: श्रमण! आओ किसी एकान्त-स्थान को खोजो- चाहे बन हो, चाहे किसी वृक्ष की छाया हो, चाहे कोई पर्वत हो, चाहे किसी पर्वत की गुफा हो, चाहे श्मशान भूमी हो, चाहे वन-गुल्म हो, चाहे खुला आकाश हो और चाहे कोई पुवाल का ढेर हो । और वह वैसा करता है । तब वह भोजनान्तर, पालथी लगाकर बैठता है और शरीर को सीधा रख चारों-ध्यानों का अभ्यास करता है ।”

२७. “ब्राह्मण! जो अभी शैक्ष हैं, जो अभी अशैक्ष नहीं हुए हैं, जो अभी अशैक्ष होने के लिये प्रयत्न-शील हैं, उनके लिये मेरा यही शिक्षा-क्रम हैं ।”

२८. “लेकिन जो अर्हत-पद प्राप्त हैं, जो अपने आस्त्रवों का क्षय कर चुके हैं, जो अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर चुके हैं, जो कृत्कत्य हैं, जो अपने सिर का भार उतार चुके हैं, जो मुक्ति-प्राप्त हैं, जिन्होंने भव-बन्धनों का मुलोच्छेद कर दिया है और जो प्रज्ञा विमुक्त है । ऐसो के लिये उपरोक्त श्रेष्ठ जीवन सुख-विहार भर के लिये है और जागरूकता युक्त जीवन आत्म-संयम मात्र के लिये ।”

२१. जब यह कहा जा चुका, तब ब्राह्मण मोग्गल्लान गणक ने तथागत से कहा-

३०. “श्रमण गौतम! मुझे यह तो बताये कि क्या आप के सभी शिष्य निर्वाण प्राप्त करते हैं, अथवा कुछ नहीं भी कर पाते?”

३१. “ब्राह्मण! इस क्रम से शिक्षित मेरे कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, कुछ नहीं भी कर पाते हैं ।”
३२. “श्रमण गौतम! इसका क्या कारण है? श्रमण गौतम! इसका क्या हेतु है? यहाँ निर्वाण हैं । यहाँ निर्वाण का मार्ग है । और यहाँ श्रमण-गौतम जैसा योग्य पथ-प्रदर्शक है । तो फिर क्या कारण है कि इस क्रम से शिक्षा- प्राप्त कुछ श्रावक निर्वाण प्राप्त करते हैं, कुछ नही करते है?”
३३. “ब्राह्मण! मैं तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दूंगा । लेकिन पहले तुम,जैसा तुम्हें लगे, वैसे मेरे इस प्रश्न का उत्तर दो । ब्राह्मण! अब यह बताओं कि क्या तुम राजगृह आने-जाने का मार्ग अच्छी तरह जानते हो?”
३४. “श्रमण गौतम! मैं निश्चय से राजगृह आने-जाने का मार्ग अच्छी तरह जानता हूँ ।”
३५. “अब कोई एक आदमी आता है और राजगृह जाने का मार्ग पूछता है । लेकिन उसे जो रास्ता बताया जाता है, उसे छोड़कर वह दूसरा रास्ता पकड लेता है, वह गलत-मार्ग पर चल देता हैं, पूर्व की बजाय पश्चिम की ओर चल देता है ।”
३६. “तब एक दूसरा आदमी आता है और वह भी रास्ता पूछता है और तुम उसे भी ठीक-ठीक वैसे ही रास्ता बता देते हो । वह तुम्हारे बताये रास्ते पर चलता है और सकुशल राजगृह पहुँच जाता है?”
३७. ब्राह्मण बोला- “तो मैं क्या करूं, मेरा काम रास्ता बता देना हैं ।”
३८. भगवान बुद्ध बोले- “तो ब्राह्मण! मै भी क्या करूँ, तथागत का काम भी केवल रास्ता बता देना है ।”
३९. यहाँ यह सम्पूर्ण और सुस्पष्ट कथन है कि तथागत किसी को मुक्ति नही देते, वे केवल मुक्ति-पथ के प्रदर्शक हैं ।
४०. और फिर मुक्ति या निजात कहते किसे हैं?
४१. हजरत मुहम्मद तथा ईसामसीह के लिये मुक्ति या निजात का मतलब है पैंगम्बर की मध्यस्थता के कारण रूह का दोजख जाने से बच जाना ।
४२. बुद्ध के लिये ‘मुक्ति’ का मतलब है ‘निर्वाण’ और ‘निर्वाण’ का मतलब है राग द्वेष की आग का बुझ जाना ।
४३. ऐसे धम्म में ‘मुक्ति’ का आश्वासन या वचन-बद्धता हो ही कैसे सकती है?

३. बुद्ध ने अपने या अपने शासन के लिये किसी प्रकार की ‘अपौरूषेयता’ का दावा नहीं किया । उनका धम्म मनुष्यों के लिये मनुष्य द्वारा एक आविष्कृत धम्म था । यह ‘अपौरूषेय’ नहीं था

१. प्रत्येक धर्म के संस्थापक ने या तो अपने को ‘ईश्वरीय’ कहा है, या अपने ‘धर्म’ को ।
२. हजरत मूसा ने यद्यपि अपने को ‘ईश्वरीय’ नहीं कहा, किन्तु अपनी शिक्षाओ को ‘ईश्वरीय’ कहा है । उसने अपने अनुयायियों को कहा कि यदि उन्हें ‘क्षीर और मधु’ के मुल्क में पहुंचना है तो उन्हें उन शिक्षाओं को स्वीकार करना पड़ेगा, क्योकि वे ‘ईश्वरीय’ हैं ।
३. ईसा ने अपने ‘ईश्वरीय’ होने का दावा किया । उसने दावा किया कि वह ‘ईश्वर-पुत्र’ था । स्वाभाविक तौर पर उसकी शिक्षायें भी ‘ईश्वरीय’ हो गई ।
४. कृष्ण ने तो अपने आपको ‘ईश्वर’ ही कहा और अपनी शिक्षाओं को ‘भगवान का वचन’ ।
५. तथागत ने न अपने लिये और न अपने धम्म-शासन के लिए कोई ऐसा दावा किया ।
६. उनका दावा इतना ही था कि वे भी बहुत से मनुष्यों में से एक हैं और उनका संदेश एक आदमी द्वारा दूसरे को दिया गया सन्देश है ।
७. उन्होंने कभी यह भी दावा नहीं किया कि उनकी कोई बात गलत हो ही नहीं सकती ।
८. उनका दावा इतना ही था कि जहाँ तक उन्होने समझा है उनका पथ मुक्ति का सत्य-मार्ग है ।
९. क्योकि इसका आधार संसार भर के मनुष्यों के जीवन का व्यापक अनुभव हैं ।
१०. उन्होंने कहा कि हर किसी को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वह इसके बारे में प्रश्न पूछे, परीक्षण करे और देखे कि यह सन्मार्ग है या नहीं?
११. धर्म के किसी भी दूसरे संस्थापक ने अपने धर्म को इस प्रकार परीक्षण की कसौटी पर कसने का खुला चैलेंज नहीं दिया ।

दुसरा भाग : भगवान बुद्ध के धम्म के बारे में विविध मत

१. दूसरों ने उनके धम्म को किस प्रकार समझा?

१. "भगवान बुद्ध की यथार्थ शिक्षायें कौन सी है?"
२. यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर बुद्ध के कोई दो अनुयायी अथवा बुद्ध-धम्म के कोई दो विद्यार्थी एकमत नहीं प्रतीत होते ।
३. कुछ के लिये 'समाधि' ही उनकी खास शिक्षा हैं ।
४. कुछ के लिये 'विपश्यना' ही है ।
५. कुछ के लिये बुद्ध-धम्म चन्द विशेष रूप से दीक्षित लोगों का धम्म है । कुछ के लिये यह बहुत लोगों का धम्म हैं ।
६. कुछ के लिये इसमें शुल्क दार्शनिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं ।
७. कुछ के लिये यह केवल रहस्यवाद हैं ।
८. कुछ के लिये यह संसार से स्वार्थ-पूर्ण पलायन है ।
९. कुछ के लिये यह हृदय की प्रत्येक छोटी-बड़ी भावनाओं को दफना देने का व्यवस्थित शास्त्र हैं ।
१०. बुद्ध-धम्म के सम्बन्ध में और भी नाना मतो का संग्रह किया जा सकता हैं ।
११. इन मतों का परस्पर विरोध आश्चर्यजनक हैं ।
१२. इनमे से कुछ मत ऐसे लोगों के हैं जिनके मन में किसी खास एक बात के लिये विशेष आकर्षण है । ऐसे ही लोगों में से कुछ समझते हैं कि बुद्ध-धम्म का सार, समाधि या विपश्यना में अथवा चन्द दीक्षित लोगों का धम्म होने में हैं ।
१३. कुछ दूसरे मतों का कारण यह है कि बुद्ध-धम्म के बारे में लिखने वाले अनेक लोग प्राचीन भारतीय इतिहास के पण्डित हैं । उनका बौद्ध-धम्म का अध्ययन आकस्मिक है और इतिहास से सम्पर्क रहने के ही कारण हैं ।
१४. उनमें से कुछ बुद्ध-धम्म के विद्यार्थी है ही नहीं ।
१५. वे नृवंश-शास्त्र के विद्यार्थी भी नहीं, वह शास्त्र जो धम्म की उत्पत्ति और विकास से भी सम्बद्ध हैं ।
१६. प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान् बुद्ध का कोई सामाजिक सन्देश था वा नहीं?
१७. जब उत्तर देने के लिये जोर डाला जाता है तो बुद्ध-धम्म के पण्डित प्रायः दो बातों पर विशेष बल देते हैं । वे कहते हैं-
१८. भगवान् बुद्ध ने अहिंसा की शिक्षा दी थी ।
१९. भगवान् बुद्ध ने शान्ति की शिक्षा दी थी ।
२०. प्रश्न है- "क्या बुद्ध ने कोई दूसरा सामाजिक संदेश दिया?"
२१. "क्या बुद्ध ने 'न्याय' की शिक्षा दी?"
२२. "क्या बुद्ध ने 'मैत्री' की शिक्षा दी?"
२३. "क्या बुद्ध ने 'स्वतन्त्रता' की शिक्षा दी?"
२४. "क्या बुद्ध ने 'समानता' की शिक्षा दी?"
२५. "क्या बुद्ध ने 'भ्रातृभाव' की शिक्षा दी?"
२६. "क्या बुद्ध कार्ल मार्क्स के मुकाबले पर खड़े हो सकते हैं?"
२७. बुद्ध-धम्म का विचार करते समय इन प्रश्नों को प्रायः कभी उठाया ही नहीं जाता ।
२८. मेरा उत्तर है कि भगवान् बुद्ध का एक सामाजिक संदेश है । उनका सामाजिक संदेश इन सब प्रश्नों का उत्तर है । लेकिन उन सब प्रश्नों के उत्तरों को आधुनिक लेखकों ने दफना दिया है ।

२. भगवान् बुद्ध का अपना वर्गीकरण

१. भगवान् बुद्ध ने धम्म का अपने ढंग का वर्गीकरण किया हैं ।
२. पहला वर्ग "धम्म" है ।
३. उन्होंने एक दूसरा वर्ग माना है, जो यद्यपि 'धम्म' शब्द के अन्तर्गत ही ग्रहण किया जाता है, किन्तु जो वास्तव में 'अधम्म' है ।
४. उन्होंने एक तीसरा वर्ग माना है जिसे उन्होंने 'सद्धम्म' कहा हैं ।

५. तीसरा वर्ग 'धम्म के दर्शन' के लिये हैं ।

६. भगवान् बुद्ध के धम्म को समझने के लिये आवश्यक है कि तीनों वर्गो को भली प्रकार समझा जाय- धम्म को, अधम्म को तथा सद्धम्म को ।

तीसरा भाग : धम्म क्या हैं?

१. जीवन की पवित्रता बनाये रखना धम्म है

(क)

१. “तीन तरह की जीवन की पवित्रताएँ हैं.... शारीरिक पवित्रता किसे कहते हैं?”
२. “एक आदमी जीव-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, काम मिथ्याचार से विरत होता है I इसे शारीरिक पवित्रता कहते हैं ।”
३. “वाणी की पवित्रता किसे कहते हैं?”
४. “एक आदमी झूठ बोलने से विरत रहता हैं ।”
५. “मानसिक पवित्रता किसे कहते हैं?”
६. “एक भिक्षु, जब काम-छन्द सें ग्रस्त रहता है तो वह जानता है किं मुझमें काम-छन्द है I यदि वह काम-छन्द से ग्रसा नहीं रहता, तो वह जानता है कि मुझ में काम-छन्द नही है I वह यह भी जानता है कि अनुत्पन्न काम- छन्द की किस तरह उत्पत्ति होती है? वह यह भी जानता है कि उत्पन्न काम-छन्द का कैसे उच्छेद होता है और वह यह भी जानता है कि किस तरह भविष्य में काम-छन्द उत्पन्न नही होता ।”
७. “यदि उसमें व्यापाद होता है तो वह जानता है कि मुझ में व्यापाद (द्वेष) है I वह इसकी उत्पत्ति, विनाश को भी जानता है और यह भी जानता है कि भविष्य में किस प्रकार इसकी उत्पत्ति नहीं होती ।”
८. “यदि उसमें स्त्यान-मृद्ध (आलस्य-तन्द्रा) की उत्पत्ति हुई रहती है तो वह जानता है कि स्त्यान-मृद्ध उत्पन्न है..... उद्धतपन..... यदि उसमें कुछ विचिकित्सा उत्पन्न रहती है तो वह जानता है की विचिकित्सा उत्पन्न है I वह यह भी जानता है कि किस प्रकार इसका विनाश होता है और किस प्रकार भविष्य में इसकी उत्पत्ति नहीं होती I यही मानसिक-पवित्रता कहलाती है ।”
९. “जो शरीर, वाणी और मन से पवित्र है
निष्पाप, स्वच्छ और पवित्रता से युक्त है
उसे लोग ‘निष्कलंक’ नाम से पुकारते हैं ।”

(ख)

१. “पवित्रता तीन तरह की है..... शरीर की पवित्रता, वाणी की पवित्रता तथा मन की पवित्रता ।”
२. “शरीर की पवित्रता किसे कहते हैं?”
३. “एक आदमी जीव-हिंसा से विरत रहता है, चोरी से विरत रहता है, काम मिथ्याचार से विरत रहता है। यह ‘शरीर की पवित्रता’ है ।”
४. “वाणी की पवित्रता किसे कहते हैं?”
५. “एक आदमी झूठ बोलने से विरत रहता है..... व्यर्थ की बातचीत से विरत रहता है। यह ‘वाणी की पवित्रता’ कहलाती हैं ।”
५. “मन की पवित्रता किसे कहते हैं?”
७. “एक आदमी ईर्ष्यालु नहीं होता, और सम्यक-दृष्टि रखता है। यह मन की पवित्रता है। ये तीन तरह की पवित्रताएँ हैं ।”

(ग)

१. ये पांच तरह की दुर्बलताएँ हैं, जिनसे साधना में बाधा पहूंचती है I कौन सी पाँच?
२. जीव-हिंसा, चोरी, काम-मिथ्याचार, झुठ और नशा पैदा करने वाली शराब आदि नशीली चीजों का ग्रहण करना I
३. ये पाँच तरह की दुर्बलताएँ है जिनसे साधना में बाधा पड़ती हैं I
४. जब साधना की ये पाँचों बाधाएँ दूर हो जाती है तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ति होनी चाहिये I
५. एक भिक्षु काया के प्रति कायानुपश्ना करता हुआ विहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान, स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दौर्मनस्य को काबू में किये हुए I

६. वह वेदनाओं के प्रति वेदनानुपश्यी हो विहार करता हैं ।
७. वह चित्त के प्रति चित्तानुपश्यी हो विहार करता है....
८. वह चित्त में उत्पन्न होनेवाले विचारों (-धम्मो) के प्रति धम्मानुपश्यी हो विहार करता है, प्रयत्नशील, ज्ञानवान स्मृतिमान और लोक में विद्यमान लोभ तथा दौर्मनस्य को काबू में किये हुए ।
९. जब साधना की ये पाँच बाधाऐं दूर हो जाती हैं तो चार स्मृति-उपस्थानों की उत्पत्ती होनी चाहिए ।

(घ)

१. ये तीन घात है; शील-घात, चित्त-घात और दृष्टि-घात ।
२. शील-घात क्या है? एक आदमी प्राणी-हिंसा करता हैं, चोरी करता हैं, काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है तथा व्यर्थ बोलता है। यह शील-घात कहलाता हैं।
३. चित्त-घात किसे कहते हैं?
४. एक आदमी लोभी होता है, दौर्मनस्य-युक्त होता है । यह चित्त का घात हैं ।
५. दृष्टि-घात क्या है?
६. यहाँ कोई आदमी इस प्रकार की गलत-धारणा मिथ्या-दृष्टि रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई पुण्य नहीं; भले-बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता; न यह लोक है और न पर-लोक है; न माता है, न पिता है और न स्वोत्पन्न प्राणी है; लोक में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं है जो शिखर तक जा पहुंचे हों, जिन्होंने पूर्णता लाभ की हो, जिन्होंने अपनी ही अभिज्ञा से परलोक का साक्षात्कार किया हो और जो उसकी घोषणा कर सकते हों। भिक्षुओ, यह दृष्टिघात है ।
७. भिक्षुओं, यह शील-घात, चित्त-घात के और दृष्टि-घात के ही कारण ऐसा होता है कि मरने के अनन्तर प्राणी दुर्गती को प्राप्त होते हैं । ये तीन दृष्टि घात हैं ।
८. भिक्षुओं! ये तीन लाभ हैं । कौन से तीन? शील-लाभ, चित्त-लाभ तथा दृष्टि-लाभ ।
९. शील-लाभ क्या है?
१० एक आदमी प्राणी-हिंसा से विरत रहता है..... कठोर बोलने से विरत रहता है और व्यर्थ बोलने से विरत रहता है । यह शील-लाभ हैं ।
११. चित्त लाभ क्या है?
१२. एक आदमी न लोभी होता है और न दौर्मनस्य-युक्त होता है । यह चित्त लाभ हैं।
१३. और दृष्टि-लाभ क्या है?
१४. यहां कोई आदमी इस प्रकार की गलत-धारणा, मिथ्या-धारणा नहीं रखता है कि दान देने में, त्याग करने में, परित्याग करने में कोई पुण्य नहीं, भले-बुरे कर्म का कुछ फल नहीं होता, न यह लोक है और न पर-लोक है; न माता है, न पिता है और न स्वोत्पन्न प्राणी हैं, लोक में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहीं हैं जो शिखर तक जा पहुँचे हों, जिन्होंने पूर्णता लाभ की हो, जिन्होंने अपनी ही अभिज्ञा से परलोक का साक्षात्कार किया हो और जो उसकी घोषणा कर सकते हों । भिक्षुओ यह दृष्टि-लाभ है ।
१५. भिक्षुओं, इन्ही तीन लाभों के कारण शरीर का नाश होने पर मरने के अनन्तर प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं । भिक्षुओ, ये तीन लाभ है ।

२. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धम्म है

१. ये तीन पूर्णताये हैं ।
२. शरीर की पूर्णता, वाणी की पूर्णता तथा मन की पूर्णता ।
३. मन की पूर्णता कैसी होती है?
४. आस्त्रवों अथवा चित्त मलों का पूरा क्षय हो गया होने से, इसी जीवन में सम्पुर्ण चित्त-विमुक्ति का अनुभव करने से प्रज्ञा विमुक्ति जो कि आस्त्रवों से विमुक्ति हैं - उसे प्राप्त कर, उसी में विहार करता हैं । यही मन की पूर्णता कहलाती है । ये तीन पूर्णताएँ हैं ।
५. और दूसरी भी पारमिताएँ हैं । भगवान बुद्ध ने उन्हे सुभूति को समझाया था ।
६. सुभूति- “बोधिसत्व की दान-पारमिता क्या है?”

७. तथागत- “बोधिसत्व चित्त की सभी अवस्थाओं का ज्ञान रखकर दान देता हैं, अपनी भीतरी वा बाह्य, और उन्हें सर्वसाधारण के लिये परित्याग कर ‘बोधि’ को समर्पित करता है । वह दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा देता है । किसी भी वस्तु में उसकी आसक्ति नहीं ।”
८. सुभूति- “एक बोधिसत्व की शील-पारमिता क्या है?”
९. तथागत- “वह स्वयं दस कुशल-पंथों में विचरता है और दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है ।”
१०. सुभूति- “बोधिसत्व की शान्ति-पारमिता क्या है?”
११. तथागत- “वह स्वयं क्षमा-शील हो जाता हे तथा दूसरों को भी क्षमा शील रहने की प्रेरणा करता है ।”
१२. सुभूति- “बोधिसत्व की वीर्य्य-पारमिता क्या है?”
१३. तथागत- “वह सतत पांचों पारमिताओं की पूर्ति में संलग्न रहता है, तथा दुसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता है ।”
१४. सुभूति- “बोधिसत्व की समाधि की पारमिता क्या है?”
१५. तथागत- “वह अपने कौशल से ध्यानों का लाभ करता हैं, किन्तु तत्सम्बन्धिन रूप-लोकों में उसका जन्म नहीं होता । वह दूसरों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा करता हैं ।”
१६. सुभूति- “बोधिसत्व की प्रज्ञापारमिता क्या है?”
१७. तथागत- “वह किसी भी धर्म (भौतिक वा अभौतिक वस्तु) में नहीं फसता, वह सभी धर्मो के स्वभाव पर विचार करता है । वह दुसरों को भी सभी धर्मो के स्वभाव पर विचार करने की प्रेरणा देता है ।”
१८. इन पारीमिताओ का विकास करना धम्म है ।

३. निर्वाण प्राप्त करना धम्म है

१. भगवान् बुद्ध ने कहा है; “निर्वाण से बढ़कर सुखद कुछ नहीं ।”
२. भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सभी धम्मो में निर्वाण का प्रमुख स्थान हैं ।
३. निर्वाण क्या है? भगवान बुद्ध ने निर्वाण का जो अर्थ किया है, वह उस से सर्वथा भिन्न है जो उनके पूर्वजों ने किया है ।
४. उनके पूर्वजों की दृष्टि में निर्वाण का मतलब था ‘आत्मा’ का मोक्ष ।
५. निर्वाण के चार स्वरूप थे: (१) लौकिक, (खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ); (२) यौगिक; (३) ब्राह्मणी; (४) औपनिषदिक
६. ब्राह्मणी और औपनिषदिक निर्वाण में एक समानता थी । निर्वाण के दोनों स्वरूपों में ‘आत्मा’ की एक स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई थी - यह सिद्धान्त भगवान् बुद्ध को अमान्य ही था । इसलिये भगवान बुद्ध को निर्वाण के ब्राह्मणी और औपनिषदिक स्वरूप का खण्डन करने में, उसे अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई ।
७. निर्वाण की भौतिक कल्पना इतनी अधिक जड़ता लिये हुए थी कि वह कभी भी बुद्ध के गले से उतर ही न सकती थी । इसमें कुछ भी आध्यात्मिक तत्व नहीं था ।
८. भगवान् बुद्ध को लगता था कि निर्वाण के ऐसे स्वरूप को स्वीकार करना किसी भी मानव की बड़ी से बड़ी हानि करना है ।
९. इन्द्रियों की भूख की संतुष्टि उस भूख को बढ़ाने का ही कारण बनती है । इस प्रकार के जीवन में से सुख कभी उत्पन्न नहीं हो सकता । इसके विपरीत इस प्रकार के सुख में से अधिकाधिक दुःख ही उत्पन्न हो सकता हैं ।
१०. निर्वाण का यौगिक स्वरूप एक सर्वथा अस्थायी अवस्था थी । इसका ‘सुख’ नकारात्मक था । इसके माध्यम से संसार से सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता था । यह दुःख से बच निकलना था, किन्तु सुख-प्राप्ति नहीं थी । इससे जितने भी कुछ ‘सुख’ की आशा की जा सकती थी, वह ‘सुख’ अधिक से अधिक योग की अवधि भर था । यह स्थायी नही था । यह अस्थायी था ।
११. बुद्ध का निर्वाण का स्वरूप अपने पूर्वजों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है ।
१२. बुद्ध के निर्वाण के स्वरूप के मूल में तीन बातें हैं ।
१३. इसमें से एक तो यह है कि किसी ‘आत्मा’ का सुख नहीं, बल्कि प्राणी का सुख ।
१४. दूसरी बात यह है कि संसार में रहते समय प्राणी का सुख । ‘आत्मा’ की ‘मुक्ति’ और मरणानन्तर ‘आत्मा’ की बुद्ध के विचारों से सर्वथा ‘मुक्ति’ विरुद्ध बातें हैं ।
१५. तीसरा विचार जो बुद्ध के निर्वाण के स्वरूप का मूलाधार है वह है राग द्वेषाग्नि को शान्त करना ।
१६. राग तथा द्वेष प्रज्जवलित अग्नि के समान है, यह बात भगवान् बूद्ध ने अपने उस प्रवचन में कही थी, जो उन्होंने बुद्ध-गया में रहते समय भिक्षुओं को दिया था । भगवान् बुद्ध ने कहा;

१७. भिक्षुओं, सभी कुछ जल रहा है । भिक्षुओ, क्या सभी कुछ जल रहा है?

१८. “भिक्षुओ, चक्षु-इन्द्रिय जल रहा है, रूप जल रहा है, चक्षु-विज्ञान जल रहा है, चक्षु-संस्कार जल रहा है, और उस संस्कार से जो भी सुख-वेदना और असुख-अदुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही है ।”

१९. “और ये किस से जल रहे हैं?”

२०. “ये रागाग्नि से जल रहे हैं, ये द्वेषाग्नि से जल रहे है, ये मोहाग्नि से जल रहे हैं, ये जाति, जरा, मरण, दुःख दौर्मनस्य तथा उपायास से जल रहे हैं ।”

२१. “भिक्षुओ, श्रोत्र-इन्द्रिय जल रहा है, शब्द जल रहा है, घ्राण-इन्द्रिय जल रहा है, गन्ध जल रहा है; जिव्हा जल रही है, रस जल रहे है, काय जल रहा है, चित्त के संकल्प-विकल्प जल रहे है और चित्त के संस्कारों से जो भी सुख-वेदना, दुःख वेदना और असुख-अदुख वेदना उत्पन्न होती है, वह वेदना भी जल रही हैं ।”

२२. “और ये किस से जल रहे हैं?”

२३. “मै कहता हूँ, ये रागाग्नि से जल रहे हैं, द्वेषाग्नि से जल रहे ह, मोहाग्नि से जल रहे है; ये जाति, जरा, मरण, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास से जल रहे हैं ।”

२४. “भिक्षुओ, इसका ज्ञान होने से जो विज्ञ है और जो श्रेष्ट है उसके मन में उपेक्षा उत्पन्न होती है, उपेक्षा उत्पन्न होने से रागाग्नि आदि की शान्ति होती है और रागाग्नि आदि के शान्त हो जाने से वह ‘मुक्त’ हो जाता है; और मुक्त हो जाने से वह जानता है कि मै ‘मुक्त’ हो गया हूँ ।”

२५. निर्वाण सुखद कैसे हो सकता है? यह एक दूसरा प्रश्न है जिसका उत्तर अपेक्षित है ।

२६. सामान्य तौर पर यह कहा-समझा जाता है कि अभाव आदमी को दुःखी बनाता है । लेकिन हमेशा यही बात ठीक नहीं होती । आदमी बाहुल्य के बीच में रहता हुआ भी दुःखी रहता है ।

२७. दुःख लोभ का परिणाम है और लोभ दोनों को होता है, जिनके पास नहीं है उन्हें भी और जिनके पास है, उन्हें भी ।

२८. भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को दिये एक प्रवचन में यह बात भली प्रकार सुस्पष्ट कर दी हैं --

२९. भिक्षुओं, लोभ से लुब्ध, द्वेष से दुष्ट और मोह से मूढ़ चित्त से आदमी अपने दुःखों से दुःखी रहता है, आदमी दूसरों के दुःखो, से दुखी रहता है, आदमी मानसिक वेदना और पीड़ा अनुभव करता है ।

३०. “किन्तु यदि लोभ, द्वेष तथा मोह का मूलोच्छेद हो जाय तो आदमी न अपने दुःखों से दुखी रहेगा, न दूसरों के दुःखो से दुखी रहेगा और न मानसिक वेदना और पीड़ा अनुभव करेगा ।”

३१. “इस प्रकार भिक्षुओ, निर्वाण इसी जीवन में प्राप्य है, भविष्य-जीवन में ही नहीं, अच्छा लगने वाला है, आकर्षक है और बुद्धिमान श्रावक इसे हस्तगत कर सकता है ।”

३२. जो चीज आदमी को जला डालती है और जो उसे दुःखी बनाती है, यहां उसे स्पष्ट कर दिया गया है । आदमी के राग-द्वेष को जलती हुई अग्नि के समान कहकर भगवान् बुद्ध ने आदमी के दुःख की सर्वाधिक जोरदार व्याख्या की है ।

३३. राग-द्वेष की अधीनता ही आदमी को दुःखी बनाती है । राग-द्वेष को ‘संयोजन’ अथवा बंधन कहा गया है । जो आदमी को निर्वाण तक नहीं पहुंचने देते । ज्यों ही आदमी राग-द्वेष की झोंक से मुक्त हो जाता है, उसके लिये निर्वाण-पथ खुल जाता है वह दुःख का अन्त कर सकता है ।

३४. भगवान् बुद्ध ने इन संयोजनों को तीन विभागों में विभक्त किया हैं-

३५. पहला विभाग वह है जिसका सम्बन्ध हर प्रकार की तृष्णा से है, जैसे कामुकता और लोभ ।

३६. दूसरा वर्ग वह है जिसका सम्बन्ध सभी प्रकार की वितृष्टग से है- जैसे घृणा, क्रोध और द्वेष (दोष)।

३७. तीसरा वर्ग वह है जिसका सम्बन्ध सभी तरह की अविद्या से है- जड़ता, मूर्खता और मूढता (मोह)।

३८. पहली (राग) अग्नि और दूसरी (द्वेष) अग्नि का सम्बन्ध आदमी की उन भावनाओं से है और उस दृष्टि-कोण से है जो उसका दूसरों के प्रति है, जबकि तीसरी (मोह) अग्नि का सम्बन्ध उन सभी विचारों से है जो सत्य से भिन्न हैं ।

३९. भगवान् बुद्ध के निर्वाण के सिद्धान्त के बारे में बहुत सी गलत-फहमियाँ हैं ।

४०. शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से ‘निर्वाण’ शब्द का शब्दार्थ है बुझ जाना ।

४१. शब्द की इस व्युत्पत्ति को लेकर आलोचकों ने ‘निर्वाण’ को दो कौड़ी का नहीं रहने दिया है, उसे एक सर्वथा बेहूदा सी चीज बना दिया है ।

४२. उनका कहना है कि निर्वाण का मतलब है सभी मानवी-प्रवृत्तियों का बुझ जाना अर्थात् मृत्यु ।

४३. इस प्रकार उन्होंने निर्वाण के सिद्धान्त का मजाक उड़ाने की कोशिश की है ।

४४. जो कोई भी इस 'अग्नि-स्कन्धोपम' सूक्त की भाषा का विचार करेगा, उसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि निर्वाण का यह अर्थ कदापि नहीं है ।
४५. इस प्रवचन में यह नहीं कहा गया है कि जीवन जल रहा है और बुझ जाना मृत्यु हैं । इसमें यह कहा गया है कि राग-अग्नि जल रही है, द्वेषाग्नि जल रही है तथा मोहाग्नि जल रही है ।
४६. इस अग्नि-स्कन्धोपम सूक्त में यह कही नही कहा गया कि आदमी की हर प्रकार की प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद कर देना चाहिए । इसमें आग में घी डालना ही मना किया गया है ।
४७. दूसरी बात यह है कि आलोचक 'निर्वाण' और 'परिनिर्वाण' का भेद करना भी भूल गये हैं ।
४८. उदान के अनुसार "जब शरीर बिखर जाता है, जब तमाम सञ्ज्ञायें रूक जाती हैं, तब तमाम वेदनाओं का नाश हो जाता है, जब सभी प्रकार की प्रक्रिया बंद हो जाती है और जब चेतना एक दम जाती रहती है" तभी परिनिर्वाण होता है । इस प्रकार परिनिर्वाण का मतलब है पूरी तरह बुझ जाना ।
४९. निर्वाण का कभी यह अर्थ नहीं हो सकता । निर्वाण का मतलब है अपनी प्रवृत्तियों पर इतना काबू रखना कि आदमी धम्म के मार्ग पर चल सके । इससे अधिक और इसका दूसरा कुछ आशय ही नहीं ।
५०. राध को समझाते हुए स्वयं भगवान बुद्ध ने यह स्पष्ट किया था कि निर्दोष जीवन का ही दूसरा नाम निर्वाण है ।
५१. एक बार राध स्थविर भगवान बुद्ध के पास आये । आकर भगवान बुद्ध को अभिवादन कर एक और बैठ गये । इस प्रकार बैठ कर राध स्थविर ने भगवान् बुद्ध से कहा:- "भन्ते! निर्वाण किस लिये है?"
५२. तथागत ने उत्तर दिया- "'निर्वाण' का मतलब है रागाग्नि, द्वेषाग्नि तथा मोहाग्नि का बुझ जाना ।"
५३. "लेकिन भन्ते! निर्वाण का उद्देश्य क्या है?"
५४. "राध! निर्दोष जीवन का मूल निर्वाण में है । निर्वाण ही उद्देश्य है । निर्वाण ही मकसद है ।"
५५. 'निर्वाण' का मतलब सभी (प्रवृत्तियो का) बुझ जाना नही है, यह बात सारिपुत्र ने भी अपने इस प्रवचन में स्पष्ट की है:-
५६. एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में, अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे । उसी समय सारिपुत्र भी वहीं ठहरे हुए थे ।
५७. भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा:- "भिक्षुओ! धम्म के दायाद बनो । भौतिक-वस्तुओं के दायाद न बनो । मेरी तुम पर अनुकम्पा है । इसलिये मैं तुम्हें धम्म का दायाद बनाता हूँ ।"
५८. भगवान बुद्ध ने यह कहा और तब वह उठकर (गन्ध) – कुटी में चले गये।
५९. सारिपुत्र पीछे रह गये। तब भिक्षुओं ने सारिपुत्र से प्रार्थना की कि वह बतायें कि निर्वाण क्या है?
६०. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं को उत्तर देते हुए कहा- "भिक्षुओ! लोभ बुरा है, द्वेष बुरा है ।"
६१. "इस लोभ और इस द्वेष से मुक्ति पाने का साधन मध्यम-मार्ग है, जो आँख देने वाला है, जो ज्ञान देने वाला है, जो हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा निर्वाण की ओर ले जाता हैं ।"
६२. "यह मध्यम-मार्ग कौन सा है? यह मध्यम-मार्ग आर्य अष्टांगिक-मार्ग के अतिरिक्त कुछ नहीं, यही सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न (व्यायाम), सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधी; भिक्षुओ! यही मध्यम-मार्ग हैं ।"
६३. "हाँ! भिक्षुओ! क्रोध बुरी चीज है, द्वेष बुरी चीज है, ईर्ष्या बुरी चीज है, मात्सर्य बुरी चीज है, कंजूसपन बुरी चीज है, लालच बुरी चीज है, ढोंग बुरी चीज है, ठगी बुरी चीज है, उद्धतपन बुरी चीज है, मोह बुरी चीज है तथा प्रमाद बुरी चीज है ।"
६४. "मोह तथा प्रमाद के नाश के लिये मध्यम-मार्ग है, जो आँख देने वाला है, जो ज्ञान देने वाला है, जो हमें शान्ति, अभिज्ञा, बोधि तथा; निर्वाण की ओर ले जाता हैं ।"
६५. "निर्वाण आर्य अष्टांगिक-मार्ग के अतिरिक्त और कुछ है ही नही ।"
६६. इस प्रकार सारिपुत्र ने कहा । प्रसन्न-चित्त भिक्षु सारिपुत्र का प्रवचन सुन प्रमुदित हुए ।
६७. निर्वाण के मूल में जो विचार है वह यही है कि यह निष्कलंकता का पथ है। किसी को भी निर्वाण से और कुछ समझना ही नहीं चाहिये ।
६८. सम्पूर्ण उच्छेदवाद एक अन्त है और परिनिर्वाण दूसरा अन्त है । निर्वाण मध्यम-मार्ग है ।
६९. यदि निर्वाण को इस प्रकार ठीक तरह से समझ लिया जाय, तो निर्वाण के सम्बन्ध में सारी गड़बड़ी दूर हो जाती हैं ।

४. तृष्णा का त्याग धम्म है

१. धम्मपद में भगवान बुद्ध ने कहा है; "आरोग्य से बढ़कर लाभ नहीं, सन्तोष से बढ़कर धन नहीं ।"
२. यहां संतोष का मतलब बेचारगी वा परिस्थिति के सामने सिर झुका देना नहीं है ।
३. ऐसा समझना भगवान् बुद्ध की दूसरी शिक्षाओं के सर्वथा प्रतिकूल पड़ेगा ।
४. भगवान् बुद्ध ने यह कहीं नहीं कहा कि "भाग्यवान् हैं वे जो गरीब है ।"
५. भगवान बुद्ध ने यह कहीं न कहा कि जो पीड़ित हैं उन्हें अपनी परिस्थिति बदलने का प्रयास नहीं करना चाहिये ।
६. दूसरी और उन्होंने 'ऐश्वर्य' का स्वागत किया है । अपनी परिस्थिति की ओर से उपेक्षावान् होकर पड़े-पड़े, कष्ट सहते रहने के उपदेश के स्थान पर उन्होंने वीर्य्य, उत्साहपूर्वक परिस्थिति को बदलने का प्रयास करने का उपदेश दिया हैं ।
७. जब भगवान् बुद्ध ने यह कहा कि 'संतोष सबसे बड़ा धन है' तो उनके कहने का अभिप्राय यही था कि आदमी को लोभ के वशीभूत नहीं होना चाहिये, जिसकी कहीं कोई सीमा नहीं ।
८. जैसा कि भिक्षु राष्ट्रपाल ने कहा है; "मै धनियों को देखता हूं जो मूर्खता वश अधिक से अधिक इकट्ठा ही करते चले जाते है, उसमें से कभी भी किसी को कुछ नहीं देते, उनकी तृष्णा रूपी प्यास बुझती ही नहीं; राजाओं को देखता हू कि जिनका राज्य समुद्र तक पहुंच गया है, किन्तु अब समुद्रपार साम्राज्य के लिये दुखी हैं, अभी भी तृष्णार्त हैं, राजा- प्रजा सभी संसार से गुजर जाते हैं, उनका अभाव बना ही रहता है; वे शरीर त्याग देते हैं, किन्तु इस पृथ्वी पर उनकी काम-भोग की इच्छा की कभी तृप्ति ही नही होती ।
९. महा-निदान-सुत्त में भगवान बुद्ध ने आनन्द को 'लोभ' को अपने वश में रखने के लिये कहा हैं । तथागत का वचन हैं :-
१०. "इस प्रकार आनन्द! लाभ की इच्छा में से तृष्णा पैदा होती है, जब लाभ की इच्छा मिल्कीयत की इच्छा में बदल जाती है, जब मिल्कीयत की इच्छा अपनी मिल्कीयत से बुरी तरह चिपटे रहने की इच्छा बन जाती है, तो यह 'लोभ' कहलाती है ।"
११. लोभ या संग्रह करने की असंयत-कामना पर नजर रखने की जरूरत है ।
१२. "इस तृष्णा या लोभ को वश में रखने की क्यों जरूरत है?" "क्योकि इसी से," भगवान् बुद्ध ने आनन्द से कहा, "बहुत सी बुराइयां पैदा होती हैं, मुक्कामुक्की भी हो जाती है, लोगों को आघात भी लगते हैं, झगड़े भी होते हैं । परस्पर विरोध भी होते हैं, कलह भी होते हैं, एक दुसरे की निन्दा तथा झूठ बोलना भी होता है ।"
१३. इस में कोई सन्देह नही कि वर्ग-संघर्ष का यह सही सही विश्लेषण है ।
१४. इसीलीए भगवान् बुद्ध ने 'तृष्णा' और लोभ को अपने वश में रखने के लिये कहा है ।

५. यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य है धम्म है

१. अनित्यता के सिद्धान्त के तीन पहलू हैं ।
२. अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य हैं ।
३. व्यक्तिगत रूप से प्राणी अनित्य हैं ।
४. प्रतीत्य-समुत्पन्न वस्तुओं का 'आत्म-तत्व' अनित्य हैं ।
५. अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजों की अनित्यता की बात महान बौद्ध दार्शनिक असंग ने अच्छी तरह समझाई है ।
६. "सभी चीजें," असंग का कहना है, "हेतुओं तथा प्रत्ययो से उत्पन्न है । किसी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है । जब हेतु-प्रत्ययों का उच्छेद हो जाता है वस्तुओं का अस्तित्व नहीं रहता ।"
७. प्राणी का शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु नामक चार महाभूतों का परिणाम हैं । जब इन चारों महाभूतों का पृथक्करण हो जाता है, प्राणी नही रहता ।
८. 'अनेक तत्वों के मेल से बनी हुई चीजें अनित्य है' कहने का अभिप्राय यही है ।
९. जीवित प्राणी की अनित्यता की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या यही है कि वह है नही, वह हो रहा है ।
१०. इस अर्थ में भूत काल का प्राणी अपना जीवन व्यतीत कर चुका, न वह वर्तमान में कर रहा है और न भविष्य में करेगा! भविष्यत् काल का प्राणी रहेगा, लेकिन न रहा है और न रहता है । वर्तमान काल का प्राणी रहता है, लेकिन न रहा है, और न रहेगा ।

११. संक्षेप यही है कि मानव निरन्तर परिवर्तन-शील है, निरन्तर संवर्धनशील है। वह अपने जीवन के दो भिन्न क्षणों में भी एक ही नहीं है ।
१२. इस सिद्धान्त का तीसरा पहलू एक सामान्य आदमी के लिये समझ सकना कुछ कठिन है ।
१३. यह समझ लेना कि आदमी किसी न किसी दिन अवश्य मर जायेगा, बड़ा आसान है ।
१४. किन्तु यह समझ सकना कि किस प्रकार एक प्राणी जीते जी परिवर्तित होता रहता है, उतना ही आसान नहीं ।
१५. "यह कैसे सम्भव है?" भगवान बुद्ध का उत्तर था- "यह इसीलिये सम्भव है कि हर चीज अनित्य है ।"
१६. आगे चलकर इसी 'अनित्यता' के सिद्धान्त ने शून्यवाद का रूप ग्रहण कर लिया है ।
१७. बौद्ध 'शुन्यता' का मतलब सोलह आने निषेध नहीं है । इस का मतलब इतना ही है कि संसार में जो कुछ है वह प्रतिक्षण बदल रहा हैं ।
१८. बहुत कम लोग इस बात को समझ पाते हैं कि 'शुन्यता' के ही कारण सभी कुछ सम्भव है, इसके बिना संसार में कुछ भी सम्भव नहीं रहेगा । सभी दूसरी बाते चीजों के अनित्यता के स्वभाव पर ही निर्भर करती है ।
११. यदि चीजें परिवर्तन-शील न हों बल्कि स्थायी और अपरिवर्तनशील हों, तब एक रूप से किसी दूसरे रूप में जीवन का सारा विकास ही रुक जायेगा, किसी में कुछ भी परिवर्तन न हो सकेगा, किसी की कुछ भी उन्नति न हो सकेगी ।
२०. यदि आदमी मर जाते या उन में परिवर्तन आ जाता और फिर वे सब उसी अवस्था में अपरिवर्तित स्थिति में रहते, तो क्या हालत होती? मानव-जाति की प्रगति सर्वथा रूक जाती ।
२१. यदि 'शुन्य' का मतलब 'अभाव' माना जाये तो कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।
२२. 'शून्य' उस बिन्दु के समान है, जो कि एक पदार्थ है किन्तु जिसकी कोई लम्बाई-चौड़ाई नही ।
२३. भगवान् बुद्ध का यह उपदेश था कि सभी चीजें अनित्य हैं ।
२४. इस सिद्धान्त से हमें क्या शिक्षा मिलती हैं? यह अधिक महत्व का प्रश्न हैं ।
२५. इस सिद्धान्त से हमें जो शिक्षा मिलती है, वह सरल है । किसी वस्तु के प्रति आसक्त न होओ ।
२६. यह अनासक्ति - सम्पत्ति के प्रति अनासक्ति, सम्बन्धियो, मित्रो, तथा परिचितों के प्रति अनासक्ति का ही अभ्यास करने के लिये यह कहा गया है कि सभी चीजें अनित्य हैं ।

६. 'कर्म' को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना धम्म है

१. भौतिक संसार में एक प्रकार का नियम दिखाई देता है । निम्नलिखित बाते इसकी साक्षी है ।
२. आकाश के नक्षत्रों के चलन में एक प्रकार का नियम है ।
३. ऋतुओं के नियमानुसार आवागमन में भी एक नियम है ।
४. बीजों से वृक्ष उत्पन्न होते है, वृक्षों में फल लगते है और फलों से फिर बीज प्राप्त होते है -- इस में भी एक प्रकार का नियम हैं ।
५. बौद्ध परिभाषा में यह सब 'बीज नियम' तथा 'ऋतु-नियम' आदि कहलाते हैं ।
६. इसी प्रकार क्या समाज में भी कोई नैतिक-क्रम है? यदि है तो यह कैसे उत्पन्न हुआ है? इस का सरंक्षण कैसे होता है?
७. जो 'ईश्वर' में विश्वास रखते है, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं है । उनका उत्तर सरल हैं ।
८. उन का कहना है कि संसार का नैतिक क्रम-ईश्वरेच्छा का परिणाम है । ईश्वर ने संसार को जन्म दिया है और ईश्वर ही संसार का कर्ता-धर्ता हैं । वही भौतिक, तथा नैतिक-नियमों का रचयिता भी है ।
९. उनका कहना है कि नैतिक-नियम आदमी की भलाई के लिये है क्योकि वे ईश्वर की आज्ञा है । आदमी को अपने रचयिता ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना ही पड़ेगा । और यह 'ईश्वर की आज्ञाओं' का पालन ही है जो संसार को चलाता हैं ।
१०. संसार का नैतिक-संस्थान ईश्वरेच्छा का परिणाम है - इसके पक्ष में यही तर्क दिया जाता है ।
११. लेकिन यह व्याख्या किसी भी तरह संतोषजनक नहीं है । क्योंकि यदि 'ईश्वर' नैतिक-नियमों का जनक है और यदि 'ईश्वर' ही नैतिक-नियमों का आरम्भ और अवसान है और यदि आदमी ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करने के लिये मजबूर है, तो संसार में इतनी नैतिक-अराजकता वा अनैतिकता क्यों है?
१२. इस 'ईश्वरीय-नियम' के पास कौन सी शक्ति है? इस 'ईश्वरीय नियम' का व्यक्ति पर कौन सा अधिकार है? ये महत्वपूर्ण प्रश्न हैं । लेकिन जो लोग यह मानते हैं कि संसार का नैतिक-संस्थान ईश्वरेच्छा का परिणाम है - उनके पास इन प्रश्नों का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं ।

१३. इन कठिनाइयों पर पार पाने के लिये बात कुछ थोड़ी बदल दी गई है ।
१४. अब यह कहा जाने लगा है; निस्सन्देह ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि अस्तित्व मे आई । यह भी सत्य है कि प्रकृति ने ईश्वर की इच्छा और मार्गदर्शन के अनुसार ही अपना कार्य आरम्भ किया । यह भी सत्य है कि उसने प्रकृति को एक ही बार वह सब शक्ति प्रदान कर दी जो अब उसकी समस्त क्रिया-शीलता के मूल में है ।
१५. लेकिन इसके बाद 'ईश्वर' ने प्रकृति को स्वतन्त्र छोड़ दिया है कि वह शुरू में उसी के बनाये हुए नियमों के अनुसार कार्य करती रहे ।
१६. इसलिये अब यदि ईश्वरेच्छा या ईश्वर की आज्ञा के अनुसार कार्य नहीं होता, तो अब इसमें ईश्वर का कोई दोष नहीं, सारा दोष प्रकृति का है ।
१७. लेकिन सिद्धान्त में इस तरह थोड़ा परिवर्तन कर देने से भी काम
नहीं चलता । इससे केवल इतना ही होता है कि ईश्वर पर कोई जिम्मेदारी नही रहती । लेकिन तब प्रश्न पैदा होता है कि ईश्वर ने यह काम प्रकृति को क्यों सौंपा है कि वह उसके बनाये नियमों का पालन कराये? इस प्रकार के अनुपस्थित, इस प्रकार के निकम्मे 'ईश्वर' का क्या प्रयोजन है?
१८. इस प्रश्न का कि संसार का नैतिक-क्रम कैसे सुरक्षित है? जो उत्तर बुद्ध ने दिया है, वह सर्वथा भिन्न हैं । १९. तथागत का उत्तर है; विश्व के नैतिक-क्रम के बनाये रखने वाला कोई 'ईश्वर' नहीं है, वह 'कर्म-नियम' ही है जो विश्व के नैतिकक्रम को बनाये हुए है ।
२०. विश्व का नैतिक क्रम चाहे भला हो, चाहे बुरा हो; लेकिन भगवान बुद्ध के उपदेशानुसार जैसा भी है वह आदमी पर निर्भर करता है, और किसी पर नहीं ।
२१. 'कर्म' का मतलब है मनुष्य द्वारा किया जाने वाला 'कर्म' और 'विपाक' का मतलब है उसका परिणाम । यदि नैतिक-क्रम बुरा है तो इसका मतलब है कि आदमी बुरा (अकुशल) कर्म करता है, यदि नैतिक-क्रम अच्छा है तो इसका मतलब है कि आदमी भला (कुशल) कर्म करता हैं ।
२२. बुद्ध ने केवल कम्म (कर्म) की ही बात नहीं कही । उन्होंने कम्म (कर्म) नियम की भी बात कही है - अर्थात् कर्म के कानून की ।
२३. कर्म के नियम से बुद्ध का अभिप्राय था कि यह अनिवार्य है कि कर्म का परिणाम उसी प्रकार उसका पीछा करे जैसे रात दिन का करती है । यह एक कानून है ।
२४. कुशल कर्म से होने वाला लाभ भी हर कोई उठा सकता है और अकुशल कर्म से होने वाली हानि से भी कोई नही बच सकता ।
२५. इसलिये भगवान् बुद्ध की देशना थी: कुशल-कर्म करो ताकि उससे नैतिकक्रम को सहारा मिले और उससे मानवता लाभान्वित हो; अकुशल-कर्म मत करो ताकि उससे नैतिक-क्रम को हानि पहुंचे और उससे मानवता दु:खी हो ।
२६. यह हो सकता है कि एक कर्म और उसके विपाक में समय का थोड़ा बहुत या काफी अन्तर भी हो जाय । ऐसा बहुधा होता हैं ।
२७. इस दृष्टि से कर्म के कई विभाग है जैसे- -दिट्ठधम्मवेदनीय कर्म (इसी जन्म में फल देने वाला कर्म), उपपज्जवेदनीय कर्म (उत्पन्न होने पर फल देने वाला कर्म), अपरापरियवेदनीय कर्म (अनिश्चित समय पर फल देने वाला कर्म) ।
२८. कर्म कभी-कभी 'आहोसि कर्म' भी हो सकता हे, अर्थात् कर्म जिसका कुछ 'विपाक' न हो । इस अहोसि-कर्म के अन्तर्गत वे सब कर्म आते हैं जो या तो इतने दुर्बल होते है कि उनका कोई 'विपाक' नहीं हो सकता अथवा जो किसी अन्य सबल कर्म द्वारा बाधित हो जाते है ।
२१. इन सब बातों के लिये थोड़ी गुंजाइश भी मान ली जाय तो भी भगवान् बुद्ध की यह देशना अपने स्थान पर ठीक ही है कि कर्म का नियम लागू होकर ही रहता हैं ।
३०. कर्म के सिद्धान्त का अनिवार्य तौर पर यह मतलब नहीं कि करने वाले को ही कर्म का फल भुगतना पड़ता है; और इससे अधिक कुछ नहीं । ऐसा समझना गलती है । कभी कभी करने वाले की अपेक्षा दूसरे पर ही कर्म का प्रभाव पड़ता है । लेकिन यह सब कर्म का नियम ही है, क्योंकि यह या तो नैतिक-क्रम को संभालना है अथवा उसे गडबडाता है ।
३१. व्यक्ति आते रहते है, व्यक्ति जाते रहते है । लेकिन विश्व का नैतिक क्रम बना रहता है और उसके साथ वह कर्म-नियम भी जो इसे बनाये रखता हैं ।
३२. यही कारण है कि बुद्ध के धम्म में, नैतिकता को वह स्थान प्राप्त है जो अन्य धम्म में 'ईश्वर' को है ।

३३. इसलिये इस प्रश्न का कि 'विश्व का नैतिक-क्रम कैसे बना रहता है?', बुद्ध ने जो उत्तर दिया है वह इतना सरल है और इतना पक्का है ।

३४. इतना होने पर भी इसका सच्चा अर्थ बहुधा स्पष्ट नहीं होता । प्रायः ही नहीं, बल्कि लगभग हमेशा, या तो यह अच्छी तरह से समझा नहीं जाता, या गलत तौर पर बयान किया जाता है अथवा इसकी गलत व्याख्या की जाती है । बहुत लोग इस बात को समझते प्रतीत नहीं होते कि 'कर्म के नियम' का सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर है कि 'विश्व का नैतिक-क्रम कैसे बना रहता है?'

३५. लेकिन बुद्ध के 'कर्म के नियम' के सिद्धान्त का यही प्रयोजन हैं ।

३६. 'कर्म के नियम' का सम्बन्ध केवल विश्व के नैतिक-क्रम के प्रश्न से है । इसे व्यक्ति विशेष के धनी-निर्धन होने वा भाग्यवान-अभाग्यवान होने से कुछ लेना देना नहीं ।

३७. इसे केवल विश्व के नैतिक-क्रम के बने रहने से सरोकार हैं ।

३८. इसी कारण से 'कर्म का नियम' धम्म का एक महत्वपूर्ण अंग हैं ।

चौथा भाग : अ-धम्म क्या हैं?

१. परा-प्राकृतिक में विश्वास अ-धम्म है

१. जब भी कोई घटना घटती है, आदमी हमेशा यह जानना चाहता है कि यह घटना कैसे घटी? इसका क्या कारण है?
२. कभी- कभी कारण और उससे फलित होने वाला कार्य एक दूसरे के इतने समीप होते है कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन नहीं होता ।
३. लेकिन कभी-कभी कारण से कार्य इतना दूर होता है कि कार्य के कारण का पता लगाना कठिन हो जाता है । सरसरी दृष्टि से देखने से उस कार्य का कोई कारण प्रतीत ही नहीं होता ।
४. तब प्रश्न पैदा होता है अमुक घटना कैसे घटी?
५. बड़ा सरल सीधा-साधा उत्तर है कि घटना किसी परा-प्राकृतिक कारण से घटीं जिसे बहुधा 'करिश्मा का प्रातिहार्य' भी कहा जाता है ।
६. बुद्ध के कुछ पूर्वजों ने इस प्रश्न के विविध उत्तर दिये है ।
७. पकुद कच्चान यह मानता ही नही था कि हर कार्य का कारण होता है । उसका मत था कि घटनाएँ बिना किसी कारण के ही घटती है ।
८. मक्कली गोशाल मानता था कि हर घटना का कारण होना चाहिये । लेकिन वह प्रचार करता था कि कारण आदमी की शक्ति से बाहर किसी 'प्रकृति' किसी 'अनिवार्य आवश्यकता', किसी 'अनुत्पन्न नियम' अथवा किसी 'भाग्य' में ही खोजना चाहिये ।
९. भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार के सिद्धान्तो का खण्डन किया । उनका कहना था कि इतना ही नहीं कि हर घटना का कोई न कोई कारण होता है; बल्कि वह कारण या तो कोई न कोई मानवी कारण होता है या प्राकृतिक होता है ।
१०. काल (समय), प्रकृति, आवश्यकता (?) आदि को किसी घटना का कारण मानने के खिलाफ उनका यहाँ विरोध था ।
११. यदि काल (समय), प्रकृति, आवश्यकता (?) आदि ही किसी घटना के एकमात्र कारण है, तो हमारी अपनी स्थिति क्या रह जाती है?
१२. तो क्या आदमी काल (समय), प्रकृति, अकस्मात-पन, ईश्वर, भाग्य, आवश्यकता (?) आदि के हाथ की मात्र कुठ-पुतली है?
१३. यदि आदमी स्वतन्त्र नही है तो उसके अस्तित्व का ही क्या प्रयोजन है? यदि आदमी परा-प्राकृतिक में विश्वास रखता है तो उसकी बुद्धि का ही क्या प्रयोजन है?
१४. यदि आदमी स्वतन्त्र है, तो हर घटना का या तो कोई मानवी कारण होना चाहिये, या प्राकृतिक कारण । कोई घटना ऐसी ही हो नही सकती जिसका परा-प्राकृतिक कारण हो ।
१५. यह सम्भव है कि आदमी किसी घटना के वास्तविक कारण का पता न लगा सके । लेकिन यदि वह बुद्धिमान है तो किसी न किसी दिन पता लगा ही लेगा ।
१६. परा-प्राकृतिक-वाद का खण्डन करने में भगवान् बुद्ध के तीन हेतु थे--
१७. उनका पहला हेतु था की आदमी बुद्धवादी बने ।
१८. उनका दूसरा हेतु था कि आदमी स्वतन्त्रता पूर्वक सत्य की खोज कर सके ।
११. उनका तीसरा उद्देश्य था कि मिथ्या-विश्वास के प्रधान-कारण की जड़ काट दी जाय, क्योंकि इसी के परिणाम-स्वरूप आदमी की खोज करने की प्रवृत्ति की हत्या हो जाती है ।
२०. यही बुद्ध धम्म का 'हेतु-वाद' है ।
२१. यह 'हेतु-वाद' बुद्ध धम्म का मुख्य-सिद्धान्त है । यह बुद्धिवाद की शिक्षा देता है और बुद्ध-धम्म यदि बुद्धिवादी भी नहीं है तो फिर कुछ नहीं है ।
२२. यही कारण है कि परा-प्राकृति की पूजा अ-धम्म है ।

२. ईश्वर में विश्वास अ-धम्म है

१. इस संसार को किसने पैदा किया, यह एक सामान्य प्रश्न है । इस दुनिया को ईश्वर ने बनाया, यह इस प्रश्न का वैसा ही सामान्य उत्तर हैं ।
२. ब्राह्मण-योजना मे इस सृष्टि-रचयिता के कई नाम हैं -- प्रजापति, ईश्वर, ब्रह्मा या महाब्रह्मा ।
३. यदि यह पूछा जाय कि यह ईश्वर कौन है, और यह कैसे अस्तित्व में आया तो इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं । ४. जो लोग 'ईश्वर' मे विश्वास रखते हैं, वे उसे सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक तथा सर्व अन्तर्यामी (-सर्वज्ञ) कहते है ।
५. ईश्वर में कुछ नैतिक गुण भी बताये जाते हैं । ईश्वर को शिव (भला) कहा जाता है, ईश्वर को न्यायी कहा जाता है और ईश्वर को दयालु कहा जाता हैं ।
६. प्रश्न पैदा होता है कि क्या तथागत ने ईश्वर को सृष्टि-कर्ता स्वीकार किया है?
७. उत्तर है "नही" । उन्होंने स्वीकार नहीं किया ।
८. इसके अनेक कारण है कि तथागत ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया ।
९. किसी ने कभी 'ईश्वर' को नहीं देखा । लोग खाली उसकी चर्चा करते है ।
१०. ईश्वर 'अज्ञात' है, 'अदृश्य' है ।
११. कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि इस संसार को ईश्वर ने बनाया है, संसार का विकास हुआ है, निर्माण नहीं हुआ ।
१२. इसलिये 'ईश्वर' में विश्वास करने से कौनसा लाभ हो सकता है? इससे कोई लाभ नहीं ।
१३. बुद्ध ने कहा ईश्वराश्रित धर्म कल्पनाश्रित हैं ।
१४. इसलिये ईश्वराश्रित धर्म रखने का कोई उपयोग नहीं ।
१५. इससे केवल मिथ्याविश्वास उत्पन्न होता हैं ।
१६. बुद्ध ने इस प्रश्न को यहीं और यूं ही नहीं छोड़ दिया । उन्होंने इस प्रश्न के नाना पहलुओं पर विचार किया हैं ।
१७. जिन कारणों से भगवान् बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त को अस्वीकार किया, वे अनेक हैं ।
१८. उनका तर्क था कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धान्त सत्याश्रित नहीं हैं ।
१९. भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ और भारद्वाज के साथ हुई अपनी बातचीत मे इसे स्पष्ट कर दिया था ।
२०. वासेट्ठ और भारद्वाज में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था कि सच्चा मार्ग कौनसा है और झूठा कौनसा?
२१. इस समय महान् भिक्षु संघ को साथ लिये भगवान् बुद्ध कोशल जनपद में विहार कर रहे थे । वह मनसाकत नामके ब्राह्मण-गाँव में अचिरवती नदी के तट पर एक बगीचे में ठहरे ।
२२. वासेट्ठ और भारद्वाज दोनों मनसाकत नाम की बस्ती में ही रहते थे । जब उन्होंने यह सुना कि तथागत उनकी बस्ती में आये हैं तो वे उनके पास गये और दोनों ने भगवान् बुद्ध से अपना-अपना दृष्टि-कोण निवेदन किया ।
२३. भारद्वाज बोला- "तरूक्ख का दिखाया हुआ मार्ग सीधा मार्ग है, यह मुक्ति का सीधा पथ है और जो इस का अनुसरण करता है उसे वह ले जाकर सीधा ब्रह्म से मिला देता है ।"
२४. वासेट्ठ बोला- "हे गौतम ! बहुत से ब्राह्मण बहुत से मार्ग सुझाते हैं-अध्वर्य्य ब्राह्मण, तैत्तिरिय ब्राह्मण, कंछोक ब्राह्मण तथा भीहुवर्गीय ब्राह्मण । वे सभी, जो कोई उनके बताये पथ का अनुसरण करता है, उसे 'ब्रह्म' से मिला देते हैं ।"
२५. "जिस प्रकार किसी गांव या नगर के पास अनेक रास्ते होते हैं, किन्तु वे सभी आकर उसी गांव में पहुंचा देते हैं - उसी तरह से ब्राह्मणों द्वारा दिखाये गये सभी पथ 'ब्रह्म' से जा मिलाते हैं ।"
२६. तथागत ने प्रश्न किया-- "तो वासेट्ठ ! तुम्हारा क्या यह कहना है कि वे सभी मार्ग सही हैं?" वासेट्ठ बोला, "श्रमण गौतम । हाँ मेरा यही कहना है ।"
२७. "लेकिन वासेट्ठ ! क्या तीनों वेदों के जानकार इन ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा है जिसने 'ब्रह्म' का आमने-सामने दर्शन किया हो?"
२८. "गौतम ! नहीं ।"
२९. "क्या तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों के गुरुओं में कोई एक भी ऐसा हैं, जिसने 'ब्रह्म' का आमने-सामने दर्शन किया हो?"
३०. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"
३१. "तो किसी ने 'ब्रह्म' को नहीं देखा? किसी को 'ब्रह्म' का साक्षात्कार नहीं हुआ?" वासेट्ठ बोला- "हॉ ऐसा ही है ।" "तब तुम यह कैसे मानते हो कि ब्राह्मणों का कथन सत्याश्रित है ।"
३२. "वासेट्ठ ! जैसे अंधो की कोई कतार हो । न आगे आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला अन्धा देख सकता हो और न पीछे चलने वाला अन्धा देख सकता हो - इसी तरह वासेट्ठ ! मुझे लगता है कि ब्राह्मणों का कथन केवल अंधा

कथन हैं। न आगे आगे चलने वाला देखता है, न बीच में चलने वाला देखता है और न पीछे चलने वाला देखता है। इन ब्राह्मणों की बात-चीत केवल उपहासास्पद है; शब्द-मात्र जिसमें कुछ भी सार नहीं।"

३३. "वासेट्ठ ! क्या यह ठीक ऐसा ही नहीं है जैसे किसी आदमी का किसी स्त्री से प्रेम हो गया हो, जिसे उसने कभी देखा न हो?" वासेट्ठ बोला, " हाँ, यह तो ऐसा ही है।"

३४. "वासेट्ठ ! अब तुम बताओ कि यह कैसा होगा जब लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र ! तुम जिस सारे प्रदेश की सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात कहते हो, वह कौन है? वह क्षत्रिय जाति से है? ब्राह्मण-जाति से है? वैश्य जाति से है अथवा शूद्र जाति से हैं?"

३५. महाब्रह्मा, सृष्टि के तथाकथित रचयिता की चर्चा करते हुए, तथागत ने भारद्वाज और वासेट्ठ को कहा- "मित्रों ! जिस प्राणी ने पहले जन्म लिया था, वह अपने बारे में सोचने लगा मैं ब्रह्मा हूँ, महाब्रह्मा हूँ, विजेता हूं, अविजित हूं, सर्व-द्रष्टा हूँ, सर्वाधिकारी हूँ, मालिक हूँ, निर्माता हूँ, रचयिता हूँ, मुख्य हूँ, व्यवस्थापक हूँ, आप ही अपना स्वामी हूं और जो हैं तथा जो भविष्य में पैदा होने वाले है, उन सबका पिता हूँ। मुझे ही से ये सब प्राणी उतपन्न होते हैं।"

३६. "तो इसका यह मतलब हुआ न कि जो अब हैं और जो भविष्य में उत्पन्न होने वाले हैं, ब्रह्मा सब का पिता है?"

३७. "तुम्हारा कहना है कि यह जो पूज्य, विजेता, अविजित, जो हैं तथा जो होंगे उन सबका पिता, जिससे हम सब की उत्पत्ती हुई है- ऐसा जो यह ब्रह्म है, यह स्थायी है, सतत रहने वाला है, नित्य है, अपरिवर्तन-शील है और वह अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा। तो हम जिन्हें ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है, जो ब्रह्म के यहां से यहां आये है, सभी अनित्य क्यों हैं, परिवर्तन-शील क्यों हैं, अस्थिर क्यों हैं, अल्पजीवी क्यों हैं? मरणधर्मी क्यों है?"

३८. इसका वासेट्ठ के पास कोई उत्तर न था।

३९. तथागत का तीसरा तर्क ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता से सम्बन्धित था। "यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और सृष्टि का पर्याप्त कारण है, तो फिर आदमी के दिल में कुछ करने की इच्छा ही उत्पन्न नहीं हो सकती, उसे कुछ करने की आवश्यकता भी नहीं रह सकती, न उसके मन में कुछ करने का किसी भी तरह का कोई भी प्रयत्न करने का कोई संकल्प ही पैदा हो सकता है। यदि यह ऐसा ही है तो ब्रह्मा ने आदमी को पैदा ही क्यों किया?"

४०. इसका भी वासेट्ठ के पास कोई उत्तर न था।

४१. तथागत का चौथा तर्क था यदि ईश्वर 'शिव' है, कल्याण-स्वरूप है तो आदमी हत्यारे, चोर, व्यभिचारी, झुठे, चुगलखोर, बकवादी, लोभी, द्वेषी और कुमार्गी क्यों हो जाते है? क्या किसी अच्छे, भले, शिव स्वरूप ईश्वर के रहते यह सम्भव है?

४२. तथागत का पाँचवां तर्क ईश्वर के सर्वज्ञ, न्यायी और दयालू होने से सम्बधित था।

४३. यदि कोई ऐसा महान् सृष्टि-कर्ता है जो न्यायी भी है और दयालु भी है, तो संसार में इतना अन्याय क्यों हो रहा है? भगवान बुद्ध का प्रश्न था। उन्होंने कहा:- "जिसके पास भी आंख है वह इस दर्दनाक हालत को देख सकता है? ब्रह्मा अपनी रचना को सुधारता क्यों नहीं हैं? यदि उसकी शक्ति इतनी असीम है कि उसे कोई रोकनेवाला नहीं तो उसके हाथ ही क्यों ऐसे है कि शायद ही कभी किसी का कल्याण करते हों? उसकी सारी की सारी सृष्टि दु:ख क्यों भोग रही है? वह सभी को सुखी क्यों नहीं रखता है? चारों ओर ठगी, झूठ और अज्ञान क्यों फैला हुआ है? सत्य पर झूठ क्यों बाजी मार ले जाता है? सत्य और न्याय क्यों पराजित हो जाते हैं? मैं तुम्हारे ब्रह्म को परं-अन्यायी मानता हूँ जिसने केवल अन्याय को आश्रय देने के लिये ही इस जगत की रचना की।"

४४. "यदि सभी प्राणियों में कोई ऐसा सर्वशक्तिमान ईश्वर व्याप्त है जो उन्हे सुखी अथवा दुखी बनाता है, और जो उन से पाप-पुण्य कराता है तो ऐसा ईश्वर भी पाप से सनता है। या तो आदमी ईश्वर की आज्ञा में नहीं है या ईश्वर न्यायी और नेक नहीं है अथवा ईश्वर अन्धा है।"

४५. ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरुद्ध उनका अगला तर्क यह था कि ईश्वर की चर्चा से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

४६. भगवान् बुद्ध के अनुसार धम्म की धुरि ईश्वर और आदमी का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि आदमी आदमी का सम्बन्ध हैं। धम्म का प्रयोजन यही है कि वह आदमी को शिक्षा दे कि वह दूसरे आदमियों के साथ कैसे व्यवहार करे ताकि सभी आदमी प्रसन्न रह सके।

४७. एक और भी कारण था जिसकी वजह से तथागत ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त के इतने खिलाफ थे।

४८. वह धार्मिक रस्मों और व्यर्थ के धार्मिक क्रिया-कलाप के विरोधी थे। उनके विरोध का कारण यही था कि ये सब मिथ्या-विश्वास के घर हैं और मिथ्या विश्वास सम्यक-दृष्टि का शत्रु है। उस सम्यकदृष्टि का जो तथागत के आर्य अष्टांगिक-मार्ग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है।

४९. तथागत की दृष्टि में ईश्वर-विश्वास बडी ही खतरनाक बात थी । क्यों कि ईश्वर-विश्वास की प्रार्थना और पूजा की सामर्थ्य में विश्वास का उत्पादक है, और प्रार्थना कराने की जरूरत ने ही पादरी-पुरोहित को जन्म दिया और पुरोहित ही वह शरारती दिमाग था जिसने इतने अन्ध-विश्वास को जन्म दिया और सम्यक्-दृष्टि के मार्ग को अवरूद्ध कर दिया ।
५०. ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध दिये गये इन तर्को में से कुछ व्यावहारिक थे, कुछ मात्र सौद्धान्तिक । तथागत जानते थे कि ये ईश्वर के अस्तित्व के विश्वास के लिये एकदम मारक-तर्क नहीं हैं ।
५१. लेकिन इसका यह मतलब नही कि तथागत ने कोई मारक-तर्क दिया ही नहीं । एक तर्क उन्होंने दिया जो निश्चयात्मक रूप से ईश्वर-विश्वास के लिये प्राण घातक हैं । यह उनके प्रतीत्य-समुत्पाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है ।
५२. इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं है, यह मुख्य प्रश्न ही नहीं है । न यही प्रश्न मुख्य है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना की वा नहीं की? असल प्रश्न यह है कि रचयिता ने सृष्टि किस प्रकार रची? यदि हम इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर दे सके कि संसार की रचना कैसे हुई तो उसमें से ईश्वर के अस्तित्व के सिद्धान्त का कुछ औचित्य सिद्ध हो सकता है ।
५३. महत्वपूर्ण प्रश्न वह है कि क्या ईश्वर ने सृष्टि भाव (किसी पदार्थ) में से उत्पन्न की अथवा अभाव (-शून्य) में से?
५४. यह तो विश्वास करना असम्भव है कि 'कुछ नही' में से 'कुछ' की रचना हो गई ।
५५. यदि ईश्वर ने सृष्टि की रचना 'कुछ' में से की है तो वह 'कुछ' जिस में से नया 'कुछ' उत्पन्न किया गया है - ईश्वर के किसी भी अन्य चीज के उत्पन्न करने के पहले से चला आया है । इसलिये ईश्वर उस 'कुछ' का रचयिता नही स्वीकार किया जा सकता तो 'कुछ' उसके भी अस्तित्व के पहले से चला आ रहा है ।
५६. यदि ईश्वर के किसी भी चीज की रचना करने से पहले ही किसी ने 'कुछ' में से उस चीज की रचना कर दी है जिससे ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है तो ईश्वर सृष्टि का आदि-कारण नहीं कहला सकता ।
५७. भगवान् बुद्ध का यह आखिरी तर्क ऐसा था कि जो ईश्वर-विश्वास के लिये सर्वथा मारक था, जिसका कुछ जवाब नहीं था ।
५८. मूल-स्थापना ही असत्य होने से ईश्वर की सृष्टि का रचयिता मानना अ-धम्म है । यह केवल 'झुठ' में विश्वास करना हैं ।

३. ब्रह्म-सायुज्य प्रर आधारित धर्म मिथ्या-धर्म है

१. जब बुद्ध अपने धम्म का प्रचार कर रहे थे, उस समय एक मत प्रचलित था, जिसे अब हम 'वेदान्त' कहते हैं ।
२. इस धर्म के सिद्धान्त थोडे से हैं और सरल हैं ।
३. इस विश्व की पृष्ठ-भूमि में एक सर्व-व्यापक जीवन-तत्व विद्यमान है, जिसे हम 'ब्रह्म' या 'ब्रह्मन्' कहते हैं ।
४. यह 'ब्रह्म' एक वास्तविकता हैं ।
५. 'आत्मा' और 'ब्रह्म' में कोई अन्तर नहीं, दोनो एक ही हैं ।
६. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' को जो वास्तव में एक हैं एक मान लेने से ही आदमी को 'मोक्ष' लाभ हो सकता हैं ।
७. 'जीवात्मा' और 'ब्रह्मात्मा' की एकता तभी स्थापित हो सकती है, जब इसका ज्ञान हो जाय कि दोनों एक है ।
८. और 'जीवात्मा' तथा 'ब्रह्मात्मा' की एकता का बोध प्राप्त करने के लिये संसार का त्याग आवश्यक हैं ।
९. यही सिद्धान्त 'वेदान्त' कहलाते हैं ।
१०. बुद्ध के मन में इस सिद्धान्त के लिये कोई आदर न था । उनको लगता था कि इसका आधार ही मिथ्या है, इसकी कुछ उपयोगिता नहीं है और इसीलिये यह अपनाने योग्य नहीं ।
११. इसे भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मण तरूणों के साथ हुई बातचीत में स्पष्ट किया हैं । १२. भगवान् बुद्ध का कहना था कि किसी बात को भी सत्य स्वीकार करने के लिये उसका कोई न कोई प्रमाण होना चाहिये ।
१३. प्रमाण दो तरह के होते है, प्रत्यक्ष और अनुमान ।
१४. भगवान् बुद्ध का सीधा प्रश्न था; "क्या किसी को भी 'ब्रह्म' का प्रत्यक्ष हुआ है? क्या तुमने 'ब्रह्म' को देखा है? क्या तुमने 'ब्रह्म' से बातचीत की है? क्या तुमने 'ब्रह्म' को सूंघा है?"
१५. वासेट्ठ का उत्तर था-- "नहीं ।"
१६. ब्रह्म के अस्तित्व का दूसरा अनुमान प्रमाण भी असन्तोषजनक है ।
१७. भगवान् बुद्ध का प्रश्न था -- "हम किस चीज के होने से 'ब्रह्म' के होने का अनुमान लगाते है?" इसका भी कोई उत्तर न था ।
१८. कुछ लोगों का कहना है कि अदृश्य वस्तु का भी अस्तित्व हो सकता हैं । इसलिये वे कहते हैं कि अदृश्य होने पर भी 'ब्रह्म' का अस्तित्व है ।

१९. यह कथन तो एक दम नंगा-कथन है और एक असम्भव स्थापना लिये हुए हैं।
२०. लेकिन तर्क के लिये यह मान लेते है कि अदृश्य होने पर भी किसी वस्तु का अस्तित्व हो सकता हैं।
२१. लोग कहते हैं कि इसका सब से अच्छा उदाहरण बिजली हैं। यह अदृश्य है, लेकिन तब भी इसका अस्तित्व हैं।
२२. यह तर्क पर्याप्त नहीं हैं।
२३. किसी अदृश्य वस्तु को किसी दूसरे दृश्य रूप में अपने आपको प्रकट करना चाहिये। तभी हम उसकी वास्तविकता स्वीकार कर सकते हैं।
२४. लेकिन यदि कोई अदृश्य वस्तु किसी भी दूसरे दृश्य रुप में अपने को प्रकट नहीं करती तो हम उसकी वास्तविकता स्वीकार नही कर सकते।
२५. हम अदृश्य होने पर भी बिजली की वास्तविकता उससे उत्पन्न होने वाले परिणामों को देखकर स्वीकार करते हैं।
२६. बिजली से प्रकाश पैदा होता है। प्रकाश के होने से ही इस अदृश्य होने पर भी बिजली की वास्तविकता को स्वीकार करते हैं।
२७. वह कौनसी दृश्य चीज है, जिसे यह अदृश्य 'ब्रह्म' उत्पन्न करता है?
२८. उत्तर है-- "कुछ नहीं।"
२९. एक दूसरा उदाहरण दिया जा सकता हैं। कानून मे भी यह सामान्य बात है कि किसी एक बात को, किसी एक स्थापना को मान लिया जाता है, उसे सिद्ध नहीं किया जाता, वह केवल एक 'कानूनी कल्पना' होती है।
३०. इस तरह की 'कानूनी कल्पना' को हम सभी स्वीकार करते हैं।
३१. लेकिन इस तरह की 'कानूनी कल्पना' क्यों स्वीकार की जाती हैं?
३२. इसका कारण यह है कि 'कानूनी कल्पना' इसलिये स्वीकार की जाती है कि उससे न्याय-संगत तथा उपयोगी परिणाम निकलता है।
३३. 'ब्रह्म' को भी एक कल्पना मान लेते हैं। किन्तु इससे कौनसा उपयोगी परिणाम निकलता है?
३४. वासेट्ठ और भारद्वाज के पास कोई उत्तर न था।
३५. इनके दिमाग में अच्छी तरह कील ठोकने के लिये उन्होंने वासेट्ठ को सम्बोधित करके उससे पूछा- क्या तुमने 'ब्रह्म' को देखा है?
३६. "क्या तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा है जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा है?"
३७. "गौतम ! निश्चय से नहीं।"
३८. "वासेट्ठ ! क्या इन तीनों वेदों के जानकार ब्राह्मणों के आचार्यो मे कोई एक भी है, जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा हो?"
३९. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"
४०. "वासेट्ठ ! क्या इन ब्राह्मणों की पहले की सात पीढ़ियों में भी कोई एक भी ब्राह्मण है, जिसने 'ब्रह्म' को आमने-सामने देखा हो?"
४१. "गौतम ! निश्चय से नहीं !"
४२. "अच्छा तो वासेट्ठ ! क्या ब्राह्मणों के पुराने ऋषियों ने कभी कहा है- "हम 'ब्रह्म' को जानते है, हम ने 'ब्रह्म' को देखा है। हम जानते है कि वह कहाँ है, किधर है?""
४३. "गौतम ! नहीं ही।"
४४. तथागत ने उन दोनों ब्राह्मण-तरूणों से प्रश्न पूछना जारी रखा :-
४५. "तो वासेट्ठ ! अब तुम्हें कैसा लगता है? यदि ऐसा ही है तो क्या तुम्हे यह नहीं लगता कि 'ब्रह्म-सायुज्य' की ब्राह्मणों की यह सारी बात-चीत ही मूर्खता पूर्ण बात-चीत है?"
४६. "वासेट्ठ ! जैसे कोई अंधो की कतार हो। न आगे आगे चलने वाला अंधा देख सकता हो, न बीच में चलने वाला अन्धा देख सकता हो और न पीछे चलने वाला अन्धा देख सकता हो- इसी तरह वासेट्ठ ! मुझे लगता है कि ब्राह्मणों का कथन केवल अन्धा-कथन है। न आगे आगे चलने वाला देखता है, न बीच में चलने वाला देखता है, और न पीछे चलने वाला देखता है। इन ब्राह्मणों की बात-चीत केवल उपहासास्पद है; शब्द-मात्र जिन में कुछ भी सार नहीं।"
४७. "वासेट्ठ ! क्या यह ठीक ऐसा ही नहीं है जैसे किसी आदमी का
किसी स्त्री से प्रेम हो गया हो जिसे, उसने कभी देखा न हो?" वासेट्ठ बोला- "हां ! यह तो ऐसा ही है?"
४८. "वासेट्ठ ! अब तुम बताओ कि यह कैसा होगा जब लोग उस आदमी से पूछेंगे कि मित्र ! तुम सारे प्रदेश की जिस सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात करते हो, वह कौन है? वह क्षत्रिय जाति से है? ब्राह्मण जाति से है? वैश्य जाति से है? अथवा शूद्र जाति से है?"

४९. "लेकिन तब उससे पूछा जायेगा, उसका उत्तर होगा 'नही' ।"
५०. "और जब लोग उससे पूछेंगे कि मित्र ! तुम सारे देश की जिस सुन्दरतम स्त्री से इतना प्रेम करने की बात करते हो, उसका नाम क्या है? उसका गोत्र क्या है? वह लम्बे कद की है । छोटे कद की है वा मंझले कद की है । क्या वह काले रंग की है, भूरे रंग की है वा गेहुए रंग की है? वह किसी गांव, नगर या शहर में रहती है? लेकिन जब उस से ये सब प्रश्न पूछे जायेंगे उसका एकही उत्तर हो- 'नहीं' ।"
५१. "तो वासेट्ठ ! तुम्हें कैसा लगता है? क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि उस आदमी का कथन मूर्खता-पूर्ण कथन है?"
५२. दोनों ब्राह्मण तरूण बोले-- "गौतम ! सचमुच, यह ऐसा ही है ।"
५३. इसलिये 'ब्रह्म' यथार्थ नहीं है और यदि कोई धर्म 'ब्रम्हाश्रित' है तो वह व्यर्थ हैं ।

४. आत्मा में विश्वास अ-धम्म है

१. भगवान बुद्ध ने कहा कि जिस धर्म का सारा दारोमदार 'आत्मा' पर है वह कल्पनाश्रित धर्म हैं ।
२. आज तक किसी ने भी न तो 'आत्मा' को देखा है और न उससे बातचीत की हैं ।
३. आत्मा अज्ञात है, अदृश्य हैं ।
४. जो चीज वास्तव में है वह 'मन या चित्त' है, 'आत्मा' नहीं । मन 'आत्मा' से भिन्न है ।
५. तथागत ने कहा- 'आत्मा' में विश्वास करना अनुपयोगी है ।
६. इसलिये जो धर्म 'आत्मा' पर आश्रित है, वह अपनाने योग्य नहीं हैं ।
७. ऐसा धर्म केवल मिथ्या-विश्वास का जनक हैं ।
८. बुद्ध ने इस बात को यों ही नहीं छोड़ दिया है । तथागत ने इसकी अच्छी तरह चर्चा की है ।
९. 'आत्मा' में विश्वास भी वैसी ही सामान्य बात है जैसी 'परमात्मा' में विश्वास हैं ।
१०. 'आत्मा' में विश्वास रखना भी 'ब्राह्मणी' धर्म का एक अंग था ।
११. 'ब्राह्मणी' धर्म में 'रूह' को 'आत्मा' या 'आत्मन्' कहते हैं ।
१२. ब्राह्मणी धर्म में 'आत्मा' उस तत्व-विशेष को कहा गया है जो शरीर से पृथक्, किन्तु शरीर के ही भीतर, जन्म के समय से लेकर लगातार बना रहता है ।
१३. 'आत्मा' के विश्वास के साथ तत्सम्बन्धी दूसरे विश्वास भी जुडे हुए हैं ।
१४. शरीर के साथ 'आत्मा' का मरण नहीं होता । यह दूसरे जन्म के समय दूसरे शरीर के साथ जन्म ग्रहण करती है ।
१५. शरीर 'आत्मा' का एक और अतिरिक्त-परिधान है ।
१६. क्या भगवान बुद्ध 'आत्मा' में विश्वास रखते थे? नहीं, एकदम नहीं । 'आत्मा' के सम्बन्ध में उनका मत 'अनात्म-वाद' कहलाता हैं ।
१७. यदि एक अशरीरी 'आत्मा' को स्वीकार कर लिया जाय तो उसके सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पैदा होते है । 'आत्मा' क्या है? 'आत्मा' का आगमन कहां से हुआ? शरीर के मरने पर इसका क्या होता है? यह कहां जाता है? शरीर के न रहने पर यह 'परलोक' में कैसे रहता है? वहां यह कब तक रहता है? जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के समर्थक थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे ऐसे प्रश्नों का उत्तर चाहा था ।
१८. पहले तो उन्होंने अपने जिरह करने के सामान्य क्रम से यह दिखाना चाहा कि 'आत्मा' का विचार कितना गोल-मटोल है ।
१९. जो 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने जानना चाहा कि 'आत्मा' का आकार कितना बड़ा या छोटा है? 'आत्मा' की शक्ल कैसी हैं?
२०. आनन्द स्थविर को उन्होंने कहा था-- "आनन्द ! आत्मा के सम्बन्ध में लोगों के अनगिनत मत है । कोई कहते हैं-- "मेरा 'आत्मा' रूपी है और बड़ा ही सूक्ष्म है ।" कुछ दूसरों का कहना है कि आत्मा की शक्ल है, यह अनन्त है और यह सूक्ष्म है । कुछ दूसरे हैं जिनका कहना है कि यह निराकार है और अनन्त हैं ।
२१. "आनन्द ! 'आत्मा' के बारे में नाना तरह के मत हैं ।"
२२. "जो लोग 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, उनकी आत्मा की कल्पना क्या है?" यह भी भगवान् बुद्ध का एक प्रश्न था । कोई कहते हैं- "हमारी आत्मा (सूख-दुःख) अनुभव-क्रिया है ।" दूसरे कहते हैं "नही आत्मा अनुभव क्रिया नहीं, आत्मा

अनुभव-क्रिया है ।" या फिर कोई कोई कहते हैं, "मेरी आत्मा अनुभव-क्रिया नहीं है, न यह अनुभव-क्रिया है, बल्कि मेरी आत्मा अनुभव करता है, मेरी आत्मा का गुण है अनुभव करना ।" आत्मा के बारे में इस तरह की नाना कल्पनाएँ हैं ।
२३. जो लोग 'आत्मा' में विश्वास रखते थे, उनसे भगवान् बुद्ध ने यह भी पूछा है कि मरणान्तर 'आत्मा' की क्या हालत होती है?
२४. तथागत ने यह भी प्रश्न पूछा है कि क्या मरने के बाद 'आत्मा' देखी जा सकती है?
२५. उन्हें अनगिनत गोल-मटोल जवाब मिले ।
२६. क्या शरीर का नाश हो जाने पर 'आत्मा' अपने आकार-प्रकार को बनाये रखती हैं? उन्होंने देखा कि इस एक प्रश्न के आठ काल्पनिक उत्तर थे ।
२७ . क्या 'आत्मा' शरीर के साथ मर जाती है? इस पर भी अनगिनत कल्पनाएँ थीं ।
२८. तथागत ने यह भी पूछा है कि शरीर के मरने के बाद 'आत्मा' सुखी रहता है वा दुःखी रहता है? क्या 'आत्मा' शरीर की मृत्यु के बाद सुखी रहता है? इस विषय में भी श्रमणों और ब्राह्मणो के भिन्न-भिन्न मत थे । कुछ का कहना था कि यह एकदम दुःखी है । कुछ का कहना था सुखी रहता है । कुछ का कहना था कि यह सुखी भी रहता है, दुःखी भी रहता है । कुछ का कहना था कि न यह सुखी रहता है और न दुःखी रहता हैं ।
२९. 'आत्मा' के सम्बन्ध में इन सब मतों के बारे में तथागत का वही एक उत्तर था, जो उन्होंने चुन्द को दिया ।
३०. चुन्द को उन्होंने कहा था: "हे चुन्द ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन मतो में से कोई भी मत रखते है, मैं उनके पास जाता हूँ और उनसे पूछता हूँ, 'मित्र ! क्या आपका यह कहना ठीक है?' और यदि वे उत्तर देते हैं, 'हाँ ! मेरा मत ही ठीक है, शेष सब बेहूदा है', तो मै उनके इस मत को नहीं मानता । ऐसा क्यों? क्योकि इस विषय में लोगों के नाना मत हैं । मैं इनमें से किसी भी एक मत को अपने मत से श्रेष्ठ मानने की तो बात ही नहीं, अपने मत, के समान स्तर पर ही नहीं मानता ।"
३१. अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'आत्मा' के अस्तित्व के सिद्धान्त के विरूद्ध भगवान बुद्ध ने कौन कौन से तर्क दिये हैं?
३२. भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' के विरुद्ध भी सामान्य रुप से वे ही तर्क दिये है जो उन्होंने 'परमात्मा' के विरुद्ध दिये हैं ।
३३. उनका एक तर्क तो यही था कि 'आत्मा' की चर्चा उतनी ही बेकार वा अनुपयोगी है, जितनी 'परमात्मा' की चर्चा ।
३४. उनका तर्क था कि 'आत्मा' के अस्तित्व में विश्वास सम्यक्-दृष्टि के विकास में उतना ही बाधक है, जितना 'परमात्मा' का विश्वास ।
३५. उनका तर्क था कि 'आत्मा' में विश्वास भी उतना ही मिथ्या-विश्वास का घर है जितना 'परमात्मा' में विश्वास । उनकी सम्मति में 'आत्मा' में विश्वास करना 'परमात्मा' में विश्वास करने की अपेक्षा भी अधिक खतरनाक था । क्योंकि इससे इतना ही नहीं होता कि पुरोहितो

का वर्ग पैदा हो जाता है, इससे इतना ही नहीं होता कि मिथ्या-विश्वासों के जन्म का रास्ता खुल जाता है बल्कि 'आत्मा' के विश्वास के फलस्वरूप आदमी के जन्म से मरण-पर्यन्त उसके समस्त जीवन पर पुरोहित-शाही का अधिकार हो जाता हैं ।
३६. इन्ही सामान्य तर्को के कारण कहा जाता है कि भगवान बुद्ध ने 'आत्मा' के बारे में अपना कोई निश्चित मत अभिव्यक्त नहीं किया । कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि उन्होंने 'आत्मा' के सिद्धान्त का खण्डन नही किया । कुछ औरों ने कहा है कि भगवान् बुद्ध हमेशा इस प्रश्न को बचा जाते थे ।
३७. ये सभी मत एकदम गलत है । क्योंकि महाली को भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट रूप से निश्चित शब्दों में यह कहा था कि 'आत्मा' नाम का कोई पदार्थ नहीं है । इसीलिये 'आत्मा' के सम्बन्ध में तथागत का मत 'अनात्मवाद' कहलाता है ।
३८. 'आत्मा' के विरुद्ध सामान्य तर्क के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध ने विशेष तर्क भी दिया है जो कि उनके अनुसार 'आत्मा' के सिद्धान्त के लिए एकदम मारक तर्क ही था ।
३९. 'आत्मा' के अस्तित्व की स्थापना के मुकाबले में भगवान् बुद्ध का अपना सिद्धान्त या नाम-रूप का सिद्धान्त ।
४०. यह नाम-रूप का सिद्धान्त 'विभज्ज-वाद' द्वारा परीक्षण का परिणाम है, मानव-व्यक्तित्व अथवा मानव के बडे ही सूक्ष्म कठोर विश्लेषण का परिणाम है ।
४१. 'नाम-रूप' एक प्राणी का सामूहीक नाम हैं ।
४२. भगवान् बुद्ध के अनुसार हर प्राणी कुछ भौतिक तत्वों तथा कुछ मानसिक तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है । वे भौतिक तथा मानसिक तत्व 'स्कन्ध' कहलाते हैं ।
४३. रूप-स्कन्ध प्रधान रूप से पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि - इन चार भौतिक तत्वों का परिणाम हैं । वे 'रूप' अथवा शरीर हैं ।
४४. रूप-स्कन्ध के अतिरिक्त (चित्त- चैतसिकों का समूह) नाम-स्कन्ध है, जिससे एक प्राणी की रचना होती है ।

४५. इस नाम-स्कन्ध को हम विज्ञान (-चेतना) भी कह सकते हैं । यू इस नाम-स्कन्ध के अन्तर्गत वेदना (छ: इन्द्रियों तथा उनके विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली अनुभूति), सञ्ज्ञा (संज्ञा) तथा संखार (संस्कार) हैं । विज्ञान भी इन तीनों के साथ शामिल किया जाता हैं । (इस प्रकार पूर्व के तीन चैतसिक और विज्ञान (-चित्त) को मिलाकर नाम-स्कन्ध होता है -- अनु.) एक आधुनिक मानस-शास्त्र-वेत्ता कदाचित् इसे इस रूप में कहना पसन्द करेगा कि चित्त ही वह मूल स्त्रोत है, जिससे सभी चैतसिक उत्पन्न होते है (अथवा चैतसिको के समुह विशेष का नाम हो चित्त हो जाता है - अ नु.) । विज्ञान (-चित्त) किसी भी प्राणी का केन्द्र-बिन्दु हैं ।
४६.पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु--इन चार तत्वों के सम्मिश्रण से 'विज्ञान' उत्पन्न होता हैं ।
४७.बुद्ध द्वारा प्रतिपादित 'विज्ञान' की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त पर एक आपत्ति उठाई जाती हैं ।
४८. जो इस सिद्धान्त के विरोधी है, वे पूछते है "विज्ञान (-चित्त) की उत्पत्ति कैसे होती है?"
४९. यह सत्य है कि आदमी के जन्म के साथ विज्ञान (-चित्त) की उत्पत्ति होती है और आदमी के मरण साथ विज्ञान (-चित्त) का विनाश होता है । लेकिन साथ ही क्या यह कहा जा सकता है कि विज्ञान (-चित्त) चार तत्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है?
५०. भगवान् बुद्ध ने इसे इस रूप में नहीं कहा कि भौतिक तत्वों की सहस्थिति अथवा उनके समिश्रण से विज्ञान (-चित्त) की उत्पत्ति होती है । तथागत ने इसे इस रुप में कहा है कि जहाँ भी शरीर या रूप-काया है, वहाँ साथ-साथ नामकाया भी रहता हैं ।
५१. आधुनिक विज्ञान से एक उपमा ले । जहाँ जहाँ विद्युत-क्षेत्र (electric field) होता है, वहाँ वहाँ उसके साथ आकर्षण-क्षेत्र (magnetic field) रहता है । कोई नहीं जानता कि यह आकर्षक-क्षेत्र किस प्रकार उत्पन्न होता है, या किस प्रकार अस्तित्व मे आता है? लेकिन जहाँ जहाँ विद्युत-क्षेत्र होता है, वहाँ वहाँ यह उसके साथ अनिवार्य-रूप में रहता है ।
५२. शरीर और विज्ञान (-चित्त) में भी हम कुछ कुछ इसी प्रकार का सम्बन्ध क्यों न मान ले?
५३. विद्युत-क्षेत्र की अपेक्षा से उसका आकर्षण-क्षेत्र विद्युत-क्षेत्र द्वारा प्रेरित क्षेत्र (induced field) कहलाता है । तो फिर हम विज्ञान (-चित्त) को भी रूप काय (-शरीर) की दृष्टि से उसके द्वारा प्रेरित-क्षेत्र क्यों न कहें?
५४. 'आत्मा' के विरुद्ध तथागत का तर्क यहीं समाप्त नहीं होता। अभी विशेष महत्वपूर्ण व्यक्ततव्य शेष है ।
५५. जब विज्ञान (-चित्त-चेतना) का उदय होता है तभी आदमी जीवित प्राणी बनता है । इसलिये विज्ञान (- चित्त-चेतनता) आदमी के जीवन में प्रधान वस्तु है ।
५६. विज्ञान की प्रकृति है ज्ञान-मूलक, भावना--मूलक, और क्रिया-शील ।
५७. विज्ञान को हम ज्ञान-मूलक उस समय कहते है जब यह हमें कुछ जानकारी देता है, कुछ ज्ञान प्रदान करता है - वह ज्ञान रूचिकर भी हो सकता है और अरुचिकर भी हो सकता है, वह अपने भीतर घटनेवाली घटनाओं का भी हो सकता है, बाह्य-घटनाओं का भी हो सकता हैं ।
५८. विज्ञान को हम भावना-मूलक उस समय कहते है जब यह चित्त की उन अवस्थाओं में उपस्थित रहता है जो अनुकूल अनुभूतियाँ भी हो सकती है और प्रतिकूल-अनुभूतियाँ भी; जब भावना-मुलक ज्ञान वेदना (-अनुभुति) की उत्पत्ति का कारण बनता हैं ।
५९. विज्ञान अपनी क्रीया-शील अवस्था में आदमी को उद्देश्य-विशेष की सिद्धि के लिए कुछ करने की प्रेरणा देता है । क्रिया-शील विज्ञान ही संकल्पो का या इरादों का जनक हैं ।
६०. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक प्राणी की जितनी भी क्रियायें है वे या तो विज्ञान के द्वारा अथवा विज्ञान के परिणाम-स्वरूप पूरी होती हैं ।
६१. इस विश्लेषण के बाद भगवान बुद्ध प्रश्न करते हैं कि वह कौनसा कार्य है जो 'आत्मा' के करने के लिये बचा रहता है? 'आत्मा' के जो कार्य माने जाते हें, वे सब तो विज्ञान (-चित्त) द्वारा हो जाते हैं ।
६२. जिसका कुछ 'कार्य' ही नहीं ऐसा 'आत्मा' एक बेहूदगी हैं ।
६३. इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने 'आत्मा' का अस्तित्व असिद्ध किया है ।
६४. यही कारण है कि 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार करना अ-धम्म है ।

९. यज्ञ (बलि-कर्म) मे विश्वास अ-धम्म है

(i)

१. ब्राह्मणी धर्म यज्ञों पर निर्भर करता था ।

२. कुछ यज्ञ 'नित्य' कहलाते थे और कुछ यज्ञ 'नैमित्तिक' कहलाते थे ।
३. 'नित्य' यज्ञ का मतलब था वे अनिवार्य कर्तव्य जो चाहे कोई फल मिले और चाहे न मिले करणीय ही थे ।
४. 'नैमित्तिक' यज्ञ उस समय किये जाते जब यजमान किसी सांसारिक इच्छा-विशेष की पूर्ति के लिये, उसके निमित्त से, वह 'यज्ञ' कराता था ।
५. ब्राह्मणी-यज्ञों में सुरा-पान, पशुओं की बलि और हर तरह का आमोद प्रमोद रहता था ।
६. तब भी ये यज्ञ 'धार्मिक-कृत्य' समझे जाते थे ।
७. ऐसे धर्म को जिसका आधार 'यज्ञ' थे -- बुद्ध ने अपनाने योग्य नहीं समझा ।
८. उन बहुत से ब्राह्मणों को जो भगवान् बुद्ध से विवाद करने पहुंचे, तथागत ने अपने कारण बता दिये थे कि वे क्यों 'यज्ञों' को 'धम्म' का अंग मानने के लिये तैयार न थे ।
९. लिखा मिलता है कि इस विषय में तीन ब्राह्मणों ने तथागत से वाद-विवाद किया था ।
१०. उनके नाम थे, कूटदन्त, उज्जय और उदायी ।
११. कूटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध से पूछा था कि यज्ञ के बारे में उनका क्या मत था?
१२. तथागत बोले -- "अच्छा तो, हे ब्राह्मण सुन, ध्यान दे और जो कुछ मै कह रहा हूँ उसे सावधान रहकर सुन ।"
१३. "बहुत अच्छा", कूटदन्त बोला । तब भगवान बुद्ध ने कहा -
१४. "हे ब्राह्मण ! बहुत पुराने समय में महा-विजेता नाम का एक राजा था, बडा प्रतापी, बहुत धन वाला तथा बहुत सम्पत्ति वाला । उसके पास सोने चांदी के भण्डार थे, सुख-भोग के सब सामान थे, धन-धान्य की कमी न थी । उसके खजाने धन से और उसके कोठे अनाज से भरे थे ।"
१५. "अब, एक बार, जब राजा महाविजेता अकेला विचार-मग्न बैठा था, उसके मन में बड़े जारे से यह विचार पैदा हुआ । 'आदमी के सुख-भोग के सामानों की मेरे पास कमी नहीं । मै पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा हूँ । यह अच्छा होगा, यदि मै एक महान् यज्ञ करूँ जो दार्घकाल तक मेरे कल्याण के लिये हो ।"
१६. "तब उस ब्राह्मण ने, जो राजा का पुरोहित था, राजा से कहा- "राजन ! इस समय आपकी प्रजा हैरान की जा रही है और लूटी जा रही है । बहुत से डाकू है जो गाँव और नगरों में लूट-मार करते है और जिन्होंने रास्ते अरक्षित कर दिये हैं । जब तक ऐसी अवस्था है, तब तक यदि, महाराज ने प्रजा पर एक नया टैक्स और लगाया तो महाराज निश्चय से गलती करेंगे ।"
१७. "लेकिन हो सकता है कि महाराज यह सोचें कि मैं शीघ्र ही उन दुष्टों की सब कारवाइयाँ रोक दूंगा - उनको पकड़वा लूंगा, उन पर जुर्माने करूंगा, उनको देश-निकाला दे दूंगा तथा उनको मरवा डालूंगा । लेकिन इस तरह से उनकी स्वेच्छा चारिता नहीं रोकी जा सकती । जो अदण्डित बच रहेंगे, वे प्रजा को हैरान करते रहेंगे ।"
१८. "इस गड़बड़ी को जडमूल से समाप्त करने का एक रास्ता है । आपके राज्य में जितने भी ऐसे हो जो पशु पालते हो या खेती करते हो, उन्हें महाराज ! आप खाने को दें और खेतों में बीज बोने के लिये बीज दें । आपके राज्य मे जितने भी ऐसे हो जो व्यापार में लगे हों, उन्हें महाराज ! आप व्यापार करने के लिये पुंजी दें । आपके राज्य मे जितने भी ऐसे हों जो सरकारी कर्मचारी हों, महाराज ! आप भोजन और वेतन दें ।"
१९. "तब जब सब कोई अपने अपने काम में लगे रहेंगे तो वे देश में उत्पात नहीं मचायेंगे, राजा को राज्यकर से अधिक आय होने लगेगी, देश सुख और शान्ति का अनुभव करेगा; और जनता खुश-हाल हो जायेगी । लोग अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचेंगे और निर्भय होकर खुले दरवाजे सोयेंगे ।"
२०. "तब हे ब्राह्मण! राजा महाविजेता ने अपने पुरोहित की बात मान वैसा ही किया । लोग अपने अपने काम में लग गये । उन्होंने देश में उत्पात मचाना छोड़ दिया । राजा को राज्य-कर से अधिक आय होने लगी । देश सुख और शान्ति का अनुभव करने लगा । जनता खुश-हाल हो गई । लोग अपने अपने बच्चों को गोद में लेकर नाचने लगे और निर्भय होकर खुले-दरवाजे सोने लगे ।"
२१. "जब उत्पात शान्त हो गया, तो राजा महाविजेता ने फिर अपने पुरोहित से कहा -- "अब उत्पात शान्त है । देश खुशहाल है । मै अपने दीर्घकालीन कल्याण के लिये वह महान् यज्ञ करना चाहता हूँ-- आप बतायें कि कैसे करू?"
२२. पुरोहित ने राजा को उत्तर देते हुए कहा--"राजन! अब यज्ञ होने दें । राजन्! अब आप राजधानी में और राजधानी के बाहर समस्त देश में ऐसे जितने भी क्षत्रिय हों जो आपके मालगुजार हों उन्हें निमंत्रण दें, जो मन्त्री हों, राज्याधिकारी हो या प्रतिष्ठित ब्राह्मण हों, या जो सम्पन्न गृहपति हों -- उन सब को निमंत्रण भेजे और कहे कि मैं अपने दीर्घकालीन कल्याण के लिये महान् यज्ञ करना चाहता हूँ । आप उसकी स्वीकृति दे दें ।"

२३. "तब हे ब्राह्मण कूटदन्त! जैसा पुरोहित ने कहा था, वैसा ही राजा ने किया । उन क्षत्रियों, मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा गृहपतियो ने भी वैसा ही उत्तर दिया--"राजन्! आप महान् यज्ञ करें । राजन्! यह समय महान् यज्ञ करने के लिये अनुकूल है ।"
२४. "राजा महाविजेता बुद्धिमान था और अनेक बातों मे बहुत कुशल था । उसका पुरोहित भी वैसा ही बुद्धिमान था और बहुत बातों में कुशल था ।"
२५. "हे ब्राह्मण! तब उस पुरोहित ने यज्ञ के आरम्भ होने से पहले राजा को बता दिया कि उसमें कितना धन व्यय हो सकता है?"
२६. पुरोहित ने कहा--"महाराज! कहीं ऐसा न हो कि यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व या यज्ञ करते समय अथवा यज्ञ हो चुकने के अनन्तर आपके मन में यह विचार उत्पन्न हो कि "अरे! इस यज्ञ में तो मेरी सम्पत्ति का बड़ा हिस्सा लग गया", तो ऐसा विचार मन में नही आना चाहियें ।"
२७. "और हे ब्राह्मण! उस पुरोहित ने यज्ञ आरम्भ होने से ही पहले, बाद में राजा के मन में यज्ञ में भाग लेने वालो को लेकर कोई पश्चाताप न हों, इसलिये राजा को कहा--"राजन् । आपके यज्ञ में हर तरह के लोग आयेंगे -- ऐसे भी जो जीव-हत्या करते हैं, ऐसे भी जो जीव-हत्या नहीं करते । ऐसे भी जो चोरी करते हैं, एसे भी जो चोरी नहीं करते । एसे भी जो काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार करते है, और एसे भी जो नहीं करते । ऐसे भी जो झूठ बोलते हैं ऐसे भी जो झूठ नहीं बोलते । ऐसे भी जो झूठी चुगली खाते हैं, ऐसे भी जो झूठी चुगली नहीं खाते । ऐसे भी जो कठोर बोलते हैं, ऐसे भी जो कठोर नहीं बोलते । ऐसे भी जो व्यर्थ बकवाद करते हैं, ऐसे भी जो व्यर्थ बकवाद नहीं करते, ऐसे भी जो लोभ करते हैं, ऐसे भी जो लोभ नहीं करते । ऐसे भी जो द्वेष करते हैं, ऐसे भी जो द्वेष नहीं करते । ऐसे भी जिनकी सम्यक्-दृष्टि होगी; ऐसे भी जिनकी मिथ्या-दृष्टि होगी । इन्हे जो बुरे हों, उन्हें अपनी बुराई के साथ पृथक रहने दें । और राजन्! जो भले हों, उनके लिये आप यथायोग्य करें, उन्हें सन्तुष्ट करें, इससे आपके चित्त को आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी ।"
२८. "और हे ब्राह्मण! महाविजेता द्वारा कराये गये इस यज्ञ में वृषभ हत्या नहीं हुई थी, बकरियों के गले नहीं कटे थे, मुर्गे-मुर्गीया नही मारी गयी थी न मोटे सुअर और न अन्य किसी भी तरह के प्राणियों की बलि चढ़ाई गई थी । यूप (वध-स्तंभ) बनाने के लिये कोई पेड नही काटे गये थे, और यज्ञ-स्थल पर बिखेरने के लिये दूब-घास नहीं काटी गई थी । और वहाँ जो दास, जो इधर-उधर आने-जाने वाले तथा जो अन्य कर्मी काम कर रहे थे, वे दण्ड या भय के कारण अश्रु-मुख होकर काम नहीं कर रहे थे । जिसकी सहायता करने की इच्छा होती थी, काम करता था, जिसकी इच्छा नही होती थी, नहीं करता था । जो किसी ने करना चाहा, वह किया; जो नहीं करना चाहा वह बिना किये छोड़ दिया गया । उस यज्ञ में घी, तेल, मक्खन, दूध, मधु और शक्कर के अतिरिक्त और कुछ नही काम में आया ।"
२९. "यदि आप कोई यज्ञ करना ही चाहते हैं, तो आपका 'यज्ञ' वैसा ही होना चाहिये जैसा महाराज महाविजेता का । अन्यथा यज्ञ व्यर्थ है । पशुओ की बलि निर्दयता मात्र है । 'यज्ञ' कभी धर्म का अंग हो ही नही सकते । यह 'धर्म' का निकृष्ट तम रूप है जो कहता है कि पशुओं की बलि देने से आदमी स्वर्ग जा सकते हैं ।"
३०. तब कूटदन्त ब्राह्मण ने प्रश्न किया "हे गौतम! तो क्या कोई दूसरा 'यज्ञ' है जिसमें पशुओं की बलि तो न देनी पड़े किन्तु जिसके करने में अधिक फल मिले अधिक कल्याण हो ।"
३१. "हे ब्राह्मण! हाँ, ऐसा है ।"
३२. "हे गौतम! ऐसा 'यज्ञ' कैसे क्या होगा?"
३३. "हे ब्राह्मण! जब एक आदमी श्रद्धायुक्त होकर (१) जीव-हत्या से विरत रहने का संकल्प करता है, (२) चोरी से विरत रहने का संकल्प करता है, (३) काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने का संकल्प करता है, (४) झूठ से विरत रहने का संकल्प करता है, तथा (५) सुरा-मेरय --मद्य आदि नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने का संकल्प करता है तो यह एक ऐसा यज्ञ है जो यज्ञों के निमित्त बड़े खर्चे करने से अच्छा है, जो भिक्षुओं के ठहरने के निमित्त विहरादि बनवाने से भी अच्छा है ,जो निरन्तर भिक्षा देते रहने से भी अच्छा है, जो (त्रि) शरण ग्रहण करने से भी अच्छा है ।"
३४. जब भवगान् बुद्ध ने यह कहा तो कूटदन्त ब्राह्मण को भी कहना पड़ा- "श्रमण गौतम! आप का कथन सर्व- श्रेष्ठ है । श्रमण गौतम! आपका कथन सर्वश्रेष्ठ है ।"

(ii)

१. अब ब्राम्हण उज्जय ने तथागत से पूछा--
२. "श्रमण गौतम! क्या आप यज्ञों के प्रशंसक हैं?"

३. “ब्राह्मण! न मैं हर ‘यज्ञ’ की प्रशंसा करता हूँ, न मै हर ‘यज्ञ’ को सदोष कहता हूँ । हे ब्राह्मण! जिस किसी यज्ञ में भी गो-हत्या हो, बकरियाँ और भेडें मारी जायें, मुर्गे-मुर्गियाँ और सूअर मारे जायें और भी दूसरे नाना
तरह के प्राणियों की हत्या हो- इस प्रकार का ‘यज्ञ’ जिसमें पशु-बलि दी जाती हो, हे ब्राह्मण! मेरी प्रशंसा का पात्र नहीं ।” “ऐसा क्यों?”
४. “हे ब्राम्हण! इस प्रकार के ‘यज्ञ’ के -जिसमें पशुओं की हत्या होती हैं - न तो श्रेष्ठजन पास फटकते है और न श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले ही पास फटकते हैं ।”
५. “लेकिन हे ब्राह्मण! जिस यज्ञ में गो-हत्या नहीं होती- पशुओं की हत्या नहीं होती- ऐसा यज्ञ जिसमें पशुओं की बलि नहीं दी जाती- ऐसा यज्ञ मेरी प्रशंसा का पात्र है । उदाहरण के लिये चिर- स्थापित दान या परिवार के सदस्यों के कल्याण के लिये त्याग ।” “ऐसा क्यों?”
६. “क्योकि ब्राह्मण! जिस यज्ञ में पशुओं की बलि नहीं दी जाती, ऐसे यज्ञ के श्रेष्ठजन भी पास जाते हैं और वे भी जो श्रेष्ठमार्ग पर आरुढ़ हैं ।”

(iii)

१. उदायी ब्राह्मण ने भी तथागत से वही प्रश्न पूछा जो उज्जय ब्राह्मण ने पूछा-
२. “श्रमण गौतम! क्या आप ‘यज्ञ’ की प्रशंसा करते हैं?” तथागत ने जो उत्तर उज्जय को दिया था, वही उदायी ब्राह्मण को दिया --
३. तथागत बोले -- “ऐसे यज्ञ के- जो उचित समय पर किया जाए, ऐसे यज्ञ के- जिसमें पशुओं की बलि न दी जाये, वे निकट जाते हैं, जो श्रेष्ठ-जीवी हैं, जिनकी आँख पर से पर्दा हट गया हैं । जो कालातीत हैं; जो जन्म -मरण के बंधन से मुक्त हैं, वे तथा वैसे ही दूसरे प्राणज्ञ तथा कुशलज्ञ यज्ञ की प्रशंसा करते हैं ।” “यज्ञ अथवा श्रद्धायुक्त-कर्म में श्रद्धायुक्त चित्त से, पुष्प-क्षेत्र में, जो बीज बोया जाता है; अथवा जो श्रेष्ठ-जीवी हैं, उन्हें जो दान दिया जाता हैं, उससे देवता भी प्रसन्न होते हैं, इस प्रकार के दान से विज्ञजन विद्या का लाभ करते हैं, तथा दुःख से मुक्त हो, सुखी अवस्था को प्राप्त होते हैं ।”

६. कल्पनाश्रित विश्वास अ-धम्म है

(i)

१. ऐसे प्रश्नों का मन में उठना स्वाभाविक था जैसे (१) क्या मै पहले था? (२) क्या मै पहले नहीं था? (३) उस समय मैं क्या था? (४) मैं क्या होकर क्या हुआ? (५) क्या मैं भविष्य में होऊँगा? (६) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा? (७) तब मै क्या होऊँगा? (८) तब मैं कैसे होऊँगा? (९) मैं क्या होऊंगा? अथवा वह अपने वर्तमान के विषय में ही सन्देह-शील होता है (१) क्या मैं हूँ? (२) क्या मैं नहीं हूँ? (३) मैं हूँ क्या? (४) मैं कैसे हूँ? (५) यह प्राणी कहाँ से आया? (६) यह किधर जायेगा?
२. इसी प्रकार विश्व के बारे में बहुत से प्रश्न कुछ इस प्रकार पूछे गये थे-
३. “यह संसार किस प्रकार उत्पन्न किया गया? क्या संसार अनन्त हैं ।”
४. पहले प्रश्न के उत्तर में किसी का कहना था कि प्रत्येक वस्तु ब्रम्हा द्वारा उत्पन्न की गई है - दूसरों का कहना था कि यह प्रजापति द्वारा उत्पन्न की गई हैं ।
५. दूसरे प्रश्न के उत्तर में किसी का कहना था कि यह अनन्त हैं । किसी का कहना था, यह सान्त है। किसी का कहना था यह ससीम (सीमा सहित) है, किसी का कहना था यह असीम हैं ।
६. इन प्रश्नों को बुद्ध ने अ-व्याकृत रखा । ऐसे प्रश्नों का स्वागत ही नहीं किया । उनका कहना था कि ऐसे प्रश्नों को पूछने वाले और उत्तर देने वाले- दोनों ही कुछ-कुछ विकृत-मस्तिष्क होने चाहिए ।
७. इन प्रश्नों के उत्तर देने वा दे सकने का मतलब होगा कि आदमी को “सर्वज्ञ” होना चाहिये जो कि कोई होता ही नहीं ।
८. उनका कहना था कि वह ऐसे ‘सर्वज्ञ’ नहीं कि इस तरह के प्रश्नों का उत्तर दें । कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि जो कुछ हम जानना चाहते हैं, वह वह सब कुछ जानता है और न कोई यह ही दावा कर सकता है कि किसी भी समय जो कुछ हम जानना चाहते है वह किसी को हर समय ज्ञात रहता है । हमेशा कुछ न कुछ अज्ञात रहता ही है ।
९. इन्हीं कारणों से भगवान् बुद्ध ने ऐसी सब बातों को अपने धम्म से दूर ही दूर रखा ।
१०. उनकी दृष्टि में जो धर्म ऐसी बातों को धर्म का अंग माने वह अपनाने लायक नहीं हैं ।

(ii)

१. जिन सिद्धान्तों को बुद्ध के समकालीन कुछ आचार्य्यों ने अपने अपने धर्म का आधार बनाया था, उन सिद्धान्तों का सम्बन्ध दो बातों से था-(१) 'आत्मा' से और (२) विश्व के आरम्भ से ।

२. वे 'आत्मा' के बारे में या अपने आपके बारे में कुछ प्रश्न उठाते थे । वे पूछते थे: "(१) क्या मैं पहले था? (२) क्या मैं पहले नही था? (३) उस समय मैं क्या था? (४) मैं क्या होकर क्या हुआ? (५) क्या मैं भविष्य में होऊंगा? (६) क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा? (७) तब मैं क्या होऊँगा? (८) तब मैं कैसे होऊँगा? (९) मैं क्या होकर क्या होऊंगा? अथवा वह अपने वर्तमान के ही विषय में सन्देह-शील होता है । (१) क्या मैं हूँ? (२) क्या मैं नहीं हूँ? (३) मैं हूँ क्या? (४) मैं कैसे हूँ? (५) यह 'प्राणी' कहां से आया? (६) यह किधर जायेगा?"

३. दूसरों ने विश्व के आरम्भ के विषय में प्रश्न पूछे ।

४. कुछ ने कहा - इसे ब्रह्मा ने पैदा किया है ।

५. दूसरों ने कहा, इसे स्वयं प्रजापति ने अपने आपकी आहुति देकर उत्पन्न किया हैं ।

६. दूसरे आचार्य्यों ने कुछ दूसरे प्रश्न पूछे: "संसार अनन्त है? संसार अनन्त नहीं है? संसार ससीम है? संसार असीम है? जो शरीर है, वही जीव है? शरीर अन्य है, जीव अन्य है? सत्य-ज्ञाता (तथागत) मरने के बाद रहते है? तथागत मरने के बाद नहीं रहते? वे रहते भी है और नहीं भी रहते? वे न रहते है और न नहीं रहते हैं?"

७. भगवान् बुद्ध का कहना था कि ऐसे प्रश्न उन्हीं लोगों द्वारा पूछे जा सकते हैं कि जिनके मस्तिष्क कुछ विकृत हों ।

८. भगवान बुद्ध ने ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों का क्यो खण्डन किया, इसके तीन कारण थे ।

९. पहला कारण तो यही था कि इनको धम्म का अंग बनाने में कोई तुक नही था ।

१०. दूसरे इन प्रश्नों का उत्तर कोई "सर्वज्ञ" ही दे सकता हैं, जो कोई होता ही नहीं । उन्होंने अपने प्रवचनों में इसी बात पर जोर दिया हैं ।

११. उन्होने कहा कि एक ही समय और उसी समय कोई भी सभी बातों
का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता । ज्ञान का कही अन्त नहीं है । कुछ न कुछ और अधिक जानने के लिये हमेशा रहेगा ।

१२. इन सिद्धान्तों के विरूद्ध तीसरा तर्क यह था कि ये सब सिद्धान्त केवल 'कल्पनाश्रित' था । उनका 'सत्य' परीक्षित नही था और न उनके 'सत्य' की परीक्षा ही हो सकती थी ।

१३. वे केवल कल्पना के घोड़े की लगाम को ढीला छोड़ देने के परिणाम थे । उनके पीछे कहीं कोई तथ्य न था ।

१४. और फिर इन कल्पनाश्रित सिद्धान्तों का एक आदमी और दूसरे आदमी के आपसी सम्बन्ध में क्या प्रयोजन था? एकदम कुछ भी नहीं ।

१५. तथागत ने यही नहीं माना था कि संसार का निर्माण हुआ है । तथागत की मान्यता थी कि संसार का विकास हुआ है ।

७. धर्म की पुस्तकों का वाचन मात्र अ-धम्म है

१. ब्राह्मणों ने सारा जोर (अपने लिये) 'विद्या' पर दिया है । उन्होंने शिक्षा दी है कि 'विद्या' ही 'अथ' और 'विद्या' ही 'इति' है । इससे आगे और कुछ नही ।

२. इसके विरुद्ध भगवान् बुद्ध सभी के लिये 'विद्या' के पक्षपाती थे । इसके अतिरिक्त उन्हें इस बात की भी बड़ी चिन्ता थी कि 'विद्या' प्राप्त करके आदमी उसका क्या उपयोग करता है? उनकी 'विद्या'; 'विद्या' के लिये न थी, उनकी विद्या उपयोग के लिये थी ।

३. इसलिये वे इस बात पर खास जोर देते ही थे कि जो विद्वान् हो उसे शीलवान् भी होना ही चाहिये । बिना 'शील' की 'विद्या' अत्यन्त खतरनाक थी ।

४. भिक्षु पटिसेन को जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा था उससे 'विद्या' के विरुद्ध 'शील' का महत्व स्पष्ट होता हैं ।

५. पुराने समय में जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में बिहार कर रहे थे, उस समय पटिसेन नाम का एक वृद्ध भिक्षु था, जो इतना अधिक कूढ-मगज था कि एक गाथा भी याद न कर सकता था ।

६. बुद्ध ने दिन प्रति दिन पांच सौ अर्हतों को उसे शिक्षा देने के लिये कहा | लेकिन तीन वर्ष के बाद भी उसे एक भी गाथा याद न थी |

७. तब उस जनपद के चारों प्रकार के लोग- भिक्षु, भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकाएँ- उसकी हंसी उड़ाने लगे | भगवान् बुद्ध को उस पर दया आई | उन्होंने उसे पास बुलाया और बड़ी कोमलता के साथ यह गाथा कही-

कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्व संवरो
सब्बत्थ संवुतों भिक्खु सब्ब दुक्खा पमुच्चति

(अर्थ -- जिसका मुंह संयत है, जिसके विचार संयत है, और जो अपने शरीर से भी विरुद्धाचरण नहीं करता, वह निर्वाण प्राप्त करता है |)

८. तथागत की करूणा से जैसे पटिसेन के हृदय की कली खिल गई | वृद्ध भिक्षु पटिसेन ने भी वह गाथा दोहराई |

९. तब भगवान बुद्ध ने उससे कहा:- "हे वृद्ध ! अब तुम केवल एक गाथा कह सकते हो, और लोग इसे जानते हैं | इसलिये अभी भी लोग तुम्हारा मजाक उड़ायेगे | मैं अब तुम्हे इस गाथा का अर्थ भी समझाता हू | तुम ध्यान पूर्वक सुनो |"

१०. तब भगवान बुद्ध ने शरीर के तीन अकुशल-कर्म, वाणी के चार अकुशल-कर्म और मन के तीन अकुशल -कर्म --दस अकुशल-कर्म समझाये | इन दस अकुशल कर्मो के त्याग से आदमी निर्वाण प्राप्त कर सकता है | इस प्रकार समझाये जाने पर भिक्षु पटिसेन को सत्य का बोध हो गया और वह अर्हत्व-पद का लाभी हुआ |

११. इस समय विहार में पाँच सौ भिक्षुणियाँ रह रही थी | उन्होंने अपने में से एक को बुद्ध के पास भेजा कि वे किसी भिक्षु को उन्हें धम्मोपदेश देने के लिये भेज दें |

१२. उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् बुद्ध ने वृद्ध पटिसेन को ही उन्हे धम्मोपदेश देने के लिये भेजना चाहा |

१३. जब उन भिक्षुणियों को यह पता लगा तो वे आपस में बहुत हंसी | उन्होने तय किया कि दूसरे दिन वृद्ध पटिसेन के आने पर वे गाथा का उल्ला उच्चारण कर उसे गड़बड़ा देंगी, और शर्मिंदा करेंगी |

१४. दूसरे दिन जब बुद्ध पटिसेन आया, छोटी बडी सभी भिखुणियों ने उसका स्वागत किया और तब उसे अभिवादन करते समय वे आपस में हंसने लगी |

१५. तब बैठने पर उन्होंने वृद्ध पटिसेन को भोजन कराया | जब भोजन हो चुका और उसने हाथ धो लिये तब उन्होंने उसे अपना प्रवचन आरम्भ करने के लिये कहा | उनके प्रार्थना करने पर वृद्ध पटिसेन ने, धम्मासन ग्रहण किया और अपना प्रवचन आरम्भ किया:-

१६. "बहनो ! मेरी बुद्धि अधिक नहीं है | मेरा ज्ञान और कम हैं | मैं केवल एक गाथा जानता हूँ | मैं वह पढूंगा और उसका अर्थ भी समझाऊगा | तुम ध्यान से सुनकर उसके अर्थ को धारण करो |"

१७. तब सभी भिक्षुणियों ने उल्टे क्रम से उस गाथा को कहने का प्रयास किया | लेकिन यह क्या ! उनका मुंह ही नहीं खुल सका | वे लज्जा से मर गई | उन्होंने अपने सिर नीचे लटका लिये |

१८. तब भगवान् बुद्ध से प्राप्त शिक्षण के अनुसार वृद्ध पटिसेन ने उस गाथा को दोहरा कर उसकी व्याख्या करनी शुरू की |

१९. उसका प्रवचन सब भिक्षुणियों को आश्चर्य हुआ | उस उपदेश को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुई | उन्होंने उसे सिर-माथे स्वीकार किया | वे अर्हंत हो गयी |

२०. इसके अगले दिन राजा प्रसेनजित ने बुद्धप्रमुख भिक्षु संघ को अपने यहां भोजन के लिये निमंत्रित किया |

२१. बुद्ध ने पटिसेन की विशेष उन्नत स्थिति पहचान, उसे अपना भिक्षा-पात्र लेकर साथ चलने के लिये कहा |

२२. लेकिन जब वे राज-महल के द्वार पर पहुँचे, तो उस द्वारपाल ने जो उससे पूर्व-परिचित था, वृद्ध पटिसेन को अन्दर नहीं जाने दिया | बोला- "जो भिक्षु केवल एक गाथा जानता है, हमें उसका आतिथ्य नहीं करना है | तुम्हारे जैसे सामान्यों के लिये स्थान नहीं है | अपने से श्रेष्ठतर लोगों को रास्ता दो और स्वयं चल दो |"

२३. तदनुसार पटिसेन दरवाजे के बाहर ही बैठ गये |

२४. अब बुद्ध आसन पर विराजमान हुए | उन्होंने हाथ धोया | लेकिन यह क्या ! भिक्षा-पात्र लिये हुए पटिसेन का हाथ वहाँ उपस्थित था |

२५. राजा, मन्त्रियों तथा अन्य उपस्थित जनों ने जब यह देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ | वे बोले- "ओह ! यह कौन है?"

२६. तथागत ने उत्तर दिया- "यह भिक्षु पटिसेन है | इसने अभी बोधि प्राप्त की है | मैंने इसे अपना भिक्षापात्र लेकर पीछे पीछे आने के लिये कहा था, किन्तु द्वारपाल ने उसे नहीं आने दिया |"

२७. तब पटिसेन को भी प्रवेश मिला और वह भी संघ में आ सम्मिलित हुआ ।
२८. तब राजा प्रसेनजित ने बुद्ध से पूछा: "मैं सुनता हूँ कि इस पटिसेन की योग्यता नहीं । यह केवल एक ही गाथा जानता है । तो उसे बोधि कैसे प्राप्त कैसे प्राप्त हो गयी?"
२९. तथागत ने उत्तर दिया- "ज्ञान अधिक न भी हो, शील मुख्य वस्तु हैं ।"
३०. "इस पटिसेन ने इस एक गाथा के मर्म को अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया है । इसका शरीर, वाणी और विचार रूप से शान्त हो गये हैं । यदि किसी आदमी के पास ज्ञान अधिक भी हो, किन्तु यदि उसका आचरण तदनुसार नहीं है, तो फिर यह सारा ज्ञान उस आदमी को विनाशोन्मुख होने से नही बचा सकता ।"
३१. इसके बाद तथागत ने कहा-
३२. "चाहे कोई आदमी एक हजार गाथाओं का वाचन करें, लेकिन यदि वह उन गाथाओं के अर्थ से अपरिचित है, तो उसका वह वाचन किसी भी एक गाथा के वाचन के समान नहीं जिसे सुनकर चित्त शान्ति को प्राप्त हो । बिना समझे हजारों शब्दों के उच्चारण का क्या प्रयोजन? लेकिन एक शब्द का सुनना, समझना और तदनुसार आचरण करना मोक्ष-लाभ का कारण हो सकता है" ।
३३. "एक आदमी अनेक ग्रन्थों का वाचन कर सकता हैं, लेकिन यदि वह उन्हें समझता नहीं तो उसका वाचन निष्प्रयोजन है । धम्म के एक ही पद को जानना और तदनुसार चलना मोक्ष का मार्ग है ।"
३४. इन शब्दो को सुनकर उपस्थित दो सौ भिक्षु, राजा तथा उसके मन्त्रीगण सभी प्रमूदित हुए ।

८. "धर्म" की पुस्तकों को गलती की सम्भावना से परे मानना अ-धम्म है

१. ब्राह्मणों की घोषणा थी कि वेद न केवल पवित्र ग्रन्ध ही हैं, बल्कि वे स्वत: प्रमाण हैं ।
२. ब्राह्मणों ने वेदों के स्वतः प्रमाण होने की घोषणा नही की, बल्कि उन्होंने वेदों को गलती की सम्भावना से परे माना ।
३. इस विषय में भगवान बुद्ध ब्राह्मणों से सर्वथा विरोधी मत रखते थे ।
४. उन्होंने वेदो को पवित्र नहीं माना । उन्होंने वेदों को स्वत: प्रमाण नही माना । उन्होंने वेदों को गलती की सम्भावना से परे नहीं माना ।
५. उनके समकालीन कई दूसरे धम्मोपदेशक का भी यही मत था । लेकिन, बाद में या तो उन्होंने अथवा उनके अनुयायियों ने अपने अपने मत को ब्राह्मणो की दृष्टि में आदृत बनाने के लिये अपना बुद्धिवादी पक्ष छोड़ दिया । लेकिन भगवान बुद्ध ने इस विषय में कभी समझौता नहीं किया ।
६. तेविज्ज सुत्त में भगवान् बुद्ध ने वेदों को जल-विहीन कान्तार कहा है, पथविहीन जंगल कहा है, वास्तव में विनाश-पथ । कोई भी आदमी जिसमें कुछ बौद्धिक तथा नैतिक प्यास है, वह वेदों के पास जाकर अपनी प्यास नहीं बुझा सकता ।
७. जहाँ तक वेदो को गलत होने की सम्भावना से परे होने की बात है, तथागत ने कहा, कोई ऐसी चीजें हो ही नहीं सकती जो गलत होने की सम्भावना से सर्वथा परे हों -- वेद भी नहीं । इसलिये भगवान् बुद्ध ने कहा कि हर चीज का परीक्षण और पुर्नपरीक्षण होते रहना चाहिये ।
८. यह बात उन्होंने कालाम लोगों को दिये गये अपने प्रवचन में स्पष्ट की हैं ।
९. एक बार भिक्षु संघ सहित चारिका करते करते भगवान बद्ध कोसल जनपद के केस पुत्तिय नगर में आ पहुचे । वह नगर कालाम नामक क्षत्रियों की बस्ती थी ।
१०. जब कालाम नामक क्षत्रियों को तथागत के आगमन की सूचना मिली, वे वहां पहुंचे जहां तथागत विहार कर रहे थे और जाकर एक और बैठ गये । एक और बैठे हुए कालाम क्षत्रियों ने भगवान् बुद्ध को इस प्रकार सम्बोधित किया:-
११. "हे श्रमण गौतम! हमारे गाँव में कुछ श्रमण-ब्राह्मण आते हैं, वे अपने मत की स्थापना करते है, अपने मत को ऊँचा उठाते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करते हैं, दूसरे के मत को नीचा दिखाते हे । इसी प्रकार दूसरे कुछ श्रमण ब्राह्मण आते हैं, वे भी अपने मत की स्थापना करते हैं, अपने मत को ऊँचा उठाते हैं और दूसरे के मत का खण्डन करते हें, दूसरे के मत को नीचा दिखाते हैं ।"
१२. "इसलिये हे श्रमण गौतम! हम सन्देह में पड़ जाते हैं कि इन श्रमण ब्राह्मणों में कौन सत्य बोल रहा है और कौन झूठ?"
१३. "हे कालामो! तुम्हें योग्य विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ है; तुम्हारे मन में योग्य विषय में शक उत्पन्न हुआ है ।"
१४. "हे कालामों," तथागत ने कथन जारी रखा, "किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने में आई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह परम्परा से प्राप्त हुई है: किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक हैं, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह (धर्म-) ग्रन्थो में लिखी है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो,

कि वह तर्क (शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (-शास्त्र) के अनुसार है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती हैं | किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, किस बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य्य की कही हुई हैं ।"

१५. "तो फिर हमें क्या करना चाहिये? हमारी क्या कसौटी होनी चाहिये?" कालाम क्षत्रियों ने प्रश्न किया |

१६. तथागत बोले- "कालामो! कसौटी यही है कि स्वयं अपने से प्रश्न करो कि क्या अमुक बात का करना हितकर है? क्या अमुक बात निन्दनीय है? क्या अमुक बात विज्ञाजनो द्वारा निषिद्ध है? क्या अमुक बात के करने से कष्ट और दुःख होता है?"

१७. "कालामों! इतना ही नहीं, तुम्हे यह भी देखना चाहिये कि क्या मत-मत-विशेष, तृष्णा, घृणा, मूढता और द्वेष की भावना की वृद्धि में तो सहायक नहीं होता?"

१८. "कालामों! इतना ही नहीं, तुम्हें यह भी देखना चाहिये कि मत विशेष किसी को उसकी अपनी इन्द्रियों का गुलाम तो नहीं बनाता? उसे हिंसा करने में प्रवृत्त तो नहीं करता? उसे चोरी करने की प्रेरणा तो नहीं देता? उसे कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार में प्रवृत्त तो नहीं

करता? उसे झूठ बोलने में प्रवृत्त तो नहीं करता? उसे दूसरों को वैसा ही करने की प्रेरणा देने में तो प्रवृत्त नहीं करता?"

१९. "और हे कालामों! अंत में तुम्हें यही पूछना चाहिये कि यह दु:ख के लिये, अहित के लिये तो नहीं है?"

२०. "हे कालामों! अब तुम क्या सोचते हो?"

२१. "इन बातों के करने में आदमी का अहित है वा हित है?"

२२. "भन्ते! अहित है ।"

२३. "हे कालामों! क्या ये बातें लाभप्रद है वा हानि-प्रद?"

२४. "भन्ते! हानिप्रद ।"

२५. "क्या ये बाते निन्दनीय हैं?"

२६. "भन्ते! निन्दनीय हैं ।"

२७. "विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध हैं वा समर्पित हैं?"

२८. "विज्ञ पुसषों द्वारा निषिद्ध ।"

२९. "इनके करने से कष्ट और दुःख होता है?"

३०. "भन्ते! इनके करने से कष्ट और दुःख होता है ।"

३१. "कोई धर्म-ग्रन्थ जो यह सब सिखाता हो, क्या वह स्वत: प्रमाण माना जा सकता है? क्या वह गलत होने की सम्भावना से परे माना जा सकता है?"

३२. "भन्ते! नहीं!"

३३. "लेकिन कालामो! यही तो मैंने कहा है | मैंने कहा है किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने मे आई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह परम्परा से प्राप्त हुई है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि बहुत से लोग उसके समर्थक है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह (धर्म-) ग्रन्थो में लिखी है; किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तर्क (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (-शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर मान्य प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह किसी आदरणीय आचार्य की कही हुई हैं ।"

३४. "केवल जब तुम आत्मानुभव से ही यह जानो कि ये बातें अहितकर हैं, ये बातें निन्दनीय हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निषिद्ध है, ये बातें करने से कष्ट होता है, दुःख होता है-- -हे कालामो! तब तुम्हे उनका त्याग कर देना चाहिये ।"

३५. "भन्ते! अदभूत है | गौतम! अदभूत है | हम आपकी, आपके धम्म की और संघ की शरण ग्रहण करते हैं | आज से प्राण रहने तक भगवान् हमें अपना शरणागत उपासक जानें ।"

३६. इस दलील का सार स्पष्ट है | किसी आदमी की शिक्षा को प्रमाणित स्वीकार करते समय इस बात का विचार मत करो कि वह किसी (धर्म-) ग्रन्ध में लिखी हुई है, इस बात का विचार मत करो कि वह तर्क (-शास्त्र) अनुकूल है, इस बात का विचार मत करो कि वह ऊपरी दृष्टि से मान्य प्रतीत होती है, इस बात का विचार मत करो कि वह अनुकूल-विश्वास वा अनुकूल-दृष्टि की है, इस बात

का विचार मत करो कि वह ऊपरी दृष्टि से सच्ची प्रतीत होती है तथा इस बात का विचार न करों कि वह किसी आदरणीय आचार्य की कही हुई प्रतीत होती हैं ।

३७. लेकिन इस बात का विचार करो कि जिन मतों को या जिस दृष्टि को तुम स्वीकार करना चाहते हो वे हितकर हैं वा नहीं, निन्दनीय हैं वा नहीं, कष्ट प्रद तथा हानि-प्रद हैं वा नहीं?

३८. केवल एक इसी आधार पर कोई किसी दूसरे की दी हुई शिक्षा को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता हैं ।

पाचवा भाग : सद्धम्म क्या है?

(क) सद्धम्म के कार्य

१. मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना

१. एक समय जब भगवान बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे, तो कोशल नरेश प्रसेनजित वहाँ आया जहाँ तथागत ठहरे हुए थे और अपने रथ से उतर अत्यन्त भक्ति- भाव से तथागत के समीप बैठा ।
२. उसने तथागत से प्रार्थना की कि वे कल के लिये उसका निमत्रण स्वीकार करें । उसने उनसे दूसरे दिन नगर में सार्वजनिक-धम्मोपदेश देने की भी प्रार्थना की ताकि लोग उनके दर्शन कर सकें और उनका उपदेश सुन, उसे ग्रहण कर सके ।
३. भगवान् बुद्ध ने स्वीकार किया । दूसरे दिन भिक्षु संघ सहित उन्होंने नगर में प्रवेश किया और नगर के चौरस्तों को पार कर वे वहाँ पहुचे जो स्थान पूर्व निश्चित था, तथा वहाँ विराजमान हुए ।
४. भोजनान्तर राजा ने तथागत से प्रार्थना की कि वे उस खुली सभा में भाषण दें । उस समय उनका प्रवचन सुनने वाले बहुत थे ।
५. उस समय उनके श्रोताओं में दो व्यापारी भी थे ।
६. एक ने सोचा "महाराज ने यह कितनी बडी बुद्धिमानो की बात की है कि इस प्रकार का सार्वजनिक धम्मोपदेश करवाया है! ये उपदेश कितने व्यापक हैं और ये उपदेश कितने गहरे हैं ।"
७. दूसरे ने सोचा, "महाराज ने यह क्या मूर्खता की है कि इस प्रकार इस आदमी से यहाँ उपदेश दिलवा रहे हैं!
८. "जैसे कोई बछड़ा अपनी मां के पीछे पीछे चलता है उस गाड़ी से बंधा हुआ जिसे वह खींचती है उसी प्रकार यह बुद्ध राजा से बंधा हुआ है ।" दोनों व्यापारी नगर से बिदा हो एक सराय में पहुंचे, जहाँ दोनों एक साथ ठहरे ।
९. सुरा- पान करते समय जो भला व्यापारी था, उसे चातुर्महाराजिक देवताओं ने सँयत रखा और उसकी रक्षा की ।
१०. दूसरे को किसी दुष्ट प्रेतात्मा ने पीते रहने की प्रेरणा दी, जब तक वह नशे और नींद से बेहोश नहीं हो गया । वह सराय के पास ही सड़क पर पड़ा था ।
११. प्रातःकाल जब व्यापारीयों की गाड़ियाँ वहाँ से विदा होने लगीं तो गाडीवानो ने सड़क के बीच पडे उसे नहीं देखा । वह गाडी के पहियों के नीचे आकर मर गया ।
१२. दुसरा व्यापारी एक दूर देश में आ पहुँचा । वहाँ वह एक पवित्र घोड़े के घुटने टेकने के परिणामस्वरूप उस देश का राजा चुन लिया गया; और वह सिंहासन पर विराजमान हुआ ।
१३. इसके बाद, इन घटनाओं की विचित्रता पर विचार करके, वह अपने देश लौट आया । तब उसने भगवान् बुद्ध को निमंत्रित किया कि वे जनता को उपदेश दें ।
१४. इस अवसर पर तथागत ने उस दुष्ट- हृदय व्यापारी की का मृत्यु कारण बताया और दूसरे बुद्धिमान व्यापारी के ऐश्वर्यशाली बनने का भी । इसके बाद तथागत ने यह भी कहा:-
१५. "मन ही सबका मूल है; मन ही मालिक है; मन ही कारण है ।
१६. "यदि आदमी का मन दुख होता है तो वह दुष्ट वाणी बोलता है और दृष्ट कार्य भी करता है । तब दुःख उस आदमी के पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाड़ी के पहिये, खींचनेवाले बैल के पीछे पीछे ।
१७. "मन ही सबका मूल है, मन ही शासन करता है ' मन ही योजना बनाता है "
१८. "यदि आदमी का मन शुद्ध होता है, तो वह शुद्ध वाणी बोलता है और अच्छे अच्छे कार्य करता है । तब सुख आदमी के पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया, वस्तु या व्यक्ति के पीछे पीछे ।
१९. यह सुनने पर, राजा और उसके मन्त्री तथा अन्य अनगिनत लोगो ने धम्म-दीक्षा ग्रहण की और वे तथागत के शिष्य हुए ।

२. संसार को 'धम्म-राज्य' बनाना

१. धम्म का प्रयोजन क्या है?
२. भिन्न-भिन्न धर्मो ने इस प्रश्न के भिन्न भिन्न उत्तर दिये हैं ।

३. आदमी को ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर लगाना और उसे अपने 'आत्मा' के 'मोक्ष का महत्व समझाना -- यह एक सामान्य उत्तर है ।
४. बहुत से धर्म तीन राज्यों की बात करते हैं ।
५ एक 'स्वर्ग का राज्य' कहलाता हैं, दुसरा 'पृथवि का राज्य' कहलाता हैं, तीसरा 'नरक का राज्य' कहलाता हैं ।
६. कहा जाता है कि 'स्वर्ग के राज्य' पर ईश्वर का शासन है । 'नरक के राज्य' पर शैतान का एकाधिकार माना जाता हे । 'पृथ्वी के राज्य' के बारे में झगडा है । इस पर शैतान का अधिकार नहीं है । साथ साथ इसे 'ईश्वर के राज्य' के अन्तर्गत भी नहीं माना जा सकता । आशा की जाती है कि शायद किसी दिन हो जाय ।
७. कुछ धर्मो में माना जाता है कि 'स्वर्ग का राज्य' 'धर्म- राज्य' है' क्योकि वहा ईश्वर का सीधा शासन है ।
८. कुछ दूसरे धर्मो में 'स्वर्ग का राज्य' पृथ्वी पर नहीं है । यह केवल 'स्वर्ग' का ही दुसरा नाम है । जो कोई ईश्वर और उसके पैगम्बर पर ईमान लाता है, वह वहां पहुंच सकता है । जब पहुंचने वाले स्वर्ग पहुंचते हैं तो जीवन के जितने भी भोग- विलास के साधन हैं वे सब उन्हें वहा प्राप्त हो जाते हैं ।
९. सभी धर्मों का यही उपदेश है कि आदमी के जीवन का उद्देश्य इस 'स्वर्ग के राज्य' को प्राप्त करना और कैसे प्राप्त करना -- यही होना चाहिये ।
१०. "धम्म का उद्देश्य क्या है?"इस प्रश्न का बुद्ध ने सर्वथा भिन्न उत्तर दिया है ।
११. भगवान बुद्ध ने लोगों को यह नहीं कहा कि उनके जीवन का उद्देश्य किसी काल्पनिक 'स्वर्ग' की प्राप्ति होना चाहिये । उनका कहना था कि 'धम्म का राज्य' इस पृथ्वी पर ही है और वह धम्म- पथ पर चलकर प्राप्त किया जा सकता है ।
१२. उन्होंने लोगों से कहा कि यदि तुम अपने दु ख का अन्त करना चाहते हो, तो हर किसी को दूसरे के साथ न्याय- संगत, धम्म- संगत व्यवहार करना होगा । तभी यह पृथ्वी 'धम्म का राज्य' बन सकेगी ।
१३. अन्य सब धर्मो की अपेक्षा तथागत के धम्म की यही अपनी विशेषता है ।
१४. तथागत के धम्म में पचशीलों पर जोर दिया गया है, अष्टांगिक- मार्ग पर जोर दिया गया है और पारमिताओं पर जोर दिया गया हैं ।
१५. भगवान् बुद्ध ने इन सबको अपने धम्म का आधार क्यों बनाया? क्योंकि ये एक ऐसी जीवन- विधि है कि केवल यह ही आदमी को सदाचारी बना सकती हैं ।
१६. आदमी आदमी के प्रति जो अनुचित व्यवहार करता है, उसी में से आदमी का सारा दुःख पैदा हूआ हैं ।
१७. आदमी का आदमी के प्रति जो अनुचित व्यवहार है ,उसका: नाश केवल 'धम्म' ही कर सकता है और उससे उत्पन्न दुःख का भी ।
१८. इसीलिये भगवान बुद्ध ने कहा कि 'धम्म' का काम केवल 'उपदेश' देना नहीं है बल्कि जैसे भी हो आदमी के मन में यह बात जमाना है कि सर्वोपरि आवश्यकता सदाचारी बनने की है ।
१९. लोगों में सदाचार की भावना भरने के लिये, धम्म के लिये आवश्यक है कि वह दूसरे कार्य भी करे ।
२०. धम्म को यह शिक्षा देनी होगी कि आदमी जान सके कि कुशल-कर्म (-शुभ-कर्म) कौन सा होता है और वह उस कुशल-कर्म को कर सके ।
२१. धम्म को यह भी शिक्षा देनी होगी कि आदमी जान सके कि अकुशल (-अशुभ) क्या है और जो अकुशल है, उससे वह बच सके ।
२२. धम्म के इन दो कामों के अतिरिक्त, भगवान् बुद्ध ने धम्म के दूसरे भी काम बतायें हैं और जिन्हें वे बहुत महत्वपूर्ण समझते थे ।
२३. पहला है आदमी के स्वभाव और उसकी प्रवृत्तियों की ट्रेनिग । यह प्रार्थना करने से भिन्न प्रक्रिया है। यह व्रत यदि रखने से भिन्न प्रक्रिया है। यह यज्ञ-बलि से भिन्न प्रक्रिया हैं ।
२४. देवदह सुत्त मे 'जैन-धर्म' की चर्चा करते हुए भगवान् बुद्ध ने यह बात स्पष्ट की है ।
२५. जैन-धर्म के संस्थापक माने जाने वाले तीर्थकर महावीर का कहना था कि व्यक्ति जो कुछ भी दुःख या सुख अनुभव करता है, यह सब उसके पूर्वजन्म के कर्मो का परिणाम होता है ।
२६. ऐसा होने पर, पूर्वजन्म के दुश्कर्मों की निर्जरा हो जाने से और नये दुश्कर्म न करने से भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता; जब भविष्य के लिये कुछ संग्रह नहीं होता तो दुश्कर्मो का क्षय हो जाता है; जब क्षय हो जाता है, तो दुःख का क्षय हो जाता है, जब सुख दु:ख अनुभव करने की शक्ति (-वेदना) का क्षय हो जाता है। जब वेदना का क्षय हो जाता है तो सारे दुःख का मूलोच्छेद हो जाता हैं ।

२७. यही निगण्ठनाथ की शिक्षा (जैन-धर्म) थी ।
२८. इस पर तथागत ने यह प्रश्न किया - "क्या तुम जानते हो कि यहाँ ही और अब ही, अकुशल प्रवृत्तियों को मूलोच्छेद हो गया और कुशल- प्रवृत्ति की स्थापना हो गई ?"
२९. उत्तर था -- "नहीं ।"
३० तब बुद्ध ने आपत्ति की: "तो पूर्व- दुश्कर्मों की निर्जरा से और नये दुश्कर्मों के भी न करने से क्या लाभ है, यदि चित्त को इसका अभ्यास नहीं है कि वह अकुशल-प्रवृत्ति को कुशल-प्रवृत्ति में बदल सके ।"
३१ उनके मत में किसी भी धर्म की यह सबसे भारी कमी थी । शुभप्रवृत्ति या शुभ-संस्कार ही किसी के स्थायी रूप से अच्छा बने रहने की सबसे बड़ी गारण्टी हैं ।
३२. यही कारण है कि बुद्ध ने चित्त की साधना को प्रथम स्थान दिया है, जो कि संस्कारों को सुधारने का ही दूसरा नाम है ।
३३. दूसरी बात जिसें उन्होंने विशेष महत्व दिया वह यह है कि आदमी में इस बात का साहस हो कि चाहे वह अकेला ही हो तब भी उचित मार्ग से विचलित न हो ।
३४. सल्लेख-सुत्त - में तथागत ने इसी बात पर जोर दिया हैं ।
३५. उन्होंने कहा है -
३६. "तुम्हें अपने मन को निर्मल बनाने के लिये निश्चय करना चाहिये कि चाहे दूसरे लोग हानि करें, मैं हानि नहीं करूंगा ।
३७. "चाहे दूसरे लोग हिसा करें, मै हिसा नहीं करूँगा ।
३८. "चाहे दूसरे लोग चोरी करें, मैं चोरी नहीं करूंगा ।
३९. "चाहे दूसरे लोग श्रेष्ठ जीवन व्यतीत न करें, मैं श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करूगा ।
४०. "चाहे दूसरे लोग झूठ बोले, चुगली खावें, कठोर बोले अथवा व्यर्थ बकवास करें, मैं नहीं करूंगा ।
४१. "चाहे दूसरे लोग लोभी हो, मै लोभ नही करूंगा ।
४२. "चाहे दूसरे लोग द्वेष करें, मैं द्वेष नही करूंगा ।
४३. "चाहे दूसरे लोग सत्य के विषय में भी गलती पर हो, मिथ्या-दृष्टि हों, मिथ्या-संकल्प वाले हो, मिथ्या वाणी वाले हो, मिथ्या-कर्मान्त वाले हों, मिथ्या- समाधिवाले हो; मैं सम्यक् - दृष्टि होऊंगा, सम्यक् - संकल्प वाला होऊंगा, सम्यक् - वाणी, सम्यक् - कमन्ति, सम्यक् - आजीविका, सम्यक् - वायाम, सम्यक् -समाधि तथा सम्यक्- स्मृति वाला होऊंगा ।
४४. "चाहे दूसरे सत्य के विषय में भी गलती पर हों, मुक्ति के विषय में भी गलती पर हों, मैं सत्य और मुक्ति दोनों विषयों में गलती पर न होऊंगा ।
४५. "चाहे दूसरे आलस्य और तन्द्रा से युक्त हों, मैं आलस्य और तन्द्रा से -मुक्त रहूगा ।
४६. "चाहे दूसरे उद्धत स्वभाव के हों, में विनम्र स्वभाव का रहूंगा ।
४७. "चाहे दूसरे विचिकित्सा-युक्त हों, मैं विचिकित्सा से मुक्त रहूँगा ।
४८. "चाहे दूसरे क्रोधी हों, द्वेषी हों, ईर्ष्यालु हों, कंजूस हो, लोभी हो,, ढोंगी हो, ठग हो, बाधक हों, उद्धत हों, दुस्साहसी हों, कुसंगति वाले हों 'ढीले- ढाले हों 'अविश्वासी हों, निर्लज्ज हों, अधार्मिक हों, अशिक्षित हो,, व्यस्त हो, चकित हों तथा मूर्ख हों, मैं इन सबके विराद्ध होऊंगा ।
४९. "चाहे दूसरे लोग लौकिक वस्तुओं से चिपट रहें, मैं जो लौकिक वस्तुए नही है उनसे चिपटुंगा और परित्याग-शील रहुगा ।"
५०. "चुन्द! वाणी और कर्म का तो कहना ही क्या, विज्ञान भी चेतना से प्रभावित होता है । इसलिये मैं कहता हूँ कि चुन्द! इन सभी संकल्पों के सम्बन्ध में जो मैंने बताये हैं, दृढ़ -निश्चयी होना चाहिये ।"
५१. भगवान् बुद्ध के अनुसार यही धम्म का उद्देश्य हैं ।

(ख) धर्म तभी सद्धम्म कहला सकता है. जब वह प्रज्ञा की वृद्धि करे

1. धर्म तभी सद्धम्म है जब वह सभी के लिये ज्ञान का द्वार खोल दे

१. ब्राह्मणी सिद्धान्त था कि सभी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते । चाह अनवार्य तौर पर चन्द लोगों के लिये ही सीमित रहना चाहिये ।

२. उन्होंने केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के लिये ज्ञान- प्राप्ति का द्वार खुला रखा। लेकिन इन तीन-वर्गो के भी केवल पुरुष-वर्ग के ही लिये ज्ञान-प्राप्ति का द्वार खुला था।
३. तमाम स्रियाँ, चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग की ही, क्यो न हों और तमाम शूद्र-पुरूष तथा स्रियाँ दोनों - ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते थे। वे साक्षर तक नहीं हो सकते थे।
४. भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मणों के इस अत्यन्त निर्दयता पूर्ण सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह किया।
५. उनका कहना था कि ज्ञान-प्राप्ति का द्वार सभी के लिये खुला रहना चाहिये - पुरुषो के लिये भी और स्रियों के लिये भी।
६. बहुत से ब्राह्मणों ने उनसे शाखार्थ करने का प्रयास किया। ब्राह्मण लोहिच्च के साथ तथागत का जो वाद-विवाद हुआ उससे उनके विचारो पर बडा प्रकाश पड़ता है।
७. महान् भिक्षुसंघ सहित चारिका करते करते भगवान् बुद्ध जब एक बार कोसल जनपद में से गुजर रहे थे, तो वे एक बार शाल-वृक्षों से घिरे हुए सालवतिका नामक ग्राम में पहुंचे।
८. उस समय सालवतिका खूब आबाद था। घास, जंगल और धन-धान्य की कमी न थी। कोशल नरेश प्रसेनजित ने वह गाँव लोहिच्च ब्राह्मण को दे रखा था। उस गाँव पर उसका वैसा ही अधिकार था, मानो वह वहाँ का राजा हो।
९. लोहिच्च ब्राह्मण का मत था कि यदि कोई श्रमण या ब्राह्मण विद्या प्रापत कर ले तो उसे किसी स्त्री या शूद्र को उस विद्या का दान नहीं करना।
१०. तब लोहिच्च ब्राह्मण ने सुना कि तथागत सालवतिका में ठहरे हुए हैं।
११. यह सुनकर उसने भेसिक नामक नाई को बुलाया और कहा:- "भले भेसिक! आ और जहाँ रमण गौतम ठहरे है वहाँ जा और जाकर उनका कुशल-समाचार पूछ। तद्नन्तर भिक्षुर्सघ सहित तथागत को कल के भोजन के लिये लोहिच्च ब्राह्मण का निमत्रण दे आ। "
१२. नाई ने कहा -- "बहुत अच्छा।"
१३. लोहिच्च ब्राह्मण का कथन स्वीकार कर भेसिक नाई ने वही किया जो उसे करने के लिये कहा गया था। तथागत ने मौन रहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार की।
१४. दूसरे दिन प्रातःकाल चीवर धारण कर, पात्र-चीवर ले, भिक्षुसंघ सहित तथागत सालवतिका पधारे।
१५. लोहिच्च ब्राह्मण ने भेसिक नाई को ही तथागत को लाने के लिये भेजा था। वह कदम-ब-कदम तथागत के पीछे पीछे चला आ रहा था। रास्ते में उसने तथागत को बताया कि लोहिच्च ब्राह्मण की यह मिथ्या-दृष्टि है कि किसी स्त्री या शूद्र को विद्या नहीं देनी चाहिये।
१६. "भेसिक! ऐसा हो सकता है। भेसिक! ऐसा हो सकता है", तथागत ने कहा।
१७. भगवान् बुद्ध लोहिच्च ब्राह्मण के निवास्थान पर पहुचे और बिछे आसन पर बैठे।
१८. तब लोहिच्च ब्राह्मण ने भिक्षुसंघ सहित तथागत को अपने हाथ भोजन से -- सब प्रकार के मधुर खाद्य- भोज्य से -- सतर्पित किया।
१९. जब तथागत भोजन कर चुके और भोजनानन्तर उनके हाथ तथा उनका पात्र भी धोया जा चुका, तो लोहिच्च ब्राह्मण एक नीचा आसन लेकर तथागत के पास बैठ गया।
२०. इस प्रकार बैठे हुए उस लोहिच्च ब्राह्मण से तथागत ने पूछा -- "क्या यह सत्य है, जैसा लोग कहते है कि तुम्हारा यह मत है कि स्त्रियों तथा शूद्रो को विद्या नहीं पढानी चाहिये?"
२१. लोहिच्च का उत्तर था -- "गौतम! ऐसा ही है।"
२२. "अच्छा लोहिच्च! अब तुम क्या सोचते हो? क्या तुमसालवतिका के मालिक नही हों?" "गौतम! ऐसा ही है।"
२३. "लोहिच्च! अब उदाहरण के लिये समझो कि एक आदमी कहे 'लोहिच्च ब्राह्मण का सालवतिका पर अधिकार है। उसे ही सालवतिका से प्राप्त तमाम कर और सालवतिका की समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये। किसी दूसरे के लिये कुछ नहि छोडना चाहिये। तो इस प्रकार की बात करने वाला आदमी क्या उन लोगो के लिये खतरनाक नहीं होगा, जो तुम पर निर्भर करते है?"
२४. "गौतम! वह उनके लिये खतरनाक होगा।"
२५. "तो क्या ऐसा खतरनाक आदमी उनका हितचिन्तक समझा जायेगा?"
२६. लोहिच्च बोला:- "नही, ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक नहीं होगा।"
२७. "जब वह उनकी हितचिन्ता नहीं करेगा, तो क्या वह उनका मित्र होगा वा शत्रु?"

२८. "गौतम! शत्रु ।"
२९. "तो जो किसी को किसी का शत्रु बनाये, ऐसा सिद्धान्त ठीक है या गलत?"
३०. "गौतम! यह गलत सिद्धान्त है ।"
३१. "लोहिच्च! अब तुम क्या सोचते हो? क्या काशी और कोसल जनपद राजा प्रसेनजित् के अधिकार में नही है?"
३२. "गौतम! हैं ।"
३३. "लोहिच्च! अब उदाहरण के लिये समझो कि एक आदमी कहे: 'कोसल-नरेश प्रसेनजित् का काशी और कोसल पर अधिकार है । उसे ही काशी कोसल से प्राप्त तमाम कर और काशी-कोसल की समस्त उपज का आनन्द लेना चाहिये । किसी दूसरे के लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये ।' तो इस प्रकार की बात कहने वाला आदमी क्या उन सब लोगों के लिये जो राजा प्रसेनजित् पर निर्भर करते है -- तुम और दूसरे सब लोग -- खतरनाक नहीं होगा?"
३४. "गौतम! वह खतरनाक होगा ।"
३५. "तो क्या ऐसा खतरनाक आदमी उनका हितचिन्तक समझा जायेगा?"
३६. लोहिच्च बोला -- "नहीं, ऐसा आदमी उनका हितचिन्तक नहीं होगा ।"
३७. "जब वह उनकी हितचिन्ता नहीं करेगा, तो क्या वह उनका मित्र होगा या शबू?"
३८. "गौतम! शत्रु!"
३९. "तो जो किसी को किसी का शत्रु बनाये, ऐसा सिद्धान्त ठीक है या गलत है?"
४०. "गौतम! ऐसा सिद्धान्त गलत है ।"
४१. "लोहिच्च! तो तुम यह बात स्वीकार करते हो कि जो यह कहे कि क्योंकि सालवतिका पर तुम्हारा अधिकार है, इसलिये सालवतिका के तमाम कर और सारी उपज का तुम्हें ही उपभोग करना चाहिये, किसी दूसरे वे। लिये बुल्छ नहीं छोडना चाहिये; और जो यह कहे कि क्योंकि काशी और कोसल जन-पद पर राजा प्रसेनजित् का अधिकार है, इसलिये राजा प्रसेनजित् को ही काशी कोशल के तमाम कर और सारी उपज का उपभोग करना चाहिये. किसी दूसरे के लिये कुछ नही छोड़ना चाहिये; तो ऐसा आदमी उन सब लोगों के लिये जो तुम पर निर्भर करते है, अथवा उन सब लोगों के लिये जो तुम्हारे सहित कोसल-नरेश प्रसेनजित् पर निर्भर करते है खतरनाक नहीं होगा? जो दूसरों के लिये खतरनाक होंगे वे उनके हितचिन्तक नहीं हो सकते । वे उनके शत्रु हो सकते है । और जो सिद्धान्त किन्ही को किसी का शत्रु बनाये. वह गलत सिद्धान्त है ।
४२. "तो लोहिच्च! जो आदमी यह कहता है कि स्रियों और शूद्रो को विद्या नहीं देनी चाहिये, वह आदमी भी उस आदमी के ही समान हैं ।
४३. "इसी प्रकार ऐसा आदमी उन दुसरो के पथ मे रोडे अटकाने वाला होगा और उनका हितचिंतक नही होगा ।
४४. "इसी प्रकार ऐसा आदमी उनका हितचिंतक न होने के कारण उनका शत्रु हो जायेगा; और जो सिद्धान्त किसी को किसी का शत्रु बनाये यह गलत सिद्धान्त है ।

२. धर्म तभी सद्धम्म है जब वह यह भी शिक्षा देता है कि केवल 'विद्वान होना पर्याप्त नहीं. इससे आदमी 'पण्डिताऊपन की ओर अग्रसर हो सकता हैं

१. एक बार जब भगवान बुद्ध कौसाम्बी के "सुस्वर" विहार में ठहरे हुए, एकत्रित लोगों को धम्मोपदेश दे रहे थे. उस समय वही कौसाम्बी में ही एक ब्रह्मचारी रहता था ।
२. उस ब्रह्मचारी को अभिमान था कि उस जैसा शास्त्रों का जानकार कोई नहीं । क्योंकि वह किसी दूसरे को शास्त्रार्थ करने में अपने जैसा नहीं समझता था, इसलिये वह जहां कहीं जाता अपने साथ एक जलती हुई मशाल ले जाता था ।
३. एक दिन किसी नगर के एक साधारण आदमी ने उसके इस विचित्र आचरण का कारण पूछा । उसका उत्तर था:-
४. "सँसार में इतना अधिक अन्धकार हैं. लोग इतने अधिक पथ-भ्रष्ट है कि मै जहां तक उन्हें रास्ता दिखा सकता हूँ, वहां तक रास्ता दिखाने के लिये यह मशाल साथ लिये घूमता हूँ ।"
५. तथागत ने यह सुना तो उस ब्रह्मचारी को सम्बोधित किया "अरे! यह मशाल किस मतलब के लिये है? यह मशाल लिये तुम कहा घूमते हो?"

६. ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया:- “सभी आदमी अज्ञान और अन्धकार के इतने घिरे है कि मै उन्हें रास्ता दिखाने के लिये यह मशाल लिये फिरता हूँ ।“
७. तब भगवान् बुद्ध ने उसे पूछा- “तो क्या धर्म ग्रन्धों में जिन चार प्रकार की विद्याओं -- शब्द-विद्या, नक्षत्र-विद्या, राज-विद्या तथा युद्ध-विद्या -- का उल्लेख है, तुम उन सबके जानकार हो?”
८. ब्रह्मचारी को मजबूर होकर वह मानना पड़ा कि उसे इनकी जानकारी नहीं है । उसने अपनी मशाल फेंक दी । तब भगवान् बुद्ध ने कहा -
९. “यदि कोई आदमी चाहे पण्डित हो और चाहे अपण्डित, दूसरों को मूर्ख समझकर उनसे घृणा करता है तो वह उस अन्धे की तरह है जो स्वयं अन्धा होकर दूसरों को मशाल दिखाता फिरता है ।“

३. धर्म तभी जसद्धम्म है जब वह सिखाता है कि जिस चीज की आवश्यकता है वह ‘पृज्ञा’ है

१. ब्राह्मण ‘विद्या’ को ही बहुत बड़ी बात समझते थे । आदमी चाहे शीलवान हो और चाहे न हो किन्तु यदि वह ‘विद्वान’ है, तो उनकी दृष्टि में वह ‘पूज्य’ था ।
२. उन्होंने कहा है कि राजा तो अपने देश में ही पूजा जाता है किन्तु विद्वान सर्वत्र पुजित होता है, इसका मतलब था कि ‘विद्वान’ राजा से बढ़कर हैं ।
३. तथागत ने ‘प्रज्ञा’ को ‘विद्या’ से भिन्न वस्तु माना है ।
४. कहा जा सकता है कि ब्राह्मणों ने भी ‘प्रज्ञा’ और ‘विद्या’ को एक नहीं माना ।
५. यह सही हो सकता है किन्तु भगवान् बुद्ध की ‘प्रज्ञा’ की कल्पना में और ब्राह्मणों की ‘प्रज्ञां की कल्पना में जमीन-आसमान का अन्तर है ।
६. तथागत ने अंगुत्तर-निकाय में आये अपने एक प्रवचन मे इस भेद को बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया हैं ।
७. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के समीप वेळुवनाराम के ‘कलन्दक-निवाप’ में ठहरे हुए थे।
८. उस समय मगध का एक बड़ा अमात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ आया । कुशल-क्षेम पूछ चुकने पर वह जाकर एक ओर बैठ गया । एक और बैठकर वर्षकार ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध को कहा --
९. “श्रमण गौतम । यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैं, बड़ा आदमी मानते हैं । कौन से हैं वे चार गुण?
१०. “श्रमण गौतम! वह १) विज्ञ होता है । जो कुछ वह सुनता है,सुनते ही वह उसके अर्थ को जानता है । वह कह सकता है कि ‘इस कथन का यह अर्थ है ।‘ (२) उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है । वह बहुत पुरानी कही गई या की गई बात को याद रख सकता है ।
११. “वह (३) अपने गृहस्थी के कार्यो में कुशल होता है, (४) वह यह जानता है कि क्या करना योग्य होगा, क्या व्यवस्था उचित होगी?
१२. “श्रमण गौतम! यदि किसी आदमी में ये चार गुण हैं, तो हम उसे बड़ा विद्वान समझते हैँ, बडा आदमी मानते हैं । अब हे श्रमण गौतम! यदि आप मेरे कथन का समर्थन करना योग्य समझें तो समर्थन करें, खंडन करना योग्य समझें तो खण्डन करें ।
१३. “ब्राह्मण! मैं न तुम्हारा समर्थन-करता हूँ और न विरोध करता हूँ । मैं उस आदमी को बड़ा विद्वान समझता हूँ, जिसमें ये चार गुण है जो कि तुम्हारे बताये चार गुणों से सर्वथा भिन्न हैं ।
१४. “हे ब्राह्मण! एक आदमी बहुत जनों के हित के लिये होता है, बहुत जनों के कल्याण के लिये होता है । उसके कारण बहुत से आदमी सुन्दर, हितकर आर्य-पथ के अनुगामी हैं ।
१५. “वह जिस विषय में मन को लगाना चाहता है, उस विषय में वह मन को लगा सकता है; जिस विषय में मन को नहीं लगाना चाहता उस विषय में वह मन को उधर जाने से रोक सकता हैं ।
१६. “जिस संकल्प को वह मन में उत्पन्न होने देना चाहता है, उस संकल्प को मन में उत्पन्न होने देता है, जिस संकल्प को मन में उत्पत्र होने देना नहीं चाहता उस संकल्प को मन में उत्पत्र होने नहीं देता । इस प्रकार उसे अपने विचारों पर अधिकार होता है ।

१७. “वह जब चाहे बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के चारों लोकोत्तर ध्यानों को प्राप्त कर सकता है तो इसी जीवन में भी सुख-विहार के लिये है।

१८. “और हे ब्राह्मण! वह इसी जन्म में आसवों का क्षय कर, आसव-क्षय ज्ञान को प्राप्त हो, चित्त की विमुक्ति को प्राप्त करता है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को प्राप्त कर वह इसमें विहार करता हैं।

१९. “इसलिये हे ब्राह्मण! न मैं तुम्हारा समर्थन करता हूँ और न विरोध करता हू। मैं उस आदमी को बड़ा ‘विद्वान’ आदमी समझता हूँ, मैं उस आदमी को ‘बडा’ आदमी समझता हूँ जिसमें कि ये चार तुम्हारे बताये गुण हों, जो गुणों से सर्वथा भिन्न है।“

२०. “श्रमण गौतम! यह अद भूत है। श्रमण गौतम! यह अदभूत है। आपने यह इतनी सुन्दर व्याख्या की है।

२१. “मै स्वयं समझता हूं कि श्रमण गौतम में ये चारों गुण हैं। श्रमण गौतम बहुत जनों का हित करने में रत हैं। श्रमण गौतम बहुत जनों के कल्याण में रत हैं। श्रमण गौतम द्वारा बहुत से आदमी सुन्दर, हितकर आर्य-मार्ग में प्रतिष्ठित हुए हैं।

२२. “श्रमण गौतम जिस विषय में अपने मन को लगाना चाहते हैं, उस विषय में मन को लगा सकते हैं.... इस प्रकार उन्हें अपने विचारों पर अधिकार होता है।

२३. “निश्चय से श्रमण गौतम जब चाहें बिना कठिनाई के, बिना तकलीफ के चारों ध्यानों को...... निश्चय से श्रमण गौतम इसी जन्म में आस्रवों का क्षय कर, आस्रव क्षय ज्ञान को प्राप्त हो, चित्त की विमुक्ति को प्राप्त करते हैं, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को; इसे प्राप्त कर वह इसमें विहार करते हैं।

२४. यह बिस्कूल साफ शब्दो, में भवगान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित ‘प्रज्ञा’ में और ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित ‘प्रज्ञा’में भेद स्पष्ट कर दिया गया है।

२५. यहां यह भी स्पष्ट हो गया कि भगवान् बुद्ध ‘विद्या’ की अपेक्षा ‘प्रज्ञा’ को क्यों अधिक महत्व देते थे।

(ग) धर्म तो तभी सद्धम्म कहला सकता है जब वह मैत्री की वृद्धि करे

1. धर्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि केवल ‘प्रज्ञा’ भी अपर्याप्त है : इसके साथ शील अनिवार्य है

१. प्रज्ञा आवश्यक है। लेकिन शील अधिक आवश्यक है। शील के बिना प्रज्ञा खतरनाक हैं।

२. अकेली ‘प्रज्ञा खतरनाक है।

३. प्रज्ञा आदमी के हाथ की दुधारी तलवार है।

४. शीलवान आदमी के हाथ में होने पर यह खतरे में पड़े हुए किसी आदमी की रक्षा कर सकती है।

५. लेकिन शील-रहित आदमी के हाथ में होने पर यह किसी की हत्या भी करा सकती हैं।

६. इसलिये प्रज्ञा से भी शील का महत्व अधिक है।

७. प्रज्ञा विचार-धम्म है, सम्यक् विचार करना। शील आचार-धम्म है, सम्यक् आचरण करना।

८. भगवान बुद्ध ने शील के पांच मूलाधार स्वीकार किये हैं।

९. एक का सम्बन्ध जीव-हिंसा से है।

१० दूसरे का सम्बन्ध चोरी से है।

११ तीसरे का सम्बन्ध काम-भोग सम्बन्धी मिध्याचार से है।

१२ चौथे का सम्बन्ध झूठ बोलने से है।

१३. पांचवें का सम्बन्ध नशील पदार्थ सेवन करने से है।

१४. इन पांचों मूलाधारों को लेकर तथागत ने लोगों को जीव-हत्या से विरत रहने के लिये कहा, चोरी से विरत रहने के लिये कहा ‘कामभोग सम्बन्धी मिथ्याचार से विरत रहने के लिये कहा ‘झूठ बोलने सें विरत रहने के लिये कहा तथा शराब आदि नशील पदार्थ ग्रहण करने से विरत रहने के लिये कहा।

१५. भगवान् बुद्ध ने ‘शील’ को ‘विद्या के भी ऊपर क्यों स्थान दिया - यह स्पष्ट ही है।

१६. ज्ञान का उपयोग आदमी के शील के अनुसार ही होकर रहेगा। शील के बिना ज्ञान का कोई मूत्य नहीं। यही उनके कथन का सार है।

१७. एक दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा है “संसार में शील के समान कुछ नहीं ।
१८. “शील ही आरम्भ है, शील की शरण-स्थान है, शील ही समस्त कल्याण की जननी है । शील ही सर्वप्रथम है । इसलिये अपने शील को शुद्ध करो ।“

2. धर्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा देता है कि प्रज्ञा और शील के साथ-साथ करूणा का होना भी अनिवार्य है

१. इस प्रश्न पर कि बौद्ध-धम्म की आधार-शिला क्या है, कुछ मतभेद रहा है ।
२. क्या अकेली प्रज्ञा बौद्ध-धम्म की आधारशिला है? क्या अकेली करूणा बौद्ध-धम्म की आधार-शिला है?
३. इस मत-भेद के कारण भगवान् बुद्ध के अनुयायी दो पक्षों में विभक्त हो गये थे । एक पक्ष का मत था कि अकेली ‘प्रज्ञा’ ही भगवान् बुद्ध के धम्म की आधार- शिला है । दूसरे पक्ष का कहना था कि अकेली ‘करूणा’ ही बौद्ध-धम्म की आधार-शिला है ।
४. ये दोनों पक्ष अभी भी विभक्त हैं ।
५. यदि ‘बुद्ध-वचनों’ को लेकर विचार किया जाय तो दोनों पक्ष गलत प्रतीत होते है ।
६. इसमें कोई मतभेद नहीं है कि बुद्ध-धम्म के दो स्तम्भों में से एक ‘प्रज्ञा है ।
७. प्रश्न यही है कि करूणा भी दूसरा स्तम्भ है या नहीं?
८. करूणा भी भगवान् बुद्ध के धम्म का एक स्तम्भ है -- यह विवाद से परे की बात है ।
९. इसके समर्थन में ‘बुद्ध-वचन’ उद्धृत किया जा सकता है ।
१०. पुराने समय में गान्धार देश में एक बहुत ही भयानक बीमारी से पीड़ित कोई साधु था । वह जहां कहीं बैठता, उसी जगह को गंदा कर देता ।
११. वह एक ऐसे विहार में था, जहां कोई उसकी सहायता न करता था ।
१२. पांच सौ भिक्षुओं के साथ तथागत आवश्यक बर्तन तथा गर्म पानी आदि लेकर वहां पहुँचे ।
१३. वह स्थान इतना दुर्गन्धिपूर्ण था कि सभी भिक्षुओं को उस साधु घुणा हो गई । लेकिन तथागत ने शुक्रदेव से पानी आदि डलवाकर उस रोगी को अपने हाथ से स्नान कराया और उसकी सेवा की ।
१४. उस समय पृथ्वी काँपी और वह सारा स्थान एक अलौकिक प्रकाश से भर गया । तब राजा, उसके मंत्री, आकाश-स्थित देवता, नाग आदि सभी वहाँ एकत्रित हुए और तथागत की पूजा की ।
१५. जितने भी वहाँ एकत्रित हुए थे उन सभी को आश्चर्य हुआ, इसलिये उन्होंने पूछा कि इतने ऊंचे होकर आपने इतना सामान्य काम क्यों किया? तथागत ने समझाया:-
१६. “संसार में आने का तथागत का उद्देश्य ही यह है कि दरिद्रों, असहायों और अरक्षितों का मित्र बनना । जो रोगी हो -- श्रमण हो वा दूसरे कोई भी हों -- उनकी सेवा करना । दरिद्रों, अनाथों और बूढ़ों की सहायता करना तथा दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना ।“:

३. धर्म तभी सद्धम्म हो सकता है, जब यह शिक्षा दे कि करूणा से भी अधिक मैत्री की आवश्यकता है

१. बुद्ध ने ‘करूणा को ही धम्म की ‘इति’ नही कहा ।
२. ‘करूणा’ का अर्थ दुखी आदमियो के प्रति दया किया जाना है । बुद्ध ने और आगे बढ़कर ‘मैत्री’ की शिक्षा दी । ‘मैत्री का मतलब है प्राणि-मात्र के प्रति दया ।
३. तथागत चाहते थे कि आदमी दु:खी मनुष्यो के प्रति ‘करूणा’ की भावना रखने से भी और आगे बढकर प्राणि-मात्र के प्रति मैत्री की भावना रखे ।
४. जिस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में विराजमान थे, उस समय अपने एक प्रवचन में उन्होंने यह बात अच्छी तरह से स्पष्ट कर दी हे ।

५. मैत्री के बारे में बोलते हुए भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा --
६. "मान लो एक आदमी पृथ्वी खोदने के लिये आता है, तो क्या पृथ्वी उसका विरोध करती है?"
७. भिक्षुओं ने उत्तर दिया - "भगवान! नहीं ।"
८. "मान लो एक आदमी लाख और दूसरे रंग लेकर आकाश में चित्र बनाना चाहता है । क्या तुम समझते हो कि वह बना सकेगा?"
९. "भगवान! नही ।"
१०. "क्यो?" भिक्षु बोले -- "क्योंकि आकाश काला नहीं है ।"
११. "इसी प्रकार तुम्हारे मन में कुछ कालिख नहीं होनी चाहिये, जो कि तुम्हारे राग-द्वेष का परिणाम है ।"
१२. "मान लो एक आदमी जलती हुई मशाल लेकर गंगा नदी में आग लगाने आता है, तो क्या वह आग लगा सकेगा?"
१३. "भगवान! नहीं ।"
१४. "क्यो?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया -- "क्योकि गंगा-जल में जलने का गुण नहीं है ।"
१५. अपना प्रवचन समाप्त करते हुए तथागत ने कहा भिक्षुओं! जैसे पृथ्वी आघात अनुभव नहीं करती और विरोध नहीं करती, जिस प्रकार हवा में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं होती, जिस प्रकार गंगा नदी का जल अग्नि से अप्रभावित रहकर बहता रहता है; इसी प्रकार हे भिक्षुओं! यदि तुम्हारा कोई अपमान भी कर दे, यदि तुम्हारे साथ कोई अन्याय भी करे तो भी तुम अपने विरोधियो के प्रति मैत्री की भावना अपनाये रखो ।
१६. "भिक्षुओं! मैत्री की धारा हमेशा प्रवाहित रहनी चाहिये । तुम्हारा मन पृथ्वी की तरह दृढ़ हो, वायु की तरह स्वच्छ हो और गंगा नदी की तरह गम्भीर हो । यदि तुम मैत्री का अभ्यास रखोगे तो कोई तुम्हारे साथ कैसा भी अप्रीतिकार व्यवहार करे, तुम्हारा चित्त विचलित नही होगा । क्योकि विरोधी लोग शीघ्र ही थक जोयगे ।
१७. "तुम्हारी मैत्री विश्व की तरह व्यापक होनी चाहिये और तुम्हारी भावनाये असीम होनी चाहिये, जिनमें कहीं द्वेष का लेश भी न हो ।
१८. "मेरे धम्म के अनुसार 'करूणा' ही पर्याप्त नहीं है, आदमी में 'मैत्री' होनी चाहिये ।"
१९. अपने प्रवचन में भगवान् बुद्ध ने एक कथा सुनाई जो याद रखने के लायक है ।
२०. "एक समय श्रावस्ती में विदेसिका नाम की एक सम्पत्र स्त्री रहती थी, जिसकी ख्याति थी कि वह बड़ी सुशील है, बडी शान्त है । उसकी एक नौकरानी थी, जिसका नाम काली था । बड़ी दक्ष, बहुत सुबह उठकर अपना काम करने वाली । एक दिन काली ने सोचा, 'क्या मेरी मालकिन को, जिसकी इतनी ख्याति है, क्रोध आता ही नही, वा वह अपना क्रोध प्रगट नही करती? अथवा मैं अपना काम इतनी अच्छी तरह करती हूँ कि उसका क्रोध अप्रकट रहता है?
२१. इसलिये दूसरे दिन वह विलम्ब से उठी । मालकिन बोली - "काली! काली !"लडकी बोली - "हाँ, मालकिन! " "तू इतनी देर करके क्यों उठी?" "मालकिन! कुछ बात नहीं ।" "दृष्ट लड़की! कहती है, कुछ बात नहीं" कहते हुए मालकिन गुस्से के मारे धुधवाने लगी ।
२२. "यद्यपि यह क्रोध को प्रकट नहीं होने देती, किन्तु भीतर क्रोध तो है । क्योंकि मैं अपना काम बहुत अच्छी तरह करती हूँ इसलिये इसका क्रोध अप्रकट रहता है । मैं इसकी और परीक्षा करूँगी"- लड़की ने सोचा ।इसलिये दूसरे दिन वह और भी अधिक देर करके उठी । मालकिन बोली - "काली! काली!"उत्तर दिया - "हा मालकिन !"तू इतनी देर करके क्यो उठी?" "मालकिन! कुछ बात नहीं है । "दृष्ट लड़की! कहती है कुछ बात नहीं" ", कहते हुए मालकिन और भी अधिक भिनभिनाई ।
२३. "हां! क्रोध तो निश्चित रूप से है । लेकिन क्योकि मैं अपना काम अच्छी तरह से करती हूँ, इसीलीये वह अप्रकट रहता है । मैं इसकी और परीक्षा करूगी । "इसलिये अगले दिन वह और भी विशेष देर करके उठी । मालकिन चिल्लाई - "काली! काली!"लड़की बोली - "ही मालकिन !""तू इतनी देरी से क्यों उठी?""मालकिन! यह कुछ बात नहीं है ।"
२४. "दृष्ट लड़की! इतनी अधिक देर से उठना, कुछ बात ही नहीं है"- इतना कहा और गुस्से में आकर मालकिन ने दरवाजे की अर्गल निकाल कर लडकी के सिर में दे मारी । लड़की के सिर से खून बहने लगा ।
२५. रक्त बहते हुए अपने फूटे सिर को लेकर लड़की चिल्ला चिल्लाकर पड़ोसियों को सुना रही थी -- "देखो रे लोगो, अपनी शान्त मालकिन को । देखो रे लोगो, अपनी क्रोध-रहित मालकिन को । इतनी सी बात पर कि उसका काम करने वाली लडकी देर से उठी, वह क्रोध से इतनी पागल हो गई कि दरवाजे की अर्गल निकाल कर मेरे सिर में दे मारी और उसे फोड दिया ।"
२६. "परिणाम-स्वरूप विदेसिका मशहूर हो गई कि बड़ी अशान्त है, बड़े क्रोधी स्वभाव की है - शान्त और विनम्र तो है ही नही ।
२७. "इसी तरह से कोई भिक्षु भी बड़ा शान्त और विनम्र रह सकता है, जब तक उसे अप्रसन्न करने वाली बात न कही जाय । लेकिन किसी भिक्षु में मैत्री है या नही, इसकी परीक्षा तभी होती है जब उसके विराद्ध कोई कुछ कहता है ।

२८. इसके आगे तथागत ने कहा - 'मै उस भिक्षु को मैत्री-भाव-संपन्न नहीं कहता जो केवल भोजन-वस्त्र प्राप्त करने के लिये मैत्री प्रदर्शित करता है । मै उसे ही सच्चा भिक्षु कहता हूँ जिस को मैत्री का मूल स्त्रोत उसका धम्म है ।
२९. "भिखुओ! कोई मी पुण्य-र्कम मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है । मैत्री जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है -- यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्जवलित होती है ।
३० "इसी प्रकार भिक्षुओ ! जैसे भी तारों मिलकर भी अकेले चन्द्रमा के प्रकाश सोलहवें हिस्से के भी बराबर नही; चन्द्रमा का प्रकाश प्रकाश-मान होता है, प्रदीप्त होता है, प्रज्ज्वलित होता है । इसी प्रकार भिखुओ । कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहि हैं । मैत्री, जो कि चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है -- वह प्रकाशमान होती हैं, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।
३१. "और भिक्षुओ! जैसे वर्षा ऋतु की समाप्ति पर स्वच्छ, अनभ्र आकाश में उगने वाला सूर्य, तमाम अन्धकार को विदीर्ण कर देता है; वह प्रकाशित होता है, प्रदीप्त होता है तथा प्रज्ज्वलित होता है और जैसे रात्रि की समाप्ति पर भोर का तारा प्रकाशित होता है, प्रदीप्त होता है तथा प्रज्ज्वलित होता है: ठीक उसी प्रकार कोई भी पुण्य-कर्म मैत्री-भावना के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है । मैत्री, जो चित्त की विमुक्ति है, उन सबको अपने अन्तर्गत ले लेती है -- यह प्रकाशमान होती है, यह प्रदीप्त होती है, यह प्रज्ज्वलित होती है ।"

(घ) धर्म तभी सद्धम्म कहला सकता है, जब वह तमाम सामाजिक भेद-भावों को मिटा दे

१. धर्म तभी सद्धम्म हो सकता है जब एक आदमी और दूसरे आदमी के बीच की तमाम दीवारो को गिरा दे

१. एक 'आदर्श- समाज' क्या है? ब्राह्मणों के अनुसार वेदों ने आदर्श-समाज की परिभाषा की है, और क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण है और उसमें कभी कोई गलती हो ही नही सकती, इसलिये आदमी का 'आदर्श-समाज' वही है जो वेदो में वर्णित है ।
२. वेदों में जिस 'आदर्श-समाज' का विधान किया गया है, वह 'चातुर्वर्ण्य' कहलाता है ।
३. वेदों के अनुसार इस प्रकार के समाज में तीन बातें अवश्य होनी चाहिये ।
४. इसमें चार वर्ग होने चाहिये - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ।
५. इन वर्गो का आपसी सम्बन्ध क्रमिक- असमानता के सिद्धान्त तर आश्रित होना चाहिये । दूसरे शब्दों में ये तमाम वर्ग एक दूसरे के समान नहीं हो सकते । उन्हें एक दूसरे के ऊपर-नीचे होना चाहिये -- सामाजिक दर्जे के बारे में, अधिकारों के बारे में तथा सुविधाओं के बारे में ।
६. सबसे ऊपर ब्राह्मण; उनके नीचे क्षत्रिय किन्तु वैश्यों से ऊपर, उनके भी नीचे वैश्य किन्तु शूद्रों से ऊपर । सबसे नीचे शूद्र ।
७. चातुर्वर्ण्य से सम्बन्ध रखनेवाली तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हर वर्ग को अपने अपने पेशे में लगा रहना होगा । ब्राह्मण का काम है पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक संस्कार करना । क्षत्रिय का काम है शस्त्र धारण करना और लडना । वैश्य का काम है व्यापार तथा दूसरे कारोबार करना । शूद्र का काम है ऊपर के तीनों वर्गो की सेवा करना- उनके सभी मैले-कुचैले काम करना ।
८. कोई एक वर्ग दूसरे वर्गो का पेशा नहीं कर सकता । वह उसके पेशे की सीमा में पैर नहीं रख सकता ।
९. इस 'आदर्श-समाज' के सिद्धान्त को ब्राह्मणों ने ऊंचा दर्जा दिया और लोगों में इसका प्रचार किया ।
१०. यह स्पष्ट ही है कि इस चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की "आत्मा" ही है असमानता, । यह सामाजिक असमानता किसी सामाजिक - खेत की अनायास उगी हुई उपज नहीं है । असमानता ब्राह्मणवाद का शास्त्र-सम्मत सिद्धान्त है ।
११. भगवान् बुद्ध ने इसका जड मूल से विरोध किया ।
१२. भगवान् बुद्ध जाति-वाद के सबसे बड़े विरोधी थे । वे समानता के सबसे बड़े समर्थक थे ।
१३. जातिवाद और असमानता का समर्थन करने वाला एक भी तर्क ऐसा नहीं है, जिसका उन्होंने खण्डन नहीं किया ।
१४. ऐसे ब्राह्मण बहुत थे जिन्होंने इस विषय में बुद्ध से विवाद करने का प्रयास किया । लेकिन तथागत ने उन्हें एकदम मौन कर दिया ।
१५. अश्वालायन सुत्त में कथा है कि एक बार सभी ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर अश्वलायन ब्राह्मण को भगवान् बुद्ध के पास भेजा कि वह जाकर उनसे जातिवाद के बारे में शास्त्रार्थ करे ।

१६. अश्वलायन भगवान् बुद्ध के सामने उपस्थित हुआ और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का पक्ष भगवान् बुद्ध के सामने रखा ।
१७. उससे कहा -- "श्रमण गौतम! ब्राह्मणो का कहना है कि ब्राह्मण ही ऊँचे वर्ग के हैं, शेष सब उनके नीचे हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल-वर्ण हैं, शेष सब कृष्ण-वर्ण हैं, पवित्रता या शुचिता का वास केवल ब्राह्मणों में ही है, अब्राह्मणों में नही हैं; केवल ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र है, उसके मुख से उत्पन्न 'उसके रचे हुए, उसके पैदा किए हुए तथा उसके उत्तराधिकारी । श्रमण गौतम का इस विषय में क्या कहना है?"
१८ तथागत के उत्तर ने अश्वलायन को एक बार तो हतप्रभ ही कर दिया ।
१९. बुद्ध ने कहा -- "अश्वलायन! क्या ब्राह्मणों की ब्राह्मण-पत्निया ऋतुमती - नही होतीं, गर्भ धारण नहीं करती और सन्तान का प्रसव नहीं करती? यह होते हुए भी क्या ब्राह्मणों का कहना है कि ब्राह्मण ही ऊंचे वर्ण के है...... ब्राह्मण ब्रह्मा के औरस-पुत्र है... ब्राह्मण ही उसके उत्तराधिकारी है ?
अश्वलायन -- "यह तो ऐसा ही है, लेकिन तब भी ब्राह्मण कहते हैं कि वे ही ऊंचे वर्ण के हैं... वे ही ब्रह्मा के औरस-पुत्र है,.. वे ही ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं ।"
२१. तब तथागत ने अश्वलायन से दूसरा प्रश्न पूछा –-
२२. "अश्वलायन! यदि एक क्षत्रिय एक ब्राह्मण कन्या से सहवास करे तो संतान मानव-संतान ही होगी अथवा उन दोनों के संयोग से कोई जानवर जन्म ग्रहण करेगा?"
२३. अश्वलायन के पास कोई उत्तर न था ।
२४. "जहाँ तक नैतिक उन्नति कर सकने की बात है तो क्या एकमात्र ब्राह्मण ही अपने आप को राग-द्वेष से मुक्त कर सकता है, एक क्षत्रिय नहीं? एक वैश्य नहीं? एक शुदृ नहीं?"
२५. अश्वलायन बोला -- "नहीं, चारों वर्ण के लोग कर सकते हैं ।"
२६. "अश्वलायन! क्या तुमने कभी सुना है कि यवन और कम्बोज देश में तथा अन्य पड़ोसी देशों में भी दो ही तरह के वर्ग होते है, एक आर्य (स्वामी) दूसरे दास (गुलाम); और एक आर्य दास बन सकता है, तथा एक दास आर्य ?
२७. अश्वलायन -- "हा मैने ऐसा सुना है ।"
२८. "यदि तुम्हारा चातुर्वर्ण्य, एक आदर्श-समाज है तो फिर यह सभी देशो में क्यों नहीं?"
२९. इनमें से किसी भी एक बात को लेकर अश्वलायन अपने जातिवाद और असमानता के पक्ष का समर्थन न कर सका । उसे एकदम मौन ही रह जाना पड़ा । अंत में अश्वलायन को बुद्ध का एक शिष्य ही बनना पड़ा ।
३०. वासेट्ठ नाम के एक ब्राह्मण ने तथागत की शरण ग्रहण कर ली थी । दूसरे ब्राह्मण इस बात के लिये उसे बुरा-भला कहते थे ।
३१. एक दिन वह भगवान बुद्ध के पास गया और उन्हें जाकर वह सब सुना दिया, जो ब्राह्मण उसके बारे में कहते-सुनते थे ।
३२. वासेट्ठ ने कहा -- "भगवान्! ब्राह्मण कहते हे कि ब्राह्मण का ही सामाजिक स्तर श्रेष्ठ है बाकी सबका निकृष्ट है । केवल ब्राह्मण ही शुक्ल- वर्ण होता है; दूसरे वर्ण कृष्ण-वर्ण होते हैं । केवल ब्राह्मण ही शुद्ध वंशोत्पन्न हैं, अब्राह्मण नही, केवल ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र है, उसके मुंह से उत्पन्न, ब्रह्मा की संतान, ब्रह्मा द्वारा रचे गये, ब्रह्मा के उत्तराधिकारी ।
३३. "जहाँ तक तुम्हारी बात है तुमने अपने अभिजात वर्ग का त्याग करके उच नीचे वर्ग की संगति की है । तुम उन सिरमुण्डों में शामिल हो गये हो. उन गंवारो में , कृष्णवर्णी लोगों में, उन शूद्रों में । तुम्हारे लिये ऐसा करना उचित नहीं । तुम्हारे लिये ऐसा करना ठीक नहीं । यह क्या है जो तुमने अपने अभिजात वर्ग का त्याग कर उस नीच वर्ग की संगति की है? तुम उन सिरमुण्डों में शामिल हो गये हो, उन गंवारों मे, उन कृष्ण-वर्ण के लोगों में, उन शूद्रों में -- हमारी जाति की जुतियों से उत्पन्न वर्ण में ।
३४. "भगवान! इन शब्दो में ब्राह्मण मुझे बुरा-भला कहते है, गाली देते है, किसी तरह की कोई कसर नहीं छोडते ।"
३५. वासेठ्ठ ! तो निश्चय से यदि ब्राह्मण ऐसा कहते हैं तो वह अपनी प्राचीन परम्परा को भूल गये हैं । सभी दूसरे वर्णो की स्त्रियों की तरह ब्राह्मणियाँ भी सन्तान उत्पत्र करती तथा उसका पालन-पोषण करती देखी जाती है । ऐसा होने पर भी यह सभी, माता की योनि से उत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मा के औरस-पुत्र हैं, ब्रह्मा के मुँह से उत्पत्र हुए है, ब्राह्मण ब्रह्मा की सन्तान हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा की रचना हैं तथा ब्राह्मण ब्रह्मा के उत्तराधिकारी है ।
३६. एक बार एसुकारी ब्राह्मण तीन बातों को लेकर बुद्ध से शास्त्रार्थ करने गया
३७. पहला प्रश्न जो उसने उठाया, वह पेशों के स्थायी वर्गीकरण के बारे मे था. । वर्गीकरण के पक्ष में बोलते हुए उसने कहा:- "मै आप से एक प्रश्न पूछने आया हूँ । ब्राह्मणों का कहना है कि क्योंकि वे सर्वोपरि हैं, इसलिये वे किसी की सेवा नही करेंगे । सभी उन्हीं की सेवा करने के लिये उत्पन्न हुए है ।

३८. “श्रमण गौतम! सेवा (=पेशों) के चार विभाग किये गये हैं -- (१) ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली सेवा, (२) क्षत्रियों द्वारा की जाने वाली सेवा, (३) वैश्यों द्वारा की जानेवाली सेवा तथा (४) शूद्रो द्वारा की जाने वाली सेवा ; किन्तु एक शूद्र की तो कोई दूसरा शूद्र ही सेवा कर सकता है । दूसरा कौन शूद्र की सेवा करेगा? श्रमण गौतम का इसके बारे में क्या मत है?”
३१. भगवान बुद्ध के एसुकारी ब्राह्मण से एक प्रति-प्रश्न पूछकर उसके प्रश्न का उत्तर दिया । तथागत ने कहा ‘क्या सारा संसार ब्राह्मणों के इस वर्गीकरण से सहमत है?
४०. “जहाँ तक मेरी बात है न मैं यही कहता हूँ कि सभी सेवाएँ (=पेशे) की ही जानी चाहिये, न यही कहता हूं कि सभी सेवायें (=पेशे) नहीं ही की जानी चाहिये । यदि किसी सेवा (=पेशे) के करने से आदमी की स्थिति अच्छी न होती हो, खराब होती हो तो वह सेवा (=पेशा) नहीं की जानी चाहिये; यदि किसी सेवा (=पेशे) के करने से आदमी की स्थिति खराब होने की बजाय बेहतर होती हो तो वह सेवा (=पेशा) की जानी चाहिये ।
४१. इसी एक कसौटी पर क्षत्रियो, ब्राह्मणों, वैश्यो, शुद्रों सभी की सेवा कैसी जानी चाहिये; हर व्यक्ति को ऐसी सेवा (=पेशा) करने से इनकार करना चाहिये जो उसकी स्थिति को खराब बनाती हो, किन्तु हर व्यक्ति को ऐसी सेवा (पेशा) करनी चाहिये जो उसकी स्थिती को अच्छा बनाती हो ।
४२. चर्चा का दूसरा विषय जो एसुकारी ब्राह्मण ने उपस्थित किया, वह यही था कि आदमी के दर्जे का विचार करते समय उसकी वंश-परंम्परा का भी विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिये?
४३. इस प्रश्न का तथागत ने यू उत्तर दिया -- “जहाँ तक वंश-परम्परा के अभिमान की बात है, एक आदमी जिस वंश मे जन्म ग्रहण करता हैं, उससे उसका नाम-करण मात्र ही होता हैं कि यह क्षत्रिय-वंश में पैदा हुआ है, यह ब्राह्मण-वंश में पैदा हुआ है, यह वैश्य-वंश में पैदा हुआ है और यह शूद्र-वंश में पैदा हुआ है । जैसे, किस प्रकार के ईंधन से आग उत्पन्न होती है, उससे उसका नाम-करण हो जाता है -- यह लकडी की आग है, यह चैली की आग है, यह लकड़ी की गाठ की आग है और यह गोबर की आग है; इसी प्रकार आदमी के लिये सद्धम्म ही उसका वास्तविक धन है, जन्म से तो आदमी की चारों वर्णो में से किसी न किसी एक वर्ण में गिनती मात्र होती है ।
४४. “न वंश-परम्परा से, न अच्छी शक्ल होने से और न धन होने से कोई आदमी अच्छा या बुरा होता है । अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ एक आदमी भी हत्यारा होता है, चोर होता है, व्यभिचारी होता है, झूठा होता है, चुगलखोर होता है, कठोर बोलने वाला होता है, बकवास करने वाला होता है, लोभी होता है, द्वेषी होता है और मिथ्या-दृष्टि वाला होता है । इसीलिये मैं कहता हूँ कि अच्छे वंश में उत्पन्न होने से ही कोई आदमी अच्छा नहीं होता । और अच्छे वश में उत्पन्न होने पर भी एक आदमी इन सभी दोषों से युक्त होता है । इसलिये मैं यह भी नहीं कहता हूँ कि अच्छे वश में उत्पन्न होने से ही कोई आदमी अच्छा नहीं होता ।”
४५. एसुकारी ब्राहमण का तीसरा प्रश्न प्रत्येक वर्ग के पेशे वा जीविका के साधन के सम्बन्ध में था ।
४६. एसुकारी ब्राह्मण ने तथागत से कहा -- “ब्राह्मण चार तरह के जीविका के साधनों का विधान करते हैं -- १) ब्राह्मणों के लिये भिक्षा, २) क्षत्रियों के लिये तीर- कमान, ३) वैश्यों के लिये व्यापार तथा पशु-पालन और ४) शूद्रो के लिये बैहेंगी पर (दूसरो का) धान ढोना । यदि इनमें से कोई अपना पेशा छोड़ कर किसी दूसरे का पेशा करता है तो यह उसके लिये अच्छा नहीं, ठीक वैसे ही जैसे कोई चौकीदार किसी दूसरे की सम्पत्ति पर अधिकार कर ले । श्रमण गौतम का इस बारे में क्या मत है?”
४७ “क्या सारा संसार इस ब्राह्मणी-वर्गीकरण से सहमत है?”
४८. एसुकारी ब्राह्मण का उत्तर था -- “नही”
४९. वासेट्ठ को तथागत ने कहा था -- “उंचे आदर्श का महत्व है, ऊंची जाति में जन्म ग्रहण करने का नहीं ।”
५०. जाति नहीं, असमानता नहीं, ऊंच-नीच-नही -- यही तथागत की देशना थी ।
५१. “दूसरे के साथ अपने आप को एक कर दो । यही सोचो जैसे वे हैं, वैसा मै हूँ, जैसा मैं हूँ, वैसे वे हैं ।”

२. धर्म तभी सद्धम्म है जब वह यह शिक्षा दे कि किसी आदमी के ‘जन्म’ से नहीं, बल्कि उसके ‘कर्म’ से ही उसका मुल्यांकन किया जाना चाहिए

१. ब्राह्मण जिस चातुर्वर्ण्य का उपदेश देते थे, उसका आधार जन्म था ।
२. जो ब्राह्मण माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह ब्राह्मण है । जो क्षत्रिय माता-पिता के घर पैदा हो गया है, वह क्षत्रिय है । जो वैश्य माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह वैश्य है । जो शूद्र माता-पिता के घर पैदा हो गया, वह शूद्र है ।

३. ब्राह्मणों के अनुसार आदमी अपने जन्म के ही हिसाब से छोटा-बड़ा होता है -- और किसी दूसरी बात से नहीं ।

४. यह जन्माश्रित ऊँच-नीच का सिद्धान्त तथागत को उतना ही अप्रिय था, जितना चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त ।

५. भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त ब्राह्मणों के सिद्धान्त से सर्वथा विरोधी था । उनका सिद्धान्त था कि किसी आदमी के 'जन्म' से नहीं, बल्कि उसके 'कर्म' से ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिये ।

६. जिस अवसर पर भगवान् बुद्ध ने अपने इस सिद्धान्त का उपदेश दिया, वह अवसर भी विशेष था ।

७. एक समय भगवान् बुद्ध अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे । एक दिन पूर्वाह में उन्होने अपना भिक्षा-पात्र लिया और भिक्षार्थ श्रावस्ती में प्रवेश किया ।

८. उस समय यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित थी और यज्ञ की तैयारी हो रही थी । भिक्षाटन करते - करते भगवान् बुद्ध उस अग्गिक के घर पर आ पहुंचे ।

९. तथागत को कुछ दूरी पर आता देख अग्गिक आग-बबूला हो गया । बोला -- "मुण्डक वहीं रह । दरिद्र श्रमण वही रह । वृषल वहीं रह ।"

१०. जब ब्राह्मण को इस प्राकर बोलते सुना, तो तथागत ने उसे सम्बोधित करके पूछा -- "हे ब्राह्मण! क्या तू जानता है कि वृषल (अछूत) कौन होता है? क्या तू जानता है कि क्या करने से आदमी वृषल (अछूत) बनता है?"

११. "नही श्रमण गौतम! मैं नहीं जानता कि वृषल कौन होता है? अथवा क्या करने से आदमी वृषल (=अछूत) होता है?"

१२. भगवान् बुद्ध ने कहा कि यदि तुम यह जान लोगे कि वृषल कौन होता हैं, तो इससे तुम्हारी कुछ हानि नहीं होगी । " अच्छा जब आप चाहते है कि मैं जान ही लू तो बतायें ।"

१३. ब्राह्मण के सुनने की इच्छा प्रकट करने पर तथागत ने कहा -

१४. "जो आदमी क्रोधी हो, लोभी हो, अनैतिक हो, चुगलखोर हो, मिथ्या-दृष्टि हो और वंचक हो -- उसे 'वृषल' समझना ।

१५. "जो भी चाहे एकज हों, चाहे द्विज (पक्षी आदि) हों, प्राणियों को हानि पहुंचाता है, जिसके मन में प्राणियों के लिये दया नहीं है -- उसे 'वृषल' करके जानना ।

१६. जो भी कोई ग्रामों और झोपड़ियों को नष्ट करता है ' जो अत्याचारी है -- उसे 'वृषलं' करके जानना ।

१७. "चाहे गाँव में, चाहे गाँव के बाहर जंगल में, जो भी किसी दूसरे की चीज को बिना दिये लेता है अर्थात् चुराता है -- उसे 'वृषल' करके जानना ।

१८. "जो किसी का 'ऋण' लेकर बिना लौटाये, यह कहकर कि मुझे तुम्हारा कुछ नही देना है, भाग जाना है- उसे 'वृषलं' करके जानना ।

१९. "जो भी किसी वस्तु की कामना से, सड़क पर चलते हुए किसी को मार डालता है वा लूट लेता है -- उसे 'वृषलं' करके जानना ।

२०. "जो भी कोई, अपने हित में, वा किसी दूसरे के हित में, अथवा धन के लोभ से पूछ जाने पर झूठी गवाही देता है -- उसे 'वृषल' करके जानना ।

२१."जो कोई जबर्दस्ती या रजामन्दी से अपने मित्रों वा सम्बन्धियों की पत्नी से अनाचार करता है -- उसे 'वृषल करके जानना ।

२२. "जो अपने पास पैसा होने पर भी, गत-जीवन अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नही करता -- उसे 'वृषल' करके जानना ।

२३. "जो कोई 'कुशल' धम्म पूछे जाने पर "अकुशल" धम्म की शिक्षा देता है और 'रहस्य' बनाकर शिक्षा देता है -- उसे 'वृषल' जानना ।

२४ "जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है, जन्म से न कोई शूद्र होता है ।

२५. यह सब सुना तो अग्गिक ब्राह्मण ने जो कुछ बुरा-भला तथागत को कहा था, उसके लिये वह बहुत लज्जित हुआ ।

३. धर्म तभी सद्धम्म है जब वह आदमी और आदमी के बीच समानता के भाव कि अभिवृद्धि करे

१. आदमी असमान ही जन्म लेते है ।

२. कुछ मजबूत होते हैं, कुछ कमजोर ।

३. कुछ अधिक बुद्धिमान होते है, कुछ कम, कुछ एकदम नहीं ।
४. कुछ अधिक सामर्थ्यवान् होते है, कुछ कम ।
५. कुछ धनी होते हैं, कुछ गरीब ।
६. सभी को "जीवन-संघर्ष " में प्रवेश करना पड़ता है ।
७. इस "जीवन-संघर्ष" में यदि असमानता को स्वाभाविक स्थिति स्वीकार कर लिया जाय तो जो कमजोर है, उसका तो कही ठिकाना ही नहीं रहेगा ।
८. क्या यह 'असमानता' का नियम जीवन का नियम बन जाना चाहिये?
९. कुछ कहते हैं "हां" ! उनका तर्क है कि जो 'जीवन- सघर्ष में टिकने के अधिक योग्य होगा, वह टिका रहेगा ।
१०. प्रश्न यह है कि जो आदमी 'जीवन-संघर्ष' में टिके रहने के लिये योग्यतम है, क्या समाज के दृष्टि-कोण से भी वही आदमी श्रेष्ठतम है?
११. कोई भी इसका निश्चयात्मक उत्तर नहीं दे सकता ।
१२. इसी सन्देह के कारण धम्म "समानता" का उपदेशक है । हो सकता है कि "समानता" के कारण जो "श्रेष्ठतम" व्यक्ति है वह भी बना रह सके, चाहे वह 'जीवन-संघर्ष' की दृष्टि से योग्यतम न भी हो ।
१३. समाज को "श्रेष्ठतम" आदमी चाहिये, "योग्यतम" नहीं ।
१४. यही प्राथमिक कारण है जिस से धम्म 'समानता' का समर्थक है ।
१५. भगवान् बुद्ध का यही दृष्टिकोण था और इसीलिये उनका यह कहना था कि जो धर्म 'समानता' का समर्थक नहीं है, वह अपनाने योग्य नहीं है ।
१६. क्या आप किसी एसे धर्म में विश्वास कर सकते है या उसके लिये मन में आदर का भाव रख सकते हैं, जो दूसरों को दुःखी बनाकर स्वयं सुखी बनने की शिक्षा देता हो, अथवा अपने को दुःखी बनाकर दूसरों को सुखी बनाने की शिक्षा देता हो अथवा अपने को और दूसरों को -- दोनों को -- दुःखी बनाने शिक्षा देता हो?
१७. क्या वह धम्म अधिक श्रेष्ठतर नहीं है जो अपने सुख के साथ साथ दूसरों के सुख में वृद्धि करता है और किसी प्रकार के अत्याचार को सहन नही करता?
१८. जो ब्राह्मण 'असमानता' के विरोधी थे, भगवान् बुद्ध ने उनसे कई बड़े खास प्रश्न पूछे हैं ।
१९. भगवान् बुद्ध का धम्म आदमी की अपनी पुण्य-परक प्रवृत्ति में से उत्पन्न होने वाला अत्यन्त न्याय-संगत धम्म है ।

चतुर्थ खंड

मजहब (धर्म) और धम्म

पहला भाग - मजहब (धर्म) और धम्म

दुसरा भाग - किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है?

तीसरा भाग - बौद्ध जीवन - पथ

चौथा भाग - तथागत के प्रवचन

पहला भाग : मजहब (धर्म) और धम्म

१. महजब (धर्म) क्या है?

१. मजहब एक अनिश्चित शब्द है, जिसका कोई स्थिर अर्थ नहीं ।

२. यह शब्द तो एक है, किन्तु इसके अर्थ अनेक हैं ।

३. इसका कारण है कि मजहब बहुत सी अवस्थाओं में से होकर गुजरा है । हर अवस्था में हम उस मान्यता विशेष को 'मजहब' ही कहते रहे हैं । निस्सन्देह हर एक समय की मान्यता अपने से पूर्व की मान्यताओं से भी भिन्न रही है और अपने बाद में आनेवाली मान्यताओं से भी भिन्न रही है ।

४. 'मजहब' की कल्पना कभी स्थिर नहीं रही है ।

५. यह हर समय बदलती चली आई है ।

६. एक समय था जब बिजली, वर्षा और बाढ़ की घटनायें आदमी-आदमी की समझ से सर्वथा परे की बातें थी । इन सब पर काबू पाने के लिये जो भी कुछ टोना-टोटका किया जाता था, 'जादू' कहलाता था । उस समय 'मजहब' और 'जादू' एक ही चीज के दो नाम थे ।

७. तब 'मजहब' के विकास में दूसरा समय आया । इस समय 'मजहब' का मतलब था -- आदमी के विश्वास, धार्मिक कर्म-काण्ड, रीति-रिवाज, प्रार्थनायें और बलियों वाले यज्ञ ।

८. लेकिन 'मजहब' का यह स्वरूप व्युत्पन्न है ।

९. 'मजहब' का केन्द्र-बिन्दु इस विश्वास पर निर्भर करता है कि कोई शक्ति विशेष है जिसके कारण ये सभी घटनायें घटती हैं और जो आदिम आदमी की समझ से परे की बाते थीं । अब इस अवस्था को पहुंच कर 'जादू का प्रभाव जाता रहा ।

१०. आरम्भ मेँ यह शक्ति 'शैतान का ही रूप थी । किन्तु बाद में यह माना जाने लगा कि यह 'शिवं रूप भी हो सकती है ।

११. तरह तरह के विश्वास, कर्म-काण्ड और यज्ञ शिव स्वरूप शक्ति को प्रसन्न करने के लिये और क्रोधरूप शक्ति को संतुष्ट रखने के लिये भी आवश्यक थे ।

१२. आगे चलकर वही शक्ति 'ईश्वर', 'परमात्मा' या दुनिया का बनाने वाला कहलाइ ।

१३. तब 'मजहब' की मान्यता ने तीसरी शक्ल ग्रहण की, जब यह माना जाने लगा कि इस एक ही शक्ति ने 'आदमी' और 'दुनिया' दोनों को पैदा किया है ।

१४. इस के बाद मजहब की मान्यता में एक यह बात भी शामिल हो गई कि हर आदमी की देह में एक 'आत्मा' है, वह 'आत्मा नित्य है और आदमी जो कुछ भी भला-बुरा काम करता है, उस 'आत्मा को 'ईश्वर के प्रति उसके लिये उत्तरदायी रहना पड़ता है ।

१५. यही थोड़े में 'मजहब' की मान्यता के विकास का इतिहास है ।

१६. अब 'मजहब का यही अर्थ हो गया है और अब 'मजहब से यही भावार्थ ग्रहण किया जाता है -- ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, आत्मा का सुधार, प्रार्थना आदि करके ईश्वर को प्रसन्न रखना ।

२. धम्म से महजब (धर्म) कैसे भिन्न है?

१. भगवान बुद्ध जिसे 'धम्म' कहते हैं वह 'मजहब से सर्वथा भिन्न है ।

२. यूं जिसे भगवान् बुद्ध 'धम्म कहते है, वह उसके समानान्तर है जिसे यूरोप के देववादी 'रिलीजन' कहते हैं ।

३. लेकिन दोनों में कोई खास 'समानता' नहीं है । बल्कि दोनो में बहुत बड़ा अन्तर है ।

४. इसीलिये कुछ युरोपीय देव- वादी भगवान् बुद्ध के 'धम्म' को 'मजहब स्वीकार करने से इन्कार करते हैं ।

५. हमें इस के लिये कोई अफसोस नहीं है ।नुकसान उन्हीं का है । इससे बुद्ध-धम्म की कोई हानि नहीं । बल्कि इससे 'रिलीजन' की कमियाँ स्पष्ट रूप से ध्यान में आ जाती हैं ।

६. इस विवाद में पड़ने की अपेक्षा यह अच्छा है कि हम यह बतायें कि धम्म क्या है और फिर यह दिखाये कि यह 'मजहब' या 'रिलीजन' से कैसे भिन्न है?

७. कहा जाता है कि 'मजहब' या 'रिलीजन' व्यक्तिगत चीज है और आदमी को इसे अपने तक ही सीमित रखना चाहिये । इसे सार्वजनिक जीवन में बिल्कुल दखल नहीं देना चाहिय ।

८. इसके सर्वथा विरुद्ध 'धम्म' एक सामाजिक वस्तु है। यह प्रधान रूप से और आवश्यक रूप से सामाजिक है।
९. धम्म का मतलब है सदाचरण, जिस का मतलब है जीवन के सभी क्षेत्रों में एक आदमी का दूसरी आदमी के प्रति अच्छा व्यवहार।
१०. इससे स्पष्ट है कि यदि कही एक आदमी अकेला ही हो तो उसे किसी 'धम्म' की आवश्यकता नहीं।
११. लेकिन यदि कहीं परस्पर सम्बन्धित दो आदमी भी एक साथ रहते हों, तो चाहे वे चाहें और चाहे न चाहें उन्हे 'धम्म' के लिये जगह बनानी होगी। दोनों में से कोई एक भी बचकर नहीं जा सकता।
१२. दूसरे शब्दो में बिना 'धम्म' के समाज का काम चल ही नहीं सकता।
१३. समाज को तीन बातों में से एक का चुनाव करना ही पड़ेगा।
१४. समाज चाहे तो अपने 'अनुशासन' के लिये धम्म का चुनाव नहीं कर सकता। यदि धम्म 'अनुशासन' नहीं करता तो वह 'धम्म' ही नहीं है।
१५. इसका मतलब है कि समाज 'अराजकता' के पथ पर आगे बढ़ना ठीक समझता है।
१६. दुसरे समाज पुलिस को अर्थात् डिक्टेटर को 'अनुशासन' के लिये चुन सकता है।
१७. तीसरे समाज 'धम्मं' और 'मजिस्ट्रेट' दोनों का चुनाव कर सकता है; जितने अंश में समाज 'धम्म' का पालन करे उतने अंश में 'धम्म' और जहाँ 'धम्मं' का पालन न करे, वहाँ मजिस्ट्रेट।
१८. न आराजकता में स्वतन्त्रता है और न डिक्टेटर-राज्य में स्वतन्त्रता है।
१९. केवल तीसरी व्यवस्था में ही स्वतन्त्रता जीवित रहती है।
२०. इसलिये जो स्वतन्त्रता चाहते हैं, उनके लिये 'धम्मं' अनिवार्य है।
२१. 'धम्मं' क्या है? 'धम्मं' की अनिवार्य आवश्यकता क्यों है? भगवान् बुद्ध के अनुसार धम्म के दो प्रधान तत्व हैं -प्रज्ञा तथा करूणा।
२२. प्रज्ञा क्या है? प्रज्ञा किस लिये? प्रज्ञा का मतलब है बुद्धि (निर्मल बुद्धि)। भगवान बुद्ध ने प्रज्ञा को अपने धम्म के दो स्तंभो में से एक माना है, क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि 'मिथ्या-विश्वासों' के लिये कहीं कोई गुंजाईश बची रहे।
२३. करूणा क्या है? और करूणा किसलिये? करूणा का मतलब है (दया) प्रेम, (मैत्री)।इसके बिना न समाज जीवित रह सकता है और न समाज की उन्नति हो सकती है -- इसीलिये भगवान् बुद्ध ने करूणा को अपने धम्म का दूसरा स्तम्भ बनाया।
२४. भगवान् बुद्ध के 'धम्म' की यही परिभाषा है।
२५. 'मजहब (धर्म)' या 'रिलीजन' की परिभाषा से यह कितनी भिन्न है?
२६. कितनी प्राचीन और कितनी आधुनिक है यह भगवान् बुद्ध द्वारा दी गई 'धम्म की परिभाषा!
२७. कितनी अलौकिक और कितनी मौलिक!
२८. किसी से उधार नहीं ली गई।कितनी सच्ची!
२९. 'प्रज्ञा' और 'करूणा' का एक अलौकिक सम्मिश्रण ही तथागत का 'धम्म' है।
३०. 'मजहब' अथवा 'रिलीजन और 'धम्म में इतना अन्तर है!

३. 'मजहब (धर्म) का उद्देश्य और धम्म का उद्देश्य

१. 'मजहब' या 'रिलीजन' का उद्देश्य क्या है? धम्म का उद्देश्य क्या है? क्या वे दोनो एक ही समान है और एक ही हैं? अथवा वे दोनों दो हैं और भिन्न-भिन्न हैं?
२. इन प्रश्नों का उत्तर दो सूक्तों में है, एक जिसमें भगवान् बुद्ध और सुनक्कत्त की बातचीत का उल्लेख है –और दूसरा जिसमें भगवान् बुद्ध और पोट्ठपाद ब्राह्मण की बातचीत का वर्णन है।
३. तथागत एक बार मल्लों के नगर अनुपिय में विहार कर रहे थे।
४. उस समय पूर्वाह में तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र और चीवर ग्रहण किया और अनुपिय नगर में भिक्षाटन के लिये निकले।
५. रास्ते में उन्हें लगा कि कदाचित भिक्षाटन के लिये अभी थोड़ी देर रूकना चाहिये।इसलिये वह भग्गव परिव्राजक के आश्रम पर चले गये।
६. उन्हे आता देखकर भग्गव परिव्राजक उठ खड़ा हुआ, अभिवादन किया और बोला --" आप कृपया आसन ग्रहण करे।आपके लिये आसन सज्जित है।"

७. तब तथागत वहां विराजमान हुए । भग्गव परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया । इस प्रकार बैठकर भग्गव परिव्राजक ने भगवान् बुद्ध को कहा ।
८. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, हे श्रमण गौतम! सुनक्खत लिच्छवी मेरे पास आया था । कहता था कि अब मैने श्रमण गौतम का शिष्यत्व त्याग दिया है । क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है?"
९. "भग्गव! यह ऐसा ही है जैसा सुनक्कत लिच्छवी ने कहा ।"
१०. इसके आगे तथागत बोले--"कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा –'अब मैं तथागत के शिष्यत्व का त्याग करता हूँ । अब मैं तथागत का शिष्य नहीं रहूँगा ।' जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उससे पूछा! --"सुनक्खत्त! क्या मैंने तुझे कभी कहा था कि सुनक्खत! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह?"
११. "भगवान! नहीं, ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।"
१२. "अथवा तू ने ही मुझे कभी कहा था कि में तथागत को अपना गुरु स्वीकार करता हूँ ।"
१३. " भगवान! नहीं ।ऐसा मैंने कभी नहीं कहा ।"
१४. "तब मैने उससे पूछा" जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या मै हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है? मूर्ख कहीं के, क्या इसमें तेरा अपना ही दोष नही है?"
१५. सुनक्खत्त बोला "लेकिन भगवान्! आप मुझे सामान्य मनुष्यों को शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य (=चमत्कार) नही दिखाते ।"
१६. "सुनक्खत्त! क्या मैंने कभी आकर तुझे कहा था कि सुनक्खत तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखाऊंगा?"
१७. "भगवान! ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।"
१८. "अथवा सुनक्कत! तू ने ही का मुझे कभी कहा था कि मै भगवान् का 'शिष्यत्व' स्वीकार करता हूँ, क्योकि भगवान् मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई 'प्रातिहार्य' दिखायेंगे?"
१९. "भगवान! नहीं ।मैने ऐसा नहीं कहा था ।"
२०. "जब न मैने तुझे कहा और न तूने मुझे कहा तो क्या मै हू और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है? सुनक्खत! तू क्या सोचता है, चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे चमत्कार दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जाये, क्या मेरे धम्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धम्म के अनुसार आचरण करेगा वह अपने दु:ख का नाश कर सकेगा?"
२१. "भगवान! चाहे प्रातिहार्य दिखाई जाये और चाहे न दिखाई जाये निश्चय से तथागत की धम्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धम्म के अनुसार आचरण करेगा वह अपने दु:ख का नाश कर सकेगा ।"
२२. "सुनक्खत! जब धम्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि कोई प्रतिहार्य दिखाई जाय अथवा न दिखाई जाय, तो तेरे लिये ही प्रातिहार्य-प्रदर्शन का क्या मूल्य है? हे मूर्ख! अब तू देख कि इसमें तेरा अपना ही कितना कसूर है ।"
२३. "लेकिन भगवान्! आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का भी पता नही देते?"
२४. "अच्छा तो सुनक्खत! मैंने तुझे कब कहा था कि आ सुनक्खत्त, तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा ।"
२५. "भवगान ।आपने नहीं कहा था ।"
२६. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देंगे?"
२७. "भगवान्! मैंने नहीं कहा था ।"
२८. "जब न मैंने तुझे कहा और न तूने मुझे कहा तो क्या तो मै हूँ और क्या तू है जो, तू त्यागने की बात कर रहा है? सुनक्खत्त! तू क्या सोचता है चाहे मै सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊं और चाहे न बताऊं, क्या मेरे धम्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धम्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा?"
२९. "भगवान! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बताये, निश्चय से तथागत की धम्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धम्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दु:ख का नाश कर सकेगा ।"
३०. "सुनक्खत्त! जब धम्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय और चाहे न बताया जाय, तो तेरे लिये ही इसका क्या मूल्य है कि सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय?"
३१. इससे यह प्रकट होता है कि 'मजहब' (धर्म) या "रिलिजन" को तो सृष्टि के आरम्भ से सरोकार है, 'धम्म' का एकदम नहीं ।
(२)
'मजहब' अथवा 'रिलीजन' धम्म मे जो दूसरे फर्क हैं वे उस चर्चा के स्पष्ट हो जाते हैं जो भगवान् बूद्ध और पोट्ठपाद के बीच हुई थी ।
-

१. एक समय भगवान् बुद्धं अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे थे ।उस समय पोट्ठपाद परिव्राजक मल्लिका के महाप्रासाद में ठहरा हुआ था ।उसका उद्देश्य दार्शनिक चर्चा करना था ।

२. उसके साथ बहुत से अनुयायी परिव्राजक थे --कोई तीन सौ ।भगवान् बुद्ध और पोट्ठपाद के बीच बातचीत हुई ।पोट्ठपाद ने पूछा -

३. " भगवान! यदि यह ऐसा ही है, तो कम से कम, मुझे इतना तो बता दें कि क्या यही मत ठीक है कि 'संसार अनंत है' और शेष मत मृषा हैं?"

४. तथागत बोले --"पोट्ठपाद! मैंने यह कब कहा है कि यही मत ठीक है कि 'संसार अनंत है 'और सब मत मृषा हैं? मैंने इस विषय में कभी अपना मत व्यक्त ही नहीं किया है ।"

५. तब, इसी तरह से पोट्ठपाद ने इन सभी प्रश्नों को क्रमश: पूछा --

(क) क्या संसार अनंत नहीं है?

(ख) क्या संसार ससीम है?

(ग) क्या संसार असीम है?

(घ) क्या आत्मा और शरीर एक ही हैं?

(ङ) क्या आत्मा और शरीर भिन्न भिन्न हैं?

(च) क्या तथागत मरणानन्तर रहते हैं?

(छ) क्या तथागत मरणानन्तर नहीं रहते हैं?

(ज) क्या वे रहते भी है और नहीं भी रहते हैं?

६. और इस प्रकार के हर प्रश्न का तथागत ने एक ही उत्तर दिया ।

७. "पोट्ठपाद! इस विषय में भी मैने अपना मत कभी व्यक्त नहीं किया ।"

८. "लेकिन तथागत ने इन विषयो में अपना मत क्यों व्यक्त नही किया ?"

९. "क्योकि इन प्रश्नों का उत्तर देने से किसी को कुछ लाभ नहीं, इनका धम्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं इनसे आदमी को अपना आचरण सुधारने में कुछ भी सहायता नहीं मिलती, इनसे विराग नहीं बढ़ता, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति-लाभ नही होता, इनसे शान्ति नहीं मिलती, इनसे शमथ लाभ नहीं होता, इनसे विद्या प्राप्त नहीं होती, इनसे प्रज्ञा का लाभ नहीं होता और न ये निर्वाण की ओर अग्रेसर करते हैं ।इसीलीये मैंने इन विषयों पर अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है ।

१०. "तो तथागत ने किन विषयों का व्याख्यान किया है?"

११. "मैने बताया है कि दु:ख क्या है? मैने बताया है कि दु:ख का समुदय (= मूल कारण) क्या है? मैंने बताया है कि दु:ख का निरोध क्या है? मैने बताया है कि दु:ख के निरोध (=अन्त) का मार्ग क्या है ?"

१२. "और तथागत ने इन विषयों पर व्याख्यान क्यों दिया है ?"

१३. "क्योंकि पोट्ठपाद! इनसे लोगों को लाभ है, इनका धम्म से सम्बन्ध है, इनसे आदमी को अपना आचरण सुधारने में सहायता मिलती है, इनसे विराग बढ्ता है, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति मिलती है, इनसे शान्ति मिलती है, इनसे शमथ होता है, इनसे विद्या प्राप्त होती है, इनसे प्रज्ञा का लाभ होता है और ये निर्वाण की ओर अग्रेसर करते हैं ।इसीलिये पोट्ठपाद! मैंने इन विषयों का व्याख्यान किया है ।"

१४. इस संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मजहब' और 'रिलीजन' के लिये कौन से प्रश्न विचारणीय हैं, और 'धम्म' के लिये कौन से प्रश्न विचारणीय हैं ।दोनो का जमीन-आसमान का अन्तर है ।

१५. 'धम्म का उद्देश्य है संसार का पुनर्निर्माण करना ।

४. मजहब (धर्म) और नैतिकता

१. 'मजहब' या 'रिलीजन' में नैतिकता का स्थान क्या है?

२. सच्ची बात तो यही है कि नैतिकता का 'मजहब' या 'रिलीजन' में कोई स्थान ही नहीं ।

३. 'मजहब' (धर्म) या रिलीजन के अन्तर्गत आते है 'ईश्वर', 'आत्मा', 'प्रार्थनायें', 'पूजा', 'कर्म-काण्ड', 'रीति-रिवाज', 'यज्ञ', 'बलि-कर्म' ।

४. नैतिकता का सम्बन्ध वहीं आता है जहाँ एक आदमी का सम्बन्ध दूसरे से आरम्भ होता है ।

५. ‘मजहब’ या ‘रिलीजन’ में तो ‘नैतिकता बाहर से आने वाले हवा के एक झोंके की तरह हैं, ताकि व्यवस्था और शान्ति की स्थापना में उपयोगी सिद्ध हो ।
६. ‘मजहब’ या ‘रिलीजन एक त्रिकोण है ।
७. अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करो क्योंकि तुम दोनों एक ही पिता-परमात्मा के पुत्र हो ।
८. यही ‘मजहब’ या ‘रिलीजन’ का तर्क है ।
९. प्रत्येक ‘मजहब’ या ‘रिलीजन’ नैतिकता का उपदेश देता है, किन्तु नैतिकता ‘मजहब’ या ‘रिलीजन’ का मूलाधार नहीं हैं ।
१०. यह एक रेल के उस डिबे की तरह है जो यूं ही साथ जोड़ दिया गया है ।यह यथावसर साथ जोड़ भी दिया जाता है; और पृथक भी कर दिया जाता हैं ।
११. इसलिये ‘मजहब’ या ‘रिलीजन’ की क्रिया-परिपाटी में नैतिकता का स्थान आकस्मिक है और कभी कभी उसका भी प्रयोजन रहता है ।
१२. इसीलीये ‘मजहब’ या ‘रिलीजन में नैतिकता प्रभावोत्पादक नहीं हैं ।

५. धम्म और नैतिकता

१. धम्म में नैतिकता का स्थान क्या है?
२. सीधा सरल उत्तर है कि नैतिकता ही धम्म है और धम्म ही नैतिकता है ।
३. दूसरे शब्दों में यद्यपि धम्म में ‘ईश्वर’ के लिये कहीं कुछ स्थान नहीं है तो भी धम्म में ‘नैतिकता’ का वही स्थान है जो ‘मजहब’ या ‘रिलीजन’ में ‘ईश्वर’ का ।
४. धम्म में प्रार्थनाओं के लिये, तीर्थ-यात्राओं के लिये, कर्मकाण्डों के लिये, रिति-रिवाजों के लिये तथा बलि-कर्मो के लिये कोई जगह नहीं ।
५. नैतिकता ही धम्म का सार है ।नैतिकता नहीं, तो धम्म भी नहीं ।
६. धम्म में जो नैतिकता है उसका सीधा मूल-स्त्रोत आदमी को आदमी से मैत्री करने की जो आवश्यकता है, वही हैं ।
७. इसमें ईश्वर की मंजुरी की आवश्यकता नहीं ।ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये आदमी को नैतिक बनने की आवश्यकता नहीं । अपने भले के लिये ही आदमी के लिये यह आवश्यक है कि वह आदमी से मैत्री करे ।

६. केवल सदाचार भी पर्याप्त नहीं है. यह पवित्र और व्यापक होना चाहिये

१. कोई भी चीज या बात कब पवित्र बनती है? क्यों पवित्र बनती है?
२. हर मानव-समाज में - चाहे वह आदिम अवस्था में हो और चाहे वह उन्नत अवस्था में हो --कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते है जो ‘पवित्र’ माने जाते हैं और कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते है जो ‘पवित्रं नहीं माने जाते ।
३. जब कोई चीज या विश्वास ‘पवित्रता’ की सीमा में प्रवेश कर गया, इसका मतलब है कि उसके विरूद्ध आचरण नहीँ किया जा सकता ।ठीक बात तो यह है कि उसे स्पर्श ही नहीं किया जा सकता । ऐसा करना सर्वथा निषिद्ध हो जाता है ।
४. इससे भिन्न जो चीज या बात “पवित्र” नहीं मानी जाती, उसके विरुद्ध आचरण किया जा सकता है, अर्थात आदमी बिना किसी भय के अथवा आत्म-प्रताड़ना के उस विषय मे जैसा चाहे कर सकता है ।
५. ‘पवित्रं का मतलब है ‘धाम्मिकता’ लिये हुए ।इस प्रकार की चीज या बात के विरूद्ध जाने का मतलब है ‘मजहब’ की मर्यादा का उल्लंघन करना ।
६. किसी भी चीज को ‘पवित्र’ क्यो बनाया जाता है? अपने प्रश्न को विषय के भीतर रखने के लिये, पूछा जा सकता है कि नैतिकता को ‘पवित्र’ क्यों बनाया गया?
७. नैतिकता के पवित्र बनाये जाने में, लगता है कि तीन बातो का प्रभाव पडा है ।
८. पहली बात तो यह है कि जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से उसे सुरक्षित रहना चाहिये ।
९. इस प्रश्न की पृष्ठ-भूमी का सम्बन्ध है उस बात से जिसे हम ‘जीवन-संघर्ष’ और उसमे ‘योग्यतम’ का जीवित बने रहना कहते हें ।

१०. यह प्रश्न 'विकास-वाद के सिद्धान्त' से सम्बन्धित है | सब कोई जानता है कि मानव-समाज में जो विकास हुआ है वह 'जीवन-संघर्ष' के कारण हुआ है, क्योंकि आरम्भिक युग में भोजन-सामग्री बड़ी सीमित मात्रा में प्राप्त थी |
११. भयानक संघर्ष रहा है |प्रकृति के पंजे और दाँत रक्त-रंजित रहे हैं |
१२. ऐसे 'जीवन-संघर्ष' में जो भयानक और रक्त-रंजित होता हे केवल 'योग्यतम' ही बचा रहता है |
१३. समाज की मूल अवस्था ऐसी ही रही है |
१४. बहुत प्राचीन काल में किसी न किसी ने यह प्रश्न अवश्य उठाया होगा कि क्या योग्यतम (सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न) ही श्रेष्ठतम भी माना जाना चाहिये? क्या जो निर्बलतम है, उसे भी संरक्षण देकर यदि बचाया जाय तो क्या यह आगे चलकर समाज के हित की दृष्टि से अच्छा सिद्ध न होगा?
१५. लगता है कि उस समय के समाज की जो स्थिति थी, उस समय उसने एक स्वीकारात्मक उत्तर अवश्य दिया होगा |
१६. तब प्रश्न पैदा होता है कि कमजोरों के सरक्षण का क्या उपाय है?
१७. जो योग्यतम (सबसे अधिक शक्तिशाली) हो उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने से कम और किसी भी तरह काम चल ही सकता था |
१८. इसी स्थिति में नैतिकता का मूल और आवश्यकता छिपी हुई है |
१९. इस नैतिकता के लिये 'पवित्र' बनाया जाना आवश्यक था, क्योकि पहले पहले ये पाबन्दियाँ (= प्रतिबन्ध) योग्यतम (= सर्वाधिक शक्तिशाली) व्यक्तियों पर ही लगायी गई थीं |
२०. इसके बड़े गम्भीर परिणाम हो सकते थे |
२१. पहला प्रश्न तो यही पैदा होता है कि नैतिकता जब सामाजिक रूप ग्रहण करती है 'तब कहीं यह असामाजिक (= सामाजिक हितों की विरोधिनी) तो नहीं हो जाती है?
२२. ऐसा नहीं है कि चोरों में अपनी कुछ 'नैतिकता' ही न हो |व्यापारियों में भी नैतिकता होती ही है |एक जातिवालों में भीतरी नेतिकता रहती ही है और डाकुओं के झुण्ड में भी अपनी भीतरी नैतिकता रहती ही है |
२३. लेकिन यह नैतिकता पार्थक्य की भावना लिये हुए है, इस नैतिकता में दूसरों के बहिष्कार की भावना निहित है |यह नैतिकता दल-विशेष के स्वार्थों का संरक्षण करने के लिये है |इसलिये यह नैतिकता समाज-हित-विरोधिनी है |
२४. यह इस प्रकार की नैतिकता की पार्थक्य और अपने में ही सीमित रहने की भावना ही है 'जिससे इसकी समाज-हित-विरोधिनी प्रवृत्ति को क्रियाशील होने का अवसर मिलता है |
२५. यही बात उस समय लागु होती है जब कोई भी एक दल अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिये नैतिकता का आश्रय लेता है |
२६. समाज की इस दल-बन्दी का असर बडी दूर तक पहुचता है |
२७. यदि समाज में इस प्राकर के अ-सामाजिक दल बने रहेगे, तो समाज हमेशा असंगठित रहेगा और टुकडे-टुकड़े रहेगा |
२८. एक असंगठित और टुकडे-टुकड़े समाज का सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह कई तरह के जीवन-मापों और आदर्शों को जन्म दे देता है |
२९. जब तक लोगों के जीवन के माप-दण्ड समान न हो, और जब तक लोगों के जीवन-आदर्श समान न हों तब तक समाज परस्पर मिल-जुलकर रहने वाला समाज बन ही नहीं सकता |
३०. जब इतने तरह के जीवन के मापदण्ड रहेंगे और इतनी तरह के जीवन आदर्श रहेंगे तो व्यक्ति के लिये मन का अविरोधी-भाव बनाये रखना असम्भव है |
३१. बुद्धिपूर्वक विचार करने से किसी की जनसंख्या आदि की दृष्टि से जो और जितना जिसका अधिकार होना चाहिये वह न होकर यदि किसी समाज के एक हिस्से की किसी दूसरे हिस्से पर अनुचित प्रधानता बनी रहेगी तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम परस्पर का कलह होगा |
३२. कलह को रोकने का एक ही उपाय है कि सभी के लिये नैतिकता के समान नियम हो, और सभी उन्हें पवित्र मानें |
३३. एक तीसरा कारण भी है जिसके कारण नैतिकता पवित्र मानी जानी चाहिये और इसको सर्वमान्य होना चाहिये; व्यक्ति की उन्नति के संरक्षण के हित में |
३४. जहाँ 'जीवन-संघर्ष' है अथवा जहाँ वर्ग-विशेष का शासन है, वहाँ व्यक्ति का हित सुरक्षित नहीं है |
३५. दलबन्दी व्यक्ति को चित्त की वह अविरोधी-भावना प्राप्त करने ही नहीं देती जो तभी सम्भव है जब समाज में समान 'जीवन-माप' हों और समान 'जीवन-आदर्श 'हों |व्यक्ति के विचार बहक जाते हैं और वह एकता देख ही नही सकता |
३६. दूसरे, दलबन्दी में पक्षपात रहता है और न्याय की आशा नहीं रहती |

३७. दलबन्दी से वर्ग जडीभूत हो जाते हैं मालिक हमेशा मालिक बने रहते हैं, गुलाम हमेशा गुलाम बने रहते हैं। मालिक हमेशा मालिक बने रहते हैं, मजदूर हमेशा मजदूर बने रहते हैं। विशिष्ट अधिकारी हमेशा विशिष्ट अधिकारी ही रहते हैं और गुलाम हमेशा गुलाम ही रहते हैं।

३८. इसका मतलब हैं कि कुछ लोगों के लिये तो स्वतन्त्रता हो सकती है, किन्तु सभी के लिये नहीं। इसका मतलब हुआ कि चन्द लोगों के लिये समानता हो सकती है, किन्तु अधिकांश के लिए नहीं हो सकती।

३९. इसका इलाज क्या है? एक ही इलाज है कि भ्रातृ-भावना को सर्वमान्य और प्रभावशाली बनाया जाय।

४०. भ्रातृ-भाव क्या है? आदमी हर आदमी को अपना भाई समझे -- यही नैतिकता है।

४१. इसीलीये भगवान् बुद्ध ने कहा कि धम्म नैतिकता है और जिस प्रकार धम्म पवित्र है; उसी प्रकार नैतिकता भी पवित्र है।

दुसरा भाग : किस प्रकार शाब्दिक समानता तात्विक भेद को छिपाये रखती है

विभाग -१- पुनर्जन्म

१. प्रास्ताविक

१. यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि मरने के बाद क्या होता है?

२. बुद्ध के समकालीन आचार्यों के दो भिन्न तरह के मत थे ।एक वर्ग 'आत्मवादी' या 'शाश्वतवादी' कहलाता था, दूसरा कहलाता था 'उच्छेदवादी' ।

३. जो 'शाश्वतवादी' था, उसका कहना था कि 'आत्मा' का मरण होता ही नहीं; इसलिये जीवन शाश्वत है ।पुनर्जन्म द्वारा इसका नवीकरण होता रहता है ।

४. उच्छेदवादियो का मत इस एक शब्द 'उच्छेदवाद' से ही स्पष्ट हो जाता था ।'उच्छेदवाद का मतलब है हर वस्तु का सर्म विनाश ।मृत्यु के बाद कुछ भी शेष नहीं ।

५. भगवान बुद्ध 'शाश्वतवादी' नहीं थे, क्योकि इसका मतलब था कि एक पृथक नित्य 'आत्मा' में विश्वास करना, जिसके वे विरोधी थे ।

६. तो क्या तथागत उच्छेदवादी थे? जब वे 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, तो स्वाभाविक तौर पर उन्हें 'उच्छेदवादी' मानने की प्रवृत्ति हो सकती है ।

७. लेकिन अलगद्दूपम सुत्तन्त में भगवान् बुद्ध ने शिकायत की है कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं हैं, किन्तु उन्हें 'उच्छेदवादी' समझा जाता है ।

८. उन्होंने कहा है --"यद्यपि मैं इस मत को प्रस्थापित करता हूँ, और इसी की देशना करता हूँ, तो भी कुछ श्रमण-ब्राह्मण भूल से, गलती से मुझ पर झूठा इलजाम लगाते हैं जो कि वास्तविकता के विराद्ध है कि मैं उच्छेदवाद कि देशना करता हूं कि मैं आदमियों के टुकड़े-टुकड़े हो जाने की, नाश की संपुर्ण विनाश कि देशना करता हूं ।

९. "यह ऐसा मत है जो कि मेरा मत नहीं है, जिस मत का मैं " समर्थन नहीं करता, जो कि भूल से गलती से और झूठी तौर पर ऐसे भले लोगों द्वारा मेरे सिर मढा जाता है जो मुझे उच्छेदवादी" बनाना चाहते है" ।

१०. यदि यह कथन यथार्थ है और ऐसे लोगों द्वारा जो बौद्धधम्म को ब्राह्मणी रंग मे रंग देना चाहते थे, प्रक्षिप्त नहीं है, तो इस कथन से मन में एक गम्भीर दुविधा पैदा हो जाती है ।

११. यह कैसे हो सकता है कि भगवान् बुद्ध 'आत्मा को भी नहीं माने और तब भी कहें कि मैं 'उच्छेदवादी' नहीं हूँ?

१२. इससे प्रश्न पैदा होता है कि क्या भगवान 'पुनर्जन्म मानते थे?

२. पुनर्जन्म किस (चीज) का?

१. क्या भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म मानते थे?

२. उत्तर "हां" में है ।

३. यह अच्छा है कि इस प्रश्न को दो हिस्सों में बाँट लिया जाय: १) किस चीज का जन्म? और २) किस व्यक्ति का जन्म?

४. यह अच्छा है कि इन दोनो प्रश्नों को एक एक करके लिया जाय ।

५. पहले हम पहले प्रश्न को हीं लें, पुनर्जन्म किस चीज का?

६. प्रायः हमेशा इस प्रश्न की उपेक्षा की जाती है ।यह दोनों प्रश्नों को एक बना देने का ही परिणाम है कि पुनर्जन्म की बात को लेकर इतनी गड़बड़ी है ।

७. भगवान् बुद्ध के अनुसार चार भौतिक पदार्थ है, चार महाभूत हैं जिनसे शरीर बना है --१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, ४) वायु ।

८. प्रश्न है कि जब शरीर का मरण होता है तो इन चारों महाभूतों का-क्या होता है? क्या वे भी शरीर के साथ मर जाते है? कुछ लोगों का कहना है कि वे भी मर जाते है ।

९. भगवान् बुद्ध ने कहा कि "नही" ।आकाश में जो समान भौतिक पदार्थ सामुहिक रूप से विद्यमान हैं, वे उनमें मिल जाते है ।

१०. इस विद्यमान (= तैरती हुई) राशि में से जब इन चारो महाभूतों का पुनर्मिलन होता है, तो पुनर्जन्म होता है ।

११. भगवान् बुद्ध का पुनर्जन्म से यही अभिप्राय था ।
१२. इन भौतिक पदार्थो के लिये यही आवश्यक नहीं है कि वे उसी शरीर के हों जिसका मरण हो चुका है, वे नाना 'मृत-शरीरों के भौतिक अंश हो सकते हैं ।
१३. यही बात ध्यान देने की है कि शरीर का मरण होता है लेकिन भौतिक पदार्थ बने रहते हैं ।
१४. भगवान् बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे ।
१५. सारिपुत्र ने महाकोट्ठित के साथ जो बातचीत की उसमें इस विषय पर बहुत प्रकाश पड़ा है ।
१६ लिखा है कि एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में गये थे, तो महाकोट्ठित ध्यान कर चुकने पर सारिपुत्र के पास गये और उनसे कुछ ऐसे प्रश्नों को स्पष्ट कर देने की प्रार्थना की जो उन्हें हैरान कर रहे थे ।
१७. उन प्रश्नों में एक यह था :-
१८. "प्रथम-ध्यान की प्राप्ति होने पर कितने संयोजनों का प्रहाण होता है और प्रथम-ध्यान में कौन-कौन से अंग शेष रहते हैं?"
१९. सारिपुत्र का उत्तर था -"दोनों के पाँच पाँच । कामछन्द, व्यापाद, थीनमिद्ध (? आलस्य), उद्धच्च-कौकृय तथा विचिकित्सा का प्रहाण हो जाता है ।वितर्क, विचार, प्रीति, सुख तथा एकाग्रता शेष रहते हैं ।"
२०. महाकोट्ठित --"चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह और स्पर्श -- इन पांचों इन्द्रियों को लें । प्रत्येक का विषय पृथक् है, क्षेत्र पृथक् है; प्रत्येक एक दूसरी इन्द्रिय से पृथक् पृथक् है और स्पष्ट रूप से पृथक् है ।इनका अन्तीम आधार क्या है? कौन है जो पांचों इन्द्रियों के विषयों और क्षेत्रों का उपभोग करता है ?"
२१. सारिपुत्र -"मन ।"
२२. महाकोट्ठित -"ये पांचों इन्द्रियाँ किस पर निर्भर करती है ?"
२३ सारिपुत्र -"चेतना (न् जीवित इन्द्रिय) पर ।
२४. महाकोट्ठित - चेतना किस पर निर्भर करती है ?"
२५. सारिपुत्र –"उष्णता पर ।"
२६. महाकोट्ठित -"उष्णता किस पर निर्भर करती है?"
२७. सारिपुत्र -"चेतना पर ।"
२८. महाकोट्ठित -"आप कहते हैं कि चेतना उष्णता पर निर्भर करती है और उष्णता चेतना पर निर्भर करती है ।इसका ठीक-ठीक क्या अर्थ समझा जाय?"
२९. सारिपुत्र "एक उदाहरण द्वारा समझाता है' । जैसे प्रदीप के प्रकाश से प्रदीप की लौ प्रकट होती है और प्रदीप की लौ से प्रदीप का प्रकाश प्रकट होता है, उसी प्रकार चेतना उष्णता पर निर्भर करती है, और उष्णता चेतना पर निर्भर करती है ।"
३०. महाकोट्ठिति -"ऐसी कितनी चीजें हैं जिनसे मुक्त होने पर ही शरीर मरा हुआ समझा जाकर सूखे काठ की तरह फेक दिया जाता है ?"
३१. सारिपुत्र -"जीवित-इन्द्रिय, उष्णता और विज्ञान ।"
३२. महाकोट्ठित-- मृत देह में और उस ध्यानी भिखु में जिसने संज्ञा और वेदना का निरोध कर रखा है, क्या अन्तर है?"
३३. सारिपुत्र -– "मृत देह में न केवल शरीर, वाणी और मन की क्रिया शान्त हो जाती है, बल्कि चेतना (= जीवित-इन्द्रिय) भी नहीं रहती, उष्णता भी नहीं रहती तथा इन्द्रियों का भी मूलोच्छेद हो जाता है; जबकि ध्यानी भिक्षु की चेतना बनी रहती है, उष्णता बनी रहती है तथा इन्द्रियां भी बनी रहती है; ही श्वास-प्रश्वास बंद हो जाता है, इन्द्रियों की वितर्क-विचार, संज्ञा आणि क्रियाएँ शान्त हो जाती है ।"
३४. सम्भवतः यह मृत्यु या उच्छेद की सर्वाधिक श्रेष्ठ तथा सर्वाधिक संपुर्ण व्याख्या है ।
३५. इस संवाद में केवल एक कड़ी की कमी है । महाकोट्ठित को चाहिये था कि वह सारिपुत्र से यह भी पूछते कि 'उष्णता से क्या मतलब है?
३६. सारिपुत्र ने क्या उत्तर दिया होता, इसकी कल्पना आसान नहीं लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि 'उष्णता का मतलब है 'शक्ति' ।
३७. इस तरह से यदि उत्तर को थोड़ा अधिक स्पष्ट कर दिया जाय तो इस प्रश्न का कि मरने पर क्या होता है, यही उत्तर हो सकता है कि शरीर शक्ति उत्पत्र करना बन्द कर देता है ।
३८. लेकिन, यह तो केवल उत्तर का एक हिस्सा ही है । क्योंकि मृत्यु का एक मतलब यह भी है कि शरीर में से जो शक्ति निकल कर गई है, वह उस सारे शक्ति समूह के साथ मिलकर एक हो गई जो विश्व में सचार कर रहा है ।

३९. इसलिये मृत्यु के दो अर्थ हैं ।एक और तो इस का अर्थ है कि नई शक्ति की उत्पत्ति रूक जाना, दूसरी ओर इसका अर्थ है कि विश्व में जो शक्ति-पुंज संचरण कर रहा है उसमें कुछ वृद्धि हो जाना ।
४०. सम्भवतः मृत्यु के इन दोनों बुद्ध ने पहलुओ के ही कारण भगवान् कहा कि वे 'उच्छेदवादी नहीं थे ।जहाँ तक 'आत्मा' की बात है, वे उच्छेदवादी थे ।किन्तु जहाँ (नाम-) रूप की बात है वे उच्छेदवादी नहीं थे ।
४१. इस व्याख्या को स्वीकार कर लेने पर यह समझना कठिन नहीं है कि भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं है । वे (नाम-) रूप की पुनरात्पत्ति में विश्वास रखते थे, 'आत्मा' के पुनर्जन्म में नहीं ।
४२. इस प्रकार व्याख्यत होने पर भगवान् बुद्ध का मत वर्तमान विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है ।
४३. केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे ।
४४. शक्ति कभी 'शुन्य' में परिणित नहीं होती ।विज्ञान का यह पक्का सिद्धान्त है । यदि 'मृत्यु' का यह अर्थ किया जाय कि के मृत्यु अनन्तर कुछ नहीं रहता, तो यह बात विज्ञान के विराद्ध होगी ।क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि सामुहिक रुप से शक्ति में सातत्य नही हैं ।
४५. यही एक ऐसा तरीका है जिससे पुनर्जन्म समबन्धी दुविधा का अंत हो सकता है ।

३ पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?

१. सबसे कठिन प्रश्न है पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?
२. क्या वही मरा हुआ आदमी एक नया जन्म ग्रहण करता है?
३. क्या भगवान बुद्ध इस सिद्धान्त को मानते थे?
उत्तर है "इसकी कम से कम सम्भावना है ।"
४. यदि मृत आदमी के देह के सभी भौतिक-अंश पुनः नये सिरे से मिलकर एक नये शरीर का निर्माण कर सकें, तभी यह मानना सम्भव है कि उसी आदमी का पुनर्जन्म हुआ ।
५. यदि भिन्न भिन्न मृत शरीरों के अंशो के मेल से एक नया शरीर बना तो यह पुनर्जन्म तो हुआ, लेकिन यह उसी आदमी का पुनर्जन्म नहीं हुआ ।
६. भिक्षुणी खेमा ने राजा प्रसेनजित् को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी ।
७. एक बार तथागत श्रावस्ती के पास अनाथपिण्डक के जेतवनाराम विहार में ठहरे हुए थे ।
८. अब उस समय कोशल जनपद में चारिका कर चुकने के बाद भिक्षुणी खेमा श्रावस्ती और साकेत के बीच तोरणवत्यु नाम स्थल पर ठहरी हुई थी ।
९. उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् साकेत से श्रावस्ती आ रहा था । साकेत और श्रावस्ती के रास्ते में वह एक रात के लिये तोरणवत्यु में रूका ।
१०. कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् ने एक आदमी को बुलाकर कहा – "अरे भले आदमी! किसी श्रमण-ब्राह्मण का पता लगा जिसकी हम आज दिन संगति कर सके ।
११. "महाराज! बहुत अच्छा" उस आदमी ने कहा ।वह सारी तोरणवत्थु में घूमा किन्तु उसे एक भी रमण-ब्राह्मण ऐसा नहीं मिला, जिसकी महाराज संगति कर सके ।
१२. तब उस आदमी ने भिक्षुणी खेमा को देखा, जो तोरणवत्थु में ठहरी हुई थी । उसे देखकर वह कोशल- नरेश प्रसेनजित् के पास वापस गया और बोला--
१३. "महाराज! तोरणवत्थु मेँ कोई ऐसा रमण-ब्राह्मण नहीं है जिसकी आप संगति कर सके, । लेकिन महाराज! भिक्षुणी खेमा नाम की तथागत की एक शिष्या है । उसकी ख्याति सुनी है कि वह अर्हत है, योग्य है, कुशल है, पण्डित है, बात-चीत में पटु है और प्रत्युत्पन्न-मति है । महाराज!. आज दिन आप उसकी संगति करें।"
१४. तब कोशल-नरेश राजा प्रसेनजित् भिक्षुणी खेमा के पास गया।पास जाकर अभिवादन किया और एक और बैठ गया।बैठकर उसने भिक्षुणी खेमा से कहा -
१५. "आपका इस विषय में क्या कहना है? क्या तथागत मरणान्तर रहते है?"
१६. "महाराज! यह बात भी तथागत द्वारा अव्याकृत ही है ।"

१७. “तो यह कैसी बात है कि जब मै पूछता हूं कि क्या तथागत मरणान्तर रहते हैं, तो आपका उत्तर होता है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है, और जब मै दूसरे प्रश्न पूछता हू तब भी आपका यही उत्तर होता है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है । कृपया, यह बतायें कि, क्या कारण है कि तथागत ने यह बात अव्याकृत रखी है ?”

१८. “महाराज! अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछती हूँ । जैसा आपको लगे, वैसा उत्तर देना । अब आप क्या कहते है? क्या आपके पास कोई गणक, कोई हिसाब लगाकर बता सकने वाला है जो हिसाब लगाकर बता सके कि गंगा मे इतने सौ, इतने हजार वा इतने लाख बालू के कण है ?”

१९. “नही।”

२०. “तो कोई ऐसा गणक है, जो ऐसा हिसाब लगाकर बता सकने वाला है जो यह बता सके कि समुद्र में इतना जल है, इतने सौ (गैलन) है, इतने हजार (गैलन) है या इतने लाख (गैलन) है ?”

२१. “नही ।”

२२. “तो यह कैसे है ?”

२३. “समुद्र असीम है , बहुत गहरा है, इसके तल तक नहीं पहुंचा जा सकता”।

२४. “इसी प्रकार महाराज! यदि कोई तथागत के रूप से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत का वह रूप परित्यक्त है. वह जडमूल से कट चुका है, वह कटे ताड-वृक्ष की तरह हो गया है वह अभाव-प्राप्त हो गया है और अब उसकी पुनरुत्पत्ति की सम्भावना नहीं रही है । महाराज! तथगात के रूप से तथागत की तह तक नहीं पहुंचा जा सकता । तथागत गम्भीर हैं, तथागत असीम है और तथागत की तह तक नहीं पहुचा जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र की।इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत मरणान्तर रहते हैं।’ यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत मरणान्तर नहीं रहते है।’ यह भी नही कहा जा सकता कि ‘तथागत रहते भी है और नहीं भी रहते’ और यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत नहीं रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं।

२५. “इसी प्रकार महाराज! यदि कोई तथागत की वेदना से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत की वह वेदना परित्यक्त है, वह जडमूल से कट चुकी है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गयी है..... सम्भावना नहीं रही है ।महाराज तथागत की वेदना से तथागत की तह तक नहीं.... जैसे समुद्र की । इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत मरणान्तर रहते हैं... नहीं नहीं भी रहते हैं ।’

२६. “इसी प्रकार महाराज । यदि कोई तथागत की संज्ञा से, तथागत के संस्कारों से, तथागत के विज्ञान से तथागत को मापना चाहे, तो तथागत का वह विज्ञान परित्यक्त है, वह जडमूल से कट चुका है, वह काटे ताड-वृक्ष की तरह हो गया है.... सम्भावना नहीं रही है । महाराज! तथागत के विज्ञान से तथागत की तह तक नहीं... जेसे समुद्र की ।इसलिये यह भी नहीं कहा जा सकता कि ‘तथागत मरणान्तर रहते हैं... नहीं नहीं भी रहते है ।”

२७. तब राजा प्रसेनजित् भिक्षुणी खेमा के शब्दों से प्रसत्र हुआ, आनंदित हुआ । वह अपने स्थान से उठा, उसे अभिवादन किया और चला गया ।

२८. अब एक और अवसर पर राजा प्रसेनजित तथागत के दर्शनार्थ गया ।पास पहुंच कर अभिवादन किया और एक और बैठ गया । उसने तथागत से निवदेन किया-

२९. “भगवान! कृपया बतायें कि क्या तथागत मरणान्तर रहते हैं?”

३०. “महाराज! मैने इस बात को अव्यक्त रखा है ।”

३१. “भगवान! तो क्या तथागत मरणान्तर नहीं रहते हैं?”

३२. “महाराज! यह भी मैने अव्यक्त रखा है ।”

३३. तब राजा ने ऐसे ही दूसरे प्रश्न पूछे और सभी का ऐसा ही उत्तर मिला ।

३४. “भवगान् ।यह कैसे है जब मैं पूछता हू कि क्या तथागत मरणान्तर रहते है, तो आपका उत्तर होता है कि यह बात तथागत द्वारा अव्याकृत हैं; और जब मैं यह पूछता कि क्या तथागत मरणान्तर नहीं रहते तो भी आपका उत्तर है कि यह बात तथागत द्वारा अव्याकृत है । भगवान्! कृपया यह बतायें कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि यह बात भी तथागत ने अव्याकृत रखी है?”

३५. “तो महाराज! ये आपसे प्रश्न पूछता हू, जैसा आपको ठीक लगे वैसा उत्तर देना ।क्या आपके पास कोई गणक है.... (सारा पूर्ववत)?”

३६. “अदभूत है गौतम! अद्भूत है सुगत! यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्ता और श्राविका के उत्तर में न अर्थ की दृष्टि से और न व्यंजन की दृष्टि से, कहीं कुछ भी अन्तर नहीं । एकदम समान उत्तर है, एकदम मेल खाता हुआ उत्तर है, उच्चतम बात के बारे में!

३७. "भगवान! एक समय मै भिक्षुणी खेमा के पास गया और उससे यही प्रश्न पूछा । उसने मुझे ठीक इन्हीं शब्दो मे, ठीक इन्ही अक्षरों में उत्तर दिया । अद्भुत है गौतम! अद्भुत है सुगत! यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि शास्ता और श्राविका के उत्तरमें न अर्थ की दृष्टि से और न व्यंजन की दृष्टि से कहीं कुछ भी अन्तर नहीं । एकदम समान उत्तर है, एकदम मेल खाता हुआ उत्तर है, उच्चतम बात के बारे में ।

३८. "अच्छा! भगवान! अब आज्ञा दें । हम जाना चाहते हैं । हमें बहुत कार्य हैं ।"

३१. "महाराज! इस समय आप जो करना उचित समझें वह करें ।"

४०. तब कोसल-नरेश राजा प्रसेनजित् तथागत के वचनों से प्रसन्न हुआ, आल्हादित हुआ ।वह अपने स्थान से उठा और तथागत को अभिवादन कर चला गया ।

विभाग २-कर्म

१. क्या 'बुद्ध' का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान ही है?

१. बुद्धधम्म का कोई भी दूसरा ऐसा सिद्धान्त नही है जिसने इतनी 'गलत फहमी' पैदा की हो, जितनी इस 'कर्म' के सिद्धान्त ने ।

२. बुद्ध धम्म में 'कर्म' का क्या स्थान है और क्या वास्तविक महत्व है?

३. अज्ञ हिन्दू बेसमझी के ही कारण केवल शब्दों की समानता की और देखकर कहते हैं कि ब्राह्मणवाद वा हिन्दु-धर्म तथा बौद्धधम्म एक ही हैं ।

४. ब्राह्मणो का पढ़ा- लिखा और कट्टर वर्ग भी यही कहता है । वह अज्ञ जनता को गलत रास्ते पर ले चलने के लिये जान-बुझकर कहता हैं ।

५. पढ़े-लिखे ब्राह्मण भली प्रकार जानते हैं कि बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धान्त ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है । लेकिन तब भी वे यही कहे जाते हें कि बुद्ध-धम्म वही है जो ब्राह्मणवाद या हिन्दु-धम्म है ।

६. शब्दों की समानता के कारण उनको अपना झूठा तथा दुष्ट प्रचार करने में आसानी हो जाती है ।

७. इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्थिति की पूर्ण परीक्षा की जाय ।

८. भगवान् बुद्ध का 'कर्म' का सिद्धान्त -- शाब्दिक समानता कितनी ही हो अपने अर्थ में ब्राह्मणी 'कर्म' के सिद्धान्त के समान हो ही नहीं सकता ।

९. दोनों की मूल स्थापनायें एक दूसरे से परस्पर इतनी अधिक भिन्न है कि परिणाम एक हो ही नहीं सकता । दोनों के दो भिन्न परिणाम होने ही चाहिये ।

१०. सुविधा के लिये हिंदु 'कर्म' की मान्यताओं को क्रमशः इस प्रकार गिना जा सकता है :-

११. हिन्दु 'कर्म' का सिद्धान्त 'आत्मा' की मान्यता पर निर्भर करता है । बौद्ध नहीं । क्योंकि बौद्ध धम्म में तो 'आत्मा' है ही नहीं ।

१२. ब्राह्मणी 'कर्म' का सिद्धान्त वंशानुगत है ।

१३. यह एक जन्म से दूसरे जन्म तक चलता रहता है । यह इसलिये क्योंकि 'आत्मा' का संसरण होता है ।

१४. 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त के बारे में यह भी बात सत्य नहीं है ।यह भी इसीलिये कि बौद्ध धम्म में 'आत्मा' नहीं है ।

१५. 'कर्म' का हिन्दु-सिद्धान्त शरीर से पृथक एक 'आत्मा' पर आधारित है । शरीर मरता है, तो 'आत्मा' उसके साथ नहीं मरता ।'आत्मा' फुरे से उड़ जाता है ।

१६. 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त के बारे में यह बात भी सच नहीं हैं ।

१७. 'कर्म' के हिन्दु-सिद्धान्त के अनुसार जब आदमी कोई कर्म करता है तो उसके 'कर्म' के दो परिणाम होते हैं । एक तो उस 'कर्म' से वह करने वाला प्रभावित होता है, दूसरे उस 'कर्म' का उसके 'आत्मा' पर प्रभाव पड़ता है ।

१८. वह जो भी 'कर्म' करता है, उसके 'आत्मा' पर उसका प्रभाव पड़ता ही है ।

१९. जब आदमी मरता है, और जब 'आत्मा' उसका शरीर छोड़ कर निकल भागती है (या निकल भागता है) तो 'आत्मा' उन संस्कारों से संस्कृत रहता है, ।

२०. यह संस्कार ही है जो उसके भावी जन्म और स्थिति का निर्णय करते हैं ।

२१. हिन्दु 'आत्मवाद' का बौद्ध 'अनात्मवाद' से कुछ भी मेल नहीं ।

२२. इन कारणों से 'कर्म' का बौद्ध - सिद्धान्त और 'कर्म' का हिन्दु- सिद्धान्त न एक है और न एक हो सकता है ।

२३. इसलिये 'कर्म' के बौद्ध-सिद्धान्त और 'कर्म के ब्राह्मणी-सिद्धान्त को एक ही बताना महज मूर्खता है ।
२४. अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इस शाब्दिक माया- जाल से सावधान रहना चाहिये ।

२. क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व-कर्म का भविष्य-जन्म पर प्रभाव पड़ता है?

१. भगवान् बुद्ध ने 'कर्म' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था । सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा था : "जैसा, बोओगे, वैसा काटोगे ।"
२. उन्होंने 'कर्म' के सिद्धान्त पर इतना अधिक जोर दिया है कि उनका कहना था कि यदि 'कर्म' के सिद्धान्त को दृढ़ता पूर्वक न माना जाय तो नैतिक-अनुशासन निभ ही नही सकता ।
३. बुद्ध के 'कर्म' के सिद्धान्त का सम्बन्ध मात्र 'कर्म' से था और वह भी वर्तमान जन्म के 'कर्म' से ।
४. तो 'कर्म' का एक वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त भी है ।इसके अनुसार 'कर्म' का मतलब है पूर्वजन्म का 'कर्म' अथवा पूर्व-जन्मों के 'कर्म' ।
५. यदि आदमी का जन्म गरीब परिवार में हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्म का परिणाम है । यदि एक आदमी धनी घर में पैदा हुआ है तो यह उसके पूर्वजन्म के अच्छे कर्मो का परिणाम है ।
६. यदि किसी में कोई जन्म-जात दोष है तो इसका कारण उसके पूर्वजन्म का बुरा कर्म हैं ।
७. यह एक बड़ा ही खतरनाक सिद्धान्त है । क्योकि यदि 'कर्म' की यह व्याख्या स्वीकार कर ली जाय तो मानव-प्रयास के लिये कहीं कुछ गुंजायश नहीं रह जाती । पूर्वजन्म के कर्म से ही सभी कुछ पूर्व-निश्रित रहता है ।
८. यह वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त भी बहुधा भगवान् बुद्ध के सिर मढ दिया गया है ।
९. क्या भगवान् बुद्ध ऐसे सिद्धान्त को मानते थे?
१०. इस वृद्धि-प्राप्त सिद्धान्त की भली प्रकार परीक्षा करने के लिये, जिसे भाषा में इसका प्रायः उल्लेख किया जाता है, उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना होगा ।
११. यह कहने की बजाय कि पूर्वजन्म के 'कर्म' का संसरण होता है, हम यह कहें कि पूर्वजन्म का 'कर्म' वंश-परम्परा से प्राप्त होता है ।
१२. इस भाषा के परिवर्तन से हम 'वंशपरम्परा' के कानून के अनुसार इसकी परीक्षा कर सकते हैं । ऐसा करने से न इसके कानूनी अर्थ में ही कोई अन्तर आता है और न वास्तविक अर्थ में ।
१३. इस भाषा के परिवर्तन से दो ऐसे प्रश्न है जो आसानी से पूछे जा सकते है और जो कदाचित् अन्यथा न पूछे जा सकते और जिनका बिना उत्तर दिये बात स्पष्ट नहीं होती ।
१४. पहला प्रश्न यह है कि पूर्वजन्म का कर्म वंशानुगत-क्रम से कैसे प्राप्त होता है? उसकी क्या विधि है?
१५. दूसरा प्रश्न है किं वंशानुगत-क्रम के हिसाब से पूर्व-जन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है? क्या यह वंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई 'गुण है, अथवा स्वयं अर्जित किया हुआ कोई 'गुण है?
१६. वंशानुगत क्रम के हिसाब से हमें अपने माता-पिता से क्या प्राप्त होता है?
१७. विज्ञान के अनुसार सोचें तो नये प्राणी का आरम्भ उस समय से होता है जब वीर्य और रज का संयोग होता है । प्राणी की उत्पत्ति तभी होती है जब वीर्य-कण रज-कण में प्रवेश करता है ।
१८. हर मानव का आरंभ तभी होता है जब दो जीवित कण मिलकर एक होते हैं -- माता का रज-कण और पिता का वीर्य-कण ।
१९. इस विषय की चर्चा करने के लिये जो यक्ष, भगवान् बुद्ध के पास आया था, उसे भगवान् बुद्ध ने कहा था कि आदमी की उत्पत्ति माता-पिता पर निर्भर करती हैं ।
२०. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह में इंद्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे ।
२१. तब एक यक्ष, भगवान बुद्ध के पास आया और उसने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया :-"आपका कहना है कि केवल 'रूप' जीव नहीं हैं, तो जीव सशरीर कैसे होता है? जीव को यह हड्डियों और आंतों का ढेर कैसे प्राप्त होता है? माता के गर्भ में जीव किस प्रकार लटकता रहता है?"
२२. इसका तथागत ने उत्तर दिया सर्वप्रथम कलल होता है तब अर्बुद होता है, तब पेशी होती है, तब घन होता है, और घन में ही बाल और नाखून आदि उत्पन्न होते है और माँ जो कुछ भी खाना-पीना खाती है, उससे बालक मां के गर्भ में बढ्ता है ।
२३. हिन्दु सिद्धान्त इससे सर्वथा भिन्न है ।

२४. इसका कहना है कि शरीर तो वंशानुगत अथवा माता-पिता से प्राप्त है ।किन्तु 'आत्मा' नहीं । यह शरीर में बाहर से प्रवेश करती है या करता है ।कहाँ से? -- यह बात इस सिद्धान्त में स्पष्ट नहीं की गई है ।
२५. दूसरा प्रश्न है कि पूर्वजन्म के उस कर्म की अपनी स्थिति क्या है? क्या यह वंशानुगत क्रम से प्राप्त कोई 'गुण' है अथवा स्वय अर्जित किया हुआ कोई 'गुण' है?
२६. जब तक इस प्रश्न का उत्तर न मिले तब तक वंशानुक्रम के वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार इसका परीक्षण नहीं हो सकता ।
२७. लेकिन यदि मान भी लिया जाय कि इस प्रश्न का इधर उधर कुछ भी उत्तर सम्भव है, तो भी हम विज्ञान की सहायता से यह कैसे निर्णय कर सकते है कि यह सिद्धान्त कुछ बुद्धिसंगत हे अथवा एकदम मूर्खतापूर्ण?
२८. विज्ञान के अनुसार बालक वंश-परम्परा से अपने माता-पिता के गुण प्राप्त करता है ।
२९. 'कर्म' के हिन्दु सिद्धान्त के अनुसार अपने माता-पिता से शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त करता । 'कर्म' के हिन्दु सिद्धान्त के अनुसार बालक का पूर्व-कर्म उसका अपना किया हुआ 'कर्म' है, और वह उसे अपने द्वारा ही, अपने लिये ही स्वंय प्राप्त करता हैं ।
३०. माता-पिता बालक को कुछ नही देते । बालक ही सब कुछ साथ लेकर आता हैं ।
३१. इस तरह का सिद्धान्त बेहूदगी से कम कुछ नहीं है ।
३२. जैसे ऊपर दिखाया गया है, भगवान बुद्ध इस प्रकार की बेहूदगी में विश्वास नहीं करते थे । (इसकी चर्चा चलने पर कि क्या आदमी अपने भले-बुरे कर्मो के परिणाम से मुक्त हो जाता है, स्थविर नागसेन ने राजा मिलिन्द को उत्तर दिया था :-
३३. "यदि पुनरुत्पत्ति न हो तो वह अपने कर्मो के फल से मुक्त हो जाता है, यदि हो, तो नहीं ।"
३४. राजा मिलिन्द ने कहा -- "मुझे एक उदाहरण दें ।"
३५. "राजन! उदाहरण के लिये एक आदमी किसी के आम चुराये, तो क्या चोर दण्ड का अधिकारी होगा?
३६ "हां!"
३७. "लेकिन जो आम (के बीज) उसने जमीन में बोये थे, वे तो उसने चुराये नही, तब उसे दण्ड क्यों मिले?"
३८. "क्योंकि जो उसने चुराये वे उन्हीं में से उत्पन्न हुए थे, जो जमीन में बोये गये थे ।"
३९. "ठिक इसी प्रकार यह नाम-रूप कर्म करता है -- भले या बुरे -- और उस कर्म से दूसरा नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है । इसीलीये वह अपने कर्म के फल से मुक्त नहीं होता ।
४०. "नागसेन! बहुत अच्छा ।"
४१. तब फिर राजा मिलिन्दने पूछा -- "नागसेन! जब एक नाम-रूप से कार्य किये जाते हैं तो उन कार्यो का क्या होता है?"
४२. "राजन्! वे कर्म की छाया की तरह पीछा करते रहेंगे ।"
४३. "क्या कोई उन कर्मो के बारे में बता सकता है कि ये कर्म यहां है अथवा वहां है?"
४४. "नहीं!"
४५. "मुझे एक उपमा दें ।"
४६. "तो हे राजन! क्या कोई किसी वृक्ष के उन फलों को दिखा सकता है और यह बता सकता है कि:-
४७. "ये यहां है अथवा वहाँ है?"
४८. "निश्चय से नहीं ।"
४९. "इसी प्रकार राजन्! जब तक जीवन-स्त्रोत का उच्छेद नहीं होता तब तक कृत-कर्मो को बता सकना असम्भव है ।"
५०. "नागसेन! बहुत अच्छा ।"

३ क्या भगवान बुद्ध यह मानते थे कि पूर्व कर्मो का भविष्य-जन्मों पर प्रभाव पड़ता है?

(२)
१. इस तरह से भगवान् बुद्ध का पूर्व-कर्म का सिद्धान्त विज्ञान से बेमेल नहीं हैं ।
२. भगवान बुद्ध पूर्व-जन्मों के कर्मो के संसरण में विश्वास नहीं करते थे ।
३. जब वे वह मानते थे कि जन्म माता-पिता से प्रदत्त होता है और बालक में जो कुछ भी गुण-दोष होते हैं वह वंशानुगत क्रम से माता-पिता, के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं, तो वे कर्मो के संसरण में विश्वास ही कैसे कर सकते थे?

४. तर्क के अतिरिक्त इस बात का सीधा प्रमाण भी उस सूक्त में, विद्यमान है जो 'चूळ- दुक्ख-खन्ध- सूक्त' कहलाता है और जिसमें भगवान् बुद्ध तथा जैनों की बातचीत का वर्णन हैं ।
५. इस संवाद में भगवान् बुद्ध ने कहा है :- "निगण्ठो! तुम्हारा यही कहना है न कि हमें यह शिक्षा अच्छी लगती है और कि हम इसे मानते हैं कि हमने पूर्व जन्म में जो पाप-कर्म किया है, उसे हम इन कठोर तपस्याओ द्वारा समाप्त करते है, शरीर, वाणी और मन का वर्तमान संयम पूर्व-जन्म के पाप-कर्मो को समाप्त कर देगा । इस प्रकार तपस्या द्वारा अपने पुराने सभी पाप-कर्म को समाप्त कर देने से और नये पाप-कर्म न करने से भविष्य स्वच्छ हो जाता है, भविष्य के स्वच्छ हो जाने के साथ पूर्व भी साफ हो जाता है; पूर्व के साफ हो जाने के साथ दुःख नहीं रहता; दुःख न रहने से दुःखद वेदना नहीं रहती और जब दुःखद वेदनाओं के एकदम न रहने से समस्त दुःख का ही क्षय हो जाता है?"
६. उन निगण्ठों के 'हा' करने पर मैने कहा कि "क्या तुम जानते हो कि इससे पूर्व तुम्हारा पूर्व-जन्म था, और यह जानते हो कि ऐसा नहीं था कि तुम्हारा पूर्व जन्म न हो?"
७. "नहीं जानते ।"
८. "क्या तुम जानते हो कि अपने पूर्व-जन्म में तुम निश्चयात्मक रूप से सदोष थे; तुम यह जानते हो कि तुम निर्दोष नहीं थे?"
९. "नही!"
१०. "क्या तुम जानते हो कि उस पूर्व-जन्म में तुमने अमुक पाप-कर्म किया था वा नहीं किया था?"
११. "नही!
१२. अब भगवान् बुद्ध यह भी जोर देकर कहते हैं कि एक आदमी की स्थिति उसके वंशपरम्परागत आगत गुणों पर उतनी निर्भय नही करतीं, जितनी उसकी परिस्थिति पर निर्भर करती है ।"
१३. भगवान् बुद्ध ने देवदह-सुत्त- ५ में कहा है :- "कुछ श्रमण-ब्राह्मणो का मत है कि जो कुछ भी आदमी भुगतता है, यह सब उसके पूर्व जन्मों के कर्मो का परिणाम है -- चाहे सुख हो चाहे, दुःख हो, चाहे असुख-अदुख हो ।इसलिये (उनका कहना है) कि पूर्व-कर्मो की निर्जरा द्वारा और नये अशुभ कर्मो से विरत रहने से पाप-कर्मो का क्षय हो जाता है । जब पाप-कर्मों का क्षय हो जाता है तो दुःख का क्षय हो जाता है । जब दु:ख का क्षय हो जाता है । (दुःखद) वेदनाओं का क्षय हो जाता है; और जब वेदनाओं का क्षय हो जायेगा तो तमाम दुःख का समूल उच्छेद हो जायेगा ।" यह निगण्ठो (जैनो) का मत है ।
१४. "यदि प्राणियों के (पूर्व-) जन्म की परिस्थिति उनके दुःख-सुख भोगने का कारण है तब भी निगण्ठ गर्हा के भाजन है; यदि परिस्थिति कारण नहीं है तब भी वे गर्हा के भाजन हैं ।"
१५. भगवान् बुद्ध के ये वचन प्रस्तुत विषय मे सम्बन्धित है । यदि भगवान् बुद्ध पूर्व-कर्म में विश्वास रखते तो वे यहा इस समय पूर्व-कर्म के बारे मे सन्देह क्यो प्रकाशित करते? और यदि भगवान् बुद्ध यह मानते कि सुख-दुःख पूर्व-जन्म का परिणाम है तो वे यह क्यों कहते कि वर्तमान जीवन का सुख-दुःख परिस्थिति का परिणाम होता है ।
१६. पूर्व-कर्म (सुख-दुःख का कारण होते है) का सिद्धान्त शुद्ध ब्राह्मणी सिद्धान्त है ।पूर्व-कर्म का वर्तमान जीवन पर प्रभाव पड़े -- इसका ब्राह्मणी 'आत्मा' के सिद्धान्त से पूर्णतया मेल बैठता है, क्योंकि वे मानते है कि 'कर्म' का 'आत्मा' प्रभाव पड़ता है ।लेकिन बुद्ध-धम्म के 'अनात्मवाद' से इसका किसी भी तरह मेल नहीं बैठ सकता ।
१७. लगता है कि यह सारा का सारा (बाद के) बौद्धधम्म में प्रक्षिप्त कर दिया गया है -- या तो किसी ऐसे द्वारा जो बौद्धधम्म को हिन्दु धर्म सदृश ही बनाना चाहता था, या किसी ऐसे द्वारा जो यथार्थ बुद्ध-धम्म से अपरिचित था ।
१८. यह एक कारण है जिससे यह मानना चाहिये कि बुद्ध ने कभी इस सिद्धान्त की देशना नहीं की होगी ।
११. एक दुसरा और अधिक सामान्य कारण भी है जिससे यह मानना चाहिये कि भगवान् बुद्ध कभी इस सिद्धान्त की देशना नहीं कर सकते थे ।
२०. भावी-जन्म के संचालक के रूप में पूर्व-जन्म को स्वीकार करने के हिन्दु सिद्धान्त का आधार अन्यायपूर्ण है । इस प्रकार के सिद्धान्त का अविष्कार करने का आखिर क्या प्रयोजन हो सकता था?
२१. इसका एक ही उद्देश्य हो सकता है कि राज्य अथवा समाज को गरीबों और दरिद्रो की दुरवस्था की जिम्मेदारी से सर्वथा मुक्त कर दिया जाय ।
२२. अन्यथा इस प्रकार के अत्याचारपूर्ण तथा बेहूदा सिद्धान्त का कभी अविष्कार न होता ।
२३. यह कल्पना कर सकना असम्भव है कि महाकारूणिक बुद्ध ने कभी इस प्रकार के सिद्धान्त का समर्थन किया हो ।

विभाग ३ - अहिंसा

१. अहिंसा के नाना अर्थ और व्यवहार

१. अहिंसा अथवा जीव-हिंसा न करना बुद्ध की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है ।
२. इसका करूणा तथा मैत्री से अत्यन्त निकट का संबन्ध है ।
३. तो भी प्रश्न है कि क्या अपने व्यवहार में भवगान बुद्ध की अहिंसा सापेक्ष थी वा निरपेक्ष थी? क्या यह एक शील मात्र थी अथवा एक नियम ?
४. जो लोग भगवान् बुद्ध के उपदेशों को मानते हैं उन्हें अहिंसा को एक निरपेक्ष बंधन के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई होती है । उनका कहना है कि ऐसी अहिंसा से बुराई के लिये भलाई का बलिदान हो जाता है अथवा दुर्गुण के लिये सद्गुण का ।
५. इस प्रश्न को स्पष्ट करने की जरूरत है ।यह 'अहिंसा' का प्रश्न सर्वाधिक गड़बड़ी पैदा करने वाला प्रश्न है ।
६. बौद्ध देशों के लोगों ने अहिंसा को किस रूप में समझा है और किस प्रकार व्यवहार किया है?
७. यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका विचार करना ही होगा ।
८. सिंहल के भिक्षु स्वयं लड़े और उन्होने लोगों को विदेशी आक्रमणकारियों के विराद्ध लड़ने के लिये कहा ।
९. दूसरी ओर बर्मा के भिक्षुओं ने विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने से इनकार किया और लोगों को भी न लड़ने के लिये कहा ।
१०. बर्मा के लोग अण्डा खा लेते हें मछली नहीं ।
११. अहिंसा इसी प्रकार समझी जाती है और व्यवहार में आती हैं ।
१२. कुछ समय पूर्व जर्मन बौद्ध समिति ने एक प्रस्ताव पास किया कि वे पांच शीलो में से (जीव-हिंसा से विरत रहने के प्रथम शील को छोड़कर) शेष चार शीलों को ही स्वीकार करेंगे ।
१३. अहिंसा के सिद्धान्त को लेकर ऐसी स्थिति है ।

२. 'अहिंसा' का अर्थ

१. अहिंसा का क्या मतलब है?
२. भगवान् बुद्ध ने कहीं भी 'अहिंसा' की परिभाषा नहीं की है । ठीक बात तो यह है कि उन्होंने बहुत की कम अवसरों पर निश्चित शब्दावलि में इस विषय की चर्चा की है ।
३. इसलिये यह आवश्यक है कि परिस्थितिजन्य साक्षी से ही भगवान् बुद्ध क्या चाहते थे इसका पता लगाया जाय ।
४. पहली परिस्थितिजन्य साक्षी यह है कि यदि भिक्षा में मिले तो भगवान् बुद्ध को मांस ग्रहण करने पर कोई आपत्ति नहीं थी ।
५. यदि भिक्षु किसी प्रकार से भी किसी जानवर की हत्या से सम्बन्धित नहीं है तो वह भिक्षा में प्राप्त मांस ग्रहण कर सकता है ।
६. भगवान् बुद्ध ने देवदत्त के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जो चाहता था कि भिक्षा में दिये जाने पर भी भिक्षु मॉंसाहार ग्रहण न करें ।
७. इस विषय में यह भी एक साक्षी का अंश है कि वह याज्ञों मे (ही) पशुहिँसा के विरोधी थे । यह उन्होंने स्वयं कहा है ।
८. 'अहिंसा परमो धर्म' यह एक दूसरे सिरे पर पहुंचा हुआ सिद्धान्त है । यह एक जैन-सिद्धान्त है । यह बौद्ध सिद्धान्त नहीं ।
९. एक और साक्षी है जो परिस्थितिजन्य साक्षी की अपेक्षा सीधी साक्षी है और जो एक प्रकार से "अहिंसा" की परिभाषा ही है । उन्होनें कहा है -- "सबसे मैत्री करो, ताकि तुम्हे किसी प्राणी को मारने की आवश्यकता न पडे" यह अहिंसा के सिद्धान्त के कहने का स्वीकारात्मक ढंग है ।
१०. इससे ऐसा लगता है कि "अहिंसा' का बौद्ध सिद्धान्त यह नहीं कहता कि 'मारो नही' बल्कि यह कहता है कि 'सभी प्राणियों से मैत्री रखो ।"
११. उक्त कथनों के प्रकाश में यह समझ सकना कठिन नहीं है कि 'अहिंसा' से भगवान् बुद्ध का क्या अभिप्राय था?
१२. यह एकदम स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध 'जीव-हत्या करने की चेतना' और 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता' में भेद करना चाहते थे ।
१३. जहा 'जीव-हत्या करने की आवश्यकता थी', वहां उन्होंने जीव-हत्या करना मना नहीं किया ।
१४. उन्होंने वैसी जीव-हत्या को मना किया जहाँ केवल "जीव-हत्या की चेतना" है ।

१५. इस तरह समझ लेने पर “अहिंसा” के बौद्ध सिद्धान्त में कहीं कुछ गड़बड़ी नहीं है।
१६. यह एक सोलह आने पक्का, स्थिर नैतिक सिद्धान्त है, जिसका हर किसीको आदर करना चाहिये।
१७. इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होने इस बात का निर्णय व्यक्ति पर ही छोड़ दिया है कि ‘जीव-हत्या की आवश्यकता’ है वा नहीं? व्यक्ति के अतिरिक्त और किस पर यह निर्णय छोडा भी जा सकता था? आदमी के पास प्रज्ञा है और उसे इसका उपयोग करना चाहिये ।
१८. एक नैतिक आदमी पर यह भरोसा किया जा सकता है कि वह सही विभाजक रेखा खींच सकेगा ।
१९. ब्राह्मणी-धर्म में ‘जीव’ ‘हिंसा करने की चेतना’, है ।
२०. जैन-धर्म में जीव-हिंसा न करने की चेतना’ है ।
२१. भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त उनके मध्यम मार्ग के अनुरुप है ।
२२. इसी बात को दूसरे शब्दों मे कहा जाय तो भगवान् बुद्ध ने शील (Principle) और विनय = नियम (rule) में भेद किया है । उन्होंने अहिंसा को नियम नहीं बनाया । उन्होंने इसे जीवन का एक पथ माना है ।
२३. इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करके भगवान् बुद्ध ने बड़ी ही प्रज्ञा सहगत बात की है ।
२४. एक शील (Principle) तुम्हें कार्य करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ता है।एक नियम (rule) स्वतन्त्र नहीं छोडता।या तो तुम नियम को तोड़ते हो, या नियम तुम्हें तोड़ डालता है।

विभाग ४ – संसरण

आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना

१. भगवान् बुद्ध ने पुनर्जन्म की देशना की है । किन्तु भगवान् बुद्ध ने यह भी कहा है कि संसरण नहीं है ।
२. ऐसे लागो की कमी नहीं थी जो भगवान् बुद्ध पर यह दोषारोपण करते थे कि वे दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों की देशना करते हैं ।
३. आलोचक प्रश्न करते थे -- बिना संसरण के पुनर्जन्म हो ही कैसे सकता है?
४. वे कहते थे - यह बिना संसरण के पुनर्जन्म की बात है।भला - क्या कभी यह सम्भव है?
५. इसमें कहीं कुछ भी विरोध नहीं है।बिना संसरण के पुनर्जन्म हो सकता है।
६. राजा मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर में भदन्त नागसन ने इसे अच्छी तरह समझा दिया है ।
७. बॅकट्रिया-नरेश मिलिन्द ने स्थविर नागसेन से प्रश्न किया - “क्या भगवान बुद्ध पुनर्जन्म (संसरण) मानते थे ?”
८. स्थविर नागसेन का उत्तर था - “हाँ”
९. ‘तो क्या इसमें परस्पर विरोध नहीं ?”
१०. नागसेन - “नहीं।”
११. “क्या बिना ‘आत्मा’ के पुनर्जन्म संभव है ।”
१२. स्थविर नागसेन बोले, “हाँ, ऐसा निश्चय से हो सकता है ।”
१३. “कृपया समझायें कि यह कैसे हो सकता है ?”
१४. राजा बोला - “नागसेन! जहाँ संसरण नहीं है, क्या वहां पुनर्जन्म हो सकता है ?”
१५. “हाँ, हो सकता है।”
१६. “लेकिन यह कैसे हो सकता है, मुझे एक उदाहरण देकर समझायें।”
१७. “राजन्! यदि एक आदमी एक दीपक से दूसरा दीपक जलाये तो क्या यह कहा जायेगा कि एक का संसरण दूसरी जगह हो गया ?”
१८. “निश्चय से नहीं ।”
१९. “राजन! इसी प्रकार बिना संसरण के पुनर्जन्म होता है ।”
२०. मुझे एक और उदाहरण दें।”
२१. “महाराज! क्या आपको कोई छन्द (= कविता का चरण) याद है जो आपने बचपन में अपने आचार्य से सीखा हो ?”
२२. “हाँ, मुझे याद है ।”

२३. “तो क्या वह छन्द आप के आचार्य के मुंह में से निकलकर आपके मुंह में आया ?”
२४. “निश्चय से नहीं ।”
२५. “राजन् इसी प्रकार बिना संसरण के पुनर्जन्म होता है ।”
२६. “नागसेन! बहुत अच्छा ।”
२७. राजा बोला - “नागसेन! क्या ‘आत्मा’ जैसी कोई चीज है ?”
२८. “यथार्थ दृष्टि से सोचा जाय तो ‘आत्मा’ जैसी कोई वस्तु नही है।”
२९. ‘नागसेन! बहुत अच्छा ।”

विभाग ९ - गलत-फहमी के कारण

१. तथागत बुद्ध ने जो उपदेश दिये वे श्रोताओं द्वारा सुने जाते थे जो कि अधिकांश में भिक्षु थे ।
२. किसी भी विषय में भगवान् बुद्ध का क्या कहना था, उसे जनसाधारण तक पहुँचाने वाले भिक्षुगण ही थे ।
३. लेखनकला अभी विकसित नहीं हुई थी । जो कुछ सुनते थे वह भिक्षुओं को कण्ठ कर लेना होता था । प्रत्येक भिक्षु जो जो वह सुनता था,उसे कण्ठ करने की चिन्ता न करता था ।लेकिन कुछ भिक्षु थे, जिन्होंने कण्ठस्थ करना अपना काम ही बना लिया था । वे ‘भाणक’ कहलाते थे ।
४. बौद्ध त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथायें समुद्र की तरह विशाल हैं । उन्हें कण्ठस्थ कर सकना सचमुच एक बड़ी असाधारण बात थी ।
५. एक से अधिक बार ऐसा हुआ है कि भगवान् बुद्ध ने जो कुछ कहा उसकी ‘रिपोर्ट’ ठीक नहीं हुई ।
६. भगवान् बुद्ध के जीवन-काल मे ही कई बार उनके वचनो की ‘गलतरिपोर्ट’ की बात उन तक पहुंची थी ।
७. उदाहरण के तौर पर ऐसे पांच अवसरों का उल्लेख किया जा सकता है ।एक उल्लेख तो अलगद्दुपम सुत्त में आया है, दूसरा महाकम्म विभंग सुत्त में, तीसरा कण्णकट्ठल सुत्त में, चौथा महातण्हा- संखय सुत्त में, पांचवाँ जीवक सुत्त में ।
८. शायद इस तरह के और भी अनेक अवसर आये हों जब तथागत के वचनो की ठीक ‘रिपोर्ट’ न हुई हो । क्योंकि हम देखते हैं कि भिक्षु भी भगवान् बुद्ध के पास गये हैं और प्रश्न किया है कि ऐसी परिस्थिति में उन्हें क्या करना चाहिये?
९. ‘कर्म’ और ‘पुनर्जन्म’ के बारे में जब जब गलत रिपोर्ट हुई है, उसके अनेक अवसर हैं ।
१०. इन सिद्धान्तों को ब्राह्मणी ‘धर्म’ में भी स्थान प्राप्त है । इसलिये भाणको के लिये अपेक्षाकृत सुगम था कि वह बौद्ध-धम्म में ब्राह्मणी-धर्म की भी खिचड़ी पका दें ।
११. इसलिये त्रिपिटक में भी जो ‘बुद्ध-वचन’ करके माना गटग है, उसे भी ‘बुद्ध-वचन’ स्वीकार करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है ।
१२. लेकीन इसकी एक कसौटी विद्यमान है ।
१३. भगवान् बुद्ध के बारे में एक बात बड़े ही विश्वास के साथ कही जा सकती है : वे कुछ नहीं थे, यदि उनका कथन बुद्धिसंगत, तर्कसंगत नहीं होता था । दूसरी बातों का यथायोग्य मूल्यांकन करते हुए यह बात कही जा सकती है कि जो बात बुद्धिसंगत हैं, जो बात तर्कसंगत है, वह ‘बुद्ध- वचन’ है ।
१४. दूसरी बात यह है कि भगवान् बुद्ध ने कभी ऐसी बेकार की चर्चा में नही पडना चाहा जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध न हो । इसलिये कोई भी ऐसी बात जिसका आदमी के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान बुद्ध के सिर मढी जाती है, तो उसे ‘बुद्ध- वचन’ नहीं स्वीकार किया जा सकता ।
१५. एक तीसरी कसौटी भी है । वह यह कि भगवान बुद्ध ने सभी विषयों को दो वर्गो में विभक्त रखा था । ऐसे विषय जिनके बारे में वे निश्चित थे और ऐसे विषय वे जिनके बारे में निश्चित नहीं थे । जो विषय पहली श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपने विचार निश्चयात्मक रुप से और अन्तिम रुप से व्यक्त किये हैं । जो विषय दूसरी श्रेणी में आते हैं उनके बारे में उन्होंने अपनी राय भर व्यक्त कर दी है । लेकिन उनके वे विचार ऐसे हैं जो बदल भी सकते हैं ।
१६. जिन तीन प्रश्नों के बारे में सन्देह है और मतभेद हैं उनके बारे में यह निश्चय करने से पहले कि भगवान बुद्ध का निश्चित मत क्या था, यह आवश्यक हैं कि हम इन कसौटियों को न भूलें ।

तीसरा भाग : बौद्ध जीवन मार्ग

१. शुभ-कर्म अशुभ-कर्म तथा पाप

१. शुभ कर्म करो । अशुभ कर्मो में सहयोग न दो । कोई पाप-कर्म न करो ।
२. यही बौद्ध जीवन मार्ग है ।
३. यदि आदमी शुभ कर्म करे तो उसे पुनः करना चाहिये । उसी में चित्त लगाना चाहिये । शुभ कर्मो का संचय सुखकर होता है ।
४. भलाई के बारे में यह मत सोचो कि मै इसे प्राप्त न कर सकूंगा । बूंद बूंद पानी करके घडा भर जाता है । इसी प्रकार थोडा थोडा करके बुद्धिमान आदमी बहुत शुभ-कर्म कर सकता है ।
५. जिस काम को करके आदमी को पछताना न पडे और जिसके फल को वह आनन्दित मन से भोग सके उस काम का करना अच्छा है ।
६. जिस काम को करके आदमी को अनुताप न हो और जिसके फल को प्रफुल्लित मन से भोग सके, उस काम का करना अच्छा है ।
७. यदि आदमी कोई शुभ कर्म करे तो उसे वह शुभ कर्म बार बार करना चाहिये । उसे इसमें आनन्दित होना चाहिये । शुभ कर्म का करना आनन्दायक होता है ।
८. अच्छे आदमी को भी बुरे दिन देखने पड जाते है जब तक उसे अपने शुभ कर्मो का फल मिलना आरंम्भ नहीं होता; लेकिन जब उसे अपने शुभ कर्मो का फल मिलना आरम्भ होता है, तब अच्छा आदमी अच्छे दिन देखता है ।
९. भलाई के बारे में यह कभी न सोचे कि मैं इसे प्राप्त न कर सकूंगा । जिस प्रकार बूंद बूंद करके पानी का घडा भर जाता है, उसी प्रकार थोडा थोडा करके भी भला आदमी भलाई से भर जाता है ।
१०. शील (सदाचार) की सुगन्ध चन्दन, तगर तथा मल्लिका-सबकी सुगन्ध से बढकर है ।
११. धूप और चन्दन की सुगन्ध कुछ ही दूर तक जाती है किन्तु शील की सुगन्ध बहुत दूर तक जाती है ।
१२. बुराई के बारे में भी यह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुंचेगी ।जिस प्रकार बूंद बूंद करके पानी का घडा भर जाता है उसी प्रकार थोडा-थोडा करके अशुभ-कर्म भी बहुत हो जाते है ।
१३. कोई भी ऐसा काम करना अच्छा नही, जिसके करने से पछताना हो और जिस का फल अश्रु-मुख होकर रोते हुए भोगना पडे ।
१४. यदि कोई आदमी दुष्ट मन से कुछ बोलता है वा कोई काम करता है तो दुःख उसके पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाडी का पहिया खींचने वाले (पशू) के पीछे पीछे ।
१५. पाप-कर्म न करे । अप्रमाद से न रहे । मिथ्या- दृष्टि न रखे ।
१६. शुभ कर्मो में अप्रमादी हो । बुरे विचारो का दमन करे । जो कोई शुभकर्म करने में ढील करता है, उसका मन पाप में रमण करने लगता है ।
१७. जिस काम के कर चुकने के बाद पछताना पडे उसका करना अच्छा नही, जिसका फल अश्रु-मुख होकर सेवन करना पडे ।
१८. पापी भी सुख भोगता रहता है, जब तक उसका पापकर्म नहीं पकता; लेकिन जब उसका पापकर्म पकता है तब वह दुःख भोगता है ।
१९. कोई आदमी बुराई को ‘छोटा’ न समझे और अपने दिल में यह न सोचे कि यह मुझ तक नहीं पहुंच सकेगी । पानी के बूंदों के गिरने से भी एक पानी का घडा भर जाता है । इसी प्रकार थोडा थोडा पापकर्म करने से भी मूर्ख आदमी पाप से भर जाता है ।
२०. आदमी को शुभ कर्म करने में जल्दी करनी चाहिये और मन को बुराई से दूर रखना चाहीये । यदि आदमी शुभ कर्म में ढील करता है तो उसका मन पाप में रमण करने लग जाता है ।
२१. यदि एक आदमी पाप करे; तो उसे बार बार न करे । वह पाप में आनन्द न माने । पाप इकट्ठा होकर दुःख देता है ।
२२. कुशल कर्म करे, अकुशल कर्म न करे । कुशल कर्म करने वाला इस लोक मे सुखपूर्वक रहता है ।
२३. कामुकता से दुःख पैदा होता है, कामुकता से भय पैदा होता है । जो कामुकतासे एकदम मुक्त है, उसे न दुःख है और न भय है ।
२४. भूख सबसे बडा रोग है, संस्कार सब से बडा दुःख है । जो इस यथार्थ बात को जान लेता है उसके लिये निर्वाण सबसे बडा सुख है ।
२५. स्वयं-कृत, स्वयं-उत्पत्न्न तथा स्वय-पोषित पापकर्म करने वाले को ऐसे ही पीस डालता है जैसे वज्र मूल्यवान् मणि को भी ।

२६. जो आदमी अत्यंत दु:शील होता है, वह अपने आपको उस स्थिति में पहुँचा देता है, जहां उसका शत्रु उसे चाहता है, ठीक वैसे ही जैसे आकाश-बेल उस वृक्ष को जिसे वह घेरे रहती है ।
२७. अकुशल कर्मो का तथा अहितकर कर्मो का करना आसान है । कुशल कर्मो का तथा हितकर कर्मो का करना कठिन है ।

२. लोभ और तृष्णा

१. लोभ और तृष्णा के वशीभूत न हो ।
२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है ।
३. धन की वर्षा होने से भी आदमी की कामना की पुर्ती नहीं होती । बुद्धिमान आदमी जानता है कि कामनाओं की पुर्ती में अल्प-स्वाद है और दु:ख है ।
४. वह दिव्य कामभोगो में भी आनन्द नहीं मानता । वह तृष्णा के क्षय में ही रत रहता है । वह सम्यक्-सबुद्ध का श्रावक है ।
५. लोभ से दु:ख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है । जो लोभ से मुक्त है उसके लिये न दु:ख है न भय है ।
६. तृष्णा से दु:ख पैदा होता है, तृष्णा से भय पैंदा होता है । जो तृष्णा से मुक्त है उसके लिये न दु:ख है, न भय है ।
७. जो अपने आप को मान के सर्मर्पित कर देता है, जो जीवन के यथार्थ उद्देश्य को भूल कर काम भोगो के पीछे पड जाता है वह बाद में ध्यानी की ओर ईर्षा-भरी दृष्टि से देखता है ।
८. आदमी किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त न हो, वस्तु-विशेष की हानि से दु:ख पैदा होता है । जिन्हें न किसी से प्रेम है और न घृणा है, वे बंधन-मुक्त है ।
९. काम-भोग से दु:ख पैदा होता है, काम-भोग से भय पैदा होता है, जो काम-भोग से मुक्त है उसे न दु:ख है और न भय है ।
१०. आसक्ति से दु:ख पैदा होता है, आसक्ति से भय पैदा होता है, जो आसक्ति से मुक्त है । उसे न दु:ख है और न भय है ।
११. राग से दु:ख पैदा होता है, राग से भय पैदा होता है, जो राग से मुक्त है । उसे न दु:ख है और न भय है ।
१२. लोभ से दु:ख पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है, जो लोभ से मुक्त है । उसे न दु:ख है और न भय है ।
१३. जो शीलवान है, जो प्रज्ञावान है, जो न्यायी है, जो सत्यवादी है तथा जो अपने कर्तव्य को पूरा करता है-- उससे लोग प्यार करते हैं ।
१४. जो आदमी चिरकाल के बाद प्रवास से सकुशल लौटता है, उसके रिश्तेदार तथा मित्र उसका अभिनन्दन करते है ।
१५. इसी प्रकार शुभ कर्म करने वाले के गुण-कर्म परलोक मेँ उसका स्वागत करते है ।

३. क्लेश और द्वेष

१. किसी को क्लेश मत दो; किसी से द्वेष मत रखो ।
२. यही बौद्ध-जीवन मार्ग है ।
३. क्या संसार में कोई आदमी इतना निर्दोष है किं उसे दोष दिया ही नहीं जा सकता, जैसे शिक्षित घोडा चाबुक की मार की अपेक्षा नहीं रखता?
४. श्रद्धा, शील,. वीर्य, समाधि, धम्म-विचय (सत्य की खोज), विद्या तथा आचरण की पूर्णता तथा स्मृति (जागरुकता) से इस महान् दु:ख का अन्त करो ।
५. क्षमा सबसे बडा तप है, 'निर्वाण' सबसे बडा सुख है--ऐसा बुद्ध कहते है ।जो दूसरों को आघात पहुंचाये वह प्रतजित नहीं; जो दूसरों को पीडा न दे-- वही श्रमण है ।
६. वानी से बुरा वचन न बोलना किसी को कोई कष्ट न देना, विनयपूर्वक (नियमाननुसार) संयत रहना-- यही बुद्ध की देशना है ।
७. न जीवहिंसा करो न कराओ ।
८. अपने लिये सुख चाहने वाला जो, सुख चाहने वाले प्राणियों को न कष्ट देता है और न जान से मारता है, वह सुख प्राप्त करेगा ।
९. यदि एक टूटे भाजन की तरह तुम नि :शब्द हो जाओ, तो तुमने निर्वाण प्राप्त कर लिया, तुम्हारा क्रोध से कोई सम्बन्ध नहीं ।
१०. जो निर्दोष और अहानिकर व्यक्तियों को कष्ट देता है, वह स्वयं कष्ट भोगता है ।

११. चाहे वह अलंकृत हो, तो भी यदि उसकी चर्य्या विषय नहीं, यदि वह शान्त है, दान्त है. स्थिरचित है, ब्रह्मचारी है, दुसरों के छिद्रान्वेषण करता नहीं फिरता--वह सचमुच एक श्रमण है एक भिक्षु है ।
१२. क्या कोई आदमी लज्जा के मारे ही इतना संयत रहता है कि उसे कोई कुछ कह न सके, जैसे अच्छा घोडा चाबुक की अपेक्षा नहीं रखता?
१३. यदि कोई आदमी किसी अहानिकार, शुद्ध और निर्दोष आदमी के विराद्ध कुछ करता है तो उसकी बुराई आकर उसी आदमी पर पडती है ठीक वैसे ही जैसे हवा के विराद्ध फेंकी हुई धूल फेंकने वाले पर ही आकर पडती है ।

४. क्रोध और शत्रुता

१. क्रोध न करो । शत्रुता को भूल जाओ । अपने शत्रुओं को मैत्री से जीत लो ।
२. यही बौद्ध जीवन- मार्ग है ।
३. क्रोधाग्नि शान्त होनी ही चाहिये ।
४. जो यही सोचता रहता है, उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया,उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लूट लिया, उसका वैर कभी शान्त नही होता ।
५. जो ऐसे विचार नहीं रखता उसी का वैर शान्त होता है ।
६. शत्रु शत्रु की हानि करता है, घृणा करने वाला घृणा करने वाले की, लेकिन अन्त में यह किस की हानि होती है?
७. आदमी को चाहिये के क्रोध को अक्रोध से जीते, बुराई को भलाई से जीते, लोभी को उदारता से जीते और झूठे को सच्चाई से जीते ।
८. सत्य बोले, क्रोध न करे, थोडा होने पर भी दे ।
९. आदमी को चाहिये की क्रोध का त्याग कर दे, मान को छोड दे, सब बन्धनों को तोड दे, जो आदमी नाम-रुप में आसक्त नहीं है, जो किसी भी चीज को "मेरी" नहीं समझता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता ।
१०. जो कोई उत्पन्न क्रोध को उसी प्रकार रोक लेता है जैसे सारथी भ्रान्त रथ को, उसे ही मै (जीवन-रथ का) सच्चा सारथी कहता हूँ; शेष तो रस्सी पकडने वाले ही है ।
११. जय से वैर पैदा होता है । पराजित आदमी दुखी रहता है । शान्त आदमी जय-पराजय की चिता छोडकर सुखपूर्वक सोता है ।
१२. कामाग्नि के समान आग नहीं, घृणा के समान दुभाग्य नहीं । उपादान स्कन्धों के समान दु :ख नहीं निर्वाण से बढकर सुख नही ।
१३. वैर से वैर कभी भी शांत नहीं होता, प्रेम से ही वैर शांत होता है । यही सनातन नियम है ।

५. मान, मन और मन के मैल

१. आदमी वही कुछ होता है, जो कुछ उसका मन उसको बना देता है ।
२. सन्मार्ग पर आगे बढने के लिये मन की साधना पहला कदम है ।
३. बौद्ध जीवन-मार्ग मे यह मुख्य शिक्षा है ।
४. हर बात में मन ही पूर्वगामी है, मन ही मुख्य है ।.
५. यदि कोई आदमी दुष्ट मन से कुछ बोलता है या करता है तो दु:ख उसके पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे गाडी के पहिये गाडी खींचने वाले पशु के पीछे पीछे ।
६. यदि आदमी स्वच्छ मन से कुछ बोलता है या करता है तो सुख उसके पीछे पीछे ऐसे ही हो लेता है जैसे कभी न साथ छोडने वाली छाया आदमी के पीछे पीछे ।
७. इस चंचल, अस्थिर, दु:रक्ष्य, दु:निवार्य मन को मेधावी आदमी ऐसे ही सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को ।
८. जिस प्रकार पानी से बाहर स्थल पर फेंकी हुई मछली तडपती है, उसी प्रकार मार के बंधन से मुक्त होता हुआ यह मन तडपता है ।

९. जिसे काबू में रखना कठिन है, जो चंचल है, जो हमेशा 'मौज' ही खोजता रहता है--ऐसे मन को काबू मेँ रखना अच्छा है । काबू में रखा हुआ मन सुख देने वाला होता है ।
१०. अपने आपको एक प्रदीप (या द्वीप) बनाओ, परिश्रम करो, जब तुम्हारे चित्त-मलो का नाश हो जायगा और तुम निर्दोष हो जाओगे तो तुम दिव्यभुमि को प्राप्त होवोगे ।
११. जिस प्रकार सुनार क्षण-क्षण करके, थोडा थोडा करे चाँदी के मैल को दूर कर देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि क्षण-क्षण करके, थोडा थोडा करके अपने चित्त के मैल को दूर कर दे ।
१२. जिस प्रकार लोहे से उत्पन्न हुआ मोर्चा लोहे को ही खा जाता है, उसी प्रकार पापी के अपने कर्म उसे दुर्गती तक ले जाते है ।
१३. लेकिन सब मलों से भी बढकर मल है, अविद्या सबसे बढकर मल है । हे भिक्षुओ! इस मल का त्याग कर निर्मल हो जाओ ।
१४. जो आदमी कौवे की तरह निर्लज्ज है, शरारती है, दुस्साहसी है, दुष्ट है--उसके लिये जीवन सुकर है ।
१५. लेकिन जो आदमी विनम्र है, सदैव पवित्रता की खोज में रहता है, अनासक्त है, शान्त है, निर्मल है, बुद्धी-युक्त है--ऐसे आदमी के लिये जीवन सुकर नहीं होता ।
१६-१७. जो आदमी जीवहिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो चोरी करता है, जो पर-स्त्री गमन करता है, जो आदमी शराब आदि नशीली चीजे पीता है--वह यहीं इसी संसार में अपनी कबर अपने आप खोदता है ।
१८. हे आदमी! इस बात को जान ले कि असंयत की हालत अच्छी नहीं रहती । सावधान रह कि लोभ और पाप-कर्म तुम्हें चिरकाल तक दुःख में ही न डाले रहें ।
१९. संसार किसी को कुछ देता है तो या तो श्रद्धा से देता है या खुशी से देता है; यदि आदमी दूसरे को मिलने वाले पानी या भोजन को देखकर जलता है तो उसको न दिन को शान्ति मिल सकती है न रात को ।
२०. जिसके मन में ऐसी भावना नहीं रहती है, जड-मूल से जाती रही है वह दिन को भी शान्ति से रहता है और रात को भी शान्ति से रहता है ।
२१. राग के समान आग नहीं और लोभ के समान ओघ (बाढ) नहीं ।
२२. दूसरों के दोष आसानी से दिखाई देते है, अपने कठिनाई से ।आदमी दूसरों के दोषो को तो भुस की तरह उडाता है, किन्तु अपने दोषो को तो वैसे ही छिपाता है जैसे दुष्ट जुआरी गोटी को ।
२३. जो आदमी दूसरों के दोष ही देखता रहता है और अपने से सदा खिझा ही रहता है, उसके आसव बढते ही जाते है ।वह चित्त-मलों के क्षय से बहुत दूर है ।
२४. सभी पापों से बचो, कुशल कर्म करो, अपने विचारों को शुद्ध रखो यही बुद्ध की शिक्षा है ।

६. अपना-आप और आत्म-विजय

१. यदि अपना-आप है तो आदमी को आत्मविजयी होना चाहिये ।
२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है ।
३. आदमी का अपना-आप ही उसका मालिक है, दूसरा कौन मालिक हो सकता है? यदि आदमी अपने -आप को सयत रखता है तो वह दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त करता है ।
४. जो मूर्ख अर्हतो के, आर्यो के अथवा शीलवानों के शासन को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और झूठे सिद्धांतो का अनूकरण करता है, तो जिस प्रकार काष्ट (बांस) के फल उसके अपने विनाश का ही कारण बनते है, उसी प्रकार उस आदमी के कर्म उसके अपने विनाश का ही कारण बनते है ।
५. आदमी अपने आप ही पाप-कर्म करता है, अपने आप ही उससे मैला होता है । अपने आप ही पाप-कर्म से विरत रहता है, अपने आप ही उससे शुद्ध होता है । शुद्धि-अशुद्धि प्रत्येक की व्यक्तिगत बात है ।एक दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।
६. जो 'सुन्दर ही सुन्दर' देखता रहता है जो इन्द्रियों में असंयत है, जो भोजन में मात्रज्ञ नहीं है जो शिथिल होता है और जो हीन-वीर्य्य होता है उस आदमी को उसके अपने असंयत कर्म ही ऐसे पछाड देते है जैसे वायु दुर्बल पेड को ।
७. जो 'सुन्दर ही सुन्दर' नहीं देखता रहता, जिस की इन्द्रियां संयत है, जो भोजन में मात्रज्ञ है, जो श्रद्धावान है तथा वीर्य्यवान है वह उसी प्रकार पछाड नहीं खा सकता जैसे वायु से पर्वत ।
८. यदि आदमी को अपना-आप प्रिय है तो उसे अपने-आप पर कडी नजर रखनी चाहिये ।

९. सबसे पहले अपने-आप को ही ठीक मार्ग पर लगाये, तब दूसरों को उपदेश दे । बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि कोई ऐसा अवसर न दे कि दूसरे ही उसे कुछ कह-सुन सकें ।
१०. अपने-आप को ही काबू में रखना कठिन है । यदि आदमी जैसा उपदेश दूसरों को देता है स्वय उसके अनुसार चले तो वह दूसरों को काबू में रख सकता है । अपना-आप ही काबू में रखना कठिन है ।
११. आदमी स्वयं पाप करता है और स्वयं भोगता है । स्वयं ही वह पाप से विरत रहता है और स्वयं ही परिशुद्ध होता है । शुद्धि और अशुद्धि दोनो ही व्यक्तिगत है । कोई एक किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता ।
१२. एक आदमी युद्ध में हजारों-लाखों को जीत लें, एक आदमी अपने-आप को जीत ले, वही सच्चा संग्राम-विजयी है ।
१३. पहले अपने आप को ठीक मार्ग पर लगाए, तब दुसरो को उपदेश दें बुद्धिमान आदमी को चाहिऐ कि वह शिकायत का अवसर न दे ।
१४. यदि आदमी जैसा उपदेश दूसरो को देता है, स्वयं उसके अनुसार चले तो वह दूसरों को काबू में रख सकता है । अपना-आप ही काबू में रखना कठिन् है ।
१५. निश्चय से आदमी आप अपना रक्षक है । दूसरा कौन रक्षक हो सकता है? यदि आदमी आप अपनी रक्षा करता है तो वह ऐसे रक्षक को प्राप्त करता है, जिसके समान रक्षक मिलना दुर्लभ है ।
१६. यदि आदमीको अपना-आप प्रिय है तो उसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिए ।
१७. आदमी स्वयं अपने पाप का फल भोगता है । स्वयं ही वह परिशुद्ध होता है । शुद्धि और अशुद्धि दोनों व्यक्तिगत हैं, कोई किसी दूसरे को परिशुद्ध नहीं कर सकता ।
१८. आदमी स्वयं अपना संरक्षक है । दूसरा कौन संरक्षक हो सकता है? यदि आदमी अपना संरक्षण करता है तो वह ऐसे संरक्षक को प्राप्त करता है जिसके समान संरक्षक मिलना कठिन है ।

७. बुद्धि, न्याय और संगति

१. बुद्धिमान बनो, न्यायशील रहो और संगति अच्छी रखो ।
२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है ।
३. यदि कोई ऐसा आदमी मिले जो वरजने-योग्य से वर्जित करे, जो ताडना भी दे और जो बुद्धिमान हो; तो उस आदमी का कहना ऐसे ही माने जैसे किसी खजाना बताने वाले का । जो उसका अनुकरण करेगा, उसके लिये यह अच्छा ही होगा बुरा नहीं होगा ।
४. जो सख्त-सुस्त कहता है, जो शिक्षा देता है, जो अनुचित कर्म से रोकता है--उससे सत्पुरुष प्यार करते है असत्पुरुष घुणा ।
५. पापी पुरुषों की संगति न करे । नीच पुरुषों की संगति न करे । सदाचारियो को मित्र बनाये, श्रेष्ट पुराषो को मित्र बनाये ।
६. जो धर्म्मामृत का पान करता है, वह विप्रसन्न चित्त से सुखपूर्वक रहता है । श्रेष्ट पुराषो द्वारा उपदिष्ट धम्म में पण्डित आदमी सदा सुखी रहता है ।
७. पानी ले जाने वाले जहां चाहते है वहा पानी ले जाते है, जो बाण बनाने वाले है वे बाण को सीधा करते है, बढई लोग लकडी सीधा करते है ओर पण्डितजन अपने आप को विनीत (नियमानुसार चलने वाला) बनाते है ।
८. जिस प्रकार एक घन पर्वत वायु के झोके से हिलता-डोलता नहीं, उसी प्रकार पण्डितजन निन्दा-प्रशंसा से विचलित नहीं होते ।
९. धम्म सुन चुकने तेनु अनन्तर पण्डित जन गहरी, गम्भीर झील की तरह शान्त हो जाते है ।
१०. सत्पुरुष सभी परिस्थितियों में सम बने रहते है । सत्पुरुष इच्छाओं की तृप्ति के निमित्त कभी मुंह नही खोलते, वे सुख वा दुःख का अनुभव हौंने पर ऊचा-नीचा भाव प्रदर्शित नहीं करते ।
११. जब तक पाप-कर्म पकता नहीं तब तक मूर्ख आदमी इसे मधु की तरह मधुर समझता है । लेकिन जब पाप-कर्म पकता है तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है ।
१२. जब मूर्ख आदमी पाप-कर्म करता है, तो वह नहीं जानता है (कि मै पाप-कर्म कर रहा हूँ), लेकिन वह आग से जले की तरह अपने पाप-कर्म से जलता है ।
१३. जागने वाले की रात लम्बी होती है, श्रान्त आदमी का योजना लम्बा होता है, धम्म न जानने वाले मूर्ख आदमी का जीवन लम्बा होता है ।
१४. यदि आदमी को अपने से श्रेष्ठ वा अपने समान साथी न मिले, तो उसे अकेले ही अपने जीवन-पथ पर आगे बढना चाहिये, मूर्ख आदमियों की संगति (अच्छी) नही ।

१५. यह मेरे पुत्र है, यह मेरा धन है, यही सोच सोच कर मूर्ख आदमी दुःखी होता रहता है ।अपना-आप ही अपना नहीं है ।कहीं पुत्र और कहाँ धन!

१६. जो मूर्ख आदमी अपने को मूर्ख समझता है, उतने अंश में वह भी पण्डित है; असली मूर्ख वह है जो मूर्ख होकर भी अपने-आप को पण्डित समझता है ।

१७. यदि एक मूर्ख आदमी जन्म भर भी किसी कि पण्डित संगति करे तो भी वह सद्धम्म को नहीं जान सकता जैसे कडछी दाल के रस को ।

१८. लेकिन कोई मेधावी यदि मुहूर्त भर भी पण्डित की संगती करे जो भी वह सद्धम्म को जान ले सकता है, जैसे जिह्वा दाल के रस को ।

१९. दुर्मेधा मूर्ख स्वयं अपना शत्रु आप होता है, क्योंकि वह ऐसे पाप-कर्म करता है जिनका फल कटु होता है ।

२०. उस कार्य का करना अच्छा नहीं जिसके लिये आदमी को पछताना पडे जिसका फल रोते हुए भोगना पडे ।

२१. उस कार्य का करना अच्छा है, जिसके कर चुकने के बाद पछताना न पडे और जिसका फल आदमी प्रफुल्ल मन से प्रीतियुक्त होकर भोग सके ।

२२. जब तक पाप-कर्म पकता नहीं, तब तक मूर्ख आदमी उसे मधु की तरह मधुर समझता रहता है ।लेकिन जक पाप-कर्म पकता है, तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है ।

२३. छिपा हुआ पाप-कर्म प्रकट होकर जब मूर्ख के लिये दुःख का कारण बनता है, तो वह उसके शुक्त अंश का नाश कर देता है, बल्कि उसके सिर के टुकडे टुकडे कर देता है ।

२४. झूठे यश की कामना भिक्षुओं और विहारों में अपनी प्रधानता की इच्छा, दूसरों से सत्कृत पुजित होने की भावना-एक मूर्ख के लिये छोड दो ।

२५. आदमी के बाल पक जाने से ही वह 'वृद्ध' नहीं होता । उसके बाल भले ही सफेद हो गये हों, वह 'व्यर्थ बूढा हुआ' कहलाता है ।

२६. जिसमें सत्य है, शील है, करुणा है, संयम है, शुद्धि है तथा बुद्धि है वही वास्तविक (वृद्ध) हैं ।

२७. अधिक बोलने से वा सुर्वण होने से ही कोई ईर्ष्यालु, कंजूस, बेईमान आदमी 'आदरणीय' नहीं बनता ।

२८. जिसके ये सब दुर्गुण जड-मूल से जाते रहे है, जो घुणा से मुक्त है तथा जो बुद्धिमान है--वही आदरणीय कहलाता है ।

२९. एक आदमी यदि जोर-जबर्दस्ती किसी से कोई काम करा लेता है तो उससे वह 'न्यायी' नही माना जाता । ऐसा नहीं, जो 'धम्म' ओर 'अधम्म' की पहचान रखता है, जो बुद्धिमान है और जो जोर-जबर्दस्ती से नही, बल्कि धम्मानुसार दूसरों का मार्ग-प्रदर्शन करता है ऐसे विज्ञ, धम्मरक्षक को ही 'न्यायी' कह सकते है ।

३०. बहुत बोलने से ही कोई आदमी 'पण्डित' नहीं होता । जो क्षमाशील होता है, जो घृणा और से मुक्त होता है वही पण्डित कहलाता है ।

३१. बहुत बोलने से ही आदमी धम्म-धर नहीं होता; बल्कि जो चाहे थोडा धम्म सुने जो उसे कार्थ्य रुप में परिणित करता है, जो धम्म के विषय कभी प्रमाद नहीं करता, वही 'धम्मधर' कहलाता है ।

३२. यदि आदमी को कोई बुद्धिमान साथी मिले, धैर्यवान; तो वह सब खतरों से बचकर, सुखपूर्वक किन्तु विवेक-युक्त, उसके साथ रह सकता है ।

३३. लेकिन यदि आदमी को कोई बुद्धिमान साथी न मिले, धैर्यवान; तो उसे चाहिये कि उस राजा की तरह जिसने अपने विजित देश को पीछे छोड दिया है या जंगल में हाथी की तरह अकेला ही रहे ।

३४. अकेला रहना ही अच्छा है, मूर्ख आदमी की संगति अच्छी नहीं; आदमी अकेला रहे, कोई पाप-कर्म न करे; थोडी सी इच्छायें रखे; जैसे जंगल में हाथी ।

३५. समय पडने पर, मित्रों का होना सुखकर होता है, भोग की सामग्री सुखकर होती है, शुभ कर्म का करना सुखकर होता है, अन्त समय आ पडने पर पुण्यों का किया रहना सुखकर होता है, सारे दुःख का नाश सुखकर है ।

३६. मातृत्व सुखकर है, पितृत्व सुखकर है तथा श्रमणत्व सुखकर है ।

३७ वृद्ध होने तक शील-पालन सुखकर है, दृढतापूर्वक प्रतिष्टित श्रद्धा सुखकर है, प्रज्ञा का लाभ सुखकर है तथा पापों का न करना सुखकर है ।

३८. मूर्ख की संगति देर तक कष्ट देती है, मुर्ख की संगति शत्रु के समान सदा दुःखद है बुद्धिमान की संगति सगे-सम्बन्धियों की संगति के समान सदा सुखद है ।

३९. इसलिये आदमी को चाहिये कि प्रज्ञावान, बुद्धिमान, विज्ञ, क्षमाशील, धम्मधर तथा श्रेष्ठ आदमी का ऐसे ही अनुसरण करे जैसे चन्द्रमा नक्षत्रपथ का ।
४०. प्रमाद में न पडे और काम-भोगों के पीछे भी न पडे । अप्रमादी को विपुल सुख प्राप्त होता है ।
४१. जब बुद्धिमान आदमी प्रमाद को अप्रमाद से दबा देता है तो प्रज्ञा के प्रासाद पर चढकर, स्वयं शोक-रहीत होता हुआ वह धैर्यवान शोकग्रस्त मूर्ख जनता को ऐसे देखता है जैसे पर्वत पर चढा हुआ कोई धैर्यवान, नीचे जमीन पर खडी हुई जनता को ।
४२. प्रमादियो मे अप्रमादी, सोने वालो में जागरुक बुद्धिमान आदमी दूसरो को पीछे छोडकर स्वंय इस प्रकार आगे बढ जाता है जैसे किसी दुर्बल घोडे को पीछे छोडकर शीघ्रगामी घोडा ।

८. चित्त कि जागरुकता और एकाग्रता

१. प्रत्येक कार्य करते समय जागरुक रहो, प्रत्येक काम में सोच-विचार से काम लो; हर विषय में अप्रमादी और उत्साही रहो ।
२. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है ।
३. जो कुछ हम है, यह सब कुछ हमारे विचारों का ही परिणाम है; यह हमारे विचारो पर ही आधारित है, यह हमारे विचारो में ही निर्मित है । यदि आदमी बुरे विचारों से कुछ बोलता या करता है, तो वह दुःख भोगता है । यदि आदमी पवित्र विचार से कुछ भी बोलता या करता है, तो उसे सुख । मेलता है । इसलिये पवित्र विचार महत्वपूर्ण है ।
४. विचारहीन मत बनो, विचारवान बनो । दलदल में फंसे हुए हाथी की तरह अपने आप को पाप में से उबारो ।
५. आदमी को चाहिये कि अपने चित्त की रक्षा करे इसकी रक्षा करना आसान नहीं, यह जँहा चाहे वहाँ जाने वाला है; किन्तु चित्त की रक्षा सुखदायिनी है ।
६. जिस प्रकार ठीक से न छाई गई छत में पानी घुस जाता है, उसी प्रकार यदि चित्त साधना-विहीन है, तो उसमें राग प्रवेश कर जाता है ।
७. जिस प्रकार ठीक से छाई हुई छत में पानी नहीं प्रवेश कर पाता है; उसी प्रकार साधना-युक्त चित्त में राग का प्रवेश नही हो पाता है ।
८. पहले तो यह चित्त जहाँ चाहे वहाँ गया; लेकिन अब ये इस चित्त को वैसे ही काबू में रखूँगा जैसे अंकुश-धारी हथवान् मस्त हाथी को ।
९. जँहा चाहे वहाँ जाने वाले चित को साधना अच्छा है, इसे काबू में रखना कठिन है । किन्तु साधना-यूक्त चित्त सुखावह होता है ।
१०. जो इस दूर-गामी चित्त को संयत रखेंगे, वे मार (कामराग) के बन्धन से मुक्त रहेंगे ।
११. यदि आदमी का चित्त अस्थिर है, यदि वह धम्म का जानकार नहीं है, यदि उसका चित्त शान्त नहीं है तो उसकी प्रज्ञा कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होगी
१२. एक द्वेषी अपने द्वेषी की जितनी हानि कर सकता है, गलत रास्ते पर गया हुआ चित्त आदमी की उससे कहीं अधिक हानि कर सकता है ।
१३. इसी प्रकार, ठीक रास्ते पर गया हुआ चित्त आदमी की जितनी भलाई कर सकता है उतनी भलाई न माता-पिता ही कर सकते और न अन्य रिश्तेदार ही कर सकते है ।

९. अप्रमाद और वीर्य

१. जब अप्रमादी, प्रमाद को जीत लेता है तो शोक-मुक्त हुआ वह स्वयं शोक-ग्रस्त मानव-जाति को प्रज्ञारुपी प्रासाद पर चढा हुआ ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत-शिखर पर चढा हुआ बुद्धिमान आदमी नीचे तलहटी में खडे हुए मूर्खो को देखता है ।
२. प्रमादियो को अप्रमादी, सोते हुएं को जागने वाला ऐसे ही पीछे छोडकर चला जाता है जैसे शीघ्रगामी अश्व दुर्बल अश्व को ।
३. प्रमाद में मत पडो । काम-भोगो मे मत फंसो । अप्रमादी ही ध्यान-लाभ करता है ।
४. अप्रमाद अमृत पद है, प्रमाद तो मृत्यु के ही समान है । जो अप्रमादी है वे नहीं मरते है और प्रमादी तो मरे समान ही होते है।
५. अपने (जीवन के) उद्देश्य को, दूसरो के बडे अर्थ के लिये भी न छोडे । जब एक बार अपना उद्देश्य स्पष्ट हो जाय तो दृढतापूर्वक उसे ही पकड रहें ।

६. अप्रमादी बनो। प्रमाद को दूर भगाओ। सत्पथ पर चलो; जो आदमी सत्पथ पर चलता है, वह दुनिया मे सुख से रहता है।
७. प्रमाद एक कलंक है, सतत प्रमाद एक काला धब्बा है। निरन्तर प्रयास और प्रज्ञा की सहायता से प्रमाद रुपी विषैले तीर को निकाल बाहर करो।
८ प्रमाद में मत पडो। काम-भोगो में मत फसो। अप्रमादी तथा ध्यानी ही असीम सुख लाभ करते है।
९. यदि कोई अप्रमाद-युक्त आदमी जागरुक रहता है, यदि वह विस्मरण शील नहीं है, यदि उसकी चर्य्या शुद्धं है, यदि वह विवेक से काम लेता है, यदि वह संयत है तथा उसका आचरण धम्मानुसार है तो उसका यश बढता है।

१०. दु:ख और सुख, दान तथा दया

१. गरीबी से दु:ख पैदा होता है।
२. लेकिन यह आवश्यक नहीं कि गरीबी दूर होने से आदमी सुखी भी हो जाय।
३. ऊँचा जीवन-स्तर नहीं, बल्कि ऊंचा-आचरण सुख का मूलमंत्र है।
४. यही बौद्ध जीवन मार्ग है।
५. भूख सबसे बडा रोग है।
५. आरोग्य सबसे बडा लाभ है, सन्तोष सबसे बडा धन है, विश्वास सबसे बडा रिश्तेदार है और निर्वाण सबसे बडा सुख है।
७. वैरियो के बीच में भी अवैरी बनकर हम सुखपूर्वक जीयेंगे।
८. आतुरों के बीच में भी अनातुर बनकर हम सुखपूर्वक जीयेगे।
९. लोभियों में निलोभी बनकर हम सुखपूर्वक जीयेगे।
१०. जिस प्रकार बेकार की घास खेती को नुकसान पहुचाती है उसी प्रकार काम राग जनता को कष्ट देता है। इसलिये जो राग-मुक्त है उन्हे दान देने का महान फल है।
११. जिस प्रकार बेकार की घास खेतो को हानि पहुंचाती है उसी प्रकार प्रमाद जनता को कष्ट देता है। इसलिये जो प्रमाद-मुक्त है उन्हें दान देने का महान फल है।
१२. जिस प्रकार बेकार की घास खेतो को हानि पहुंचाती है, उसी प्रकार तृष्णा जनता को कष्ट देती है।इसलिये जो तृष्णा-मुक्त है उन्हे दान देने का महान् फल है।
१३. धम्म का दान सब दानो से बढकर है। धम्म का माधुर्य सब माधुर्यो से बडकर है। धम्म का आनन्द सब आनन्दों से बढकर है।
१४. जय से वैर पैदा होता है, पराजित दु:खी रहता है। जिसने जय और पराजय की भावना का त्याग कर दिया है वह संतोप से सुखी रहता है।
१५. रागाग्नि के समान आग नही, घृणा के समान पराजय नहीं, इस शरीर के समान कोई दु:ख (का कारण) नहीं, शान्ति के समान कोई सुख नहीं।
१६. दूसरों की कमियों की ओर वा दूसरों के कृत-अकृत की ओर मत देखो। अपनी ही कमियों या अपने ही कृत-अकृत की ओर देखो।
१७. जो विनम्र है, जो शुद्धि-गवेषक है, जो आसक्ति-रहित है, जो एकान्त का इच्छुक है जो पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता है तथा जो विवेक-प्रिय है--उसके लिये जीवन कठिन है।
१८. क्या संसार में कोई आदमी ऐसा है जो ऐसा अवसर ही नहीं देता कि उसे कोई कुछ कह-सुन सके, जैसे अच्छा घोडा अपने सवार को कभी चाबुक चलाने का अवसर नहीं देता?
१९. किसी से कठोर वचन मत बोलो। दूसरे भी वैसा ही प्रत्युत्तर देंगे। क्रोध-युक्त वाणी दुखद है। किसी पर भी प्रहार करोगे तो तुम पर भी प्रहार होगा।
२०. स्वतन्त्रता, उदारता, सदाशयता और निःस्वार्थपरता का संसार के लिये वैसा ही महत्व है जैसा पहिये की धुरी का पहिये के लिये।
२१. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

११. ढोंग

१. कोई झूठ न बोले । कोई दूसरे को झूठ बोलने की प्रेरणा न करे और कोई दूसरे के झूठ बोलने का समर्थन न करे । सभी प्रकार का मिथ्याभाषण दूर दूर रहे ।
२. जैसे तथागत बोलते हैं तदनूसार आचरण करते है । जैसा आचरण करते है, वैसा ही बोलते है ।क्योंकि वे,यथाभाषी तथा कारी और यथाकारी तथा भाषी' है इसलिये वे तथागत कहलाते है ।
३. यही बौद्ध जीवन-मार्ग है।

१२. सम्यक् मार्ग का अनुसरण

१. सन्मार्ग को चुनो । उस पथ से विचलित न हो ।
२. युँ पथ बहुत है, किन्तु सभी सन्मार्ग की ओर नहीं जाते ।
३. सन्मार्ग थोडे से ही लोगो को सुखी बनाने के लिये नहीं है, बल्कि सभी को सुखी बनाने के लिये है ।
४. यह आदि में कल्याणकारी होना चाहीये, मध्य में कल्याणकारी होना चाहिये और अन्त में कल्याणकारी होना चाहीये ।
५. सन्मार्ग पर चलने का मतलब है बौद्ध जीवन-मार्ग पर चलना ।
६. सर्वश्रेष्ठ मार्ग आर्य-अष्टांगिक मार्ग है, सर्वश्रेष्ठ सत्य चार आर्य-सत्य है, सर्वश्रेष्ठ धम्म विराग है, सर्वश्रेष्ठ पुरुष वह है जो चक्षुमान (बुद्ध) है ।
७. यही एक मार्ग है, प्रज्ञा की विशुद्धि का दूसरा मार्ग ही नहीं है । इसलिये इसी पर चलो ।
८. यदि तुम इस मार्ग पर चलोगे, तो तुम दुःख का अन्त कर सकोगे ।मैने दुःखरुपी शल्य की सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के अनन्तर इस मार्ग का उपदेश दिया है ।
९. प्रयास तो तुम्हें स्वयं करना होगा । तथागत तो केवल पथ-प्रदर्शक है ।
१०. 'सभी संस्कार अनित्य है' जब प्रज्ञा की आँख से कोई इसे देख लेता है, तो वह दुःख का अन्त कर सकता है ।
११. 'सभी धर्म अनात्म है' जब कोई प्रज्ञा से इसे देखता है तो उसे दुःख से मुक्ति प्राप्त होती है ।
१२. जो उत्साहपूर्वक कार्य करने के समय उत्साहपूर्वक कार्य नहीं करता, जो तरुण और सशक्त होने पर भी अत्यंत आलसी रहता है, जिसकी सकल्प-शक्ति दृढ नहीं है-ऐसा सुस्त आदमी कभी प्रज्ञावान नहीं हो सकता ।
१३. वाणी पर ध्यान दे, विचारों को संयत रखे तथा शरीर से कोई बुरा कर्म न करे । आदमी यदि केवल तीन कर्म-पंथो को निर्मल रखे तो वह बुद्ध-उपदिट पथ को प्राप्त कर लेगा ।
१४. वास्तविक ज्ञान लाभ है, ज्ञान का अभाव हानि है-इन दोनो बातों को जानकर आदमी को चाहिये कि ऐसा व्यवहार करे कि ज्ञान में वद्धि हो ।
१५. अपने ही हाथ से, शरद्कालीन कुमुद की तरह, स्नेह-सूत्र को काट डालो । शान्ति-पथ पर आरुढ हो । सुगत (बुद्ध) ने निर्वाण की देशना की है ।
१६. असद्धर्म का सेवन न करे । अविचारवान बनकर न रहे । मिथ्या मत में वृद्धि करने वाला न हो ।
१७. उठ कर खडा हो जाये । प्रमाद न करे । सद्धम्म का पालन करे । शीलवान संसार में सुखी रहता है ।
१८. जो पहले भले ही प्रमादी रहा हो, किन्तु बाद में जो प्रमाद को छोड देता वह बादलो से मुक्त चन्द्रमा कि तरह इस संसार को प्रभावित करता है।
१९. जिसके अच्छे कर्म उसके बूरे कर्म को ढक लेते है, वह बादलो से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस लोक को प्रकाशित करता है ।
२०. जो आदमी धम्म का अधिक्रम करता है और जो मृषावादी है वह कोई भी पाप-कर्म कर सकता, है ।
२१. जो सदा जागरुक है, जो दिन-रात अपने आप को अधिकाधिक शिक्षित करते रहते है और जो निर्वाणाभिमुख है, उनके आसव अस्त हो जाते है ।
२२. यह पुरानी बात है जो चुप रहता है उसकी भी निन्दा होती है, जो अधिक बोलता है उसकी भी निन्दा होती है, जो कम बोलता है उसकी भी निन्दा होती है; इस पृथ्वी पर कोई ऐसा नही जिसकी कोई न कोई निन्दा न करता हो ।
२३. न कोई ऐसा आदमी हुआ है, न होगा और न है, जिसकी निरन्तर निन्दा ही निन्दा होती हो अथवा निरन्तर प्रशंसा होती हो ।

२४. वाणी के क्रोध के प्रति सावधान रहो | अपनी जिव्हा पर संयम रखो | मन के कोप के प्रति सावधान रहे | अपने मन पर संयम रखो |

२५. अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का पथ है प्रमाद मृत्यु का पथ है | जोअप्रमादी है वे मरते नहीं है, जो प्रमादी है वे तो मरे हुए ही है |

१३. सद्धम्म के साथ मिथ्या धर्म को मत मिलाओ

१. जो झूठ को सच और सच को झूठ समझ बैठते है--ऐसे मिथ्या-दृष्टि-सम्पन्न लोंगो को कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होती |

२. जो सच को झूठ ओर झूठ को सच समझ बैठते है--ऐसे मिथ्या-दृष्टि-सम्पन्न लोंगो को कभी सत्य की प्राप्ति नहीं होती |

३. जो सत्य को सत्य और झूठ को झूठ समझ लेते हैं ऐसे सम्यक्-दृष्टि-सम्पन्न लोंगो को ही सत्य की प्राप्ति होती है |

४. जैसे ठीक से न छाई गई छत मे पानी प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार साधना-रहित चित में राग प्रवेश कर जाता है |

५. जैसे ठीक से छाई गई छत में पानी प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार साधनायुक्त चित्त में राग प्रवेश नहीं करता |

६. उठे | प्रमाद न करे | सन्मार्ग पर चले | सन्मार्ग पर चलने वाला इस लोक तथा दूसरे सभी लोको में सुखी रहता है |

७. सन्मार्गगामी बने | कुमार्गगामी न बने | सन्मार्ग पर चलने वाला इस लोक तथा दूसरे सभी लोको में सूखी रहता है |

चौथा भाग : बुद्ध प्रवचन

विभाग १ - गृहस्थो के लिए प्रवचन

१. सुखी-गृहस्थ

१. एक बार अनाथपिण्डक जहाँ भगवान् बुद्ध थे, वहाँ आया। अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया।
२. अनाथपिण्डक जानना चाहता था कि गृहस्थ कैसे सुखी रह सकता है?
३. तदनुसार अनाथपिण्डक ने भगवान् बुद्ध से प्रार्थना की कि वे उसे गृहस्थ जीवन के सुख का रहस्य समझायें।
४. भगवान् बुद्ध ने कहा कि गृहस्थ को पहला सुख तो सप्पत्ति का मालिक होने का होता है। एक गृहस्थ के पास धाम्मिक तरीके से, न्यायतः बडे परिश्रम से, बाहुबल से पसीना बहाकर कमाया हुआ धन होता है। इस विचार से कि मेरे पास न्यायतः अर्जित धन है, उसे प्रसन्नता होती है।
५. दूसरा सुख सम्पत्ति के भोगने का सुख है। एक गृहस्थ के पास धाम्मिक तरीके से, न्यायतः बडे परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर कमाया हुआ धन होता है। वह अपने धन फा उपभोग करता है और पुण्य-कर्म करता है। इस विचार से कि मैं अपने न्यायतः अर्जित धन से पुण्य कर्म करता हूँ, उसे प्रसन्नता होती है।
६. तीसरा सुख 'ऋण' ग्रस्त न होने का है। एक गृहस्थ के सिर पर किसी का भी कम या जादा,ऋण नही होता। इस विचार से कि मेरे सिर पर किसी का भी कम या ज्यादा 'ऋण' नही है, उसे प्रसन्नता होती है।
७. चौथा सुख दोष-रहित होने का है। एक गृहस्थ के शारीरिक कर्म निर्दोष होते है, वाणी के कर्म निर्दोष होते है और मन के कर्म निर्दोष होते है। उसे निर्दोषता का सुख प्राप्त होता है।
८. अनाथपिण्डक! निश्चय से ये चार सुख ऐसे है जिन्हें यदि गृहस्थ प्रयास करे तो प्राप्त कर सकता है।

२. पुत्री पुत्र से अच्छी हो सकती है

१. जिस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती मे ठहरे हुए थे, कोशल-नरेश प्रसेनजित् उनके दर्शनार्थ आया।
२. जिस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित भगवान् बुद्ध से बातचीत कर रहा था, राजमहल से एक दूत आया और उसने आकर राजा को कान में सूचना दी कि मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है।
३. राजा बडा दुखी और खिन्न-मन हो गया। भगवान् बुद्ध ने राजा से उसकी खिन्नता का कारण पूछा।
४. राजा बोला कि उसे अभी अभी यह अप्रसन्न करने वाला समाचार मिला है कि रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया है।
५. तब उस समय भगवान् बुद्ध ने इसी की चर्चा करते हुए कहा--"महाराज! यह हो सकता है कि पुत्री पुत्र से भी अच्छी निकले। वह बुद्धिमति हो, सुशीला हो और पति के माता पिता की सेवा करने वाली हो- -एक अच्छी लडकी। --और हो सकता है कि जिस पुत्र को वह जन्म दे वह बडे काम करे, बडे राज्यों का शासक हो। श्रेष्ठ माता का इस प्रकार का पुत्र अपने देश का नेता हो।

३. पति और पत्नी

१. एक समय भगवान् बुद्ध मधुरा (मधुरा) और नेरज्जा के बीच के महापथ से चले जा रहे थे।बहुत से गहस्थ तथा उनकी पत्नियाँ मधुरा (मथुरा) और नेरज्जा के बीच के महापथ से चली जा रही थीं।
२. उस समय भगवान् बुद्ध सडक छोडकर एक वृक्ष के नीचे जा विराजमान हुए। इन गृहस्थों और उनकी पत्नियों ने भी भगवान् बुद्ध को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा।
३. यह देख वे जहां तथागत विराजमान थे, वहां आये। आकर अभिवादन किया और एक ओर बैठ कर उन्होने तथागत से पूछा कि पति-पत्नी का आपस का ठीक व्यवहार कैसा होना चाहिये? इस प्रकार बैठे हुए उन गृहस्थों तथा उनकी पत्नियों को भगवान बुद्ध ने कहा--

४. “गृहपतियों! पति-पत्नी के इकट्ठे रहने के चार रुप है । एक दुष्ट पुरुष एक दुष्ट स्त्री के साथ रहता है, एक दुष्ट पुराष एक देवी के साथ रहता है, एक देवता एक दुष्ट स्री के साथ रहता है, और एक देवता एक देवी के साथ रहता है ।”
५. “गृहपतियों! एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, नशीली चीजें पीता है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलता है और गालियाँ देता है । उसकी पत्नी भी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है, नशीली चीजें पीती है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, सदाचारियों को कटु-वचन बोलती है और गालियां देती है । हे,गृहपतियों! इस प्रकार एक दुष्ट पुरुष, एक दुष्ट स्री के साथ रहता है ।”
६. “गृहपतियो । एक पति हत्या करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है नशीली चीजें पीता है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, सदाचारियो को कटु-वचन बोलता है और गालियाँ देता है । लेकिन उसकी पत्नी न हत्या करती है, न चोरी करती है, न व्यभिचार करती है, न झूठ बोलती है, न नशीली चीजे पीती है, न दुष्ट है, न पापी है, न लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, न सदाचारियो को कटु-वचन बोलती है और न गालियाँ देती है । इस प्रकार गृहपतियों! निश्चय से एक दुष्ट आदमी एक देवी के साथ रहता है ।”
७. “गृहपतियों । एक पति हत्या नहीं करता है, चोरी नहीं करता है, व्यभिचार नहीं करता है, झूठ नहीं बोलता है, नशीली चीजें नहीं पीता है, दुष्ट नही है ,पापी नहीं है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं करता है, सदाचारियों को कटु-वचन नहीं बोलता और गालियाँ नहीं देता है । लेकिन उसकी पत्नी हत्या करती है, चोरी करती है, व्यभिचार करती है, झूठ बोलती है, नशीली चीजें पीती है, दुष्ट है, पापी है, लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करती है, सदाचारियो को कटु वचन बोलती है और गालियाँ देती है । इस प्रकार गृहपतियो । निश्चय से एक देवता, एक दुष्ट स्री के साथ रहता है ।”
८. “गृहपतियो । एक पति-पत्नी न हत्या करते हैं, न चोरी करते हैं, न व्यभिचार करते हैं, न झूठ बोलते हैं, न नशीली चीजें पीते हैं, न दुष्ट हैं, न पापी हैं, न लोभ-युक्त मन से गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, न सदाचारियों को कटु-वचन बोलते हैं और न गालियाँ देते हैं ।इस प्रकार गृहपतियों । निश्चय से एक देवता एक देवी के साथ रहता है ।”
९. “गृहपतियो । पति-पत्नी के इकट्ठे रहने के ये चार रुप हैं।”

विभाग-२ सुचरित्र बने रहने के लिये प्रवचन

१ आदमी का पतन कैसे होता है?

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेंतवनाराम में ठहरे हुए थे ।
२. अब जब रात काफी बीत चुकी थी, तो एक देवता, जिसके प्रकाश से सारे जेतवन को प्रकाशित कर दिया था, तथागत के पास आया, और पास आकर श्रद्धा-पर्वक्र अभिवादन किया और एक ओर खडा हो गया । इस प्रकार खडे होकर उसने तथागत से निवेदन किया--
३. “तथागत! मैं आपकी सेवा में प्रश्न पूछने के लिये उपस्थित हुआ हूँ । कृपया बताएँ कि आदमी का पतन कैसे होता है ।” भगवान् बुद्ध ने आदमी के पतन के कारणों का वर्णन करना स्वीकार किया--
४. “उन्नतिशील आदमी के लक्षण भी आसान है ओर पतनोन्मुख आदमी के लक्षण भी आसान है । जो धम्म से प्रेम करता है व उन्नत होता है जो धम्म से घृणा करता है, उसका पतन होता है ।
५. “असत्पुरुष उसे अच्छे लगते है, सत्पुरुष उसे अच्छे नहीं लगते, असत्पुरुषों का धर्म अच्छा लगता है--यह पतनोन्मुख आदमी का दूसरा लक्षण है ।
६. वह तन्द्रालू होता है, उसे बडबड करना अच्छा लगता है, वह परिश्रमी नही होता, सुस्त होता है और क्रोधी होता है--यह पतनोन्मुख का तीसरा लक्षण है ।
७. जो पास में पैसा रखकर भी अपने गत-यौवन वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता--यह पतनोन्मुख का चौथा लक्षण है ।
८. “जो झूठ बोलकर किसी भले आदमी को, किसी श्रमण को वा किसी अन्य साधु को ठगता है--यह का पाचवा लक्षण है ।
१. जो आदमी बहुत सम्पति रखता है, पास बहुत धन-धान्य है; लेकिन जो उसे अकेला ही भोगता है--यह पतनोन्मुख का छठा लक्षण है ।

१०. "जिस आदमी को अपने जन्म का, धन का वा जाति का अभिमान है और अपने सम्बन्धियों से ही दूरदूर रहता है-यह पतनोन्मुख आदमी का सातवां लक्षण है।
११. "जो आदमी व्यभिचारी है, शराबी है, जुआरी है और जो कुछ पास है उसे ऐशे आराम में लुटाता है--यह पतनोन्मुख आदमी का आठवा लक्षण है।
१२. "जो अपनी पत्नी से ही सन्तुष्ट न रहकर, वेश्याओं तथा पर-स्त्रियों के पास जाता है-यह पतनोन्मुख आदमी का नौंवा लक्षण है।
१३. "जब वृद्ध व्यक्ति नव युवती को घर ले आता है, तो उसकी ईर्ष्या के कारण वह सुखपूर्वक नहीं सोता है। यह पतनोन्मुख आदमी का दसवां लक्षण है।
१४. "जो आदमी किसी असंयत फजूल-खर्च आदमी वा स्त्रियों को अधिकारी बना देता है--यह पतनोन्मुख आदमी का ग्यारहवाँ लक्षण है।
१५. "जो क्षत्रिय, अल्प साधन रखते हुए किन्तु बडी महत्वाकांक्षा होने के कारण राजा बनने की आकांक्षा रखता है --यह पतनोन्मुख आदमी का बारहवीं लक्षण है।
१६. "हे देव! पतन के इन कारणों को जान ले। यदि तू इनसे बचा रहेगा तो तू सुरक्षित रहेगा।"

२. बुरा आदमी

१. चारिका करते समय भगवान् बुद्ध ने उन भिक्षुओं को जो साथ चल रहे थे यह उपदेश दिया--
२. भिक्षुओं को सम्बोन्धित करके भगवान् बुद्ध ने कहा-- "क्या तुम जानते हो कि बुरा आदमी की पहचान क्या है?" " भन्ते! नहीं।"
३. मैं तुम्हें, एक बुरे आदमी की पहचान बतलाता हूँ।
४. "कोई कोई आदमी होता है जो पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, बिना पूछे ही दूसरों के दुर्गुणों का वर्णन करता है। लेकिन पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह दूसरों के दुर्गुण बिना ढके, बिना छिपाये, बडे विस्तार से कहता है। भिक्षुओं ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है।
५. "कोई कोई आदमी होता है, जो न पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, पूछे जाने पर भी दूसरे आदमीयों के गुण नहीं कहता। पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर, वह दूसरों के गुण कहता है।
६. "कोई कोई आदमी होता है, जो न पूछे जाने पर तो कहना ही क्या, पूछे जाने पर भी अपने दुर्गुण प्रकट नहीं करता। पूछे जाने पर, प्रश्न किये जाने पर वह अपने दुर्गुण प्रकट करता है, लेकिन उन्हें ढकता है और छिपाता है और उनका पूरा व्योरा नहीं बताता। भिक्षुओं, ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है।
७. "कोई कोई आदमी होता है, जो पूछे जाने की तो बात ही क्या बिना पूछे जाने पर ही अपने गुणों का वर्णन करता है। पूछे जाने प्रश्न किये जाने पर, वह अपने सद्गुणों का वर्णन करता है। वह उनको ढकता नहीं, छिपाता नहीं। वह उनका पूरा विवरण देता है। भिक्षुओं, ऐसा आदमी बुरा आदमी होता है।

३. सर्वश्रेष्ठ आदमी

१. चारिका करते समय भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को जो साथ चल रहे थे, यह उपदेश दिया--
२. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् बुद्ध नें कहा:-
"भिक्षुओं! इस संसार में चार तरह के लोग है"
३. "(१) जिसने न अपना भला किया और न किसी दूसरे का भला किया, (२) जिसने दूसरों का भला किया, अपना भला नही किया किन्तु (३) जिसने अपना भला किया, किन्तु दूसरों का भला नहीं किया तथा (४) जिसने अपना भी भला किया तथा दूसरों का भला भी किया।"
४. जिस आदमी ने न अपना भला करने का प्रयास किया और न दूसरों का भला करने का प्रयास किया, यह श्मशान की उस लकडी की तरह है जो दोनो सिरों पर जल रही है, और जिसके बीच में मैला लगा है। वह न गांव में जलावन के काम आती है और न जंगल में। इस तरह का आदमी न संसार के किसी काम का होता है, न अपने किसी काम का।

५. "जो अपनी हानि करके दूसरों का उपकार करता है, वह दोनो में अधिक अच्छा है ।"
६. "लेकिन भिक्षुओं! चारों तरह के आदमियों में सबसे अच्छा तो वही है जिसने दूसरों का भला करने का भी प्रयास किया है और अपना भला करने का भी प्रयास किया है ।"

४. ज्ञानी आदमी

१. एक बार भगवान् बुद्ध उकट्ठ और सेतब्ब नामक दो नगरों के बीच के महापथ पर जा रहे थे । उसी समय दोण नामक ब्राह्मण भी उकट्ठ और सेतब्ब नामक दो नगरों के बीच के महापथ पर जा रहा था ।
२. उस समय तथागत ने सडक छोड दी और एक वृक्ष के नीचे जाकर पद्मासन लगा कर बैठे । तब दोण ब्राह्मण भी उनके चरण-चिन्हों को देखता हुआ वहाँ जा पहुंचा जहाँ तथागत उस वृक्ष के नीचे शान्त-मुद्रा में, संयतेन्द्रिय, प्रसन्न-वदन और एकाग्रचित बैठे थे । यह देख दोण ब्राह्मण तथागत के पास पहुंचे ।
३. पास पहुंचकर उसने प्रश्न किया--

"क्या आप देवता नहीं है?"
"ब्राह्मण! मैं निश्चय से देवता नहीं हूँ ।"
"क्या आप गन्धर्व नहीं है?"
"ब्राह्मण! मैं निश्रय से गन्धर्व नहीं हूँ ।"
"आप यक्ष नहीं है?"
"ब्राह्मण! मैं निश्चय से यक्ष नहीं हूँ ।"
"क्या आप आदमी नहीं है?"
"ब्राह्मण! मैं निश्चय से (सामान्य) आदमी नहीं हूँ ।"

४. तथागत के ये उत्तर सुने तो द्रोण ब्राह्मण बोला--

"आप से देवता हैं, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,
आप से गन्धर्व है, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं.
आप से यक्ष है, पूछे जाने पर आप का उत्तर है नहीं,
आप से मनुष्य है, पूछे जाने पर आपका उत्तर है नहीं,
तो आखिर आप क्या है?"

५. "ब्राह्मण! मैं निश्चय से एक देव, एक गन्धर्व, एक यक्ष, एक मानव सब कुछ था, जब तक मैंने अपने आसवों का क्षय नहीं किया था । अब मैं इन आसवों से मुक्त हूँ, ये कटे ताड-वृक्ष के समान हो गये हैं, ये जडमूल से जाते रहे हैं । इनकी पुनरात्पति की सम्भावना नहीं रही है ।
६. "जिस प्रकार एक कँवल पानी में उत्पन्न होता है, पानी में बढता है, पानी से बाहर निकल आता है और फिर पानी से अस्पृष्ट होकर रहता है; इसी प्रकार है ब्राह्मण! मैं संसार में उत्पन्न हुआ हूँ, संसार में बडा हुआ हूँ किन्तु अब संसार को जीतकर संसार से अस्पृष्ट होकर रहता हूँ ।
७. "इसलिए ब्राह्मण! अब तुम मुझको तथागत (ज्ञानी आदमी) जानो ।"

५. मनुष्य-न्यायी तथा सज्जन

१. भिक्षुओ को सम्बोधित करके भगवान् बुद्ध ने कहा—'चार प्रकार के लोगों का जानना चाहिये, यदि तुम न्यायी और सज्जन आदमी की पहचान करना चाहते हो ।'
२. "भिक्षुओं, कुछलोग ऐसे होते हैं जो अपनी भलाई करने की कोशिश करते है दूसरों की नहीं ।"
३. "भिक्षुओ, एक आदमी अपने कामच्छन्द को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरों के कामच्छन्द को दूर करने की प्रेरणा नहीं करता अपने व्यापाद (क्रोध) को दूर करने की कोशिश नहीं करता हैं, किन्तु दूसरों के क्रोध को दूर करने की प्रेरणा नहीं करता; अपनी अविद्या को दूर करने की कोशिश करता है, किन्तु दूसरो की अविद्या दूर करने की प्रेरणा नहीं करता ।"

४. “भिक्षुओं! यह आदमी निश्चय से अपनी भलाई करने की काशिश करते हैं दूसरों की नहीं ।”
५. भिक्षुओ कुछ लोग ऐसे होते है जो दुसरों की भलाई करने की कोशिश करते है, अपनी नहीं ।
६. “भिक्षुओं, एक आदमी अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की कोशिश नहीं करता, किन्तु दूसरों के कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या दूर करने की प्रेरणा देता है ।”
७. “भिक्षुओ! यह आदमी निश्चयसे दूसरों की भलाई करने की कोशिश करता है, अपनी नहीं ।”
८. “भिक्षुओ, कुछ लोग ऐसे होते है जो न अपनी भलाई करने की कोशिश करते हैं और न दूसरों की भलाई करने की कोशिश करते है ।”
९. भिक्षुओं, एक आदमी न अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की कोशिश करता है, न दूसरों के कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या के दूर करने की प्रेरणा देता है ।
१०. “भिक्षुओं! यह आदमी निश्चय से न अपनी भलाई करने की कोशिश करता हे और न दूसरों की ।
११. “भिक्षुओं! कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी भलाई करने की कोशिश भी करते है, तथा दूसरों की भलाई करने की कोशिश भी करते है ।”
१२. “भिक्षुओं! एक आदमी अपने कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या को दूर करने की भी कोशिश करता है तथा दूसरों के भी कामच्छन्द, व्यापाद तथा अविद्या दूर करने की प्रेरणा करता है ।”
१३. “भिक्षुओं! यह आदमी निश्चय से अपनी भलाई करने की भी कोशिश करता है तथा दूसरों की भलाइ करने की भी कोशिश करता है ।”
१४. यह अन्तिम आदमी ही न्यायी और सज्जन माना जाना चाहिए ।

६. शुभ-कर्म करने की आवश्यकता

१. एक अवसर पर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार सम्बोधित किया--
२. “भिक्षुओं कुशल-कर्म करने में मत झिझको ।यह जो,कुशल-कर्म, शब है यह एक प्रकार से,सुख’ का, या जिसको हम इच्छा करते हैं उसका, या जो कुछ हमको प्रिय है उसका अथवा जो कुछ हमे आनन्द देने वाला है उसका पर्याय ही है ।भिक्षुओं! मैं स्वय साक्षी कि मैंने स्वयं चिरकाल तक शुभ-कर्मो के इच्छित, रुचिकर, प्रिय तथा आनन्द-दायक फल का उपभोग किया है ।
३. “मैं प्राय : अपने आप से पूछता हूँ कि यह किस कुशल-कर्म का परिणाम है, यह किस कुशल-कर्म का फल है कि मैं इस समय इतना सन्तुष्ट और
सुखी हूँ?
४. “जो उत्तर मुझे मिलता है वह यह है कि यह तीन कुशल-कर्मो का फल है दान का, शील का तथा संयम का ।
५. “वह घडी मंगल घडी होती है, वह घडी उत्सव मनाने की घडी होती है, वह घडी आनन्द मनाने की घडी होती है, वह घडी मंगलमय-मुहूर्त होती है जब दान के योग्य अधिकारियों को दान दिया जाता है, जब शुभ-कर्म, शुभ-वचन तथा शुभविचारो के परिणाम स्वरुप इनका अभ्यास करने वालों का शुभ-फल की प्राप्ति होती है ।
६. “भाग्यवान् हैं वे जिन्हें इस लाभ की प्राप्ति होती है, जिन्हे इस समृद्धि की प्राप्ति होती है! इसलिए तुम भी अपने सब सगे-सम्बन्धियों सहित निरोग और सुखी रहते हुए सत्यपथ की समृद्धि को प्राप्त करो ।”

७. शुभ संकल्प करने की आवश्यकता

१. एक बार श्रावस्ती में जेतवन में विहार करते समय भगवान बुद्ध ने भिक्षुओ को कहा--
२. , भिक्षुओं, पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये शुभ-संकल्पों की नितान्त आवश्यकता है ।
३. “मैं तुम्हें बताता हूँ कि तुम्हारे शुभ-संकल्प कैसे होने चाहिये ।
४. (१) संकल्प होंना चाहिये कि हम जीवन भर माता-पिता की सेवा करेंगें ।(२) संकत्प होना चाहिये कि हम अपने बडों का आदर करेंगें ।(३) संकल्प होना चाहिये कि हम मधुर-भाषी रहेंगें ।(४) संकल्प होना चाहिये कि हम किसी की बुराई नहीं करेंगे, (५) सकल्प होना चाहिये कि हम अपने हृदय को स्वार्थपरता से मुक्त कर, दान शील होकर रहेंगे ।(६) संकत्प होना चाहिये कि हमें जो कुछ प्राप्त होगा, वह हम दूसरों में बाँट कर ग्रहण करेंगे ।

५. "संकल्प होना चाहिये कि हम जीवन भर शान्त रहेंगे और यदि क्रोध उत्पन्न होगा तो हम उसे शान्त कर लेंगे ।
६. भिक्षुओं, ये सात संकल्प हैं जिन्हे तुम अपने मन में जगह देने से और जिनके अनुसार आचरण करने से जीवन को सुखी और पवित्र बना सकोगे ।"

विभाग ३. -सदाचरण सम्बन्धी प्रवचन

१. सदाचरण क्या है?

१. एक बार जब भगवान बुद्ध महान भि क्षु संघ सहित चारिका कर रहे थे तो वह शाला नाम के एक ब्राह्मण-ग्राम में पहुंचे ।यह ग्राम कोशल-जनपद में था ।
२. शाला ग्राम के ब्राह्मण-मुखियों ने सुना कि चारिका करते करते भगवान् बुद्ध उनके कोशल जनपद स्थित गांव में आये हैं ।
३. उनको लगा कि भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ जाना अच्छा है ।इसलिये शाला ग्राम के ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास गये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये ।
४. उन्होंने तथागत से प्रार्थना की कि वे बताये कि सदाचरण का क्या मतलब है?
५. ध्यान देकर सुनने के लिये उद्यत ब्राह्मणों को भगवान बुद्ध ने कहा--"शरीर के तीन दुराचरण होते है, वाणी के चार दुराचरण होते हैं और मन के तीन दुराचरण होते हैं ।
६. जहाँ तक शरीर के दुराचरण की बात है एक आदमी (१) रक्त-रंजित
हाथों से, हत्यारा होने के कारण, प्राणियो के प्रति किसी भी प्रकार की दया न होने के कारण-जीव हत्या कर सकता है, (२) वह गांव या जंगल में जो वस्तु उसकी नहीं है, उसे चोरी की नियत से बिना दिये गये ले सकता है; अथवा (३) वह व्यभिचार कर सकता है, माता, पिता, भाई, बहन अथवा अन्य सम्बन्धियों की अधीनता में रहने वाली (अविवाहित) लडकियों से, ऐसी लडकियों से भी जिनकी मंगनी हो गई है, जिनके गले में मंगनी की माला पडी है ।
७. जहाँ तक वाणी के दुराचरण की बात है कि (१) आदमी झूठ बोल सकता है जब उसे सभा के सामने या ग्राम-पँचायत के सामने या परिवार-परिषद के सामने या राजकीय-परिषद के सामने या अपनी श्रेणी के सामने साक्षी देने के लिये कहा जाय तो वह न जानते हुए कह सकता है कि मै जानता हूँ, जानता हुआ कह सकता है कि मैं नही जानता, न देखते हुए कह सकता है कि देखा है और देखते हुए कह सकता है कि मैंने नहीं देखा, वह अपने हित में, किसी दूसरें के हित में अथवा किसी लाभ के कारण जानबूझ कर झूठ बोल सकता है ।अथवा (२) वह एक चुगल-खोर हो सकता है, यहा सुनी और वहाँ जाकर कह दी ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोंगों का झगडा हो जाये, अथवा वहाँ सुनी और यहाँ कह दी ताकि वहाँ के लोगों और यहा के लोगों का झगड़ा हो जाय । वह शान्ति को भंग करने वाला और अशान्ति को उत्तेजित करने वाला होता है, झगडा लगाने की नीयत से ही वह बोलता है, झगडा लगाने में ही आनन्द आता है, मजा आता है, प्रसत्रता होती है ।अथवा (३) वह जबान कडवा हो सकता है, जो कुछ वह बोलता है वह अप्रिय और कठोर होता है, दूसरों के दिलों कौ जख्मी करने वाला, दूसरों को दुःख पहुचाने वाला, क्रोध को उत्तेजित करने वाला और एकाग्रता को भंग करने वाला ।अथवा (४) वह एक बकवासी हो सकता है, व्यर्थ बिना मतलब की बात करते रहने वाला कभी धम्म की बात न करने वाला, कभी नीति की बात न करने वाला, हमेशा ही तुच्छ, असामयिक, निराद्देशीय तथा निष्प्रयोजन बात करने वाला ।
८. जहाँ तक मन के दूराचरण की बात है एक आदमी (१) लोभी हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि दूसरे सभी लोंगों की सम्पति उसी की हो; अथवा (२) वह द्वेष-बहुल हो सकता है, वह यह इच्छा कर सकता है कि उसके आस-पास के प्राणी मारे जाये, नष्ट हो जायें, किसी तरह न रहें; अथवा (३) वह मिथ्या दृष्टि हो सकता है, मिथ्या-धारणाओं वाला, वह यह सोच सकता है कि दान, त्याग (यज्ञ) और दक्षिणा जैसी कोई चीज नहीं, शुभाशुभ कर्मो के फल जैसी कोई चीज नहीं लोक-परलोक जैसी कोई चीज नहीं; माता-पिता या सम्बन्धी जैसी कोई चीज नहीं और संसार में कोई ऐसे श्रमण-ब्राह्मण नहि है जिन्होंने सम्यक् -मार्ग ग्रहण कर या सम्यक-मार्ग पर चलकर इस लोक तथा पर-लोक का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो और दूसरों को भी कराया हो ।
९. इनके विराद्ध तीन शरीर के सदाचरण है, चार वाणी के सदाचरण है और तीन मन के सदाचरण है ।
१०. जहाँ तक -शारीरिक सदाचरण की बात है , एक आदमी (१) जीव-हिंसा से विरत होता है, हर तरह की प्राणी-हिंसा से विरत रहता है; दण्ड-त्यागी, खड्ग-त्यागी; वह निरपराधी होता है, वह दयालु होता है, उसके मन में हर प्राणी के लिए करुणा और अनुकम्पा रहती है ।(२) वह चोरी का त्याग करता है, वह दूसरों की किसी ऐसी चीज का ग्रहण नहीं करता, जो उसे दी न गई हो । वह ईमानदारी का जीवन व्यतीत करता है ।(३) वह काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार से दूर रहता है ।वह ऐसी लडकियों से सहवास

नहीं करता जो माता-पिता भाई -बहन अथवा अन्य सम्बन्धियों की अधीनता में रहने वाली (अविवाहित) लडकियाँ हों और ऐसी लडकियों से भी जिनकी मँगनी हो गई है वा जिनके गले में मँगनी की माला पड गई है ।
११. जहाँ तक वाणी के सदाचरण की बात है एक आदमी (१) झूठ का त्याग करता है, मृषावाद से विरत रहता है, जब उसे सभा के सामने या ग्राम-पचायत के सामने सा परिवार-परिषद के सामने या राजकीय-परिषद के सामने या अपनी श्रेणी के सामने साक्षी देने के लिए कहा जाता है तो वह न जानते हुए कहता है कि मै नहीँ जानता हूँ, जानते हुए कहता है कि मैं जानता हूँ, नहीँ देखता होता तो कहता है कि मैंने नहीं देखा, देखा होता है तो कहता है कि देखा है; वह अपने हित में , वा दूसरे के हित में अथवा किसी लोभ के कारण जान-बूझाकर झूठ नहीं बोलता ।(२) वह चुगलखोरी नहीं करता , यहाँ सुनी ओर वहाँ कह दी ताकि यहाँ के लोगों और वहाँ के लोगो का झगडा हो जाय, अथवा वहाँ सुनी और यहाँ कह दी कि वहाँ के लोगों का झगड़ा हो जाय ,वह शान्ति को भंग करने वाला और अशान्ति को उत्तेजित करने वाला नही होता, शान्ति कराने की नियत से ही वह बोलता है, मेल-मिलाप कराने में ही उसे आनन्द आता है, मजा आता है अथवा प्रसत्रता होती है ।(३) वह जबान का कडुआ नहीं होता, जो कुछ वह बोलता है बिना कटुता के होता है, प्रिय होता है, मैत्री-भाव लिये होता है, दिल से बोलता है, शि बोलता है, अनुकूल बोलता है तथा सब को अच्छा लगने वाला बोलता है ।(४) वह बकवासी नहीं होता, बिना मतलब की व्यर्थ बात करने वाला नहीँ होता ।हमेशा धम्म की बात, नीति की बात करने वाला होता है, ऐसी बात जो समयनुकूल है, ऐसी बात जो याद रहे, ऐसी बात जो-ज्ञान भरी हो, ऐसी बात जो ठीक से कही गई हो तथा ऐसी बात जो हितकर हो ।
१२. जहाँ तक मन के सदाचरण की बात है वह आदमी (१) निर्लोभी होता है, वह कभी भी यह नहीं चाहता कि दूसरे लोगो की सारी सम्पत्ति पर उसका अपना अधिकार हो जाय, (२) वह कभी अपने मन मे द्वेष को स्थान नहीं
देता, उसकी यही इच्छा रहती है कि उसके आसपास के सभी प्राणी शान्ति और सुख के साथ रहें, हर प्रकार की शत्रुता और अत्याचार से सुरक्षित रहें ।(३) उसकी दृष्टि सम्यक होती है तथा उसके संकत्प ओर धारणायें भी ठीक होती है ।
१३. “दुराचरण तथा सदाचरण से मेरा यही अभिप्राय है ।”

२. सदाचरण की आवश्यकता

१. तब तथागत ने पाटलिग्राम के उपासकों को सम्बोधित किया : --
२. “हे गृहपतियो! दुश्शील दुष्ट आदमी को यह दुष्टपरिणाम भुगतने पडते है ।
३. दुश्शील दुष्ट आदमी प्रमाद के कारण धन की बहुत हानि उठाता है ।
४. उसका अपयश होता है, जो उसे दुनिया की नजरों में गिरा देता है ।
५. वह किसी भी जमात में जाये, चाहे यह क्षत्रिय-परिषद हो, चाहे ब्राह्मण परिषद हो चाहे गृहपति परिषद हो अथवा चाहे श्रमण परिषद हो, वह हर जगह बडे संकोच से जाता है, व्यग्र-चित्त हो जाता है ।वह निर्भय नहीं होता ।यह तीसरी हानि है ।
६. फिर उसे मरते समय शान्ति नहीँ होती, वह मरण-काल में दु:खी रहता है ।यह चौथी हानि है ।
७. हे गृहपतियो! दुश्शील दुष्ट आदमी को ये दुष्परिणाम भुगतने पडते है ।
८. हे गृहपतियों! अब उन लाभों का विचार करो जो सज्जन शीलवान आदमी को प्राप्त होते है ।
९ "सज्जस्त शीलवान आदमी अप्रमाद के कारण बहुत धन-सग्रह कर लेता है।
१०. “उसका सुयश फैल जाता है ।वह जहाँ जाता है सम्मानित होता है ।
११. “वह किसी भी जमात में जायें, चाहे वह क्षत्रिय-परिषद हो, चाहे ब्राह्मण परिषद हो, चाहे गृहपति-परिषद हो, अथवा चाहे श्रमण-परिषद हो--वह हर जगह निस्संकोच जाता है, निर्भय हो प्रवेश करता है ।
१२. फिर, उसे मानसिक शान्ति प्राप्त रहती है, मरते समय वह चित्त की शान्ति के साथ शरीर त्यागता है ।
१३. मूर्ख आदमी पाप करते समय यह तक नहीं जानता कि वह पाप कर रहा है ।अग्नि के समान उसके पाप-कर्म उसे जला देते है ।
१४. जो कोई ऐसे व्यक्ति को--जो अहानिकर है, जो निर्दोष है--दु:ख देता है, वह या तो किसी बडी दुर्घटना का शिकार हो जाता है या उसका चित्त ही विक्षिप्त हो जाता है या उसके धन की बडी हानि होती है ।”

३ सदाचरण और दुनिया की जिम्मेदारियाँ

१. एक बार जब भगवान बुद्ध राजगृह के वेळुवनाराम में उस जगह ठहरे हुए थे जहाँ गिलहारियो को दाना चुगाया जाता था उसी समय बहुत से
भिक्षुओं को साथ लिये, आयुष्यान् सारिपुत्र दक्षिण की पहाडियों में चारिका कर रहे थे ।
२. रास्ते में उनकी एक भिक्षु से मुलाकात हुई जिसने राजगृह में वर्षावास किया था ।शिष्टाचार की बात हो चुकि तब सारिपुत्र ने भगवान बुद्ध का तथा संघ का कुशल-समाचार पूछा ।उन्हें बताया गया कि वे अच्छी तरह है ।तब सारिपुत्र ने राजगृह के तर्ण्डुलपाल-द्धार के धानम्नानी ब्राह्मण का कुशल-समाचार पूछा ।उन्हें बताया गया कि वह भी अच्छी तरह है ।
३. तब सारिपुत्र ने उस भिक्षु से प्रश्न किया : --और क्या धानम्नानी ब्राह्मण अप्रमाद पूर्वक रह रहा है?"
४. भिक्षु का उत्तर था: --"धानम्नानी ब्राह्मण अप्रमादपूर्वक कैसे रह सकता है? वह ब्राह्मणों और गृहपतियो को मूण्डने के लिये राजा का उपयोग करता है और राजा को मूण्डने के लिये ब्राह्मणों और गृहपतियो का उपयोग करता है ।और बडे सुशील कुल से आई हुई जो उसकी सुशील पत्नि थी, वह भी मर गयी है ।उसने अब एक दूसरी पत्नि रखी है जो न कुल से सुशील-कुल से आई हुई है, न स्वयं सुशील है ।"
५. सारिपुत्र बोले : --"धानम्नानी के प्रमाद कें बारे में यह तो बुरा सचमुच बहूत बुरा समाचार सुनने को मिला ।शायद कही कभी उससे भैंट हो तो मैं उससे बातचीत करना पसँद करुंगा ।"
६. दक्षिण की पहाडियों मे यथेच्छ रह चुकने के बाद सारिपुत्र चारिका करते करते राजगृह आये और वेळुवनाराम में निवास किया ।
७. दसरे दिन प्रात:काल चीवर पहन और पात्र हाथ में लें सारिपुत्र भिक्षाटन के लिये नगर में गयें ।वह ऐसे समय गये जब धानम्नानी ब्राह्मण नगर से बाहर अपनी गौओं का दुहा जाना देख रहा था ।
८. भिक्षाटन के अनन्तर भिक्षा ग्रहण कर चुकने पर सारिपुत्र ने उस ब्राह्मण को ढूँढ लिया ।सारिपुत्र को आता देख वह ब्राह्मण उन्हें मिलने के लिये आया और आते ही पहले दूध पीने का निमंत्रण दिया ।
९. " ब्राह्मण! नहीं, आज का भौजन मैं समाप्त कर चुका और अब मध्याह के समय एक वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम करुंगा । मुझे मिलने के लिये वहाँ आना ।"
१० धानम्नानी ने स्वीकार किया और अपना खाना खा चुकने के बाद सारिपुत्र के पास आया और अभिवादन कर बैठ गया ।
११. सारिपुत्र ने ही बात-चीत आरम्भ की--"धानम्नानी! क्या मैं -विश्वास करुँ कि तुम पहले जैसे ही अप्रमादी तथा सदाचरण की चिन्ता करने वाले हो?"
१२. "यह कैसे हो सकता है जब अपनी खाने -पीने की चिन्ता करने के अतिरिक्त मुझे अपने. माता-पिता का पालन करना पडता है; अपनी पत्नि और परिवार का पोषण करना पडता है; अपने दासो और नौकर-चाकरों को खाना देना पडता है, अपने परिचितों, मित्रों, रिश्तेदारों और अतिथियो, का आतिथ्य करना पडता है, अपने मृत -पितरो का श्राद्ध भी करना पडता है, देवताओं को भी बलि देनी पडती है और राजा को भी कर चुकाना पडता है!"
१३. "धानख्तानी! तुम क्या सोचते हो? मान लो कि एक आदमी ने अपने माता-पिता के कारण न्याय और औचित्य का मार्ग छोड दिया है और अब वह पकडा जा रहा है, तो क्या इससे उसे कोई लाभ होगा, यदि वह कहे कि उसने अपने माता-पिता के लिए न्याय और औचित्य के पथ का त्याग कर दिया था और इसलिये, उसे न पकडा जाये?"
१४. , नहीं, सब प्रार्थनाओं के बावजूद, जेलर उसे जेल मैं डाल देगा ।"
१५. "क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि वह स्वयं कहे अथवा उसकी पत्नी और परिवार के सदस्य कहे, कि उसने उनकी खातिर न्याय और औचित्य के पथ का त्यागे किया था?"
१६. "नहीं ।"
१७. "क्या इससे उसे कोई लाभ होगा यदि उसके दास या दूसरे नौकर-चाकर उसकी वकालत करें?"
१८. "बिल्कुल नहीं ।
१९. "अथवा उसके मित्रों वा परिचितों ने उसकी वकालत की?"
२०. "बिल्कुल नहीँ ।"
२१. "अथवा उसके रिश्तेदारों वा अतिथियों ने उसकी वकालत' की?"
२२. "बिल्कुल नहीं ।"
२३. "अथवा उसके मृत-पितरों ने ही उसकी वकालत की कि इसने देवताऔं को,बलि' देने के लिये या राजा को,कर' देने के लिये न्याय और औचित्य के मार्ग का त्याग किया था?"

२४. “बिल्कुल नहीं ।”
२५. “अथवा इससे उसे कोई लाभ होगा यदि या तो वह स्वयं कहे या उसकी ओर से दूसरे कहें कि इसने अपने खाने पीने के लिये ही न्याय और औचित्य का मार्ग छोडा है?”
२६. “नही ।
२७. धानम्नानी! तूम क्या सोचते हो? दोनो में से कौन अच्छा आदमी है? क्या वह जो अपने माता-पिता के लिये न्याय और औचित्य का पथ त्याग देता है अथवा वह जो उनकी चिन्ता न कर न्याय और औचित्य के पथ को नहीं त्यागता?
२८. धानम्नानी का उत्तर था : --”दूसरा, क्योंकि न्याय और औचित्य के पथ को त्यागने से न्याय और औचित्य के पथ को न त्यागना अच्छा है ।”
२९. “और फिर धानम्नानी! दूसरे रास्ते हैं, जिनसे बिना न्याय और औचित्य का त्याग किये, बिना कुमार्ग पर चले वह अपने माता-पिता का पालन कर सकता है ।तो क्या स्त्री, परिवार और सभी दूसरों के सम्बन्ध में यही बात नही है?”
३०. “सारिपुत्र! यही बात है
३१. तब सारिपुत्र के कथन से प्रसब हो धानम्नानी ब्राह्मण ने सारिपुत्र को धन्यवाद दिया और उठकर चला गया ।

४ सदाचरण में पूर्णता कैसे प्राप्त की जाय?

१. एक बार जब भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवनाराम मेँ विराजमान थे, उनके पास पाँच सौ उपासक आये ।उनमें से एक का नाम, धाम्मिक’ था ।२. धाम्मिक ने तथागत से पूछा--”आपके श्रावक सदाचरण में पूर्णता कैसे प्राप्त करते है?
३. “मैँ आपसे यह प्रश्न इसलिये पूछता हूँ क्योंकि आप मानव-कल्याण के अनुपम शास्ता है ।
४. “समर्थ तैर्थिक और परिव्राजक आप से पार नहीं पा सके ।आयु-प्राप्त वृद्ध ब्राह्मण और दूसरे भी शास्तार्थ-प्रिय लोग आपके अनुयायी बन जाते है ।आप के द्वारा उपदिष्ट सत्य बडा सुक्ष्म है, किन्तु बडा सु-आख्यात है ।सब लोग इसके लिये तरसते है । भगवान्! कृपा करके हमें इस प्रश्न का उत्तर दें ।
५. ” भगवान! हम उपासकों को आपका परिशुद्ध धर्म श्रवण करना मिले ।
६. तथागत ने उन (वृतो) उपासको पर दया करके कहा : --” ध्यान दो ।मैं तुम्हें शुद्धाचरण के नियम कहता हूँ ।सुनो और तदनुसार आचरण करो ।”
७. “जान से मारो नहीं, हत्या न करो, हत्या का अनुमोदन न करो ।सबल या दुर्बल कैसा भी प्राणी हो--उसकी हिंसा न करो ।
८. “कोई उपासक जानबूझ कर चोरी न करे, न चोरी कराये और न चोरी का अनुमोदन करे--दूसरे जो दे वही ले ।
१. “अब्रह्मचर्य को आग के गढे के समान समझें ।अब्रह्मचारी बनकर विवाहिता स्त्री से भी संसर्ग न करे ।
१०. “निजी परिषद में, अदालत में या बात-चीत में झूठ न बोले, न वह
किसी को झूठ बोलने को प्रेरित करे और न उसका समर्थन करे ।उसे चाहिये कि वह असत्य का त्याग कर दे ।
११. “उपासक को चाहिये कि इस नियम को माने, नशीले, पदार्थो को ग्रहण न करें ।किसी को पान न कराये ।किसी के पान करने का अनुमोदन न करे ।देखें कि शराब आदमी को कैसा पागल बना देती है ।
१२. शराब के नशे में उपासक पाप कर बैठते है तथा दूसरे प्रमादी उपासको को पाप में प्रवृत्त करते है ।इस लिये इस पागल बनाने वाले व्यसन का इस मूर्खता का, इस “मूर्खो के स्वर्ग” का परित्याग करे ।
१३. “प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, नशीले पेय पदार्थो से दूर रहे, अब्रह्मचर्य से विरत रहे तथा रात को विकाल भोजन न करे ।
१४. “सुगन्धियो तथा पुष्य-मालाओ आदि का त्याग करे तथा ऊँची-बडी शैथ्या पर न सोये--इस प्रकार सभी उपोसथ दिनों में यह व्रत ग्रहण करे, और पवित्र मन से इस अष्टागिक व्रत का पालन करे ।
१५. “प्रात :काल इन व्रतों को ग्रहन करे और शुद्ध, श्रद्धायुक्त चित्त से भिक्षुओं को यथा-सामर्ध्य भोजन तथा पेय पदार्र्थो का दान करे ।
१६. “माता-पिता की सेवा करे ।धार्मीक-धन्धा करे ।इस प्रकार दृढ श्रद्धावान उपासक ऊंचे पद को प्राप्त करता है ।”

५. सन्मार्ग पर चलने के लिये साथी की प्रतीक्षा अनावश्यक

१. जिस प्रकार हाथी, युद्ध मेँ बाण से गिरे हुए तीरो को सहन करता है, उसी प्रकार मुझे दुर्वचनो को सहन करना चाहिये; क्योंकि सँसार में
दुष्टों के दुश्शीलो की कमी नहीं ।
२. जो हाथी शान्त-दान्त होता है, उसी को युद्ध में ले जाया जाता है; जो हाथी शान्त-दान्त है उसी पर राजा चढता है; इसलिये प्राणियों में वह शान्त-दान्त व्यक्ति ही सर्वश्रेष्ट है जिसे कोई कटु-वचन विचलित नहीं करता ।
३. शिक्षित खच्चर अच्छा होता है, सिन्तु का शिक्षित श्रेष्ट-अश्व अच्छा होता है, शिक्षित बल-सम्पन्न हाथी अच्छा होता है; आदमियों मेँ आत्म-सयंत सबसे अच्छा होता है ।
४. "ऐसे श्रेष्ट वाहन भी हमें निर्वाण-पथ पर आगे नहीं ले जा सकते ।हम स्वयं आत्म-निर्भर, आत्म-संयत होकर ही निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो सकते है ।
५. "अप्रमाद में आनन्द मनाओ ।स्मृति-समजन्य युक्त रहो ।कभी प्रमाद
मत करो ।अपने आप कों कुपथ से हटाकर सुपथ पर लाओ; हाथी को दलदल में से निकालो ।
६. यदि तुम्हें कोई एक श्रेष्ट, बुद्धिमान,दृढ साथी मिला है तो सब चिन्ताओं को छोडकर उसके साथ प्रसत्रतापूर्वक विवरण करो ।
७. यदि तुम्हें कोई श्रेष्ट, बुद्धिमान साथी नहीं मिला है, तो जिस प्रकार राजा अपने विजित प्रदेश को छोडकर जंगल में अकेले विचरणें वाले हाथी की तरह अकेला चल देता है, उसी प्रकार अकेले ही विचरण करो ।
८. अकेला रहना अच्छा है ।मूर्खो का साथ हो ही नहीं सकता ।अकेला रहे ।कोई पाप-कर्म न करे ।अत्येच्छ रहे ।एकान्त में रहे--जैसे जंगल में बल-सम्पन हाथी ।
९. तमाम अकुशल चेतनाओं का त्याग करे ।१०. अकुशल-चेतनाओं से मुक्ति-लाभ करने की विधि यह है : --
११ तुम्हें यह संकत्प करना होगा कि चाहे दूसरे लोग हानि करने वाले हों, तुम्हें किसी को नुकसान नहीं पहुँचाना होगा ।
१२. चाहे दूसरे हिंसक हो, तुम हिंसा कभी नहीं करोगे ।
१३. चाहे दूसरे चोरी करे, तुम नहीं करोगे ।
१४. चाहे दूसरे पवित्र जीवन व्यतीत न करें, तुम करोगे ।
१५. चाहे दूसरे किसी की निन्दा करे, विराद्ध बोले, व्यर्थ बोलें, तुम नहीं बोलोगे ।
१६. चाहे दूसरे लोभ-लालच करें, तुम नहीं करोगे ।
१७ चाहे दूसरे द्वेषी हो, तुम द्वेष नहीं करोगे ।
१८. चाहे दूसरे मिथ्या-दृष्टि हो , तुम नहीं होगे ।चाहे दूसरों के मिथ्या-संकल्प हों, तुम सम्यक्-संकल्प वालें रहोगे ।चाहे दूसरों की मिथ्या-वाणी चाहे हो, तुम अपनी वाणी सम्यक् रखोगे ।चाहे दुसरों के कर्म मिथ्या हों, तुम अपने कर्म सम्यक रखोगे ।चाहे दूसरों के जीविका के साधन मिथ्या हों, तुम अपनी जीविका के साधन सम्यक् रखोगे ।चाहे दूसरों का प्रयास (साधना) असम्यक् हो, तुम अपना प्रयास सम्यक् करोगे ।चाहे दूसरों की स्मृति और समाधि असम्यक् हो , तुम अपनी स्मृति और समाधि सम्यक् रखोगे ।
१९. चाहे दूसरे (आर्य) सत्यों और मुक्ति के बारे में गलत हों, तुम सत्यों और मुक्ति के (पथ के) बारे में ठीक होंगे ।
२०. चाहे दुसरे आलस्य और तन्द्रा से युक्त हों, तुम आलस्य और तंद्रा से मुक्त रहोगे ।
२१. चाहे दूसरे अभिमानी हों, तुम विनम्र रहोगे ।
२२. चाहे दूसरे विचिकित्सा युक्त हों, तुम विचिकित्सा--मुक्त रहोगे ।

२३. चाहे दूसरे क्रोधी हो, दुष्ट हो, इर्ष्यालु हो, कंजूस हों, लोभी हों, ढोंगी हों, ठग हो, वंचक हों, उद्धत हों, दुस्साहसी हों, किसी नीति के मानने वाले न हों, अशिक्षित हो, जड हों, भृमित हों, तथा अज्ञ हो--तुम नहीं होंगे, अर्थात तुम इन सब के विराद्ध होंगे।

विभाग ४-निर्वाण सम्बन्धी प्रवचन

निर्वाण क्या है?

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे ।वहीं सारिपुत्र भी थे।
२. तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा--"भिक्षुओ! तुम्हें धम्म का दायाद (उत्तराधिकारी) बनना चाहिये, भौतिक वस्तुओं का नहीं ।क्योकि मेरे मन में तुम सब के लिये अनुकम्पा है, इसलिये मै, तुम्हें यह कह रहा हूँ ।
३. इतना कहा और तथागत उठकर अपनी कुटी में चले गये।

४. सारिपुत्र पीछे रह गये ।सब भिक्षुओं ने सारिपुत्र से प्रार्थना की कि वे बतायें कि निर्वाण क्या है?
५. तब सारिपुत्र ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते कहा--भिक्षुओ! तुम जानते हो कि लोभ अकुशल-धम्म है, द्वेष अकुशल-धम्म है।"
६. "इस लोभ और द्वेष से मोक्ष लाभ करने के हेतु मध्यम-मार्ग है, जों हमें आंख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है, शान्ति, प्रज्ञा, बोधि तथा-निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।
७. "यह मध्यम-मार्ग क्या है? यह अष्टागिक मार्ग के अतिरिक्त और कुछ नहीं, यही सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाणी, सम्यक्-कर्मांत, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-व्यायाम (चित्त की साधना), सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि ।भिक्षुओं! यही मध्यम-मार्ग है!
८. ,हाँ भिक्षुओ! क्रोध अकुशल-धम्म है, पटिघ (विरोधी-भाव) अकुशल-धम्म है, ईर्ष्या और मात्सर्थ्य अकुशल-धम्म है, कंजूसपन और लालच अकुशल-धम्म है, ढोंग ठगी और उद्धतपन अकुशल-धम्म है, अभिमान अकुशल-धम्म है तथा प्रमाद अकुशल-धम्म है।
९. "अभिमान और प्रमाद के त्याग कें लिये मध्यम-मार्ग है जो आँख देने वाला है, ज्ञान देने वाला है तथा शान्ति, प्रज्ञा ओर बोधि की ओर से ले जाने वाला है।
१० आर्य अष्टांगिक मार्ग का ही दूसरा नाम निर्वाण है।,
११. इस प्रकार महास्थविर सारिपुत्र ने कहा तो सभी भिक्षुओं ने आनन्दित हो उनका अनुमोदन किया ।

२ निर्वाण का मुल

(क)

१. एक बार राध स्थविर तथागत के पास आये ।आकर तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।इस प्रकार बैठे हुए राध स्थविर ने तथागत से निवेदन किया--" भगवान्! निर्वाण किस लिये?"
२. भगवान् बुद्ध ने उत्तर दिया--"निर्वाण का मतलब है राग-द्वेष से मुक्ति ।"
३. लेकिन भगवान्! निर्वाण का उद्देश्य क्या है?"
४. "राध! श्रेष्ठ जीवन निर्वाणश्रित है ।निर्वाण ही लक्ष्य है ।निर्वाण ही उद्देश्य है ।

(ख)

१. एक बार तथागत श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम मे विहार कर रहे थे ।तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया--भिक्षुओं!"" भदन्त!" कहकर भिक्षुओ ने प्रत्युत्तर दिया ।तब तथागत ने कहा : -
२. "भिक्षुओ, क्या तुम्हें मेरे बताये उन पांच बन्धनों का ध्यान है जो आदमी को नीचे की ओर घसीट ले जाते हैं?
३. इतना पूछने पर स्थविर मालुक्य-पुत्र ने तथागत से निवेदन किया : --
४. " भगवान्! मुझ उन पांच बधनो का ध्यान है ।"
५. "मालुक्य पुत्र! तुझे उन पाँच बंधनो का कैसे ध्यान है?
६. " भगवान्! मुझे ध्यान है कि आपने बताया है कि (छोटे बालक को) सक्काय-दिट्ठ (शरीरात्मक -दृष्टि), विचिकित्सा, शील-व्रतों पर निर्भर रहने की दृष्टि, काम-राग तथा द्वेष--ये पांच बधन नीचे की ओर घसीट ले जाते है ।भगवान्! इन पांच बंधनो का मुझे ध्यान है ।"
६. "मालुक्य पुत्र! तु ये पांच बँधन किसके लिये बताये गये मानता है? क्या दूसरे मतो के अनुयायी छोटे बालक को ही उपमा देकर तुझे यह कह कर दोष नहीं देगे कि--
८. "मालुंक्य पुत्र! पुत्र आकाश की ओर मूंह करके लेटे हुए अबोध छोटे बालक की अभी काया ही अविकसित होती है ।उसमें सक्काय-दिट्ठि कहाँ से उत्पन्न हो सकती है? हाँ! उसमें भी सक्काय-दिट्ठि का अंकुर तो मौजूद है ।
९. "इसी प्रकार मालुक्या पुत्र! आकाश की ओर मुँह करके लेटे हुए अबोध छोटे बालक का अभी चित्त ही अविकसित होता है ।तो फिर अभी उसमें चित्त की विचिकित्सा कहाँ से उत्पन्न होगी? हाँ, विचिकित्सा का अंकुर अवश्य मौजूद है ।
१०. "इसी प्रकार मालुक्य पुत्र!, अभी इस अवस्था में उसका कुछ शील ही नहीं हो सकता ।तब शील व्रत पर निर्भरता कहाँ से आयगी? हाँ शील व्रत सम्बन्धी निर्भरता का अकुर अवश्य मौजूद है ।
११. "इसी प्रकार मालुक्य पुत्र! उस अबोध बालक में अभी काम-राग ही अविकसित रहता है ।तो उसमें काम-राग की उत्तेजना कहाँ से आयगी? हाँ! उसमें भी काम-राग का अंकुर तो अवश्य रहता है ।

१२. “इसी प्रकार मालुक्य पुत्र! उस अबोध बालक के लिये अभी प्राणियों का अस्तित्व ही नहीं है ।तब उसके मन में प्राणियों का द्वेष कहा से आयेगा? हाँ, उसमें भी द्वेष का अंकुर तो अवश्य है ।
१३. “तो क्या मालुक्य पुत्र! दूसरे मतो के अनुयायी छोटे अबोध बालक की ही उपमा देकर दोष नहीं देंगे?”
१४. जब यह कहा जा चुका तब महास्थविर आनन्द ने तथागत से निवेदन किया--”सुगत! अब आपके लिये विश्राम करने का समय है ।सुगत! अब आपके लिये विश्राम करने का समय है ।”

विभाग ९ -सद्धम्म सम्बन्धी प्रवचन

१. सम्यक्-दृष्टि का पहला स्थान क्यों है?

१. आर्य अष्टाँगिक मार्ग में सम्यक्-दृष्टि श्रेष्ठतम है ।
२. सम्यक्-दृष्टि श्रेष्ठ जीवन की प्रत्येक बात की भूमिका है, चाबी है ।
३. और सम्यक्-दृष्टि का न होना सभी बुराईयो की जड है ।
४. सम्यक्-दृष्टि के विकास के लिये आवश्यक है कि आदमी जीवन की प्रत्येक घटना को प्रतीत्य समुत्पन्न जाने ।सम्यक्-दृष्टि का मतलब ही है प्रतीत्य समुत्पाद के नियम को जान लेना ।
५. “भिक्षुओं! जो कोई भी व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि रखता है, मिथ्या-सकल्प रखता है, मिथ्या-वाणी रखता है मिथ्या-कर्मान्ति रखता है, मिथ्या-जीविका रखता है, मिथ्या-प्रयास करता है, मिथ्या-स्मृति तथा मिथ्या-समाधि रखता है, जिस का ज्ञान और विमुक्ति मिथ्या रहती है, उसका हर कार्य, उसका हर वचन, उसका हर विचार, उसकी हर चेतना, उसकी हर आकांक्षा, उसका हर निश्चय, उसकी हर प्रक्रिया--ये सभी चीजे उसे ऐसी स्थिति की ओर ले जाती है जो कि अरुचिकर होती है, अप्रीतीकार होती है बुरी लगती है. , अलाभ-प्रद होती है तथा दुःखद होती है ।ऐसा क्यों? मिथ्या दृष्टि के कारण ।
६. “ठीक आचरण ही पर्याप्ति नहीं है ।एक छोटा बालक ठीक आचरण कर सकता है, लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि उसे इसका ज्ञान
है कि उसका आचरण ठीक है ।ठीक आचरण के लिये ठीक आचरण का ज्ञान आवश्यक है।
७. ”आनन्द! यथार्थ भिक्षु किसे कहते है? यथार्थ भिक्षु उसे ही कहते है जो बुद्धिपूर्वक संभव और असंभव के भेद को समझ लेता है।”

२. मृत्यु के बाद जीवन की चिन्ता व्यर्थ

१. एक बार स्थविर महाकाश्यप तथा स्थविर सारिपुत्र बनारस के पास ऋषिपतन के मृग-दाय में ठहरे हुए थे ।
२. स्थाविर सारिपुत्र, शाम के समय ध्यानावस्था से उठ, स्थविर महाकाश्यप के पास गये और एक ओर बैठ गये ।
३. इस प्रकार बैठे हुए सारिपुत्र ने स्थविर महाकाश्यप से कहा:”काश्यप ।क्या तथागत मरणान्तर रहते है?
४. ”भगवान् बुद्ध ने यह व्याकृत नहीं किया कि तथागत मरणान्तर रहते है।”तो क्या तथागत मरणान्तर नहीं रहते?’
५. ”तो क्या तथागत मरणान्तर रहते भी है और नहीं भी रहते हैं?”
६. ”भगवान् बुद्ध ने यह भी व्याकृत नहीं किया कि तथागत रहते भी हैं और नहीं भी रहते है।”
७. ”तो क्या तथागत मरणान्तर नहीं भी रहते है और नहीं नहीं भी रहते है?””भगवान बुद्ध ने यह भी व्याकृत नहीं किया कि तथागत मरणान्तर नहीं भी रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं।”
८. ”लेकिन तथागत ने इसे अव्याकृत क्यों नहीं किया?”
९. यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देने से मनुष्य का कुछ भी लाभ नहीं ।यह श्रेष्ठ-जीवन का आरम्भ भी नहीं ।इससे न प्रज्ञा की प्राप्ति होती है और न यह निर्वाण की ओर ले जाता है ।यही कारण है कि तथागत ने इसको अव्याकृत रखा है।”

३. ईश्वर से प्रार्थनायें और याचनायें करना बेकार

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने वासेट्ठ से बातचीत करते हुए कहा -

२. "यदि यह अचिरवती नदी किनारे तक लबालब भरी हो और एक आदमी को नदी के दूसरे तट पर काम हो, इसे पार करना चाहे;

३. "और किनारे पर खडा होकर वह दूसरे किनारे को पुकार लगाये:,हे उधर के किनारे! इधर आओ! हे उधर के किनारे! इधर आओं।,

४. " हे वासेट्ठ! अब यह सोचो कि क्या उस आदमी के प्रार्थना करने से याचना करने से, आश लगाने से, स्तुति करने से वह दूसरा किनारा उधर से इधर चला आयेगा?

५. "ठीक इसी तरह वासेट्ठ! तीन वेदों के जानकार -ब्राह्मण -उन गुणों की अपेक्षा करके जो वास्तव में किसी को अच्चा ब्राह्मण बनाते है, उन दुर्गणो का अभ्यास करते है जो किसी को भी अ -ब्राह्मण बनाते है -ऐसी प्रार्थनाये, करते हैं --

६. "हे इन्द्र! हम तेरा आवाहन करते है ।हे ब्रह्म! हम तेरा आवाहन करते है ।हे ईशान! हम तेरा आवाहन करते है ।है प्रजापति! हम तेरा आवाहन करते है ।हे ब्रह्म ।हम तेरा आवाहन करते है ।

७. " वासेट्ठ! यह निश्चित है कि ऐसा हो नहीं सकता कि अपनी प्रार्थनाओं, अपनी याचनाओं, अपनी आशाओं और अपनी स्तुति के कारण यह ब्राह्मण अपनी मृत्यु के बाद, ब्रह्म, मे लीन हो जाये; ऐसा निश्चय से हो नहीं सकता ।

४. आदमी का भोजन उसे पवित्र नही बनाता

१. एक ब्राह्मण भगवान् बुद्ध के पास आया और उसने प्रश्न उठाया कि भोजन का आदमी के चरित्र पर प्रभाव पडता है या नहीं?

२. " ब्राह्मण बोला! जौ, गिरि, दाल, फलियाँ, कोपले --इस तरह का भोजन यदि ठीक से मिले तो सदाचरण का सहायक होता है ।' मुर्दार -माँस, का खाना खराब है ।"

३. " भगवान्! यद्यपि आप कहते है कि आप, मुर्दार -मास, नहीं खाते, लेकिन आप पक्षियों के मांस का बना हुआ एक से एक बढिया भोजन कर लेते है --मैं आप से पूछता हूँ कि, मुर्दा -मांस, किसे कहा जाता है?"

४. तथागत ने उत्तर दिया --" किसी प्राणी की हत्या करना, किसी का अंग -छेद करना, मारना -पीटना -बध -बं धन, चोरी, झूठ बोलना, ठगी, उल्ला, व्यभिचार -ये सब, मुर्दार -मांस, है, माँस भोजन नहीं ।

५. " काम -भोगों के पीछे पडे रहना, पेटू -पन, अपवित्र -जीवन, तैर -विरोध --वे सब मुर्दार -मांस है, मांस -भोजन नहीं है ।

६. "चुगल -खोरी, निर्दयता, विश्वास -घात, अत्यन्त -अभीमान तथा कमीना - कंजूसपन --ये सब मुर्दार -मांस हैं, मांस भोजन नहीं ।

७. क्रोध, मान, विद्रोह, चालाकी, ईर्ष्या, उबाल, अहंकार, कुसंगति ये सब मुर्दार -मांस है, मांस भोजन नहीं ।

८. नीच -जीवन, किसी को झूट -मूठ बदनाम करना, धोखा देना, वंचक होना, धोखा -धडी,. बदनामी --ये सब मुर्दार -मांस है, मांस -भोजन नहीं।

९. ये हत्या करने तथा चोरी करने का व्यसन -ये अपराध-ये खतरों से भरे हैं, ये नरक के द्वार हैं-ये सब मुर्दार-मांस है, मांस भोजन नहीं ।

१०. जो आदमी शक्की है, उसके शक्क को न मत्सय-मास से विरत रहना दूर कर सकता है, न नग्न रहना, न जटायें, न मुण्डन, न (मृग--) छाल, न अग्निपूजा, न भावी सुख प्राप्ति के उद्देश्य से की गई कठोर-तपस्या, न जल द्वारा सफाई, न यज्ञ-हवन और न कोई दूसरी ऐसी ही संस्कार-क्रिया ।

११. अपनी इन्द्रियों को संयत रखो, अपने ऊपर काबू रखो, सत्य का आग्रह रखो और दयावान बनो ।जो शान्त-पुरुष सब बन्धनों को तोड देता है और सब दुःखो को जीत लेता है ,वह फिर देखते-सुनते रहने के बावजूद (अनासक्त) रहने क़े बावजूद (अनासक्त रहने के कारण) निर्मल रहता है ।

१२. तथागत से इस ऊंचे, त्राण करने वाले धम्म की देशना सुन--जिसमें,मुर्दार-मास की निन्दा की गई थी, और जो दुःख का क्षय करने वाली थी--ब्राह्मण ने वंदना की और तब्धण प्रव्रज्या की याचना की ।

५. भोजन नहीं?. पवित्र कर्मो का महत्व है

१. आमगन्ध नाम का एक् ब्राह्मण तपस्वी अपने शिष्यों के साथ हिमालय में रहता था ।

२. वे मत्स-मौंस नही खाते थे ।प्रति वर्ष वे नमक-खटाई खाने के लिये अपने आश्रम से नीचे उतर कर बस्ती मैं आते थैं ।गांव के लोग उनका बडा स्वागत करते और चार महीने तक लगातार उनका आतिध्य करते थे ।
३. तब भिक्षु-सैंघ सहित भगवान बुद्ध भी वहीं आये ।लोगो ने तथागत का धम्मोपदेश सुना तो उनके श्रावक बन गये ।
४. सदा की भाँति तपस्वी, आमगन्ध और उसके शिष्य भी उस गाँव में आये, लेकिन लोंगों ने उसी उत्साह से, उनका स्वागत नहीं किया ।
५. आमगन्ध को यह जान कर निराशा हुई कि तथागत ने मत्स-माँस के भोजन का निषेध नहीं किया ।इस बारे में यथार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिये वह श्रावस्ती के जेतवन विहार पहुंचा, जहाँ तथागत ठहरे हुए थे ।वह बोला : --
६. "जौ, फलियां और फल, खाने लायक पत्ते और जडे, किसी भी लता पर लगने वाली सब्जी--इन चीजों को न्यायत:प्राप्त कर जो भी कोई खाने वाला खाता है, वह सुख भोग के लिये झूठ नहीं बोलता ।
७. "आप दूसरों के दिये हुए दूसरों के द्वारा तैयार किये गये बढिया बढिया सामिष भोजन ग्रहण करते है ।जो इस प्रकार का चावल (-माँस) का पुलाव खाता है, वह आम-गंध खाता है ।आप पक्षी के माँस के पका हुआ बढिया चावल खाते है और कहते है कि मुझ पर, आम-गँध' का दोष लागू नहीं होता!
८. "मैं आपसे इस का अर्थ जानना चाहता हूँ ।यह आपका, आम-गन्ध, किस तरह का है?"
१. तथागत ने उत्तर दिया : --' जीव हिंसा करना, पीटना, काटना, बाधना, चुराना, अनुपयोगी जानकारी तथा , झूठ बोलना, ठगना, वंचना करना,
व्यभिचार--यह आम-गन्ध है; माँस का खाना नही, ।
१०. "इन्द्रिय-विषयों में असंयत होना, मधुर वस्तुओ के प्रति लोभी होना, अपवित्र कार्व्यो से सम्बन्धित होना, मिथ्या-दृष्टि होना, सीधा -सरल न होना, अननुकरणीय होना--यह आम-गन्ध है; माँस का खाना नहीं ।
११. "कटु होना, कठोर होना, चुगल-खोर होना, विश्वासघाती होना, निर्दयी होना, अहंकारी होना, अनुदार होना तथा किसी को कुछ भी देने वाला न होना--यह आम-गन्ध है; माँस का खाना नही ।
१२. "क्रोध, अभिमान, उजहुपन, विरोधी -भाव, ठगी, ईर्ष्या, शेखी मारना, अधिक अहंकार, कुसगति--यह आम-गन्ध है; माँस का खाना नही ।
१३. दुश्शीलता, लिये कर्ज का न देना, झूठा अपयश फैलाना, दूसरे का वंचक होना, बहानेबाज होना--इस संसार में निकृष्टतम लोगों का इस प्रकार के कुकर्म करना --यह आम-गन्ध है; मांस भौजन नहीं ।
१४. "प्राणियों (की जान लेने) के विषय में असंयत होना, दूसरों को कष्ट पहुँचाने पर तुला होना, दूसरो की वस्तुएँ छीन लेना होना, दुश्शील होना, निर्दयी, कठोर होना तथा आदर की भावनारहित होना--यह आम-गन्ध है; मांस भोजन नहीं ।
१५. "लो भ या द्वेष से प्राणियों पर आक्रमण करना तथा सदैव कुकर्म करने के लिये उद्यत रहना--मरणान्तर आदमियो को अन्धकार से ले जाकर नरक मे पहुँचा देता है--यह आम-गन्ध है; माँस भोजन नही, ।
१६. "न मत्स-मांस से विरत रहने से, न नंगे रहने से, न सिर मुडाने से, न जटाये रखने से, न भभूत रमाने से, न मृग -छाल धारण करने से, न अग्नि-पूजा करने से, न अमृत-प्राप्ति के निमित्त तमाम तरह की तपस्याये करने से, न मन्त्र-जाप से, न बलि चढाने से और ऋतु के अनुसार भिख यज्ञ आदि करने से ही वह आदमी शुद्ध हो सकता है, जिसके सन्देह दूर नहीं हुए ।
१७. जो संयतेन्द्रिय है, जो धम्म मैं स्थित है, जिसे शीलपालन में आनन्द को अनुभव होता है जिसने आसक्ति को त्याग दिया है और दु:ख का क्षय कर चुका है; वह आदमी देखे-सुने के साथ आसक्त नहीं होता ।
१८. यह अकुशल-कर्म ही है, जो आमगन्ध है, मास-भौजन नहीं ।

६. बाह्य-शुद्धि अपर्याप्त है

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती मे विहार कर रहे थे ।उस समय
सट्टारव ब्राह्मण भी यही रहता था ।वह पानी से शुद्धि मानने वाला था और पानी से शुद्धि की किया करता था ।रात-दिन वह प्राय:स्तान करने मे ही लगा रहता ।२. अब आनन्द महास्थविर चीवर धारण कर, अपना पात्र चीवर साथ ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये निकले ।भिक्षाटन से लौटकर, भिक्षा ग्रहण कर चुकने पर, आनन्द महास्थविर तथागत के पास पहुंचे, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये ।इस प्रकार बैठे हुए आनन्द महास्थविर ने कहा: --

३. " भगव।न!,श्रावस्ती में सट्टारव नाम का एक ब्राह्मण रहता है ।वह पानी से शुद्धि में विश्वास रखता है और पानी से शुद्धि ही करता रहता है ।रात-दिन उसका अधिकाँश समय स्नान करने में ही खर्च होता है ।भगवान्! यह अच्छा होगा यदि आप सट्टारव ब्राह्मण पर दया कर उससे भेंट करने चलें ।

४. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया ।

५. दूसरे दिन प्रात :काल तथागत अपना चीवर पहन, पात्र-चीवर साथ ले सट्टारव ब्राह्मण के घर जा पहुँचे ।वहाँ जाकर बिछे आसन पर बैठे ।

६. तब सट्टारव ब्राह्मण जहाँ तथागत थे, वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठ गया ।

७. उस के बैठ जाने पर सट्टारव ब्राह्मण से तथागत ने पूछा: --"ब्राह्मण! जैसा लोग कहते है, क्या यह सच है कि तुम जलसे शुद्धि मे विश्वास रखते हो, पानी से शुद्धि ही करते रहते हो? तुम्हारा रात-दिन का अधिकांश समय स्नान करने में ही खर्च होता है ।"

८. " श्रमण गौतम! यह सच है ।"

९. "ब्राह्मण! इस प्रकार रात-दिन स्नान आदि करते रहने मे ही तुम क्या लाभ देखते हो?

१०. " श्रमण गौतम! यह इस तरह है कि दिन में मुझसे जो कुछ भी पाप-कर्म होता है, मैं उसे उसी दिन शाम को धो डालता हुँ ।और रात को मुझसे जो पाप-कर्म होता है ।वह मैं प्रात: काल उठते ही स्नान करके धो डालता हूँ ।इस प्रकार रात-दिन स्नान आदि करते रहने में मुझे यही लाभ दिखाई देता है ।

१ १. तब तथागत ने कहा--

१२. " धम्म ही वह जल-स्रोत है, जो स्वच्छ है! जो निर्मल है ।

१ ३. "यहाँ जब शास्रों के ज्ञाता स्नान करने आते है, तो उनका प्रत्येक अंग शुद्ध हो जाता है तथा वे दूसरे तट पर चले जाते है ।

१४. तथागत के ऐसा कहने पर सट्टारव ब्राह्मण बोला--" श्रमण गौतम! यह अदभूत है ।आज से जीवनपर्यत आप मुझे अपना शरणागत उपासक जाने" ।

७. पवित्र जीवन क्या है?

१. एक बार भगवान बुद्ध ने चारिका करते समय भिक्षुओं को निम्नलिखीत प्रवचन दिया: --

२. "भिक्षुओं! यह पवित्र जीवन न लोंगो को ठगने के लिये है, न उनसे कुछ प्राप्त करने के लिये है, न लाभ-यश की प्राप्ति के लिये है, न शासार्थ करना सीखने के लिये है, न इसलिये है कि लोग जान जायें कि यह अमुक है ।निश्चय से भिक्षुओं! इस पवित्र जीवन का अभ्यास किया जाता है ।शरीर और वाणी को संयत रखने के लिये, आसों को दूर करने के लिये तथा चित्त की विमुक्ति और तृणा का क्षय प्राप्त करने के लिये ।"

८. सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों पर प्रवचन

१. राजाओं की कृपा के भरोसे मत रहो

१. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह में वेकुवनाराम में कलन्दक-निवाप मे ठहरे हुए थे ।

२. उस समय राजकुमार अजातशत्रु देवदत्त का सहायक बना हुआ था, जो भगवान् बुद्ध का विरोधी बन गया था ।

३. वह पांच सौ गाडियों में भोजन भरे पांच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुबह-शाम पहुंचाता था ।

४. तब कुछ भिक्षु तथागत के पास आये, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये ।एक ओर बैठे हुए भिक्षुओं ने ये सभी बातें तथागत को सुनाई ।

५. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा-'भि क्षु ओं! राजाओं -से लाभ-सत्कार की, खुशामद की इच्छा न करो ।जब तक भिक्षुओं! अजातशत्रु पांच सौ गाडियों में, भोजन भरें पांच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुबह-शाम पहुंचाता है, तब तक इस में देवदत्त की हानि ही है, लाभ नहीं है ।

६. भिक्षुओं! यदि कोई किसी पागल कुत्ते की नाक तक किसी की कलेजी ले जाता है तो वह उस कुत्ते को और भी अधिक पागल ही बनायेगी, इसी प्रकार जब तक भिक्षुओं! अजातशत्रु पाचसौ गाडियों में भोजन भरे पाँच सौ बर्तन लाद कर देवदत्त के समर्थकों तक सुबह-शाम पहुचाता है, तब तक इसमें देवदत्त की हानि ही है, लाभ नहीं ।भिक्षुओं! राजाओं से मिलने वाले लाभ-सत्कार-खुशामद और भेंट आदि इतने भयानक होते है ।

७. “वे शान्ति-प्राप्ति के मार्ग की बडी ही कटु, दुखद बाधायें है ।
८. ’इसलिये भिक्षुओं! ऐसा अभ्यास डालना चाहिये कि जब हमे राजाओं
से लाभ-सत्कार खुशामद और भेंटे आदि मिलेगी, हम उन्हें अस्वीकार करेंगे और जब वह सिर पर आ ही पडे तो वह हमें जकड नही पायेंगी, हमारे हृदय में उनका कोई स्थान नहीं होगा और वे हमें राजकुमारों का गुलाम नहीं बना सकेंगी ।”

२ राजा धाम्मिक होगा, तो प्रजा भी धाम्मिक होगा

१. एक बार भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा--
२. “भिक्षुओं! ऐसे समय जब राजा अधाम्मिक हो जाते हैं तो उनके मन्त्री -गण और अफसर भी अधाम्मिक हो जाते है ।जब मंत्री-गण और अफसर अधाम्मिक हो जाते है ।तो ब्राहाण और गृहपति भी अधाम्मिक्र हो जाते है ।जब ब्राह्मण और गृहपति अधाम्मिक हो जाते है, तो नगरों के नागरिक और ग्रामों के ग्रामीण भी अधाम्मिक हो जाते हैं ।
३. “लेकिन भिक्षुओं! ऐसे समय जब राजा धाम्मिक होते है तो उनके मन्त्रीगण और अफसर भी धाम्मिक होते रहते है, जब मन्त्री गण और अफसर धाम्मिक रहते है तो ब्राह्मण और गृहपति भी धाम्मिक हो जाते है ।जब ब्राह्मण गृहपति धाम्मिक रहते है, तो नगरों के नागरिक और ग्रामों के ग्रामीण भी धाम्मिक हो जाते है ।
४. “जब गौवें नदी पार करती होती है, तब यदि बूढा बैल गलत रास्ते पर, जाता है तो उसका अनुकरण करती हुई वे सभी गलत पथ का अनुकरण करती है ।इस प्रकार आदमियों में जो मुखिया होता है यदि वह कुमार्गी बनता है तो दूसरे भी कुमार्गी बनते है ।
५. “इसी प्रकार जब राजा पथभ्रष्ट होता है, तो समस्त राज्य दुःखी होता है ।जब गौवें नदी पार करती है, तब यदि वृषभ सीधा जाता है, तो सभी गौवें भी उसका अनुकरण कर सीधी जाती है ।इस प्रकार आदमियों मैं जो मुखिया होता है यदि वह सन्मार्गी होता है तो दूसरे भी सन्मार्गी होते है ।जब राजा धाम्मिक होता है तो सारा राज्य सुखी रहता है ।”

३ राजनैतिक तथा सामारिक (सैनिक) शक्ति सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे थे ।
२. उस समय मगध-नरेश, वैदेही-पुत्र अजातशत्रु वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता था ।उसने अपने मन में कहा-”चाहे ये कितने ही शक्तिशाली क्यों न हो, मैं इन वज्जियों की जड खोद डालूंगा, मैं इन वज्जियों को नष्ट कर डालूंगा, मैं इन वज्जियों का सर्वथा विनाश कर डालूंगा ।”
३. तब उसने मगध के प्रधान मन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को बुलाया और कहा--
४. “ब्राह्मण! तुम आओं और भगवान् बुद्ध के पास जाओ मेरी ओर से उनके चरणों में नमस्कार करो, तब उनका कुशल-समाचार पूछो कि वे निरोग और स्वस्थ हैं या नही?
५. “और तब उनसे कहो कि मगध-नरेश वैदेही-पुत्र अजातशत्रु वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता है ।उसका कहना है कि चाहे वे कितने ही शक्तिशाली हो, वह उनकी जड उखाड देगा, वह उनको नष्ट कर डालेगा, वह उनका सर्वथा विनाश कर देगा ।
६. “ऐसा कहने पर जो कुछ तथागत कहें उसे ध्यानपूर्वक सुनना और आकर मुझे बताना ।क्योंकि बुद्धों का कथन कभी अन्यथा नहीं होता ।” ७. तब वर्षकार ब्राह्मण ने राजा के वचनों को सुना और कहा-”जैसा आप चाहते है, वैसा होगा ।” और बहुत से सुन्दर-सुन्दर रथ जुतवाकर वह
गृध्र-कूट पर्वत पर पहुंचा ।
८. तब वहां पहुंच कर वर्षकार ब्राह्मण ने तथागत को अभिवादन किया, उनका कुशल-समाचार पूछा और राजा की आज्ञा के अनुसार मगध-नरेश
का संदेश तथागत के सामने निवेदन कर दिया ।
९. उस समय आनन्द स्थविर तथागत के पास खडे थे ।तथागत ने आनन्द को सम्बोधित करतो पूछा : --”आनन्द! क्या तुमने सुना है कि वज्जिगण के लोग प्राय:अपनी सार्वजनिक समितियों की बैठक करते रहते है?
१०. आनन्द स्थविर ने उत्तर दिया--”हाँ भगवान! मैंने ऐसा सुना है”
११. तथागत ने कहा-”आनन्द! जब तक वज्जी अपनी सार्वजनिक समितियों की बैठके करते रहेंगे, तब तक वज्जियों की वृद्धि ही होती रहेगी, उनका हास नहीं होगा ।

१२. "आनन्द! जब तक वज्जी मिल-जुलकर बैठेंगे, मिल-जुलकर उठेंगे और मिल-जुलकर अपने निश्चयों को कार्यरुप में परिणत करेंगे तब तक . . . . . . होगा ।
१३. "आनन्द! जब तक वह बिना नियम बनाये कोई कार्रवाई नहीं करेंगे, जो नियम बन चुका है उसका उल्लंघन नहीं करेंगे, और पुराने, समय से चली आई वज्जियों परमरा के अनुसार कार्य करेंगे तब तक. . . . . . होगा ।
१४. "जब तक वे अपने ज्येष्ट वज्जियों का आदर-सत्कार करते रहेंगे उनकी आवश्यकतायें पूरी करते रहेंगे और उनकी बातों को महत्व देते रहेंगे: तब तक. . . . . होगा ।
१५. "जब तक वे किसी वज्जी लडकी या स्त्री को जबरदस्ती अपने यहाँ लाकर नहीं रखेंगे तब तक. . . . . . होगा ।
१६. "जब तक वज्जीगण के लोक धम्म का पालन ऊरते रहेंगे तब तक. . . . . . . होगा ।
१७. "जब तक वे ये बातें करते रहेंगे तब तक वज्जियों की वृद्धि ही होती रहेगी, उनका हास नहीं होगा, और कोई उनका नाश नही कर सकता ।"
१८. थोडे शब्दों में भगवान् बुद्ध ने कहा कि जब तक वज्जीगण प्रजातन्त्र में विश्वास करते हैं और प्रजातन्त्रात्मक ढंग से रहते हैं तब तक उनके गणराज्य को कोई खतरा नहीं ।
११. तब तथागत ने वर्षाकार को सम्बोधित किया--
२०. "हे ब्राह्मण! जब मै वैशाली में ठहरा हुआ था, तब मैंने वज्जीयो को ये बातें सिखाई थीं ।"
२१. ब्राह्मण बोला--"तो हम वज्जीयो की उन्नती की ही आशा कर सकते है, अवनति की नहीं ।हे गौतम! मगध-नरेश वज्जीयों को नहीं जीत सकता ।" २२. इस प्रकार वर्षकार ब्राह्मण ने तथागत के वचन सुने, वह अपने आसन से उठा और राजगृह वापस लौट कर उसने मगध-नरेश को वह सब कह सुनाया जो उसने तथागत से सुना था ।

४. युद्ध निषिद्ध है

१. ऐसा हुआ कि मगध-नरेश अजातशत्रु ने घुडसवार और पैदल सेना इकट्ठी कर कोशल-नरेश प्रसेनजित के राज्य के एक हिस्से काशी-जनपद पर आक्रमण कर दिया ।'
२. दोनों लडे ।अजातशत्रु ने प्रसेनजित को हरा दिया ।प्रसेनजित वापस श्रावस्ती चला गया ।
३. जो भिक्षु श्रावस्ती से भिक्षाटन कर लौट रहे थे, उन्होंने आकर भगवान् बुद्ध को लडाई का तथा प्रसेनजित के हार कर वापस लौट आने का समाचार कहा ।
४. "भिक्षुओं! मगध-नरेश अजातशत्रु अकुशल का पक्ष लेने वाला है ।कोशल-नरेश प्रसेनजित कुशलधम्मी है ।अभी प्रसेनजित राजा पराजित हो जाने के कारण दु खी रहेगा ।
५. "जय से वैर पैदा होता है ।पराजित दुःखी रहता है ।लेकिन जो उपशान्त है, जिसे जय-पराजय की चिन्ता नहीं, वह सुखपूर्वक सोता है ।"
६. फिर ऐसा हुआ कि वे दोनों राजा दूसरी बार युद्ध-भूमी मे मिले ।लेकिन इस बार कोशल-नरेश प्रसेनजित ने अजातशत्रु को हरा दिया और जिवीत पकड लिया ।तब प्रसेनजित ने सोचा: -"यद्यपि अजातशत्रु ने--जिसे मैं कुछ हानि नहीं पहुचा रहा था, मुझे कष्ट दिया है, तो भी वह मेरा भानजा
है ।कैसा हो यदि मैं उसे जीता छोड दूँ, किन्तु उसकी सारी सेना, हाथी, घोडे, रथ और पैदल ले लूँ ।" उसने वैसा ही किया ।
७. श्रावस्ती में भिक्षाटन करके लौटने पर भिक्षुओं ने आकर तथागत को यह समाचार सुनाया ।तब तथागत ने कहा--"एक आदमी दूसरे की यथेच्छ हानि कर सकता है, लेकिन जिसकी हानि होती है वह फिर दूसरे को हानि पहुंचाता ही है ।
८. "जब तक पाप-कर्म फल देना आरम्भ नहीं करता तब तक मूर्ख आदमी आनन्द मना सकता है ।लेकिन जब पाप-कर्म फल देता है, तब मूर्ख आदमी दुःखी होता है ।
९. "हत्यारे को हत्यारा मिलता है, जो दूसरों को लडाई में हराते हैं उन्हें हराने वाले मिल जाते हैं, जो दूसरो गाली देता है, उसे गाली देने वाले मिल जाते हैं।
१०. "इस प्रकार कर्म के विकास के फलस्वरुप जो आदमी दूसरे को कष्ट देता है, वह कष्ट पाता है ।

५ युद्ध-विजेता के कर्तव्य

१. जब योधा युद्ध-विजयी हो जाता है तो सामान्य तौर पर वह अपना अधिकार समझता है कि यदि वह पराजित को अपना दास बनाकर न रखें तो उसे कम से कम जलील तो खूब करे ।भगवान् बुद्ध का इस विषय में सर्वथा भिव दृष्टिकोण था ।वे समझते थे कि यदि,शान्ति' का कुछ भीं अर्थ है तो उसका यही अर्थ होना चाहिये कि विजेता अपनी,विजय' से विजित की सेवा करे ।इस बारे में उन्होंने भिक्षुओं को कहा: -

२. "शान्ति स्थापित हो जाने पर (युद्ध) कुशल आदमी के लिये आवश्यक है कि वह योग्य सिद्ध हो, सीधा-सरल सिद्ध हो, मृदुभाषी हो, कोमलस्वभाव हो, अभिमानी न हो, सन्तुष्ट रहने वाला हो, सुभर (-जिसतेl भार का अनुभव न हो) हो, अत्यकृत्य, हलकी -फुलकी वृत्ति वाला, इन्द्रिय-विजयी हो, बुद्धिमान हो, अप्रगत्म हो, योग्य व्यवहार करने वाला हो तथा कभी छोटे से छोटा भी कोई ऐसा खराब काम न करे जिसकी पण्डित लोग निन्दा कर सकें ।

३. "सभी प्राणि सुखी रहे, सभी का कत्याण हो--सबल हों वा दुर्बल हों, बडे हों या छोटे हों, दृश्य हो वा अदृश्य हों, पास रहने वाले हों वा दूर रहने वाले हों, उत्पन्न हो चुके हों वा उत्पन्न होने वाले हों--सभी प्राणि शान्त रहें ।

४. "कोई एक दूसरे का अपमान न करे, क्रोध या घृणा के वशीभूत होकर कोई किसी का बुरा न चाहे ।

५. "जिस प्रकार माता अपने प्राण देकर भी अपने इकलौते बच्चे से प्यार करती है वैसी ही भावना सभी प्राणियों के प्रति रखे । ऊपर,नीचे, चारों ओर असीम मैत्री भावना रखें --जिसमें घुणा का लव -लेश न हो, शत्रुता का लव -लेश न हो ।

६. " खडे होते समय, चलते समय, बैठे रहते समय, लेटे रहते समय यही, भावना रखें --यही, ब्रह्म विहार, कहलाती है ।"

पंचम खंड

संघ

पहला भाग - संघ

दूसरा भाग - भिक्षु--तथागत की भिक्षु की कल्पना

तीसरा भाग -भिक्षु के कर्तव्य

चौथा भाग - भिक्षु आंर गृहस्थ

पाचवा भाग -गृहस्थों के जीवन-नियम

पहला भाग : संघ

१. संघ का संगठन

१. भगवान बुद्ध के श्रावक दो हिस्सों में विभक्त थे, भिक्षु और गृहस्थ-श्रावक जो उपासक कहलाते थे ।
२. भिक्षुओं का एक संगठित,संघ' था, गृहस्थों का नहीं था ।
३. बौद्ध भिक्षु प्रथमत : एक परिव्राजक है ।यह,परिव्राजक संस्था' बौद्ध भिक्षुओं से भी प्राचीन है ।
४. पुराने,परिव्राजक, ऐसे लोग थे, जिन्होंने पारिवारिक जीवन छोड दिया था और इधर से उधर घूमते रहते थे ।
५. जिनका एक जगह से दूसरी जगह जाने का उद्देश्य था भिन्न भिन्न आचार्यों तथा दार्शनिकों से मिलकर सत्य का पता लगाने का प्रयास करना, उनके प्रवचन सुनना और नीति, दर्शन, प्रकृति तथा रहस्यवाद आदि विषयों पर उनसे चर्चा करना ।
६. कुछ पुराने ढंग के ऐसे भी,परिव्राजक, थे कि जब तक उन्हें कोई दूसरा
'गुरु' न मिले तब तक किसी एक,गुरु' की अधीनता मे रहते थे ।कुछ दूसरे थे जो किसी को अपना,गुरु' नहीं मानते थे और अकेले ही रहते थे ।
७. इन पुराने ढगं के परिव्राजकों में कुछ स्त्रीया परिव्राजकायें भी थी ।स्त्री परिब्राजिकायें कभी कभी पुरुष परिव्राजकों के साथ रहती थी और कभी अपने ही अकेली भी ।
८. इन पुराने ढंग के परिव्राजकों का कोई संघ न था, उनके कोई निश्चित नियम-उपनियम न थे ।उनके सामने कोई निश्चित आदर्श भी न था ।
९. इतिहास में पहली बार तथागत ने अपने भिक्षुओं का एक संघ बनाया, उसकी व्यवस्था के लिये संघ के नियम बनाये, और संघ के सदस्यों के सामने एक निश्चित आदर्श उपस्थित किया ।

२. संघ में प्रवेश

१. संघ का प्रवेश सभी के लिये खुला था ।
२. जाति-पांति की कोई बाधा न थी ।
३. स्त्री पूरुष की कोई बाधा न थी ।
४ हैसियत की कोई बाधा न थी ।
५ जाति-पाति के लिये संघ में कोई स्थान न था ।
६ सामाजिक-स्थिति का संघ में कोई स्थान न था ।
७ संघ के भीतर, सभी सदस्य समान थे ।
८ संघ के अन्दर,छोटे-बडे' को निर्णय सदस्य के गुणों से होता था, न कि उसके जन्म से।
९. जैसा तथागत ने कहा था कि सघ एक समुद्र कें समान है और भिक्षु उन नदियों के समान है जो समुद्र में विलीन हो जाती है ।
१०. नदी का अपना नाम होता है और अपना पृथक अस्तित्व रहता है ।
११. लेकिन जैसे ही नदी समुद्र में प्रवेश करती है, न उसका कोई पृथक नाम रहता है और न पृथक अस्तित्व ।
१२. वह सब के साथ मिलकर एक हो जाती है ।
१३. यही हाल,संघ' का है ।जब एक,भिक्षु' सघ में प्रवेश करता है, तो वह समुद्र के जल की तरह अन्य सब के साथ मिलकर एक हो जाता है ।
१४. तथागत ने कहा :--उसकी कोई पृथक् जाति नहीं रही ।उसकी कोई पृथक हैसियत नहीं रही ।
१५. ,संघ' के अन्दर यदि कोई वर्गीकरण था तो पुरुष-स्त्री की दृष्टि से था ।भिक्षु-संगठन पृथक था और भिक्षुणी-सगठन पृथक ।
१६. संघ में प्रवेश पाने वालों के दो वर्ग थे: श्रामणेर तथा भिक्षु ।
१७. बीस वर्ष के कम आयु रहने पर कोई भी श्रामणेर बन सकता था ।
१८. त्रिशरण तथा दस-शीलों को ग्रहण करने से कोई भी बालक श्रामणेर बन सकता है ।
१९. ,मैं बुद्ध की शरण ग्रहण करता हूँ, मैं धम्म की शरण ग्रहण करता हूँ तथा मैं संघ की शरण ग्रहण करता हूँ--ये ही तीन शरण है।
२०. ,मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहूँगा, मैं चोरी नहीं करुँगा, मैं अब्रह्मचर्य से विरत रहूँगा, मैं झूठ नहीं बोलूंगा तथा मैं नशीले पेय-पदार्थों से विरत रहूँगा ।

२१. ,मैं विकाल-भोजन से विरत रहूँगा, मैं नाचना-गाना-बजाना आदि से विरत रहूँगा, मैं अपने आपको सजाने तथा अंलकृत करने से विरत रहूँगा, मैं ऊँची महान् शैस्याओ अर्थात ऐशोआराम से विरत रहूँगा तथा मैं जात रुप-रजत (साने-चादी) का ग्रहण करने से विरत रहूँगा।,

२२. ये दस,शील' हैं।

२३. एक श्रामणेर जब वाहे,संघ' छोडकर गृहस्थ-वेष धारण कर सकता है ।एक श्रामणेर एक भिक्षु से बंधा रहता है और उसका अधिकांश समय

उसी की सेवा में खर्च होता है ।वह एक प्रकार से, प्रव्रजित' नहीं ही -गिना जाता ।

२४. दो अवस्थाओं में से गुजरने से आदमी,भिक्षु पद का अधिकारी बनता है --पहली अवस्था, प्रव्रज्या, कहलाती है और दूसरी अवस्था उपसम्पदा,उपसम्पन्न' ।'उपसम्पदा, होने पर ही कोई भिक्षु बनता है ।

२५. जो प्रार्थी आगे चलकर, भिक्षु बनने के उद्देश्य से, प्रव्रज्या, ग्रहण करना चाहता है उसे एक उपाध्याय की खोज करनी पडती है ।कम से कम दस वर्ष तक जो भिक्षु रहा हो, वही,उपाध्याय' हो सकता है ।

२६. इस प्रकार का प्रार्थी, यदि उपाध्याय द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, तो, परिव्राजक, कहलाता है और उसे उपाध्याय की सेवा करते हुए, उसी के, संरक्षण' में रहना पडता है ।

२७. , शिक्षण' काल समाप्त होने पर उपाध्याय को ही अपने,परिव्राजक, का नाम, संघ' के सामने प्रस्तावित करना पडता है ।' संघ, की हि विशेष बैठक किसी को उपसम्पत्र करने के लिये ही बुलाई जाती है ।' उपसम्पदा' के लिये,उपसम्पदापेक्षी, को स्वयं,संघ' से प्रार्थना करनी पडती है ।

२८. ,संघ', पहले इस विषय में अपना संतोष कर लेता है कि प्रार्थी योग्य व्यक्ति है वा नहीं और,भिक्षु' बनने का अधिकारी है वा नहीं है? इसके लिये कुछ निश्चित प्रश्न है, जिनका प्रार्थी को उत्तर देना पडता है ।

२९. , संघ, के अनुमति देने पर ही उसे, उपसम्पदा, मिलती है और वह ,भिक्षु' बनता है ।

३०. भिक्षुणी-संघ में प्रवेश पाने के नियम भी बहुत कुछ वे ही वा वैसे ही है जो भिक्षु संघ में प्रवेश पाने के नियम ।

३. भिक्षु के व्रत

१. एक उपासक और एक श्रामणेर भी "शील' ग्रहण करता है ।उसे वे पालन करने होते है ।

२. एक भिक्षु उन, शीलो, को,शील, रुप में ग्रहण करता ही है, किन्तु वह उन्हें,व्रत' रुप में भी ग्रहण करता है ।उसे अपने,व्रतो, को भंग नहीं करना होता यदि वह उन्हें तोडता हैं तो वह,दण्डनीय' होता है ।

३. एक भिक्षु स्त्री-गमन से विरत रहने का व्रत लेता है ।

४. एक भिक्षु चोरी से विरत रहने का व्रत लेता है ।

५. एक भिक्षु (किसी परा-प्राकृतिक शक्ति के सम्बन्ध में) शेखी न मारने का व्रत लेता है ।

६. एक भिक्षु किसी मनुष्य की हत्या न करने का व्रत लेता है ।

७. एक भिक्षु किसी भी नियम-बाह्य वस्तु को अंगीकार न करने का व्रत लेता है ।

८. भिक्षु के पास इन आठ चीजों ते। अतिरिक्त और कुछ नहीं होना चाहिये--तीन चीवर--(१) अन्तर-वासक (अन्दर का वस्त्र); (२) उत्तरासंघ (ऊपर का वस्त्र); (३) संघाटी (शीतादि से बचाव के लिये दोहरी चादर) ।

४. कमर पर लपेटने की एक पेटी

५. भिक्षा-पात्र

६. उस्तरा (छुरा-कुल्हाडी?)

७. सूई धागा

८. पानी छानने का कपडा

९ एक भिक्षु अकिंचनता का व्रत लेता है ।उसे मुख्य रुप से अपनी भिक्षा मांग कर खानी होती है ।उसे,भिक्षा-जीवी' होना चाहिये । उसे एकाहारी वा विकाल-भोजन-विरत होना चाहिये ।जहाँ,संघ' के लिये विहार न हों, वहाँ वृक्ष के तले भी रहना चाहिये ।

१०. एक भिक्षु किसी भी व्यक्ति की हर आज्ञा मानने का व्रत नहीं लेता ।अपने ज्येष्ठों के प्रति बाह्य सम्मान प्रदर्शन आदि की अपेक्षा एक श्रमणेर से अवश्य रखी जाती है ।उसकी अपनी मुक्ति और एक धम्मोपदेशक के रुप में उसकी उपयोगिता उसकी अपनी साधना पर निर्भर करती है ।उसे अपने से बडे किसी एक' व्यक्ति की आज्ञा में नहीं रहना होता, बल्कि धम्म की आज्ञा में रहना

होता है ।उसका बडा न किसी परा-प्राकृतिक प्रज्ञा का ही मालिक माना जाता है और न उसके पास कोई ऐसी ही सामर्थ्य होती है जो उसे,पाप-मुक्त' कर सके ।वह यदि खडा रहता है तो अपने बल पर खडा रहता है और यदि गिरता है तो अपने से गिरता है । इसके लिये उसे सोचने की स्वतन्त्रता रहनी ही चाहिये ।
११. चार विशेष-व्रत ऐसे हैं जिनका भंग होने से भिक्षु पाराजिका का अपराधी बन जाता है ।पाराजिका का दोषी होने पर संघ-त्याग ही एकमात्र दण्ड है ।

४. सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष

१. अपने लिये किसी भी,व्रत' का भंग भिक्षु के लिये,धम्म' के विरुद्ध किया गया अपराध है ।
२. उक्त अपराधों के अतिरिक्त कुछ और भी अपराध थे जो भिक्षु कर सकता था ।वे संघादिसेस कहलाते थे---सांघिक नियमों सम्बन्धी दोष ।
३. विनय-पिटक के अनुसार संघादिसेस तेरह है ।
४. सघादिसेसो का नम्बर पाराजिकाओं के बाद है।

५. भिक्षु और प्रतिबन्ध

१. इन अपराधों से साफ साफ बचे रहने की कोशिश के साथ साथ भिक्षु को कुछ और भी प्रतिबन्ध स्वीकार करने पडते है ।एक गृहस्थ के समान एक भिक्षु जो चाहे सो नहीं ही कर सकता ।
२. इस प्रकार के कुछ प्रतिबन्ध,निस्सग्गीय-पाचित्तिय' कहलाते है ।इनकी संख्या छबीस है ।
३. उनका सम्बन्ध चीवरों की स्वीकृति-अस्वीकृति से है, ऊनी बिछावन, भिक्षा पात्र तथा,रोगी की अवश्यकताओं की स्वीकृति-अस्वीकृति से है ।
४. उनका सम्बन्ध चांदी सोने के लेने न लेने से भी है ।भिक्षु द्वारा किये जानें वाले क्रय-विक्रय से है तथा सांघिक-वस्तु को निजी बना लेने से है ।
५. इन दोषो का दण्ड भी निस्सगीय (नैसर्गिक) और पाचित्तिय (पश्चाताप प्रकट करना) ही है ।
६. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त भिक्षु जीवन के कुछ और भी प्रतिबन्ध है ।वे केवल पाचित्तिय कहलाते है ।उनकी संख्या बानवे है ।.

६. भिक्षु और शिष्टाचार के नियम

१. एक भिक्षु का व्यवहार बहुत अच्छा होना चाहिये ।शिष्टाचार के नियम पालन करने में उसे आदर्श होना चाहिये ।
२. इस उद्देश्य की शुरूआत के लिए तथागत ने बहुत से शिष्टाचार सम्बन्धी नियम बनाये ।
३. ये शिष्टाचार के नियम,सेखिय-धम्म, कहलाते थे ।उनकी संख्या पचहत्तर है ।

७. भिक्षु और अपराधों का विचार

१. ये नियम, ये विधान केवल,विधान, बनाने के लिये न थे ।उनकी कानूनी-स्थिति थी जिसके अनुसार पहले किसी पर निश्चित,आरोप' लगाना होता था, तब संघ उसका विचार करता था और तभी वह या तो दोष-मुक्त मान कर छोड दिया जाता था वा दण्ड दिया जाता था ।
२. बिना विधिवत् अदालती विचार के कभी किसी भिक्षु को दण्डित नहीं किया जा सकता था ।
३. जिस जगह पर अपराध हुआ हो, उसी जगह' के निवासी भिक्षुओ का ही न्यायलय होता था ।
४. न्यायालय के लिये आवश्यक संख्या में भिक्षु उपस्थित न हो तो कोई मुकद्दमा नहीं चल सकता था ।
५. जब तक किसी पर कोई निश्चित, आरोप' न लगाया जाय तब तक कोई मुकद्दमा कानूनी नहीं माना जाता था ।

६. कोई मुकद्दमा कानूनी नहीं माना जाता था तब तक उसकी सारी कार्रवाई उस व्यक्ति की उपस्थिति में न हो जिस पर,आरोप' लगाया गया

७. कोई मुकद्दमा कानूनी नहीं माना जाता था जब तक कि उस भिक्षु को जिस पर कोई,आरोप' लगाया गया हो, अपनी सफाई देने का पूरा अवसर न मिला हो ।

८. एक अपराधी भिक्षु को निम्नलिखित दण्ड दिये जा सकते थे--

(१) तर्जनीय कर्म

(२) नियस्स कर्म

(३) प्रब्राजनीय कर्म

(४) उत्येपनीय-कर्म

(५) प्रतिसारणीय-कर्म

१. विहार से बाहर कर देने के कर्म (परिवास-कर्म) के बाद अआन-कर्म (आवाहन-कर्म) हो सकता था ।यह परिवास-कर्म के बाद संघ द्वारा क्षमा-दान दिये जाने पर हो सकता था ।

८. भिक्षु और अपराध-स्वीकृति

१. भिक्षुओ के सँघठन को लेकर जो सर्वाधिक मौलिक और अनुपम संस्था वा प्रथा भगवान् बुद्ध ने आरम्भ की वह अपराध-स्वीकृति की संस्था थी ।यह उपोसथ कहलाती थी ।

२. तथागत ने इस बात को समझ लिया था कि जिन बातों को उन्होंने,अपराधों' की कोटि में रखा है उनका पालन कराया जा सकता है ।लेकिन कुछ दूसरे प्रतिबन्ध भी थे जो अपराध नहीं थे ।उनका कहना था कि चरित्र-निर्माण के लिये और चरित्रको सदृढ बनाये रखने के लिये प्रतिबन्धों का होना आवश्यक है और यह भी देखना आवश्यक है कि उनका पालन होता है या नहीं?

३. लेकिन इन प्रतिबन्धों को पालन कराने का कोई प्रभावशाली ढंग खोज निकालना आसान न था ।इसलिये उन्होंने खुली अपराध-स्वीकृति को भिक्षु के अन्तर्मन के संगठन करने और उसे गलत कदम उठाने से बचाये रखने का एक साधन बनाया ।

४. अपराध-स्वीकृति प्रतिबन्धों के न पालन करने को लेकर थी ।भिक्षु नियमो का संग्रह,प्रातिमोक्ष' कहलाता है ।

५. उपोसथ (अपराध स्वीकृति) के लिये एक,सीमा' के भिक्षुओं -का एक जगह इकट्ठा होना आवश्यक है ।दोनो पक्षों की दो अष्टमियाँ कृष्ण पक्ष की चतुदर्शी और शुक्ल-पक्ष की पंचदर्शी-ये चार दिन उपोसथ माने जाते है ।इनमें से चतुदर्शी और पंचदर्शी को,प्रातिमोक्ष' का पाठ और उसके हिसाब से उपोसथ-कर्म हो सकता था ।६. उपोसथ होने पर भिक्षु एक एक करके प्रातिमोक्ष के नियमों का पाठ करता है और प्रत्येक नियम का पारायण कर चुकने पर कहता है,"क्योंकि आप सब लोग चुप है, इसलिये मैं समझता कि आप में से किसी ने भी इनमें से किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया।" वह यह तीन बार कहता है ।उसके बाद अगले प्रतिबंधन नियम को पढता है।

७. भिक्षुणी-संघ को भी ऐसी ही उपोसथ बैठक करनी होती है ।

८. अपराध-स्वीकृति पर,आरोप' और मुकद्दमा चल सकता है ।

९. यदि कोई अपराध स्वीकार न करे तो कोई भी भिक्षु किसी के,अपराध' की रिपोर्ट कर सकता है--यदि उसने उस नियम का उल्लँघन करते देखा हो-और तब,आरोप' और उसके बाद मुकद्दमा आरम्भ हो सकता है ।

दूसरा भाग : भिक्षु—भगवान् बुद्ध की कल्पना

१. भगवान् बुद्ध की आदर्श भिक्षु की कल्पना

१. भगवान् बुद्ध ने स्वयं ही भिक्षुओं को कह दिया था कि वे भिक्षुओं को किस रुप में देखना चाहते थे ।उन्होंने कहा था:--

२. बिना संयम और सत्य के, अपने आप को चित्त-मलो (काषायों) से परिशुद्ध किये बिना जो काषाय-वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय-वस्त्र धारण करने के योग्य नहीं है ।

३. किन्तु जो संयम और सत्य से युक्त होकर अपने आप को चित्त:मलो (काषायों) से परिशुद्ध करके काषाय वस्त्र को धारण करता है, वह काषाय-वस धारण करने के याग्य है ।

४. एक आदमी केवल इसलिये,भिक्षु' नहीं कहलाता क्योंकि वह दूसरों से,भिक्षा' मांग कर खाता है ।जब वह,धम्म' को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करता है, तभी भिक्षु कहला सकता है ।

५. "जो शीलवान है, जो ब्रह्मचारी है, जो सावधानीपूर्वक संसार में विचरता है, वह निश्चय से,भिक्षु' कहलाता है ।

६. हे भिक्षु! न नियमों के पालन-मात्र से न बहुत श्रुत (अध्ययन) होने मात्र से, न ध्यान लाभ मात्र से और न एकान्त-वास मात्र से ही कोई उस विमुक्ति को प्राप्त कर सकता है जिसका आनन्द पृथक-जन (अनार्य-जन) कभी उठा ही नहीं सकते ।हे भिक्षु! जब तक आसवों का क्षय न कर ले तब तक तू विश्वस्त होकर निश्चिन्त मत बैठ ।

७. जो भिक्षु वाणी को संयत रखता है, जो बुद्धिमानीपूर्वक्र और शान्तिपूर्वक बोलता है, जो,धम्म' का अर्थ समझता है, उसका बोलना,मधुर' होता है ।

८. जो,धम्म' में निवास करता है, जो,धम्म' में आनन्दित रहता है, जो,धम्म' का विचार करता है, जो,धम्म' का अनुस्मरण करता है--ऐसा भिक्षु कभी सद्धम्म से पतित नहीं होता।

९. जो कुछ भी भिक्षु को प्राप्त हो, उसे,बहुत' समझना चाहिये; उसे किसी दूसरे की ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये ।एक,भिक्षु' जो दूसरें की ईर्ष्या करता है उसे कभी चित्त की शान्ति प्राप्त नहीं होती ।

१०. जो भिक्षु थोडा मिलने परं भी,बहुत' समझता है और जिस भिक्षु का जीवन पवित्र तथा अप्रमाद रहित है, देवता भी उसकी प्रशंसा करते है ।

११. जिस की नाम-रुप में तनिक आसक्ति नहीं है जो किसी वस्तु या व्यक्ति के न रहने पर तनिक सोच नहीं करता--वही यथार्थ भिक्षु है ।

१२. जिस भिक्षु के हृदय में करुणा (मैत्री) है, जो बुद्ध के शासन में प्रसख है, वह निर्वाण को प्राप्त करेगा--आसव क्षय से प्राप्त होने वाले सुख को ।

१३. हे भिक्षु! इस (जीवन-रापी) नौका को हलका कर डाल ।हलका कर देने से इसकी गति तेज हो जायेगी ।राग और द्वेष के बंधन को काट देने से तू निर्वाणाभिमुख हो जायगा ।

१४. पांच (बंधनों) को काट दे, पांच को छोड दे, पांचों में ऊपर उठ जा ।एक भिक्षु जिसने पांचो बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली "ओघतीर्ण" कहलाता है, अर्थात बाढ से बचा हुआ ।

१५. भिक्षु! ध्यान लगा ।प्रमाद मत कर ।सावधान रह ताकि तेरा चित्त काम-सुखों में ही न धूमता रहे ।

१६. जो प्रज्ञावान नहीं वह ध्यान नहीं लगा सकता, जो ध्यान नहीं लगाता वह प्रज्ञा नही प्राप्त कर सकता; जो प्रज्ञावान है और ध्यानी है वही निवार्ण के समीप है ।

१७. भिक्षु जब अपने एकान्त-वास में प्रवेश करता है और जब उसका चित्त शान्त होता है और जब उसे सद्धर्म का साक्षात्कार होता है तो उसे दिव्य सुख का अनुभव होता है ।

१८. और एक बुद्धिमान भिक्षु के लिये यही प्रगति-क्रम श्रेष्ट है--इन्द्रिय-संयम, संतोष, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन पवित्र, अप्रमादी मित्रों की संगति ।

१९. जो भिक्षु भिक्षाजीवी होगा, जो अपने कर्तव्य-पालन में प्रमाद नहीं करेगा, वह प्रीती-प्रमुदता की बहुलता में दुख का अन्त कर सकेगा ।

२०. है भिक्षु! अपने से अपने को उत्साहित कर, अपने से अपनी परीक्षा कर ।जब तू आत्म-रक्षित रहेगा और मेधावी होगा तो सुखी रहेगा ।

२१. क्योंकि अपना-आप ही अपना स्वामी है, अपना आप ही अपनी गति है, इसलिये अपने-आप को उसी तरह काबू में रख जैसे व्यापारी अच्छे घोडे को ।

२२. जो भिक्षु-अप्रमाद में आनन्दित रहता है और प्रमाद से डरता है वह आग की तरह अपने छोटे बडे बंधनो को जलाता हुआ विचरता है ।
२३. जो भिक्षु अप्रमाद में आनन्दित रहता है और प्रमाद से डरता है, उसका पतन नहीं हो सकता है, उसे निर्वाण के समीप ही जानो ।
२४. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरुक रहते है ।उन्हें दिन-रात,बुद्ध' का ध्यान रहता है ।
२५. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरुक रहते है ।उन्हें दिन-रात,संघ' का ध्यान रहता है ।
२६. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरुक रहते है ।उन्हें दिन-रात,धम्म' का ध्यान रहता है ।
२७. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरुक रहते है ।उन्हें दिन-रात अपनी शरीर सम्बन्धी क्रियाओं का ध्यान रहता है।
२८. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरुक रहते है ।उन्हें दिन-रात,करुणा' (अहिंसा) का ध्यान रहता है।
२९. गौतम (बुद्ध) के श्रावक सदैव जागरुक रहते है ।उन्हें दिन-रात योगाभ्यास (भावना) का ध्यान रहता है ।
३०. संसार छोडना भी कठिन है, संसार में रहना भी कठिन है ।विहार भी दुकर है, घर भी दुकर है ।अपने समान लोगों के साथ गृहस्थी भी आसान नहीं, प्रव्रजित का जीवन भी आसान नहीं है।
३१. जो आदमी श्रद्धायुक्त है, जो शीलवान् है, जो यशस्वी है, तथा जो ऐश्वर्यवान है वह जहाँ भी जाता है, हर जगह पुजित होता है ।

२. भिक्षु और,तपस्वी'

१. क्या भिक्षु,तपस्वी' होता है? उत्तर"नहीँ" ही है ।
२. निग्रोध परिव्राजक से बातचीत करते हुए स्वयं तथागत ने नकारात्मक उत्तर दिया है ।
३. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह मे गृध्र-कूट पर्वत पर ठहरे हुए थे ।उस समय उदुम्बरिक रानी के उद्यान में बहुत से परिव्राजकों के साथ निग्रोध परिव्राजक रहता था ।यह उद्यान परिव्राजकों के लिये ही परित्यक्त था ।
४. उस समय भगवान् बुद्ध गृध्रकूट से नीचे उतर कर जहाँ मोरों के चुगने की जगह थी, वहाँ आये और सुमगधा नदी के तट पर चहल कदमी करने लग गये ।तब निग्रोध ने तथागत को इस प्रकार खुले में चहल-कदमी करते देखा और उसने अपने अनुयायियों को सावधान किया--"चुप करो, शान्ति रखो ।श्रमण गौतम सुमगधा के तट पर चहल-कदमी कर रहे हैं ।" उसके ऐसा कहने पर परिव्राजक चुप हो गये ।
५. तब तथागत निग्रोध-परिव्राजक के पास पहुंचे ।निग्रोध-परिव्राजक बोला--हे भगवान! हे सुगत! आप पधारें! भगवान् का स्वागत है ।तथागत
का स्वागत है ।चिरकाल के बाद भगवान् ने इधर दर्शन देने की कृपा की है ।आप कृपया आसन ग्रहण करें ।आप के लिये आसन सुसज्जित है ।"
६. तथागत ने सज्जित आसन ग्रहण किया ।निग्रोध भी एक नीचा आसन लेकर समीप बैठ गया ।वह बोला: --
७. "क्योंकि श्रमण गौतम हमारे यहाँ आये हैं, हम श्रमण गौतम से यह प्रश्न पूछना चाहते है कि क्या तथागत का, धम्म-विनय, जिसने तथागत अपने श्रावकों को विनीत करते है और जिस धम्म-विनय को सीख कर तथागत के श्रावक संतोष लाभ करते है, उसे अपना शरण-स्थान स्वीकार करते है और उसे लोकोत्तर धम्म मानते है?"
८. "निग्रोध, दूसरी दृष्टि वाले के लिये, दूसरी प्रवृत्ति वाले के लिये, दूसरी मान्यता वाले के लिये बिना अभ्यास और बिना शिक्षण के यह कठिन है कि वह यह समझ सके कि क्या है यह तथागत का धम्म-विनय, जिससे तथागत अपने श्रावकों को विनीत करते हैं और जिस धम्म-विनय को सिखकर तथागत के श्रावक संतोष लाभ करते है, उसे अपना शरण-स्थान स्वीकार करते है और उसे लोकोत्तर धम्म मानते है ।
१. "लेकिन हे निग्रोध! तू मुझ से अपने ही सिद्धांत के बारे में, इस कठोर तपस्या के ही बारे में पूछ कि इन तपस्याओं से किस बात की पुर्ति होती है और किस बात की पुर्ति नहीं होती?"
१०. तब निग्रोध ने तथागत से कहा ।" भगवान्, हम आत्म-क्तेश-दायक कठोर तपस्याओं के समर्थक हैं, हम उन्हें आवश्यक मानते हैं, हम उनसे चिपटे हुए है ।इनसे किस बात की पुर्ति होती है और इन से किस बात की पुर्ति नहीं होती?"
११. "निग्रोध! उदाहरण के लिये एक तपस्वी नग्न रहता है, कुछ भद्दी बातें करता है, अपने हाथ चाटता है; यदि कोई कहे कि,भिक्षार्थ पधारिये, तो उसकी भी नहीं सुनता, यदि कोई कहे कि, भिक्षार्थ रुकिये, तो उस की भी नहीं सुनता, जो कुछ उसके लिये खास तौर पर लाया गया हो, उसे स्वीकार नहीं करता" जो कुछ उसके लिये खास तौर पर तैयार किया गया है, उसे स्वीकार

नही करता; कोई निमन्त्रण स्वीकार नही करता वह पकाने के बर्तन में से दी हुई चीज स्वीकार नहीं करता, देहली के अन्दर रखी हुई कोई चीज स्वीकार नहीं करता, न ऊखल में रखी हुई, न लकडियों में रखी हुई, न चक्की में पीसी हुई; न उन दो जनों द्वारा दी गई कोई चीज स्वीकार करता है जो इकट्ठे बैठ कर खा रहे हों, न एक गभिणी से, न किसी दाई से, न उस स्त्री से जो किस आदमी के साथ सहभोग कर

रही हो; न उस समय इकट्ठी की हुई भोजन-सामग्री जब सूखा पडा हो; न उस स्थान से कोई चीज स्वीकार करता है, जहाँ कुत्ता हो, न मक्यियाँ भिनभिना रही हों; न वह मास-मछली ही स्वीकार करता है, न वह तेज नशीले पेय पदार्थ ही स्वीकार करता है, न वह चावलका माण्ड ही स्वीकार करता है ।वह या तो एक ही घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, एक कौर खाने वाला; या दो घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है, दो कौर खाने वाला; या सात घर से भोजन ग्रहण करने वाला होता है सात कौर खाने वाला । वह एक, दो या सात भिक्षाओ पर गुजारा करता है ।वह या तो दिन में एक बार भोजन ग्रहण करता है, या दो दिन में एक बार और या सात दिन में एक बार ।इस प्रकार वह भोजन ग्रहण करता है, पन्द्रह दिन में एक बार तक वह या तो गमलों मेँ उगाये हुए पौदों पर गुजारा करता है, या जंगली चावलों पर या नीवार-बीजों पर, या चमडे पर या सेवाल पर या चावल की भूसी के आटे पर, या कांजी पर, या आटे पर, या खली पर, या घासों पर या गोबर पर, या जंगल के फल-फूल पर या उन पर जो स्वयँ पेड से गिर पडे ।वह मोटे सन का कपडा पहनता है, वह मोटा-झोटा मिला जुला कपडा पहनता है, वह कफन का फेंका हुआ कपडा पहनता है, वह फेंके हुए चीथडे पहनता है ,वह वल्कल पहनता या वह मृग-छाल धारण करता है या मृग छाल की पट्टियों से ही बुनी जाली धारण करता है, या कुशा-तृण धारण करता है या छाल-वस धारण करता है, या मिट्टी धारण करता है, या आदमी के बालो का बुना कम्बल धारण करता है, या घोडे के बालों का कम्बल धारण करता है अथवा उजू के परों का बना वस धारण करता ।वह अपनी दाढी और बालों का लुब्दन करने वाला होता है, वह दोनो का लुब्दन करने वाला होता है, वह निरन्तर खडा ही रहने वाला होता है, वह एडियों के बल चलने वाला होता है, वह बैठकर आगे आगे सरकने वाला होता है, वह कांटों की शैथ्या पर सोने वाला होता है, वह अपनी शैस्या पर काँटे या लोहे की मेखें गाड कर उन पर सोने वाला होता है, वह लकडी के तख्ते पर सोने वाला होता है, वह जमीन पर सोने वाला होता है, वह एक ही पार्श्व पर सोने वाला होता है, वह मिट्टी-धुल रमाने वाला होता है, वह खुली हवा में रहने वाला होता है; वह कहीं भी जाने वाला होता है, वह गन्दगी खाने का अभ्यासी होता है, वह पानी न पीने वाला होता, वह (गर्मही) पानी पीने वाला होता है और वह होता है, प्रत : मध्याह्न और संध्या को स्नान करने वाला ।"

१२. इतना कर चुकने पर भगवान बुद्ध ने पूछा"हे निग्रोध! तुम क्या सोचते हो क्या आत्म-क्लेश-कारक केठोर तपस्या की प्रतइr हुई या नहीं?"" भगवान! सचमुच, यदि ऐसा हो तो आत्म-क्लेश-कारक कठोर-तपस्या की पुर्ति हो गई ।"

१३. "हे निग्रोध! अब मैं कहता हूँ कि इस प्रकार आत्म-क्लेश-परक कठोर तपस्या मेँ नाना दोष है ।"

१४. " भगवान्! आप इसमें क्या क्या दोष देखते है?"

१५. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उससे उसे झूठा संतोष हो जाता है कि उसका उद्देश्य पूरा हो गया है ।हे निग्रोध! यह उसका एक दोष हो जाता है ।

१६. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उससे वह अपने को ऊंचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है ।हे निग्रोध! यह भी उसका एक दोष हो जाता है ।

१७. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उसे उसका नशा चढ जाता है और वह लापरवाह हो जाता है ।हे निग्रोध! यह भी उसका एक दोष हो जाता है ।

१८. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करता है तो उसे लाभ और यश की प्राप्ति होती है ।उससे उसे झूठा संतोष प्राप्त हो जाता है ।वह संतुष्ट रह जाता है ।यह भी उसका एक दोष हो जाता है ।

१९. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी को लाभ और यश की प्राप्ति होती है, तो उससे वह अपने को ऊंचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है ।हे निग्रोध! वह भी उसका एक दोष हो जाता है ।

२०. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी का लाभ और यश की प्राप्ति होती है तो उसे उसका नशा चढ जाता है और लापरवाह हो जाता है ।हे निग्रोध! यह भी उसका एक दोष हो जाता है ।

२१. "हे निग्रोध! जब एक तपस्वी तपस्या करने लगता है तो वह भिन्न भिन्न प्रकार के भोजनों में भेद करने लगता है ।'यह मेरे अनुकूल पडता है, यह मेरे प्रतिकूल पडता है ।जिन भोजनों को वह समझता है कि उसके प्रतिकूल पडते है उन्हें वह जान-बुझकर त्यागता है ।जिन्हें वह समझता है कि उसके अनुकूल पडते हैं, उनके प्रति वह लोभी और मस्त हो जाता है ।उनमें उसकी आसक्ति बढ जाती है ।उन मे उसे कोई भय, कोई खतरा नहीं दिखाई देता ।उन्हें वह रस ले लेकर खाता है ।हे निग्रोध! यह भी उसका एक दोष हो जाता है ।

२२. “हे निग्रोध! एक तपस्वी अपने लाभ और यश की कामना के कारण यह सोचने लगता है मेरी ओर राजा-गण आकर्षित होंगे, उनके मन्त्री-गण आकर्षित होंगे, क्षत्रिय आकर्षित होंगे, ब्राह्मण आकर्षित होंगे, गृहपति आकर्षित होंगे तथा बडे-बडे आचार्यों आकर्षित होंगे ।हे निग्रोध! यह भी उसका एक दोष हो जाता है ।
२३. ”हे निग्रोध! एक तपस्वी किसी दूसरे तपस्वी या ब्राह्मण को लेकर बड-बडाने लगता है--अमुक आदमी की दुनिया भर की चीजे खाता है, आलू तरह के कन्द, शाखाओं पर लगने वाले फल, झाडियो में लगने वाले बेर आदि, जिमी कन्द और नाना तरह के बीज--इन सभी चींजों को जबडों के वजृ से पीस डालता है ।और तब लोग धर्मात्मा कहते है ।हे निग्रोध! यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है ।
२४. “हे निग्रोध! एक तपस्वी देखता है कि किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण को बहुत लाभ-यश प्राप्त होता रहा है, बहुत सत्कार-सम्मान मिल रहा है ।इसे देख-कर वह सोचता है--नागरिक, इस आदमी का जो इतने ऐशो-आराम के साथ रहता है इतना आदर - सत्कार करते है, इसे नागरिकों से इतना लाभ और यश प्राप्त है, लेकिन मैं जो तपस्वी हूँ, मैं जो इतनी कठोर तपस्या करता हूँ, मेरी और कोई ध्यान नहीं देता, मेरा कोई आदर सत्कार नहीं करता, मुझे लाभ और यश की प्राप्ति नहीं होती ।इसलिये उसे उन नागरिकों से शिकायत ही जाती है ।यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है ।
२५. “हे निग्रोध! एक तपस्वी, रहस्यमय,हो जाता है ।उससे यदि पूछा जाय कि आप इस बात को स्वीकार करते है वा नहीं तो स्वीकार करते हुए वह कहेगा कि स्वीकार नहीं करता और अस्वीकार करते हुए कहेगा कि स्वीकार करता हूँ ।इस प्रकार वह जान-बूझ कर झूठ बोलता है ।यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है ।
२६. “हे निग्रोध! एक तपस्वी गुस्सा भी हो जा सकता है और उसके मन में द्वेष भी अपना घर बना सकता है ।यह भी तपस्वी का एक दोष बन जाता है ।२७. “हे निग्रोध! तपस्वी ढोंगी बन जा सकता है, वंचक बन जा सकता है, ईर्ष्यालु बन जा सकता है, बडबडाने वाला बन जा सकता है, वह बडा चालाक बन जा सकता है, वह बडा कठोर-हृदय और अभिमानी बन जा सकता है, वह मन में बुरी बुरी ईच्छाये रखता है और उनका गुलाम बन जाता है, वह मिथ्या धारणायें बना लेता है और प्राकृतिक बातें करने लगता है, वह अपने अनुभवों की गलत व्याख्या करता है, वह लोभी होता है और वैराग्य से पराडग-मुख होता है ।यह भी तपस्वी का एक दोष हो जाता है
२८. “निग्रोध! तुम क्या सोचते हो? आत्म-क्तेश-कर तपस्या में ये सब दोष है वा नहीं है?”
२९. ” भगवान्! आत्म-क्तेश-कर तपस्या में ये सभी दोष निश्चय से है ।भगवान्! यह असम्भव नहीं कि कोई तपस्वी इन दोषों में से किसी से ही नहीं सभी से भी युक्त हों ।”
३०. भिक्षुओं को इन दोषों से मुक्त रहना चाहिये ।

३. भिक्षु तथा ब्राह्मण

१. क्या भिक्षु और ब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं? क्या दोनो एक ही है? -. ०-प्रश्न का भी उत्तर नकारात्मक ही है ।
२. इस विषय की चर्चा किसी भी एक स्थल पर नहीं मिलेगी ।बुद्ध-वचनों में यह जगह जगह बिखरी पडी है ।लेकिन उन दोनो में जो अन्तर है, उसे आसानी से एक जगह एकत्र किया जा सकता है ।
३. एक ब्राह्मण,पुरोहित’ होता है ।उसका मुख्य कार्य किसी के जन्म, विवाह मरणादि के अवसर पर,संस्कार, कराना है ।
४. यह, संस्कार, आवश्यक हो जाते है क्योंकि कहीं कहीं माना जाता है कि आत्मा मूलत : पाप में लिप्त है और उसे निर्मल कर निष्पाप बनाना है, और क्योंकि, आत्मा, तथा,परमात्मा’ का अस्तित्व भी स्वीकार किया जाता है ।
५. . इन सब,संस्कारों, के करने-कराने के लिये, पुराहित, होना ही चाहिये ।एक भिक्षु न तो किसी, मूल पाप’ में विश्वास करता है और न,आत्मा’ या ,परमात्मा’ में ।इसलिये उसे कोई संस्कार करने कराने नहीं है ।इसलिये एक भिक्षु,पुरोहित’ नहीं होता ।
६. ब्राह्मण पैदा होता है ।भिक्षु बनता है ।
७. ब्राह्मण की जाति होती है ।भिक्षु की कोई,जाति’ नहीं होती ।
८. एक बार,ब्राह्मण’ के घर पैदा हो गया, जन्म भर के लिये,ब्राह्मण’ ।कोई,पाप” कोई,जुर्म’ ऐसा नहीं जो एक,ब्राह्मण’ को,अब्राह्मण बना सके ।९. लेकिन एक बार,भिक्षु, बन जाने पर यह आवश्यक नहीं होता कि एक भिक्षु जन्म भर के लिये, भिक्षु, ही बना रहे । एक, भिक्षु “भिक्षु बनता है किन्तु यदि वह कभी कोई ऐसी बात कर बैठे कि जो उसे,भिक्षु बने रहने देने के अयोग्य बना दे, तो वह,भिक्षु, नहीं ही रह सकता ।

१०. ,ब्राह्मण' बनने के लिये किसी भी प्रकार का मानसिक या नैतिक शिक्षण अनिवार्य नहीं ।ब्राह्मण से जिस बात की आशा (केवल आशा) की जाती है वह है उसके अपने धार्मिक शास्त्र-ज्ञान की ।
११. भिक्षु की बात इसके सर्वथा प्रतिकूल है ।मानसिक तथा नैतिक-शिक्षण उसका जीवन-प्राण है ।
१२. एक ब्राह्मण जितनी चाहे उतनी सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है ।एक भिक्षु नहीं कर सकता ।
१३. यह कोई छोटा फर्क नहीं है ।आदमी की मानसिक और नैतिक स्वतन्त्रता पर--विचार के क्षेत्र में भी और कार्य के क्षेत्र में भी--सम्पत्ति कडे से कडे प्रतिबन्ध का काम करती है ।इससे दो प्रवृत्तियों में संघर्ष पैदा होता है ।इसीलिये ब्राह्मण हमेशा परिवर्तन का विरोधी रहा है, क्योंकि उसके लिये परिवर्तन का मतलब है शक्ति की हानि, धन की हानि ।
१४. सम्पत्ति-विहीन भिक्षु मानसिक और नैतिक तौर पर स्वतन्त्र होता है ।
कोई ऐसा व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता, जो उसकी ईमानदारी और सच्चाई में बाधक बन सके ।
१५. ब्राह्मण होते है ।लेकिन हर ब्राह्मण अपने में एक अकेला व्यक्ति होता है ।कोई ऐसा धार्मिक संघठन नहीं, जिस के वह अधीन हो ।हर ब्राह्मण अपना कानून आप है ।हाँ ब्राह्मण आपस में भौतिक स्वार्थो से अवश्य बन्धे हुए है ।
१६. दूसरी ओर एक भिक्षु हमेशा संघ का सदस्य होता है ।यह कल्पना से परे की बात है कि कोई भिक्षु हो और संघ का सदस्य न हो ।भिक्षु आप अपना कानून नहीं होता ।वह,संघ' के अधीन होता है।,संघ' एक आध्यात्मिक संगठन है ।

४. भिक्षु और उपासक

१. सद्धम्म ने भिक्षु के,धम्म' और उपासक के,धम्म' में स्पष्ट रुप से विभाजक रेखा खींची है ।
२. भिक्षु को पत्नि-विहीन रहना ही होगा ।उपासक को नहीं ।वह शादी कर सकता है ।
३. भिक्षु का कोई घर नहीं हो सकता ।भिक्षु का कोई परिवार नहीं हो सकता ।उपासक के लिये यह आवश्यक नहीं है ।उपासक का घर हो सकता है, उपासक का परिवार हो सकता है।
४. भिक्षु की कोई सम्पत्ति नहीं हो सकती ।लेकिन गृहस्थ की सम्पत्ति हो सकती है--वह सम्पत्ति रख सकता है।
५. भिक्षु के लिये प्राणि-हत्या अनिवार्य तौर पर वर्जित है ।गृहस्थ के लिये नहीं ।वह (अवस्था-विशेष में) जीव-हत्या कर भी सकता है।
६. यूं पंचशील के नियम दोनों के लिये समान है ।लेकिन भिक्षु के लिये वे व्रत रुप है ।वह उन्हें तोडेगा तो दण्ड का भागी होगा ही । उपासक (गृहस्थ) के लिये वे अनुकरणीय शील-मात्र है।
७. भिक्षु के लिये पंचशील का पालन अनिवार्य विषय है ।गृहस्थ के लिये उसके अपने विवेक पर निभ्रर करता है ।
८. तथागत ने दोनों के,धम्म' में ऐसा भेद क्यों रखा? इस के पीछे कोई न कोई खास कारण होना चाहिए ।क्योंकि बिना विशेष कारण के तथागत कभी भी कुछ करने वाले नहीं थे ।
९. कहीं भी इसका कारण तथागत ने स्पष्ट रुप से नहीं कहा है ।यह हमारे अनुमान का विषय है ।तो भी यह आवश्यक है कि इस विभाजक-रेखा का कारण स्पष्ट समझ में आ जाय ।
१०. इस में कोई सन्देह नहीं कि तथागत अपने धम्म द्वारा इस पृथ्वी पर धम्म-राज्य स्थापित करना चाहते थे ।इसलिये उन्होंने सभी को अपने धम्म का उपदेश दिया-भिक्षुओ को भी, गृहस्थों को भी ।
११. लेकिन तथागत यह भी जानते थे कि सर्व-सामान्य आदमियों को धम्म का उपदेश देने मात्र से वे उस आदर्श-समाज की स्थापना न कर सकेंगें जिसका आधार एकमात्र, धम्म' होगा ।
१२. आदर्श के लिये, व्यवहारिक' होना आवश्यक है ।इतना ही नहीं लोगों को वह, व्यवहारिक, लगाना भी चाहिये ।तभी लोग उस तक पहुँचने का प्रयास कर सकते है ।
१३. इस तरह का प्रयत्न भी तभी आरम्भ हो सकता है जब लोगों के दिमाग के सामने उस आदर्श पर आश्रित एक समाज का यथार्थ स्वरुप हो, जिस से सर्व -सामान्य जनता भी यही समझा सतेl कि, आदर्श, कोई, अव्यावहारिक' नही था, बल्कि ऐसा था कि जो साकार हो सके ।
१४. तथागत ने जिस, धम्म' का उपदेश दिया, संघ उसी का एक साकार सामाजिक नमूना है ।
१५. यही कारण है कि भगवन बुद्ध ने एक भिक्षु के, धम्म, और एक उपासक (गहस्थ) के धम्म में यह विभाजक-रेखा खींची । भिक्षु तथागत के आदर्श -समाज की मिसाल भी था और उपासक को यथा सामर्थ्य उसका अनुकरण करना था ।
१६. एक प्रश्न और भी है और वह यह कि भिक्षु का जीवन-कार्य क्या है?

१७. क्या भिक्षु-जीवन व्यक्तिगत-साधना के लिये ही है अथवा उसे लोगों की सेवा तथा उनका मार्ग-दर्शन भी करना ही है?
१८. ये दोनों ही उसके जीवन-कार्य है ।
१९. बिना व्यक्तिगत-साधना के वह नेतृत्व कर नहीं सकता ।इसलिये उसे अपने में एक सम्पूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, धाम्मिक और ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति बनना ही होगा ।इसके लिये उसे व्यक्तिगत-साधना करनी ही होगी ।
२०. एक भिक्षु गृह-त्याग करता है ।वह संसार -त्याग नहीं करता ।वह अपने घर को इसलिये छोडता है ताकि उसे उन लोगों की सेवा करने का अवसर और मौका मिल सके जो अपने अपने घर में बुरी तरह आसक्त है, और जो दु:ख में पडे हैं, जो चिन्ता में पडे हैं, जिन्हें चैन नहीं है और जिन्हें सहायता की अपेक्षा है ।
२१. करुणा--जो कि धम्म का सार है--का तकाजा है कि हर आदमी दूसरों से प्रेम करे और दूसरों की सेवा करे ।भिक्षु भी इस का अपवाद नहीं ।
२२. व्यक्तिगत-साधना में चाहे कोई कितना ही ऊंचा क्यों न हो यदि कोई भिक्षु, पीडित मानवता की ओर से उदासीन है तो वह भिक्षु नही है ।वह दुसरा और कुछ भी हो सकता है; किन्तु वह भिक्षु नहीं ही है ।

तीसरा भाग : भिक्षु के कर्तव्य

१. दूसरो को धम्म-दीक्षा देना भिक्षु का कर्तव्य है

१. यश कुल-पुत्र और उसके मित्रों धम्म में दीक्षित हो जाने का समाचार दूर दूर तक फैल गया । परिणाम यह हुआ कि ऊंचे ऊंचे कुलो के कुल-पुत्र और उनके निचले दर्जो के कुलो के भी कुल-पुत्र तथागत के पास शिक्षा ग्रहण करने और 'बुद्ध तथा धम्म' की शरण ग्रहण करने के लिये आने लगे ।
२. 'धम्म' की शिक्षा ग्रहण करने के लिये तथागत के पास बहुत लोग आने लगे । भगवान् बुद्ध जानते थे कि हर किसी को व्यक्तिशः शिक्षा देना उनके लिये भी आसान नहीं । उन्हें इसकी भी आवश्यकता अनुभव हुई कि रोज रोज बढती हुई प्रव्रजितों की 'जमात' को एक संघ में संगठित कर दें ।
३. इसलिये उन्होंने प्रव्रजितों को 'संघ' का सदस्य बना दिया और अनुशासन क्रम या शिस्त के अपेक्षित नियम भी बना दिये, जो 'विनय' कहलाये । 'संघ' के सदस्यों के लिये 'विनय' के नियमों का पालन अनिवार्य था ।
४. तथागत ने आगे चलकर 'भिक्षु' बनने के इच्छुक किसी भी श्रावक के लिये दो सिढियाँ आवश्यक ठहरा दी । पहली अवस्था में उसे ' प्रव्रजित ' होना होता था और एक ' प्रव्रजित' की ही हैसियत से उसे कई वर्षो तक किसी भिक्षु की देख-रेख में रहना होता था । जब उसका 'शिक्षण' समाप्त हो जाता तो उसे 'उपसमपन्न' होने की अनुमति मिलती थी, लेकिन यह तभी कि जब उसके 'परिक्षक' इस विषय में अपना संतोष कर लेते थे कि वह 'संघ' का सदस्य बनने के योग्य है ।
५. धम्म-प्रचार की आरम्भिक अवस्था में इस तरह की व्यवस्था करने की गुंजाईश न थी । उस समय तथागत ने उन्हें 'भिक्षु' बनाया और चारों दिशाओं में "धम्म-दूत" की हैसियत से धम्म-प्रचार करने के लिये भेजा ।
६. उन्हें धम्म-प्रचारार्थ विदा करने से पूर्व तथागत ने कहा—"भिक्षुओं! मैं जितने भी दिव्य तथा मानुष बन्धन है, उन सभी से मुक्त हूँ । तुम भी भिक्षुओं! जितने भी दिव्य तथा मानुष-बन्धन है, उन सभी से मुक्त हो । भिक्षुओं,अब जाओं बहुत जनों के हित के लिये ,बहुत जनों के सुख के लिये, संसार पर अनुकम्पा करने के लिये,और देवताओं तथा मनुष्यों के हित, सुख और कल्याण के लिये विचरण करो ।
७. "तुम में से कोई दो एक दिशा में मत जाओ! भिक्षुओं, उस धम्म की देशना करो, जो आदि में कल्याणकारक है, जो मध्य में कल्याणकारक है, जो अन्त में कल्याणकारक है । भिक्षुओं अर्थ और व्यज्जन (शब्दों) से युक्त ऐसे धम्म की देशना करो जो परिशुद्ध और श्रेष्ठ जीवन है।
८. "इसलिये प्रत्येक जनपद में विचरो, जो अभी धम्म में अदीक्षित है, उन्हे दीक्षित करो, दुःख से दग्ध इस समस्त संसार में विचरो, हर जगह शिक्षा दो । सभी अज्ञानियों को ज्ञान का दान दो ।
९. "जाओ, जहाँ कहीं महर्षि रहते हों, राजर्षि रहते हों, ब्रह्मर्षि रहते हों, वहाँ रहो और उनके अपने अपने मत के अनुसार उन्हें प्रभावित करो।
१०. "इसलिये जाओ, अकेले अकेले जाओ । अनुकम्पा से प्रेरित होकर जाओं । लोगों को (बन्धन) मुक्त करो और उनको दीक्षित करो ।"
११. तथागत ने उन भिक्षुओं को यह भी कहा--
१२. "धम्म-दान सब दानों से बढकर है, धम्म का माधुर्य सब माधुर्यो से बढकर है, धम्म का आनन्द सब आनन्दों से बढकर है ।
१३. "खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते है । प्रजा राग के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धम्म -दान का महान् फल है ।
१४. "खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते है । प्रजा द्वेष के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धम्म-दान का महान् फल है ।
१५. "खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते है । प्रजा मान के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धम्म-दान का महान् फल है ।
१६. "खेत (व्यर्थ की) घास से नष्ट हो जाते है । प्रजा तृष्णा के होने से नष्ट हो जाती है । इसलिये धम्म-दान का महान् फल है ।
१७. तब वे साठ भिक्षु धम्म-प्रचारार्थ चारों दिशाओं में फैल गये ।
१८. तथागत ने उन्हें 'धम्म-दीक्षा' के विषय में और भी हिदायतें दी ।

२. चमत्कारों (प्राति-हार्यों) द्वारा धम्म-दीक्षा नही

१. तथागत एक बार मल्लों के नगर अनुपिय में विहार कर रहे थे ।

२. उस समय पूर्वाह में तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र और चीवर ग्रहण किया और अनुपिय नगर में भिक्षा के लिये निकले ।
३. रास्ते में उन्हें लगा कि कदाचित भिक्षाटन के लिये अभी थोडी देर रुकना चाहिये । तब तक जहाँ भग्गव परिव्राजक रहता है, मैं वहाँ ही क्यों न चलू और उससे भेंट करुँ ?
४. इसलिये तथागत भग्गव परिव्राजक के आश्रम पर चले गये ।
५. तब भग्गव ने तथागत को कहा—"भगवान्! आप पधारे! भगवान्! आपका स्वागत है । आपने चिरकाल के बाद इधर आने की अनुकम्पा की है । आप कृपया आसन-ग्रहण करे । आपके लिये आसन सज्जित है ।"
६. तब तथागत वहां विराजमान हुए । भग्गव परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया । इस प्रकार बैठकर भग्गव परिव्राजक ने भगवान बुद्ध को कहा--
७. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, है श्रमण गौतम! सुनक्खत्त लिच्छवी हुए, मेरे पास आया था । कहता था कि अब श्रमण गौतम का शिष्यत्व त्याग दिया है । क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है?"
८. "भग्गव! यह ऐसा ही है जैसा सुनक्खत्त लिच्छवी ने कहा है ।"
९. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा--अब मैं तथागत के 'शिष्यत्व' का त्याग करता हूँ अब मैं तथागत का शिष्य नहीं रहूँगा । जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उससे पूछा-"सुनक्खत्त! क्या मैंने तुझे कभी कहा था कि सुनक्खत! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह?"
१०. "भगवान्! नहीं । ऐसा आपने नहीं कहा था ।"
११. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मै तथागत को अपना 'गुरु' स्वीकार करता हूँ!"
१२. "भगवान्! नहीं! ऐसा मैंने कभी नहीं कहा ।"
१३. "तब मैंने उससे पूछा-'जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है! मूर्ख कहीं के, क्या इसमें तेरा अपना ही दोष नहीं है?"
१४. सुनक्खत्त बोला --लेकिन भगवान! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई चमत्कार प्रातिहार्य नहीं दिखाते?"
१५. "सुनक्खत! क्या मैंने कभी तुझे कहा था कि सुनक्खत्त तू आकर मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखाऊंगा?"
१६. "भगवान्! ऐसा आपने कभी नहीं कहा ।"
१७. "अथवा सुनक्खत्त! तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं भगवान् का 'शिष्यत्व' स्वीकार करता हूँ क्योंकि भगवान् मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई प्रातिहार्य दिखायेंगे ।"
१८. "भगवान्! नहीं! मैंने ऐसा नहीं कहा था ।"
१९. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है?
२०. "सुनक्खत्त! तू क्या सोचता है, चाहे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे प्रातिहार्य दिखाये जायें और न दिखायें जायें, क्या मेरे धम्म का यही उद्देश्य नहीं है कि मेरे धम्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुख का नाश कर सकेगा?"
२१. "भगवान्! चाहे प्रातिहार्य दिखाये जायें और चाहे न दिखाये जायें निश्चय से तथागत की धम्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धम्म के अनुसार आचरण करेगा,वह अपने दुख का नाश कर सकेगा ।"
२२. "लेकिन भग्गव! सुनक्खत्त मुझे कहता रहा, भगवान! मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता नहीं देते ।"
२३. अच्छा तो सुनक्खत्त! मैंने तुझे कब कहा था कि आ सुनक्खत्त! तू मेरा तू शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊंगा?"
२४. "भगवान्! आपने नहीं कहा था ।"
२५. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूँगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देंगे?"
२६. "भगवान्! मैंने नहीं कहा था ।"
२७. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या तो मै हूँ और क्या तू है , जो तू त्यागने की बात कर रहा है! सुनक्खत्त! तू क्या सोचता है, चाहे मैं सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊं और चाहे न बताऊं, क्या मेरे धम्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धम्म के अनुसार आचरण करेगा वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा?"
२८. "भगवान्! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बतायें, निश्चय से तथागत की धम्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धम्म के अनुसार आचरण करेगा वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ।"

२९. "सुनक्खत्त! जब धम्म के उद्देश्य की सृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय और चाहे न बताया जाय, तो तेरे लिये ही इसका मूल्य है कि सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाय ?"
३०. "सुनक्खत्त! तूने नाना प्रकार से वज्जियों में मेरी प्रशंसा की है ।
३१. "सुनक्खत्त! तूने नाना प्रकार से वज्जियों में 'धम्म' की प्रशंसा की है ।
३२. "सुनक्खत्त! तूने नाना प्रकार से वज्जियों में संघ की प्रशंसा की है ।
३३. "सुनक्खत्त! मैं तुझे बताता हूँ । सुनक्खत्त! मैं तुझे बताता हूँ । बहुत से लोग ऐसे होंगे जो तुम्हारे बारे में कहेंगे कि सुनक्खत्त लिच्छवी तथागत की अधीनता में पवित्र जीवन व्यतीत करने में असमर्थ रहा । और असमर्थ होने के ही कारण उसने श्रेष्ठ-जीवन त्याग दिया और हीन-जीवन अपना लिया ।"
३४. "हे भग्गव! इस प्रकार मेरे कहे जाने पर, सुनक्खत्त लिच्छवी इस धम्म-विनय को छोडकर चला गया, जैसे उसका अकल्याण सुनिश्चित हो ।"
३५. तथागत के धम्म-विनय को छोड कर चले जाने के कुछ ही समय बाद सुनक्खत्त लोगों को बताता फिरता था कि तथागत के धम्म-विनय में कुछ भी परा-प्राकृतिक नहीं हैं, तथागत का धम्म उनकी अपनी 'बोधि ' का ही फल है, और जो कोई इस धम्म को श्रवण करता है उसे दुःख का अन्त करने के लिये केवल इस धम्म के अनुसार चलना पडता है ।
३६. यद्यपि सुनक्खत्त अपनी समझ में बुद्ध की निन्दा कर रहा था, लेकिन वह जो कुछ लोंगों को कह रहा था, वह सच ही था । क्योंकि भगवान् ने अपने धम्म-प्रचार में किसी परा-मानुषिक बात वा किसी चमत्कार आदि का कभी सहारा नहीं लिया ।

३. जोर-जबर्दस्ती से धम्म-परिवर्तन नहीं

१. एक बार पांच सौ भिक्षुओं के महान् भिक्षुसंघ के साथ भगवान् बुद्ध राजगृह और नालंदा के बीच की सडक पर जा रहे थे । और उसी समय अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ सुप्पिय परिव्राजक भी राजगृह और नालन्दा के बीच के महापथ पर चल रहा था ।
२. उस समय सुप्पिय परिव्राजक नाना प्रकार से बुद्ध की निन्दा कर रहा था, धम्म की निन्दा कर रहा था, संघ की निन्दा कर रहा था । लेकिन उसका शिष्य तरुण ब्रह्मदत्त नाना प्रकार से बुद्ध की प्रशंसा कर रहा था, धम्म की प्रशंसा कर रहा था, तथा संघ की प्रशंसा कर रहा था ।
३. इस प्रकार वे दोनों गुरु-शिष्य परस्पर विरोधी मत प्रकाशित करते हुए भिक्षुसंघ और तथागत के पीछे-पीछे चले आ रहे थे ।
४. अब भिक्षुसंघ सहित तथागत रात्रि-विश्राम के निमित्त अम्बलट्ठिका वन के राज्योद्यान में ठहरे । इसी प्रकार तरुण शिष्य ब्रह्मदत्त और उसके गुरु सुप्पिय परिव्राजक ने भी वहीं निवास किया । और वहाँ उस विश्राम-स्थल पर भी गुरु -शिष्य का वह विवाद जारी ही रहा ।
५. प्रातःकाल होने पर जब भिक्षु उठे तो उनकी बातचीत का विषय सुप्पिय और ब्रह्मदत्त का परस्पर का विवाद ही था ।
६. भगवान् बुद्ध ने चर्चा के विषय के अनुमान किया और वे भी वहाँ पहुंचे तथा बिछे आसन पर बैठे । वहाँ बैठने पर उन्होंने पूछा: -"बातचीत का विषय क्या है? चर्चा किस विषय की हो रही है?" उन्होंने तथागत को सारी बात बता दी । तब तथागत ने कहा
७. "भिक्षुओं, यदि कोई मेरी निन्दा करे, धम्म की निन्दा करे अथवा संघ की निन्दा करे तो इसका तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिये, इससे तुम्हारे हृदय में जलन नहीं होनी चाहिये,इससे तुम्हें क्रोध नहीं आना ।
८. "यदि तुम इस कारण क्रोध को अपने मन में स्थान दोगे, तो इससे तुम्हारी ही हानि है । यदि जब कोई बुद्ध, धम्म या संघ की निन्दा करे और तुम उससे क्रोधित तथा उद्विग्न हो जाओं, तो क्या तुम इसका विचार कर सकोगे कि उसने जो कुछ कहा है वह ठीक कहा है या नही?"
९. "भगवान्! हम विचार नहीं कर सकेंगे ।"
१०. "लेकिन जब दूसरे लोग मेरी निन्दा करें, धम्म की निन्दा करें, संघ की निन्दा करें तो जो बात अयथार्थ हो, उसे तुम्हें अयथार्थ कहना चाहिये । तुम्हें बता देना चाहिये कि अमुक कारण से, यह बात ऐसी नहीं है, यह बात हममें नहीं पाई जाती, यह बात हममें नहीं होती ।
११. "लेकिन दूसरे लोग मेरी प्रशंसा भी कर सकते है, धम्म की प्रशंसा भी कर सकते हैं, संघ की प्रशंसा भी कर सकते है । तुम पूछोगे कि वे क्या कहकर मेरी प्रशंसा कर सकते है?

१२. "कोई कह सकता है कि श्रमण-गौतम प्राणी-हिंसा का त्याग कर जीव-हिंसा से विरत रहते है । उन्होंने दण्ड और तलवार का सर्वथा त्याग कर दिया है । वह कठोर व्यवहार से विरत है । वह करुणा की मूर्ति है । उसमें सभी प्राणियों के प्रति दया है । कोई भी सामान्य आदमी तथागत की चर्चा करते हुए इस प्रकार प्रशंसा कर सकता है ।
१३. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम अदिन्नादान (चोरी) से विरत हो, जो उसको नहीं है उसे लेने की इच्छा से रहित हो विहार करता है । जो दिया जाता है, उसे ही वह ग्रहण करता है । उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का विश्वास है । वह अपना जीवन हृदय की स्वच्छता और पवित्रता से व्यतीत करता है ।
१४. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम अब्रह्मचार्य से विरत हो, ब्रह्मचार्य-युक्त हो विहार करता है । वह अपने आप को मैथुन-धर्म से, हीन-धर्म से बहुत दूर दूर रखता है ।
१५. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम मिथ्या-भाषण का त्याग कर मृषावाद से दूर दूर रहता है । वह सत्य ही बोलता है । वह सत्य से नहीं हटता है । वह विश्वासनीय है । वह कभी अपने वचन को भंग नहीं करता ।
१६. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम अपने आप को किसी की झूठी निन्दा से सुनकर, यहाँ के लोगों से दूर दूर रखता है । वह यहाँ झगडा लगाने के लिये, उस बात को वहाँ नहीं कहता, और यहाँ सुनकर, वहाँ के लोगों से झगडा लगाने के लिये, उस बात को यहाँ नहीं कहता । इस प्रकार वह झगडने वालों का मेल कराने वाला है, मित्रों की मैत्री बढाने वाला है, शान्ति का प्रशंसक है. शान्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है तथा ऐसे ही शब्दों का व्यवहार करता है, जिससे शान्ति की स्थापना हो ।
१७. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम कटु शब्दों का त्याग कर कठोर वाणी से दूर दूर रहता है । जो वाणी निर्दोष होती है, जो वाणी कर्ण-प्रिय होती है, जो वाणी अच्छी लगने वाली होती है, जो वाणी हृदय को आकर्षित करने वाली होती है, शिष्ट होती है, लोंगो को खुश करती है, लोगों का मन हर लेती है--ऐसी ही वाणी बोलता है ।
१८. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम व्यर्थ बातचीत का त्याग कर बेकार बातचीत से दूर दूर रहता है । वह समयानुसार बोलता है, वह यथार्थ बात बोलता है, उसकी वाणी अर्थ-भरी होती है, धाम्मिक होती है, विनयानुकूल होती है । वह समय पर बोलता है, ऐसी वाणी बोलता है जो दिल में घर बना लेती है, उदाहरण -सहित बोलता है, जितना बोलना अवाश्यक हो, उतना ही बोलता है ।
१९. "अथवा वह कह सकता है कि श्रमण-गौतम बीजों या पौधो की हानि करने से अपने आप को दूर दूर रखता है । वह केवल एक बार ही भोजन ग्रहण करता है, वह रात को भोजन ग्रहण नहीं करता, वह अपरान्ह में भोजन ग्रहण करने से विरत रहता है ।

'वह नृत्य-गीत और वादित युक्त खेल-तमाशों को देखने से विरत रहता है ।

'वह माला, सुगन्धियों तथा लेपों से अपने आपको अलंकृत करने तथा सजाने से विरत रहता है ।

'वह ऊँची ऊंची महान् शय्याओं का उपयोग नही करता ।

'वह चाँदी-सोना स्वीकार नहीं करता ।

'वह कच्चा अन्न स्वीकार नहीं करता ।

'वह स्त्रियों या लडकियों को स्वीकार नहीं करता ।

'वह दास दासियों को स्वीकार नहीं करता ।

'वह भेड-बकरियों को स्वीकार नहीं करता ।

'वह मुर्गे-मुर्गियों तथा सूअरों को स्वीकार नहीं करता ।

'वह हाथियों, गाय-बैलों घोडों तथा घोडियो को स्वीकार नहीं करता ।

'वह ऊसर या बोई हुई जमीन को स्वीकार नहीं करता ।

'वह (शादी कराने आदि में) मध्यस्थ बनना स्वीकार नहीं करता ।

'वह खरीदना-बेचना स्वीकार नहीं करता ।

'वह तराजू या बटखरों से किसी को ठगना स्वीकार नहीं करता ।

'वह रिश्वत, वंचना और ठगी के टेढे-मेढे रास्तों से बचता है ।

'वह किसी का अंग-भंग करने, किसी को मार डालने, किसी को बाँध डालने, किसी को लूट लेने किसी की हिंसा करने से विरत रहता है ।
२०. "भिक्षुओं! ऐसी कुछ बाते हैं जो एक सामान्य आदमी तथागत की प्रशंसा करते हुए कह सकता है । लेकिन ऐसा होने पर भी न तुम्हें विशेष हर्ष होना चाहिये, न तुम्हारा हृदय खुशी से फूल जाना चाहिये । यदि तुम ऐसे होगे तो इससे भी तुम्हारी साधना में बाधा

पडेगी । जब दूसरे लोग मेरी, वा धम्म की वा संघ की प्रशंसा करें, तो तुम्हें जो बात यथार्थ हो उसे स्वीकार करना चाहियें । तुम्हें कहना चाहिये: ‘इस कारण से यह ऐसा ही है । यह बात हमारे बीच है । यह गुण हममें है ।”

४. भिक्षु को धम्म-प्रचार के लिये संघर्ष करना चाहिये

१. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए एक बार भगवान् बुद्ध ने कहा:--

२. “भिक्षुओं! मैं संसार से नहीं झगडता हूँ । बल्कि संसार ही मुझसे झगडता है । सत्य का उपदेशक संसार में कभी किसी से नहीं झगडता ।”

३. “योधा, योधा हम अपने आप को कहते है । भगवान! हम योधा किस प्रकार है?”

४. “भिक्षुओं, हम युद्ध करते है, इसलिये योधा कहलाते हैं ।”

५. “भगवान्! हम किस बात के लिये युद्ध करते है?”

६. “भिक्षुओं! हम श्रेष्ठशील के लिये युद्ध करते है, श्रेष्ठ अप्रमाद के लिये युद्ध करते है, श्रेष्ठ प्रज्ञा के लिये युद्ध करते हैं ।”

७. जहाँ शील को खतरा हो, संघर्ष से मत घबराओ । ऐसे समय भीगी बिल्ली बने मत बैठे रहो ।

चौथा भाग : भिक्षु और गृहस्थ

१. भिक्षा का बन्धन

१. भिक्षु-संघ एक संगठित संस्था थी, जिसका दरवाजा हर किसी के लिये खुला न था ।
२. केवल प्रव्रजित हो जाने से ही कोई संघ का सदस्य नहीं बन सकता था ।
३. 'उपसम्पदा' प्राप्त करने से ही कोई भी आदमी संघ का सदस्य बन सकता था ।
४. संघ एक स्वाधीन संस्था थी । यह अपने संस्थापक से भी स्वाधीन थी ।
५. यह स्वतन्त्र थी । यह जिसे चाहे उसे अपना सदस्य बना सकती थी । यदि कोई सदस्य विनय विरुद्ध चले तो यह उस सदस्य की सदस्यता छीन भी ले सकती थी ।
६. केवल भिक्षा ही वह डोरी थी, जिससे भिक्षु और गृहस्थ परस्पर बंधे थे ।
७. भिक्षु भिक्षा पर निर्भर करते थे और गृहस्थ उन्हें भिक्षा देते थे ।
८. गृहस्थ संगठित न थे।
९. संघ-दीक्षा थी, जिसका मतलब था किसी की भी भिक्षु-संघ में दीक्षा ।
१०. संघ-दीक्षा से आदमी 'संघ' तथा 'धम्म' दोनों में दीक्षित हो जाता था ।
११. लेकिन ऐसे लोगों के लिये जो प्रव्रजित बन 'संघ' की दीक्षा तो न चाहते थे, केवल 'धम्म' की दीक्षा चाहते थे, कोई पृथक 'धम्म-दीक्षा' न थी ।
१२. यह एक बडी गम्भीर कमी रह गई । यह कमी उन कारणों में से एक थी जो अन्त में जाकर भारत से बौद्ध-धम्म के लूप्त हो जाने के कारण बने ।
१३. इसी पृथक धम्म-दीक्षा के न होने के कारण गृहस्थ एक धम्म से दूसरे धम्म में भटक सकते थे और उससे भी बुरी बात यह कि बौद्ध-धम्म को अपनाये रहते समय ही कोई दूसरा धर्म भी अपनाये रह सकते थे।

२. परस्पर-प्रभाव

१. लेकिन 'भिक्षा' का बन्धन भी ऐसा था कि जिसने 'कोई' भिक्षु किसी पथ-भ्रष्ट 'गृहस्थ' को फिर सही रास्ते पर ला सकता था।
२. इस सम्बन्ध में अंगुत्तर-निकाय में वर्णित नियम ध्यान देने योग्य है ।
३. इन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त किसी भी गृहस्थ का यह सामान्य अधिकार था कि वह किसी भी भिक्षु के सदोष आचरण की शिकायत दूसरे भिक्षुओं से सके।
४. जब भी भगवान् बुद्ध को किसी कि ऐसी शिकायत सुनने को मिली तो उन्होंने इसकी जांच की है कि सही है या नहीं । और बात के सही होने पर उन्होंने 'विनय' के नियमों में ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि भविष्य के लिये वह 'दोष' संघ के नियमों के विरुद्ध किया गया एक 'अपराध' बन जाय ।
५. सारा विनय-पिटक गृहस्थों द्वारा की गई शिकायतों के मार्जन का ही परिणाम है ।
६. भिक्षुओं और गृहस्थों में ऐसा ही आपसी सम्बन्ध था ।

३. भिक्षु का 'धम्म' तथा उपासक का 'धम्म'

१. बौद्ध-धम्म के कुछ आलोचकों का कहना है कि बौद्ध-धम्म कोई 'मजहब' नहीं है ।
२. इस तरह की आलोचना की ओर ध्यान देने की जरुरत नहीं । लेकिन यदि कोई उत्तर देना ही हो तो कहा जा सकता है कि केवल बौद्ध-धम्म ही असली 'मजहब' है और जिन्हें यह बात स्वीकृत न हो उन्हें अपनी 'मजहब' की परिभाषा बदलनी चाहिये ।
३. दूसरे आलोचक इतनी दूर तक नहीं जाते । वे इतना ही कह कहते है कि एक मजहब के रुप में बौद्ध-धम्म केवल भिक्षुओं का धम्म हैं ।इसका सर्व-साधारण से कोई सम्बन्ध नहीं । बौद्ध-धम्म ने जन-साधारण को अपने दायरे से बाहर ही रखा है ।
४. भगवान बुद्ध के प्रवचनों में 'भिक्षु' शब्द इतनी अधिक बार आता है कि इससे आलोचकों की आलोचना का समर्थन होता है ।
५. इसीलिये, यह आवश्यक है कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाय ।

६. क्या भिक्षुओं और गृहस्थों के लिये ‘धम्म’ एक ही है? अथवा ‘धम्म’ का कोई एक ऐसा भाग भी है जो भिक्षुओं के लिये ही है और गृहस्थो के लिये नहीं?

७. क्योंकि ‘प्रवचन’ प्राय: भिक्षुओं को ही सम्बोधित करके किये गये, इसलिये इससे यह अनुमान नहीं निकालना चाहिये कि तमाम ‘प्रवचन’ भिक्षुओं के लिये ही थे। नहीं,भगवान् बुद्ध के उपदेश भिक्षुओं तथा गृहस्थों-दोनों के लिये थे।

८. जिस समय भगवान बुद्ध ने पंच-शीलों, अष्टांगिक-मार्ग तथा दस पार मिताओ का उपदेश दिया,तो उनकी नजर गृहस्थों पर ही रही होगी--यह बात इतनी अधिक स्पष्ट है कि इसके लिये किसी तर्क की अपेक्षा नहीं।

९. जिन्होंने घर-बार का त्याग नहीं किया है, जो क्रिया -शील गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं, एक प्रकार से उन्हीं के पंच-शील, अष्टांगिक-मार्ग तथा दस पारमिताये आवश्यक है। जिस भिक्षु ने गृह-त्याग कर दिया है, उसकी अपेक्षा एक गृहस्थ से (जो किया-शील गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता है) ही इस बात की अधिक संभावना है कि वह शील भंग करेगा।

१०. इसलिये भगवान् बुद्ध ने जब धम्म-प्रचार आरम्भ किया तो यह मुख्य रुप से गृहस्थो के लिये ही रहा होगा।

११. केवल अनुमान प्रमाण पर ही निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। इस आलोचना का खण्डन करने के लिये हमारे पास प्रत्यक्ष साक्षी है।

१२. निम्नलिखित ‘प्रवचन’ का भी उल्लेख किया जा सकता है।

१३. एक बार जब भगवान् बुद्ध अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे, उस समय दूसरे पांच सौ उपासकों के साथ धम्मिक नाम का उपासक वहाँ आया और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए धम्मिक उपासक ने तथागत को इस प्रकार सम्बोधन किया--

१४. “भगवान्! भिक्षुओं और उपासकों का वा घर से बेघर हुए लोगों का तथा गृहस्थों का क्या ‘शील’ है?

१५. “भगवान्! उपासको सहित उपस्थित भिक्षुओं को अपने अपने ‘शील’ की जानकारी देने की कृपा करें।”

१६. “तथागत ने कहा--भिक्षुओं। ध्यान देकर सुनो। बताये हुए नियमो का पालन करो।

१७. “मध्याहान्तर पिण्डपात (भिक्षाटन) के लिये मत जाओ। असमय भिक्षाटन करने वाले के लिये जाल बिछा रहता है।

१८. “भिक्षाटन से पहले अपने मन को रुप, ध्वनि, गन्ध, रस तथा स्पर्श की आसक्ति से मुक्त कर लो।

१९. “भिक्षाटन कर चुकने पर, अकेले लौटो और एकान्त में बैठ कर स्थिर चित्त से विचार करो।

२०. “सज्जनों से बातचीत करो तो धम्म के ही विषय में बातचीत करो।

२१. “भिक्षा, विहार, शयनासन और पानी से सफाई करने आदि को साधनों से अधिक और कुछ महत्व न दो।

२२. “यदि कोई भिक्षु इन सभी चीजों का अनासक्त होकर उपयोग करेगा तो वह ऐसे ही अलिप्त रहेगा जैसे पानी में रहने वाला कंवल पानी की बूंदों से।

२३. “अब मैं गृहस्थों के ‘शील’ की बात करता हूँ। उनसे मुझे कहना है।

२४. “किसी प्राणी की हत्या न करो, किसी की जान न लो। न किसी की जान लिये जाने का समर्थन करो। सबल हो वा दुर्बल हो--कैसा भी कोई प्राणी हो, किसी की हिंसा न करो। सभी प्राणियों से प्रेम करो।

२५. “किसी गृहस्थ को जान-बूझ कर न चोरी करनी चाहिये। न करानी चाहिये। दिया ही हुआ ग्रहण करना चाहिये।

२६. “व्यभिचार को वह आग का गढा समझे। पर-स्त्री गमन से दूर रहे।

२७. “चाहे कोई सभा हो और चाहे कचहरी हो, उसे चाहिये कि वह असत्य को प्रोत्साहन न दे, उसे असत्य का त्याग कर देना चाहिये।

२८. “इस नियम का पालन करे : शराब न पिये, किसी को शराब न पिलाये ,शराब पीने का समर्थन न करे। इस बात का विचार करे कि शराब आदमी को कितना पागल बना देती है।

२९. “नशे में आकर मूर्ख लोग पाप करते है ,तथा दूसरों को पाप में प्रवृत्त करते है।इसलिये इस पागल बना देने वाले व्यसन से दूर दूर रहे--यह मूर्खो का स्वर्ग है।

३०. “प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, नशीले पदार्थो से बचे और व्यभिचार से दूर रहे।

३१. “उपोसथ-दिनों में उपोसथ-व्रत ग्रहण करे और उस दिन अष्ट-शीलो का पालन करे।

३२. “प्रातःकाल के समय पवित्र श्रद्धा-युक्त चित्त के साथ (आठ) शीलो को ग्रहण करे। बुद्धि-पुरस्पर व्यवहार करे। भिक्षुओं को यथा सामर्थ्य-भोजन तथा पेय पदार्थो का दान करे।

३३. “अपने माता-पिता की भली प्रकार सेवा करे। जीविका का कोई अच्छा साधन अपनायें।

३४. “इस प्रकार जो गृहस्थ दृढता-पूर्वक धम्म का पालन करेगा ,वह दिव्य लोक को प्राप्त होगा।”

३५. इससें यह स्पष्ट हो जाता है कि भिक्षुओं और गृहस्थों का ‘धम्म’ एक ही था ।

३६. हाँ, इसमें थोडा भेद अवश्य है कि भिक्षुओं से अधिक आशा रखी गई है और गृहस्थों से उतनी नहीं ।

३७. भिक्षु के लिये पांच ‘व्रत’ अनिवार्य है ।

३८. उसे प्राणी-हिंसा से विरत रहने का ‘व्रत’ लेना पडता है ।

३९. उसे अदिन्नादान से अर्थात जो चीज उसे नही दी गई है, उसके न लेने का ‘व्रत’ ग्रहण करना पडता है ।

४०. उसे कभी भी झूठ न बोलने का ‘व्रत’ लेना पडता है ।

४१. उसे यह ‘व्रत’ लेना होता है कि वह किसी भी स्त्री से काम-संसर्ग नहीं रखेगा ।

४२. उसे यह ‘व्रत’ लेना होता है कि वह कभी किसी नशीले पदार्थ को ग्रहण नहीं करेगा ।

४३. यूं ये सभी नियम गृहस्थ पर भी लागू होते ही है ।

४४. भेद इतना है कि भिक्षु के लिये वे अनुल्लंघनीय ‘व्रत’ हैं, किन्तु गृहस्थ के लिये वे स्वेच्छा से ग्रहण किये गये ‘शील’ है ।

४५. दो और भी ध्यान देने लायक भेद है ।

४६. एक भिक्षु निजी सम्पत्ति नहीं रख सकता--

एक गृहस्थ रख सकता है ।

४७. एक भिक्षु ‘परिनिर्वाण’ में प्रवेश पाने के लिये भी स्वतन्त्र है । एक गृहस्थ के लिये ‘निर्वाण’ पर्याप्त है ।

४८. एक भिक्षु और गृहस्थ में ये ही समानतायें और असमानतायें हैं ।

४९. लेकिन, ‘धम्म’ दोनों का एक ही है।

पांचवा भाग : गृहस्थों के जीवन-नियम (विनय)

१. धनियों के लिये जीवन-नियम

(क)

१. भगवान् बुद्ध ने 'दरिद्रता' को"जीवन का सौभाग्य" कह कर उसे ऊपर उठाने का प्रयास नहीं किया ।

२. न उन्होंने गरीबों को यही कहा कि तुम ही संतुष्ट रहो क्योंकि तुम सारी पृथ्वी के उत्तराधिकारी हो ।

३. बल्कि,इसके विरुद्ध उन्होंने धन का स्वागत किया । जिस बात पर उन्होंने जोर दिया वह यह थी कि धन पर भी जीवन-मर्यादा का अंकुश लगा रहना चाहिये ।

(ख)

१ एक बार जहाँ भगवान् बुद्ध विराजमान् थे,वही अनाथपिण्डिक पहुंचा । आकर उसने तथागत को अभिवादन किया और एक और बैठकर बोला--'क्या भगवान्! आप कृपया बतायेंगे कि वे कौन सी बातें है जो गृहस्थी के अनुकूल है, गृहस्थ को अच्छी लगने वाली हैं, गृहस्थ के द्वारा स्वागतार्ह हैं,लेकिन जिनका प्राप्त करना कठिन है ।"

२. अनाथपिण्डिक का प्रश्न सुना तो तथागत ने उत्तर दिया--"ऐसी बातों में पहली बात है न्यायत: धन प्राप्त करना ।

३. "दूसरी बात है यह देखना कि सगे-सम्बन्धी भी न्यायत: धन प्राप्त कर सके ।

४. तीसरी बात है दीर्घ-जीवी होना ।

५. "इन तीन बातों की प्राप्ती से पहले, जो गृहस्थी के अनुकूल है, गृहस्थ को अच्छी लगने वाली है, गृहस्थ के द्वारा स्वागतार्ह है,चार बातें पूर्व -करणीय है । वें है श्रद्धारुपी सौभाग्य का होना, शील रुपी सौभाग्य का होना,उदारता रुपी सौभाग्य का होना तथा प्रज्ञा रुपी सौभाग्य का होना ।

६. श्रद्धारुपी धन का मतलब है तथागत के बारे में इस यथार्थ जानकारी का होना कि 'वे भगवान् अर्हत है । सम्यक् सम्बुद्ध है । विद्या तथा आचरण से युक्त है । सुगत है । लोक (विश्व) के जानकार है ।अनुत्तर हैं । (दुर्दमनीय) पुरुषों का दमन करनेवाले सारथी है तथा वे देव-मनुष्यों के शास्ता है ।

७. "शीलरुपी सौभाग्य प्राणातिपात (जीवहिंसा) अदिन्नादान (चोरी) काम-मिथ्याचार (व्यभिचार), मृषावाद (असत्य) तथा नशीली वस्तुओं के त्याग में है ।

८. "उदारता रुपी सौभाग्य कंजूसपन के कलंक से दूर रहने में है, उदार बने रहने में है, खुला हाथ रखने में है, दूसरो को देने में आनन्द मनाने में है, दाता और दान-शील होने में है ।

१. "प्रज्ञा का सौभाग्य किस बात में है? प्रज्ञा का सौभाग्य इस बात के जान लेने में है कि जिस गृहस्थ का मन लोभ के वशीभूत रहता है, लालच के वशीभूत रहता है, द्वेष के वशीभूत रहता है, आलस्य के वशीभूत रहता है, तन्द्रा के वशीभूत रहता है तथा चित्त की व्यग्रता के वशीभूत रहता है ,वह पाप-कर्म करता है, जो करना चाहिये वह नहीं करता है । इसके फलस्वरुप उसे न सुख की प्राप्ति होती है और न सम्मान की ।

१०. "लोभ, लालच, द्वेष, आलस्य, तन्द्रा, चित्त की अस्थिरता तथा संशयालुपन --ये सब चित्त के धब्बे है । जो गृहस्थ अपने चित्त को इन धब्बों से मुक्त कर लेता है ,वह बहुल-प्रज्ञ हो जाता है, पृथुल-प्रज्ञ हो जाता है,उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, वह पूर्ण ज्ञानी हो जाता है ।

११. "इस प्रकार न्यायत :,बडे परिश्रम से,बाहुबल से, पसीना बहाकर जो धन कमाता है वह बडा सौभाग्य है । ऐसा गृहस्थ अपने आप को सुखी और आनदिन्त करता है तथा आनन्द-मग्न रहता है । वह अपने माता-पिता, अपने स्त्री -बच्चों, अपने नौकरो और कमकरो तथा अपने यार दोस्तो को सुखी और आनन्दित करता है तथा सभी को आनन्द-मग्न रखता है ।"

२. गृहस्थ के जीवन के लिये नियम

"इस विषय में भगवान् बुद्ध के विचार उस सुत्तन्त में आ गये है जो श्रृगाल को दिया गया उपदेश' के नाम से प्रसिद्ध है ।"

१. उस समय भगवान बुद्ध राजगृह वेलुवन में कलन्दक-निवाप में विहार करते थे ।

२. अब उस समय गृहपति-पुत्र तरुण श्रृगाल समय से उठा और राजगृह से बाहर जाकर गीले-केश, गीले-वस्त्र, दोनों हाथ ऊपर उठाकर जोडे हुए पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं को नमस्कार करने लगा--पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊपर और नीचे ।

३. उस दिन तथागत समय रहते ही, चीवर पहन, पात्र तथा चीवर ले राजगृह में भिक्षाटन के लिये निकले । उन्होंने तरुण श्रृगाल को इस प्रकार
नमस्कार करते हुए देखा ।पूछा:--" तू इस प्रकार पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं की पूजा क्यों कर रहा है?"

४. मरते समय मेरे पिता ने कहा था कि पृथ्वी और आकाश की सभी दिशाओं की पूजा करना । इसलिये, भगवान्! अपने पिता के वचनों के प्रति आदर होने के कारण मैं ऐसा कर रहा हूँ ।"

५. तथागत ने पूछा—"लेकिन यह आदमी का सच्चा धम्म-कैसे हो सकता है?" श्रृगाल बोला—"तो फिर आदमी का दूसरा और सच्चा धम्म-क्या होगा? यदि कोई है तो भगवान की बडी कृपा होगी, यदि भगवान् बतायें।"

६. "तो तरुण गृहपति! मेरी बात ध्यान से सुनो । मैं बताता हूँ ।"भगवान् ! बहुत अच्छा ।" तब तथागत ने कहा:--

७. "कोई भी धम्म आदमी का सद्धर्म तभी कहला सकता है जब वह उसे बुरी बातो का त्याग करने की शिक्षा दे । प्राणियों की हिंसा करना, चोरी,व्यभिचार तथा झूठ--ये चार बुरी बाते है, जिनका परित्याग करना चाहिये ।

८. "श्रृगाल ! यह बात तू जान ले कि पाप-कर्म, पक्षपात, शत्रुता तथा भय के कारण किये जाते है । यदि आदमी इनसे मुक्त हो तो वह कोई पाप-कर्म न करेगा ।

९. "कोई भी धम्म आदमी का धम्म तभी हो सकता है जब वह उसे अपने धन को बरबाद करने की शिक्षा न दे । आदमी का पैसा शराब पीने की आदत पड जाने से बरबाद होता है, अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने से बरबाद होता है, मेले-तमाशे देखते-फिरने से बरबाद होता है, जुए की आदत पड जाने से बरबाद होता है, कुसंगति में पड जाने से बरबाद होता है और आलसी बन जाने से बरबाद होता है ।

१०. "श्रृगाल ! शराब की लत पड जाने से छ: हानियाँ है--(१) धन की हानि, (२) कलह होना, (३) रोग की सम्भावना, (४) दुश्चरित्रता, (५) भद्दी नग्नता, तथा (६) बुद्धि की हानि।

११. "अनुचित समय पर रात को बाजारों में घूमने की छ: हानियाँ है--(१) वह स्वयं अरक्षित होता है, (२) उसके स्त्री-बच्चे अरक्षित होते हैं, (३) उसकी सम्पत्ति अरक्षित रहती है, (४) जिन अपराधों के करने वालों का पता नहीं लगता उस पर उनका सन्देह किया जाता है, (५) उसके बारे में झूठी अफवाह फैल जाती है तथा (६) और भी अनेक दु:ख भुगतने पडते है ।

१२. मेले-तमाशे देखते फिरने की आदत में छ: दोष है--(१) वह हमेशा यही सोचता रहता है कि नाच कहाँ है? (२) गाना कहाँ है? (३) बजाना कहाँ है? (४) काव्य-गाना कहाँ है? (५) घंटियों का बजाना कहाँ है? (६) टम -टँम बाजा कहाँ है?

१३. "जुआ खेलने की लत पड जाने की छ: हानियाँ है--(१) जीतने पर घुणा का पात्र बनता है, (२) हारने पर अपनी हार से दु :खी होता है, (३) उसका गुजारा ही नष्ट हो जाता है, (४) अदालत में उसके वचन का कोई मूल्य नहीं होता, (५) वह मित्रों तथा राजकर्मचारियों की घुणा का पात्र बन जाता है, (६) कोई शादी करने वाला उससे सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहता, क्योंकि उसका कहना होता है कि जुआरी कभी अपनी पत्नि का पालन-पोषण नहीं कर सकता ।

१४. "कुसंगति के छ: दोष हैं--(१) कोई जुआरी, (२) कोई आवारा-गर्द, (३) कोई शराबी, (४) कोई ठग, (५) कोई वंचक अथवा (६) कोई भी हिंसक उसका मित्र बन जाता है ।

१५. "आलसी होने में छ: दोष है--(१) बहुत ठंड है, कहकर वह काम नहीं करता; (२) बहुत गरमी है, कहकर वह काम नही करता; (३) बहुत जल्दी है, कहकर वह काम नहीं करता; (४) बहुत देर हो गई है, कहकर वह काम नहीं करता; (५) बहुत भूख लगी है, कहकर काम नहीं करता; तथा (६) बहुत खा लिया है, कहकर काम नहीं करता । और क्योंकि जो जो उसे करना चाहिये था, वह सब बिना किया ही रहता है, इसलिये वह कुछ नया भी अर्जित नहीं कर सकता; जो अर्जित रहता है, वह भी नष्ट हो जाता' है ।

१६. "कोई भी धर्म आदमी का सद्धम्म तभी कहला सकता है जब वह आदमी को अच्छे-बुरे मित्र की पहचान करायें ।

१७. "चार जनो को 'मित्र' के रुप में शत्रु समझना चाहिये--(१) जो लोभी हो, (२) जो कहता हो, लेकिन करता न हो, (३) जो खुशामदी हो, (४) जो फुजूल-खर्ची का साथी हो ।

१८. "इनमें से प्रथम को इसलिये"मित्र' के रुप में शत्रु समझना चाहिये, क्योंकि वह लोभी होता है, वह देता कम है और मांगता अधिक है । वह जो कुछ करता है, वह भय के मारे करता है । वह अपने स्वार्थ का ही ध्यान रखता है ।

१९. “जो कहता है, किन्तु करता नहीं, उसे भी ‘मित्र’ रुप में शत्रु समझना चाहियें, क्योंकि वह अपनी भूतकाल की मित्रता की बात करता है, वह भविष्य में मैत्रीपूर्ण व्यवहार की बात करता है, वह वचन-मात्र से ही लाभ उठाना चाहता है किन्तु जब कुछ भी करने का समय आता है, वह अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है ।
२०. “जो खुशामदी है, उसे भी ‘मित्र ‘ रुप में शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि वह बुराई में साथ देने वाला बन जाता है, भलाई में साथ देने वाला नहीं बनता, वह मुंह पर प्रशसा करता है, पीठ पीछे निन्दा करता है ।
२१. “जो फजूल-खर्ची का साथी हो, उसे भी ‘मित्र’ के रुप में शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि असमय बाजार घूमने के समय ही वह साथी होता है; जब तुम मेले-तमाशे देखते फिरते हो, उसी समय वह तुम्हारा साथी होता है; जब तुम जूआ खेलने में लगे होते हो, उसी समय वह तुम्हारा साथी होता है ।
२२. “चार तरह के मित्रो को यथार्थ -मित्र जानना चाहिये --(१) जो सहायक हो, (२) जो सुख-दु:ख दोनो का साथी हो, (३) जो अच्छा परामर्श देता हो तथा (४) जो सहानुभूति रखता हो ।
२३. “जो सहायक हो उसे यथार्थ मित्र जानना चाहिये: क्योंकि जब तक तुम अरक्षित अवस्था में होते हो, उस समय वह तुम्हारा संरक्षण करता है; जब तुम्हारी सम्पत्ति अरक्षित रहती है उस समय वह उसका संरक्षण करता है, तुम्हारी विपन्न-वस्था में वह तुम्हारा शरण-स्थान होता है --जब तुम्हें आवाह-विवाह जैसा कोई काम करना होता है तो वह तुम्हारी आवश्यकता में दुगुनी वस्तुयें तुम्हें लाकर देता है ।
२४. “जो सुख-दु:ख दोनों में साथी हो उसे यथार्थ-मित्र जानना चाहिये क्योंकि वह तुम्हें अपने ‘रहस्य’ बता देता है, क्योंकि वह तुम्हारी ‘रहस्य’ की बातों को छिपा कर रखता है, तुम्हारी मुसीबत में वह तुम्हारा साथ नहीं छोडता, वह तुम्हारे लिये अपने जीवन तक का बलिदान कर देता है ।
२५. “जो-सद्-परामर्श देता हो उसे ‘यथार्थ-मित्र’ जानना चाहिये; क्योंकि वह तुम्हे बुराई से रोकता है, वह तुम्हें शुभ-कर्म करने के लिये प्रेरित करता है, जो बाते तुमने पहले नहीं सुनीं, ऐसी बाते सुनाता है --वह तुम्हारे लिये स्वर्ग का मार्ग खोलता है ।
२६. “जो सहानुभूति रखता हो, उसे भी ‘यथार्थ -मित्र’ जानना चाहिये, क्योंकि तुम्हें दु :खी देखकर वह सुखी नहीं होता, तुम्हें सुखी देखकर वह सुखी होता है, तुम्हारी बुराई करने वाले को वह रोकता है । तुम्हारी प्रशंसा करने वाले का वह समर्थन करता है ।
२७. “किसी को छ: दिशाओं की पूजा करने की शिक्षा देने के बजाय जो धम्म आदमी का धम्म कहलाने के योग्य हो, उस धम्म की उसे शिक्षा देनी चाहिये कि वह (१) अपने माता-पिता की सेवा और उनका सत्कार करे, (२) अपने गुरुओं तथा आचार्यों का आदर करे, (३) अपनी स्त्री तथा अपने बच्चों को प्यार करे, (४) अपने मित्रों तथा (५) अपने साथियों से स्नेहपूर्ण बरताव करे तथा (६) अपने नौकरों और कमगारो की सहायता करे ।”

३. बालकों के लिये जीवन-नियम

१. “एक बालक को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिये । उसे सोचना चाहिये: एक समय इन्होंने मेरा पोषण किया, अब मैं इनका पोषण करुंगा । इनके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, मै उसे पूरा करुंगा । मैं अपनी वंश-परम्परा को कायम रखूंगा । मैं अपने आप को उत्तराधिकारी के योग्य बनाऊंगा । क्योंकि माता-पिता नाना प्रकार से सन्तान के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते है, वे उसे बुराई से बचाते हैं, वे उसे भला काम करने के लिये प्रेरित करते हैं, वे उसे किसी जीविका के योग्य बनाते हैं, वे उसका यथायोग्य विवाह करते हैं और उचित समय पर वे उसे उसका उत्तराधिकार सौंप देते हैं ।

४. शिष्य के लिए जीवन नियम

१. “एक शिष्य को अपने आचार्यों के प्रति यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये । उसे अपने स्थान से उठकर अभिवादन करना चाहिये,उसे पढने-लिखने में विशेष उत्साह दिखाना चाहिये, उसे अपने आचार्यो की व्यक्तिगत सेवा करनी चाहिये और शिक्षा ग्रहण करते समय विशेष ध्यान देना चाहिये । क्योंकि आचार्यो अपने शिष्यों से प्रेम करते है । जो कुछ उन्होने सीखा है, वह उसे सिखाते है; जो कुछ उन्होंने दृढतापूर्वक ग्रहण किया है, वह उसे ग्रहण कराते है । वे उसे हर प्रकार के शिल्प का अच्छी तरह ज्ञान कराते है । वे उसके मित्रों और साथियों में उसकी प्रशंसा करते है । वे हर तरह से उसकी आरक्षा की चिन्ता करते है ।

५. पति-पत्नि के लिए जीवन-नियम

१. "एक पति को अपनी पत्नी का सत्कार करना चाहिये, उसके प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करना चाहिये, पत्नि-व्रत पालन करना चाहिये, उसे अधिकारी बनाना चाहिए, तथा उसे गहने आदि बनवाकर देने चाहीये। क्योंकि स्त्री उसे प्यार करती है, उसके सभी कार्य अच्छी तरह करती है, वह उसके तथा अपने मायके सभी सम्बन्धियों का आतिथ्य करती है, वह पति व्रता होती है, उसके लाये सामान की रक्षा करती है और अपने तमाम कर्तव्यों को बडी होशियारी तथा दक्षता से पूरा करती है।

२. "एक कुल-पुत्र को अपने मित्रों तथा साथियों के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहियें, शालीनता तथा उदाराशयता से पेश आना चाहिये। उसे उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा वह अपने साथ करता है और उसे अपने वचन का पक्का होना चाहिये। क्योंकि उसके मित्र और उसके परिचित उसे प्यार करते है, उसकी अरक्षित-स्थिति में वह उसकी रक्षा करते है और ऐसे समय में उसकी सम्पत्ति की रक्षा करते है। खतरे के समय वे उसके शरण-स्थान होते है। मुसीबत पडने पर वे साथ नहीं छोडते। वे उसके परिवार का ख्याल रखते है।

६. मालिक और नौकर के लिये जीवन-नियम

१. "एक मालिक को चाहिये कि वह अपने नौकरों तथा कामगारों को उनकी सामर्थ्य के अनुसार काम दे, उन्हें भोजन तथा मजदूरी दे,बीमारी में उनकी देख-भाल करे, असाधारण स्वादिष्ट चीजे बाँट कर खाए और समय समय पर उन्हें छुट्टी भी दे। क्योंकि नौकर और कामगार अपने मालिक से प्रेम करते है, वे उससे पहले सोकर उठते है, उसके सो जाने पर सोने जाते है, जो कुछ मिलता है उसीसे संतुष्ट रहते है। वे अपना काम अच्छी तरह से करते है और सर्वत्र उसका यश फैलाते है।

२. "एक कुल-पुत्र को चाहिये कि वह अपने गुरुओं की मन-वचन तथा कर्म से प्रेमपूर्वक सेवा करे, उनके लिये सदैव अपने घर के द्वार खुले रखे तथा उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करे। क्योंकि गुरुजन उसे बुराई से बचाते है,उसे भलाई करने की प्रेरणा करते है, वे उससे मैत्री रखते है, जो उसने अभी तक नहीं सुना वह उसे सुनाते है तथा जो सुना है उसे ठीक और निर्दोष बनाते है।"

७. कुमारियों के लिये जीवन नियम

१. एक बार भगवान् बुद्ध भद्दिय के पास जातीय वन में ठहरे थे। मेण्डक का पौत्र उग्गह वहाँ आया और अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। उस प्रकार बैठे हुए उग्गह ने तथागत से निवेदन किया:-

२. "भगवान्! अन्य तीन भिक्षुओं के साथ कल के लिये मेरा भोजन का निमंत्रण स्वीकार करें।"

३. तथागत ने अपने मौन से स्वीकार किया।

४. जब उग्गह ने देखा कि तथागत ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया,वह अपने स्थान से उठा, अभिवादन किया और तथागत की प्रदक्षिणा करके चला गया।

५. रात के बीत जाने पर, दूसरे दिन तथागत ने पूर्वाह्न के समय चीवर धारण किया और पात्र तथा (दूसरा) चीवर ले, जहाँ उग्गह का घर था वहाँ गये और बिछे आसनपर बैठे। उग्गह नें तथागत को अपने हाथ से नाना प्रकार के भोजनों से संतर्पित किया।

६. जब तथागत भोजन समाप्त कर चुके, तो वह एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने कहा:-

७. "भगवान्! मेरी ये लडकियाँ अपने अपने पति के घर चली जायेंगी। भगवान्! आप उन्हें परामर्श दें, आप उन्हे उपदेश दे, जो चिरकाल तक उनके हित तथा सुख का कारण हो।"

८. तब भगवान् ने उन लडकियों को उपदेश दिया--"लडकियों! इस प्रकार का अभ्यास डालों कि हमारा हित और भलाई चाहने वाले हमारे अनुकम्पक माता-पिता जिस किसी पति को भी हमें सौंप देंगे, हम उससे पहले सोकर उठने वाली होंगी और उससे पीछे सोने वाली होंगी। हम काम करने वाली होंगी और सभी चीजों को व्यवस्थित रखने वाली तथा मधुर-भाषिणी होंगी। लडकियों! तुम्हें ऐसा अभ्यास डालना चाहिये।

९. "लडकियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति के माता-पिता, सगे सम्बन्धी तथा साधुगण--जो कोई भी घर आयें, उनका आदर करने वाली होंगी,उनका स्वागत करने वाली होंगी, उनके आने पर उन्हें आसन और जल देने वाली होंगी।

१०. "लडकियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति का जो भी काम होगा--चाहे ऊन का हो और चाहे राई को हो--हम उसमे दक्ष और होशियार होंगी। हम उस काम की समझ हासिल करेंगी जिससे हम उसे स्वंय कर सकें ,करा सकें।

११. लडकियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहियें कि घर के जितने नौकर-चाकर होंगे हम उन सबके काम की देख-भाल रखेंगी कि किसने क्या और कितना काम किया है और क्या और कितना काम नहीं किया है? हम रोगियों का बलाबल जानेगी, और जिसको जैसा भोजन देना चाहिये वैसा भोजन देंगी ।

१२. "लडकियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहियें कि जो रुपया, जो धान,जो सोना तथा चाँदी पति घर लायेंगे, हम उसे सुरक्षित रखेंगी, उसकी हिफाजत करेंगी ताकि कोई चोर,कोई उचक्का, कोई डाकू उसे न ले जा सके ।

१३. यह उपदेश सुनने को मिला तो उग्गह की लडकियाँ बहुत प्रसन्न हुई । वे तथागत की बडी कृतज्ञ थीं ।

८. उपसंहार

१. तथागत के इस प्रकार कहने पर तरुण गृहपति श्रुणाल बोला --"भगवान् अद्भूत है! जैसे कोई उखडे को जमा दे, अथवा ढके को उघाड़ दे, अथवा किसी पथ-भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे, अथवा अन्धेरे में रास्ता दिखा दे कि आंख वाले रास्ता देख लेंगे । इसी प्रकार तथागत ने नाना तरह से सत्य का प्रकाश कर दिया है ।"

२. "और मैं भी,बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण जाता हूँ । कृपया भगवान् आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें ।"

षष्ठम खंड

भगवान बुद्ध और उनके समकालिन

१.पहला भाग - उनके समर्थक
२.दूसरा भाग - उनके विरोधी
३.तीसरा भाग - उनके धम्म के आलोचक
४.चौथा भाग - मित्र तथा प्रशंसक

पहला भाग : उनके समर्थक

१. राजा बिम्बिसार का दान

१. राजा बिम्बिसार तथागत का एक सामान्य अनुयायी न था, वह भगवान् बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान था और धम्म के कार्यो में बहुत सहायक था ।

२. गृहस्थ उपासक बन जाने पर बिम्बिसार ने कहा- “भगवान्! आप भिक्षु संघ सहित कल के भोजन के लिये मेरा निमंत्रण स्वीकार करें ।”

३. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया ।

४. राजा बिम्बिसार ने जब जाना कि उसका निमंत्रण स्वीकृत हो गया, वह अपने स्थान से उठा और तथागत को अभिवादन किया तथा प्रदक्षिणा करके चला गया ।

५.रात बीत जाने पर बिम्बिसार ने बढिया से बढिया भोजन तैयार कराये और समय हो जाने पर तथागत को सूचना दी, “भगवान्! भोजन तैयार है”

६. पूर्वाह्न में तथागत ने चीवर पहन,अपना पात्र-चीवर ले पूर्व जटिल भिक्षुओं के साथ राजगृह में प्रवेश किया ।

७. तथागत राजा बिम्बिसार के महल में पहुंचे और भिक्षु संघ सहित बिछे आसन पर बैठे । राजा बिम्बिसार ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को अपने हाथ से भोजन परोसा । भोजन कर चुकने के बाद तथागत ने जब अपने हाथ और पात्र धो लिये, तो बिम्बिसार उनके पास आ बैठा ।

८. उनके पास बैठकर राजा बिम्बिसार ने सोचा: “मैं तथागत के लिये निवास स्थान की व्यवस्था कहाँ करुँ? जगह ऐसी होनी चाहिये जो गाँव से बहुत दूर भी न हो और ऐसी होनी चाहिये जो बहुत नजदीक भी न हो, जो लोग उनके पास आना-जाना चाहे, उनके लिये आना-जाना सुगम हो, जहाँ दिन में बहुत भीड न हो और रात में बहुत शोर न हो, जो एकान्त हो, जन- समूह से प्रच्छन्न हो और शान्ति-जीवन बिताने के लिये बहुत अच्छी हो ।

९. तब राजा बिम्बिसार को ध्यान आया: मेरा अपना वेळूवन उद्यान है, जो न नगर से बहुत दूर है और न नगर के बहुत समीप है, जो आने-जाने के लिये सुगम है । मैं क्यों न उसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को दान कर दू?"

१०. तब राजा ने एक जल भरी स्वर्ण झारी ली और भगवान् बुद्ध के हाथ पर जल डालते हुए कहा- “मैं यह वेळूवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु को दान देता हूँ ।” तथागत ने उद्यान स्वीकार कर लिया ।

११. तब तथागत ने राजा बिम्बिसार को अपने ‘प्रवचन’ से उत्साहित किया, आनन्दित किया और आल्हादित किया तथा अपने स्थान से उठकर चले गए ।

१२. उसके बाद तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया- “भिक्षुओं! मैं विहार को स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ ।”

२. अनाथपिण्डिक का दान

१. उपासकत्व ग्रहण कर चुकने के अनन्तर अनाथपिण्डिक एक बार भगवान् बुद्ध के पास गया । अभिवादन कर चुकने के अनन्तर वह एक ओर बैठा और बोला :-

२. “भगवान्! आप जानते हैं कि मैं श्रावस्ती में रहता हूँ जो धन-धान्य से सम्पन्न है और जहाँ शान्ति विराजती है । वहाँ महाराज प्रसेनजित् का शासन हैं ।

३. “मैं वहाँ एक विहार की स्थापना करना चाहता हूँ । आप कृपया वहाँ पधारे और उस विहार का दान स्वीकार करें ।”

४. भगवान बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार किया ।

५. जब सेठ अनाथपिण्डिक घर लौटा तो उसने जेत राजकुमार का उद्यान देखा-- हराभरा और निर्मल जल के स्रोतो से युक्त । उसने सोचा-- “भगवान् बुद्ध के भिक्षु-संघ के लिये यह स्थान सब से अधिक उपयुक्त होगा ।”

६. राजकुमार उद्यान बेचना नहीं चाहता था, इसलिये उसने कीमत बहुत अधिक बताई । पहले तो उसने इनकार ही किया, लेकिन आखिर में कहा- “लेना ही हो तो सारी जमीन पर कार्षापण (श्री, सोने का सिक्का) बिछाण दो ।”

७. अनाथपिण्डिक प्रसन्न हुआ,और कार्षापण बिछाने लगा । तब राजकुमार बोला- “रहने दो, मैं बेचना ही नहीं चाहता ।” लेकिन अनाथपिण्डिक का आग्रह था कि अब जब तुम एक बार उसकी किमत लगा चुके और मैं उतनी ही किमत देने के लिये तैयार हूँ तो तुम्हें जमीन देनी पडेगी । बात यहाँ तक बडी कि न्यायालय तक पहुची ।

८. इस बीच लोग इस असामान्य घटना की चर्चा करने लगे और राजकुमार को भी जब यह पता लगा कि अनाथपिण्डिक धनी तो था ही किन्तु वह बडा श्रद्धावान तथा धार्मिक था, उसने अनाथपिण्डिक से जमीन लेने का उद्देश्य पूछा। जब उसे पता लगा कि जमीन तथागत के लिये विहार बनवाने को ली जा रही है तो उसने भी उस पूण्य - कार्य में हिस्सेदार बनने की इच्छा प्रकट की। उसने जमीन की आधी ही कीमत स्वीकार की। बोला:-'जमीन तुम्हारी। पेड मेरे। मैं अपनी ओर से वृक्षों का दान करता हूँ।'
९. विहार का शिलान्यास हो चुकने पर वहाँ संघ के योग्य एक विशाल विहार बनवाया गया- जो बहुत ही सुन्दर लगता था।
१०. इस विहार का नाम पडा, 'अनाथपिण्डिक का जेतवनाराम'। संक्षिप्त रुप 'जेतवन विहार' ही रह गया। अनाथपिण्डिक ने तथागत को कपिलवस्तु से श्रावस्तीं पधारने और विहार को स्वीकार करने का निमंत्रण दिया।
११. जब तथागत जेतवन पधारे, अनाथपिण्डिक ने पुष्प- वर्षा की और सुगन्धित धूप जलाई। उसने एक सोने की झारी से तथागत के हाथ पर पानी डालते हुए कहा:-"मैं संसार- भर के भिक्षुसंघ को यह विहार समर्पित करता हूँ।"
१२. तथागत ने विहार स्वीकार किया और दानानुमोदन करते हुए कहा- "सभी अमंगलो का नाश हो। यह दान 'दाता' के साथ-साथ सारी मानवता की कल्याण-वृद्धि का कारण बने।"
१३. अनाथपिण्डिक बुद्ध के प्रधान शिष्यों में से एक था- दान- दाताओ में प्रमुख।

३. जीवक का दान

१. जब कभी तथागत राजगृह में होते, वैद्य जीवक दिन में दो बार तथागत के दर्शनार्थ जाता।
२. जीवक को लगा कि राजा बिम्बिसार ने तथागत को जिस वेळूवन का दान किया है, वह बहुत दूर है।
३. राजगृह में 'आम्रवन' नाम का उसका अपना एक बगीचा था, जो कि उसके अपने स्थान से नजदीक था।
४. उसने सोचा कि वह एक अंग-सम्पूर्ण विहार बनवाये और विहार तथा बगीचा तथागत को समर्पित कर दे।
५. अपने मन में यह विचार लेकर वह तथागत के पास पहुंचा और उनसे प्रार्थना की कि वह उसकी कामना पूरी होने दें।
६. तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया।

४. आम्रपाली का दान

१. उस समय तथागत 'नादिका' में ठहरे हुए थे, और स्थान- परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और कहा- "आनन्द! आ, हम वैशाली चलें।"
२. 'बहुत अच्छा' कह आनन्द ने स्वीकार किया।
३. तब महान् भिक्षुसंघ के साथ तथागत वैशाली पधारे। वहाँ वे वैशाली में आम्रपाली के आम्रवन में रहे।
४. तब आम्रपाली गणिका ने सुना कि भगवान् बुद्ध आये है और उसी के आम्रवन में ठहरे हैं। उसने कई राजकीय रथ जुतवाये और उनमें से एक में स्वयं बैठकर वह वैशाली की ओर से अपने उद्यान में गई। शेष रथों में उसकी अनुचर सेविकाये थीं। जहाँ तक रथ से जाया जा सकता था वह रथ से गई। उसके बाद वह रथ से उतर कर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुंची और जाकर अभिवादनपूर्वक एक ओर बैठ गई। जब वह वहाँ बैठी थी, उसे भगवान् बुद्ध का कल्याणकारी 'प्रवचन' सुनने को मिला।
५. तब आम्रपाली गणिका ने तथागत को दूसरे दिन के भोजन के लिये निमंत्रित किया।
६. तथागत ने उसे मौन रहकर स्वीकार किया। जब आम्रपाली को मालूम हुआ कि उसका निमंत्रण स्वीकृत हो गया है, वह अपने स्थान से उठी और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर प्रदक्षिणा कर चली गई।
७. अब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि भगवान् बुद्ध वैशाली आये हैं और आम्रपाली के उद्यान में ठहरे है। वे भी भगवान् बुद्ध को निमन्त्रण देना चाहते थे। उन्होंने भी बहुत से राजकीय रथ जुतवाये और अपने वैशाली के सभी साथियों सहित तथागत की सेवा में उपस्थित हुए।
८. इधर से ये जा रहे थे और उधर से आम्रपाली आ रही थी।
९. और आम्रपाली लिच्छवियों के रथों से रथ, पहिये से पहिया और धुरी से धुरी टकराती हुई पास से गुजरी। लिच्छवियों ने पूछा —"आम्रपाली! क्या बात है जो आज तू हमसे रथ टकराती हुई जा रही है?"
१०. "स्वामियों! तथागत प्रमुख भिक्षुसंघ ने कल के लिये मेरा भोजन का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।"
११. "आम्रपाली! हमसे एक लाख ले ले, यह कल का भोजन हमें कराने दे।

१२. “स्वामियों! यदि आप उप-नगरो सहित समस्त वैशाली भी मुझे दें, तब भी मैं यह कल का भोजन आपको नही कराने दे सकती ।”
१३. लिच्छवि हाथ मलते हुए आगे बढे । वे कहते जा रहे थे ।:- “इस आम्रपाली ने हमे हरा दिया इस आम्रपाली ने हमें हरा दिया ।” अन्त में आम्रपाली के उद्यान में पहुंचे ।
१४. यद्यपि वे जानते थे कि आम्रपाली बाजी मार ले गई है, तो भी उन्होंने सोचा कि हम भगवान बुद्ध के पास चलें । हो सकता है कि वे अब भी हमारे निमंत्रण को प्रथम स्थान दे दें ।
१५. जब भगवान् बुद्ध ने लिच्छवियों को दूर से ही, आते देखा तो उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित करके कहा- “जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं को न देखा हो, वे इन लिच्छवियों को देखें । वे इस लिच्छवि- मण्डली को देखे, वे इस लिच्छवि- मण्डली से अनुमान लगा ले- यह दिव्यलोक के देवताओं के समान है ।”
१६. जहाँ तक रथो से जा सकते थे, वहाँ तक रथो से जाकर लिच्छवि उतर पडे और तब जहाँ तथागत थे वहाँ पहुंचे और अभिवादन करके अपना स्थान ग्रहण किया ।
१७. तब उन्होंने तथागत से प्रार्थना की- “भगवान्! कल के लिये हमारा निमंत्रण स्वीकार करें ।”
१८. “लिच्छवियों! कल के लिये तो मैंने आम्रपाली का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है ।
१९. तब लिच्छवियों को निश्चय हो गया कि आम्रपाली उन पर बाजी मार ले गई । उन्होंने तथागत के वचनों का अनुमोदन किया, अपने स्थान से उठे और तथागत की वन्दना की । तदनन्तर वे तथागत कि प्रदक्षिणा कर वहाँ से विदा हुए ।
२०. रात बीत जाने पर आम्रपाली ने अपने निवासस्थान पर मधुर खादनीय भोजनीय की तैयारी कराई और समय की सूचना भिजवाई, “समय हो गया, और भोजन तैयार है ।”
२१. तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र- चीवर ले भिक्षुसंघ सहित जहाँ आम्रपाली का निवास- स्थान था, वहाँ पधारे । वहाँ पहुंचकर वे अपने लिये तैयार किये गये आसन पर विराजमान हुए । अब आम्रपाली ने प्रमुख बुद्ध- भिक्षुसंघ को खादनीय- भोजन से संतर्पित किया । वह अन्त तक स्वयं आग्रहपूर्वक परोसती रही ।
२२. भोजन समाप्त हो चुकने पर जब तथागत अपना पात्र और हाथ धो चुके, आम्रपाली एक नीचा आसन लेकर बैठ गई । तब उसने तथागत से निवेदन किया:-
२३. भगवान्! मैं अपना उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को अर्पित करती हूँ।” तथागत ने मौन रहकर स्वीकार किया । तदनन्तर भगवान बुद्ध ने दानानुमोदन करते हुए प्रवचन किया । इसके बाद तथागत आसन से उठ कर चले गये ।

९. विशाखा की दानशीलता

१. विशाखा श्रावस्ती की एक बडी धनी महिला थी । उसके पुत्र- पौत्र बहुत थे ।
२. जब तथागत श्रावस्ती में विहार कर रहे थे विशाखा जहाँ तथागत थे वहाँ पहुंची और उन्हें अगले दिन का निमंत्रण दिया, जिसे तथागत ने स्वीकार कर लिया ।
३. उस रात और दूसरे दिन सुबह भी भारी वर्षा हुई । भिक्षुओं ने अपने चीवरों को सूखा रखने के लिये उतार दिया और सारी वर्षा अपनें नंगे बदन पर पडने दी ।
४. जब दूसरे दिन तथागत भोजन समाप्त कर चुके, तो विशाखा एक नीचा आसन लेकर नजदीक बैठ गई और बडी विनम्रतापूर्वक बोली- “भगवान! मैं आपसे आठ वर चाहती हूँ।”
५. तथागत बोले- “विशाखा! तथागत (बिना जाने) वर नहीं देते ।”
६. विशाखा ने फिर निवेदन किया— “भगवान्! जो वर मैं मांगने जा रही हूँ वे उचित है और आपत्ति-रहित हैं ।
७. ‘वर’ मांगने की अनुमति मिल जाने पर विशाख बोली- “भगवान! मैं चाहती हूँ कि वर्षा-काल में मैं भिक्षुसंघ को चीवरों का दान कर सकूं। बाहर से आने वाले तथा बाहर जाने वाले भिक्षुओं को भोजन दे सकूँ। रोगियों को भोजन दे सकूं। रोगियों की सेवा करने वाले को भोजन दे सकूं। भिक्षुओं को खीर (दूध-भात) दान कर सकूं और भिक्षुणियों के लिये नहाने के वस्त्र का दान कर सकूं।”
८. “हे विशाखा! इन आठ वरों को मांगने का तेरा क्या कारण है, क्या प्रयोजन है?
९. विशाखा बोली:-“भगवान! मैने अपनी नौकरानी को आज्ञा दी कि वह विहार जाये और भिक्षु संघ को भोजन के तैयार हो जाने की सूचना दे आये। मेरी नौकरानी गई। लेकिन जब वह विहार पहुंची तो उसने देखा कि पानी बरसते समय भिक्षु निर्वस्त्र थे। उसनें

सोचा, 'ये भिक्षु नहीं है। ये नग्न तपस्वी है जो अपने शरीर पर पानी पडने दे रहे हैं!' वह चली आई और मुझे यही कहा। तब मैंने उसे दुबारा भेजा ।

१०. "भगवान्! नग्नता अशुचि पूर्ण है। भगवान्! नग्नता से जुगुप्सा पैदा होती है। भगवान्! यही कारण है और यही प्रयोजन है कि मैं जीवन भर भिक्षु संघ को वर्षा ऋतु में पहनने के लिये वस्त्र देना चाहती हूँ ।

११. "मेरी दूसरी मांग का कारण यह है कि बाहर से आने वाले भिक्षु, सीधे रास्तों से अपरिचित होने के कारण थके-थकाये आते है, वे नहीं जानते कि भिक्षा कहाँ मिलेगी । भगवान्! यही कारण है और यही प्रयोजन है कि मै जीवन-भर आगन्तुक भिक्षुओं को भिक्षा देना चाहती हूँ ।

१२. "मेरी तीसरी मांग इसलिये है कि एक बाहर जाने वाला भिक्षु यदि भिक्षाटन के लिये जायगा तो वह शेष भिक्षुओं से पीछे रह जा सकता है अथवा जहाँ वह पहुंचना चाहता है वहाँ विशेष विलम्ब से पहुंचेगा और वह अपने यहाँ से ही थका- थकाया रवाना होगा ।

१३. चौथे, यदि एक बीमार भिक्षु को ठीक पथ्य न मिले तो उसका रोग बढ़ भी जा सकता है और वह मर भी जा सकता है ।

१४. "पांचवे जो भिक्षु रोगी की सेवा शुश्रूषा में लगा है, उसे अपने लिये भिक्षाटन का समय नहीं मिल सकता ।

१५. "छटे, यदि रोगी भिक्षु को ठीक औषध न मिले तो उसका रोग बढ जा सकता है और वह मर भी जा सकता है ।

१६. "सातवें, भगवान्! मैंने सुना है कि तथागत ने ' क्षीर-पायास (खीर) की प्रशंसा की है क्योकि इससे बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है और भूख-प्यास दूर होती है । स्वस्थ आदमी के लिये यह पूरा भोजन है और रोगी के लिये यह पथ्य है; इसलिये मैं अपने जीवन-भर संघ को क्षीर-पायास का दान देना चाहती हूँ ।

१७. "अन्तिम मांग भगवान्! मैं ने इसीलिये की है कि भिक्षुणियाँ नग्न ही अचिरवती नदी के तट पर स्नान करती है जहाँ गणिकायें भगवान्! भिक्षुणियों का यह कह कर मजाक उडाती है कि 'इस तरुण अवस्था में तुम्हारे 'ब्रह्मचर्य' का क्या मतलब है । जब बूढी हो जाना तब 'ब्रह्मचर्य' की रक्षा करना' इस से तुम्हारे दोनों हाथो में लड्डू रहेंगे । भगवान्! स्त्री के लिये नग्नता बहुत बुरी बात है ,वह जुगुप्सा पैदा करने वाली है ।

१८. "भगवान्! ये ही कारण थे और ये ही प्रयोजन थे ।"

१९. तब तथागत ने प्रश्न किया "विशाखे! लेकिन अपने लिये तूने कौन सा लाभ सोचकर इन आठ बातों की मांग की?"

२०. विशाखा ने उत्तर दिया- "भगवान्! नाना स्थानों में वर्षावास करने वाले भिक्षु तथागत के दर्शनार्थ श्रावस्ती आयेंगे । और तथागत के पास आकर वे सूचना देंगे और पूछेंगे 'भगवान! अमुक और अमुक भिक्षु का शरीरान्त हो गया है । अब उसकी क्या गति है?' तब भगवान् जैसी जिस की गती होंगी वह बतायेंगे यदि वह सोतापान्न आदि मार्ग-फल प्राप्त रहा है तो वह बतायेंगे और यदि वह अर्हत हो गया रहा है, तो वह बतायेंगे ।

२१. "और तब मैं उन भिक्षुओ के पास जाकर उनसे पूछूँगी कि क्या यह भिक्षु कभी श्रावस्ती में रहा है? यदि वे कहेंगे कि 'हाँ' तो मैं इस परिणाम पर पहुच जाऊँगी कि अवश्य या तो उस भिक्षु ने वर्षावास के लिये चीवर प्राप्त किया होगा, या आगन्तुक भिक्षुओं का आहार प्राप्त किया होगा, या जाने वाले भिक्षु का आहार प्राप्त किया होगा,या रोगी का भोजन प्राप्त किया होगा, या रोगी शुश्रूषक का भोजन प्राप्त किया होगा, अथवा रोगी होने के कारण औषध प्राप्त की होगी अथवा नित्य मिलने वाली खीर प्राप्त की होगी ।

२२. "तब मेरे मन में प्रसन्नता पैदा होगी, प्रसन्नता से आनन्द उपजेगा और आनन्द होने के कारण से सारा शरीर शान्ति को प्राप्त करेगा । शान्ति का अनुभव होने से दिव्य सुख का अनुभव होगा और उस सुख की अनुभूति में मुझे हृदय की शान्ति प्राप्त होगी । यह एक प्रकार से मेरे लिये श्रद्धा-बल आदि तथा सात सम्बोधि- अंगो की प्राप्ति होगी । भगवान्! अपने लिये मैंने यही लाभ सोचकर इन आठ बातो की मांग की ।"

२३. तब तथागत ने कहा- "विशाखे! यह बहुत अच्छा है । यह बहुत अच्छा है कि तूने यह लाभ सोचकर तथागत से यह आठ वर मांगें है । जो 'दान' के पात्र है उन्हें जो दान दिया जाता है वह अच्छी भूमि में फल डालने के समान है जिससे खुब फसल होती है । लेकिन जो राग-द्वेष के वशीभूत है उनको दिया गया दान खराब भूमि में बीज डालने के समान है । दान ग्रहण करने वाले के राग-द्वेष मानो पुण्य की वृद्धि में बाधक हो जाते है ।"

२४. तदनन्तर तथागत ने इन शब्दों द्वारा पुण्यानुमोदन किया:- "शील सम्पत्र उपासिका श्रद्धायुक्त चित्त से, लोभरहित होकर जो कुछ भी दान देती है, उसका वह दिव्य दान, दु:ख के नाश का तथा दिव्य सुख की प्राप्ति का कारण होता है ।

"वह अपवित्रता और मल-रहित होकर सुखी जीवन को प्राप्त होती है ।

"कुशल-कर्म करने की ही आकांक्षा वाली वह सुख को प्राप्त होती है और उसे दान में ही आनन्द आता है ।"

२५. विशाखा ने पूर्व राम-विहार संघ को दान कर दिया । वह दानशील-गृहस्थ उपासिकाओ में प्रथम थी ।

दूसरा भाग : भगवान बुद्ध के विरोधी

१. जादू-टोना करके लोगों को धम्म-दीक्षा देने का दोषारोपण

१. एक बार भगवान् बुद्ध वैशाली के महावन में कूटागार शाला में ठहरे हुए थे । अब भद्दिय लिच्छवि तथागत के पास आया और बोला, "भगवान्! लोग कहते है कि श्रमण गौतम एक जादूगर है, वह जादू-टोना जानता है और उससे दूसरें मतों के अनुयायियों का मत बदल देता है ।

२. "जो ऐसा कहते है, उनका कहना है कि हम किसी भी तरह कोई अन्यथा बात नहीं कहना चाहते । भगवान्! हम लिच्छवि-गण के लोग इस आरोप में विश्वास नही करते । लेकिन हम जानना चाहेंगे कि तथागत का स्वयं विषय में क्या कहना है ।"

३. "भद्दीय! सुनो । किसी बात को इसलिये मत मानों कि लोग कहते हैं, किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह परम्परा से चली आई है, किसी बात को इसलिये मत मानों कि यह सुनी-सुनाई है, किसी बात को इसलिये मत मानो कि यह (धर्म) ग्रंथो में लिखी हुई है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह तर्क (शास्त्र) के अनुसार है ,किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह न्याय (शास्त्र) के अनुसार है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानों कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानो कि वह अनुकूल दृष्टि की है, किसी बात को केवल इसलिये मत मानों कि वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है तथा किसी बात को केवल इसलिये भी मत मानों कि वह किसी ऐसे आदरणीय व्यक्ति की कही हुई है जिसके बारे में तुम सोचते हो कि 'उसकी बात माननी ही चाहिये ।"

४. "लेकिन, भद्दीय, यदि तुम अपने ही अनुभव से यह जान लो कि अमुक कर्म पाप-कर्म है या अमुक कर्म अकुशल-कर्म है, या अमुक कर्म विज्ञ पुरुषों द्वारा निन्ध है, और अमुक कर्म हानिकर है, तो भद्दीय, ऐसे कर्म का तुम त्याग कर दो ।

५. "अब जहाँ तक तुम्हारे प्रश्न का सम्बन्ध है मै तुम से ही पूछता हूँ कि जो लोग मुझ पर जादूगर होने का आरोप लगाते है, क्या वे महत्वकांक्षी लोग नहीं हैं? भद्दिय बोला- "भगवान्! वे हैं ।"

६. "तो भद्दिय! क्या ऐसा आदमी जो महत्वाकांक्षी हो और लोभ के वशीभूत हो अपनी महत्वकांक्षा पूरी करने के लिये दूसरे से झूठ नहीं बोलता वा अकुशल-कर्म नहीं करता?" "भगवान्! करता हैं ।"

७. "तो भद्दिय! जब ऐसा आदमी द्वेष और बदला लेने की भावना के वशीभूत हो जाता है, तो क्या वह उन लोगो के विरुद्ध जिन्हें वह समझता है कि वह उस की महत्वाकांक्षा के पथ के बाधक है; झूठे आरोप लगाने के लिये दूसरों को प्रेरित नहीं करता?" भद्दिय बोला: -"भगवान्! करता है । "

८. "तो भद्दिय! मैं तो इतना ही कहता हूँ । मैं कहता हूँ कि आओ, लोभ- युक्त विचारों के वशीभूत मत होओ । यदि तुम उन पर काबू रखोगे, तो मन, वचन, कर्म से कोई काम ऐसा न करोगे, जिस के मूल मे लाभ हो । द्वेष और मोह (अविद्या) के वशीभूत मत होओ ।"

९. "इसलिये भद्दिय! जो श्रमण-ब्राह्मण मुझ पर यह आरोप लगाते हैं कि 'श्रमण गौतम एक जादूगर है वह जादू-टोना जानता है और उससे दूसरे मतों के अनुयायियों का मत बदल देता है' वे झूठे हैं,मृषावादी हैं ।"

१०. "भगवान् । आप का यह जादू बडे भाग्य की बात है । आप का यह जादू बडे सौभाग्य की बात है । भगवान्! क्या अच्छा हो कि मेरे सभी सगे- सम्बन्धियों पर आपका जादू चल जाये । निश्चय से यह उनके हित और सुख के लिये होगा ।"भगवान! यदी सभी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शुद्र इसी जादू के वशीभूत हो जायें तो निश्चय से यह इनके हित और सुख के लिये होगा ।"

११. "इसमें कोई सन्देह नहीं है भद्दिय! यह बात निश्चित है भद्दिय! कि यदि इस जादू के वशीभूत होकर सभी अकुशल-कर्मो का त्याग कर दें तो यह संसार के हित और सुख के लिये होगा ।"

२. समाज पर व्यर्थ का भार होने का दोषारोपण

१. भगवान् बुद्ध पर यह भी आरोप लगाया गया था कि वह समाज पर भार स्वरुप है और काम करके अपनी जीवीका नहीं कमाते । आरोप और उसका उत्तर यहाँ दिया है--

२. एक बार भगवान् बुद्ध मगध जनपद के दक्षिण-गिरि प्रदेश में एकनाला नाम के ब्राह्मण ग्राम में रहते थे । उसी समय कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण के पांच सौ हल, खेत बोने के लिये, जोते जा रहे थे ।

३. पूर्वाह्न समय तथागत चीवर पहन तथा पात्र हाथ में ले वहाँ पहुंचे जहाँ ब्राह्मण अपना काम कराने में लगा था और जहाँ थोडी ही देर पहले भोजन लाया गया था । वहाँ तथागत एक ओर खडे हो गये ।

४. भिक्षा के निमित्त तथागत वहाँ खडे देखकर ब्राह्मण बोला-- "श्रमण! मै (हल) जोतता हूँ, बीज (बीज) बोता हूँ; और तब खाता हूँ; तुम्हें भी (हल) जोतना चाहिये, (बीज)बोना चाहिये और तब खाना चाहिये ।"
५. "ब्राह्मण! मैं भी जोत-बोकर ही खाता हूँ ।"
६. "मैं न कही श्रमण-गौतम का जुआ देखता हूँ, न हल देखता हूँ, न हल की फाल देखता हूँ, न बैलों को हांकने की पैनी देखता हूँ और न बैलों की जोडी ही देखता हूँ, तब भी आप का कहना है कि आप जोत बो कर खाते है ।
७. "आप कृषक होने का दावा करते है, किन्तु हम आप के पास कृषि का एक भी साधन नहीं देखते । हमे अपनी कृषि के सम्बन्ध में समझायें कि आप कैसे कृषि करते है! हम उसके बारे में सुनना चाहते है ।"
८. "मेरे पास श्रद्धा का बीज है, तपस्या रुपी वर्षा है, प्रज्ञा रुपी जोत और हल है, पाप- भीरुता का दण्ड है, विचार रुपी रस्सी है, स्मृति (चित्त की जागरुकता है) रुपी हल की फाल और पैनी है ।
९. "वचन और कर्म में संवत रहना तथा भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान । मैं अपनी खेती को बेकार- घास से मुक्त रखता हूँ और आनन्द की फसल काट लेने तक प्रयत्नशील रहने वाला हूँ । अप्रमाद मेरा बल है और जो बाधाये देखकर भी पीछे मुह नहीं मुडता- वह मुझे सीधा शान्ति- धाम तक ले जाता है, उस शान्ति स्रोत तक जहाँ दुख का लवलेश नहीं है । इस प्रकार मै अमृत की खेती करता हूँ । जो कोई मेरी तरह खेती करता है उसके दु:खों का अन्त हो जाता है ।"
१०. ऐसा कहने पर उस ब्राह्मण ने खीर भरी कांसे की थाली भगवान् को समर्पित करनी चाही । बोला-- "श्रमण गौतम! इसे ग्रहण करे । निस्संदेह आप भी कृषक ही है; क्योंकि आप अमृत की खेती करते है ।"
११. तथागत का उत्तर था-- "गाथा (उपदेश) कहने से जो प्राप्य है, वह मेरे लिये अखाद्य है । बुद्धिमान इस का समर्थन नहीं करते । तथागतों को यह सर्वथा अस्वीकृत है । जब तक यह धम्म विनय विद्यमान है, तब तक यही प्रथा बनी रहनी चाहिये । दूसरें श्रमण ब्राह्मण है तो संयत है, जो शान्त है, जिनका सम्यक् आचरण है जो निर्दोष है--ऐसे जो पुण्य क्षेत्र है, तू उन्हीं को यह दे ।"
१२. यह बात सुनी तो ब्राह्मण ने तथागत के चरणों में सिर रखकर कहा-- "अद्भुत है श्रमण गौतम! सर्वथा अद्भुत है । जैसे कोई आदमी गिरे को उठा दे या छिपे को उघाड दे, या मार्ग- भ्रष्ट को रास्ता दिखा दे; या अन्धेरे में प्रदीप जला दे ताकि आंख वाले चारों ओर की चीजें देख सके--इसी प्रकार तथागत ने नाना प्रकार से अपना धम्म स्पष्ट कर दिया है ।
१३. "मैं बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ ।मुझे आपके हाथों प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।" इस प्रकार कृषि-भारद्वाज ब्राह्मण ने भी प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा ग्रहण की ।

३. सुखी गृहस्थियों को उजाड़ने का दोषारोपण

१. यह देखकर कि मगध के बहुत से कुल-पुत्र तथागत के शिष्य होते चले जा रहे है; कुछ लोग असंतुष्ट और क्रोधित हो गये है । कहने लगे, 'श्रमण गौतम माता- पिता को सन्तान-विहिन बना रहा है, श्रमण गौतम स्त्रियों को विधवा बना रहा है, श्रमण गौतम कुलों को उजाड रहा है ।'
२. "उसने एक हजार जटिलों को दीक्षित किया है, उसने सज्जय के अनुयायी इन ढाई सौ परिव्राजकों को दीक्षित किया है और मगध के यह बहुत से कुल ,पुत्र श्रमण गौतम की अधीनता में पवित्र जीवन व्यतित कर रहे है । अब आगे क्या होने वाला है? कोई नहीं कह सकता ।"
३. और लोग जब भिक्षुओं को देखते तो उन्हें यह कह कहकर चिढाते भी थे: 'महाश्रमण मगधों के राजगृह आया है । वह सञ्जय के सभी अनुयायियों को अपने साथ लिये फिरता है । अब पता नहीं किसकी बारी है?'
४. भिक्षुओं ने यह आरोप सुना तो तथागत को जाकर कहा ।
५. तथागत ने उत्तर दिया:- "भिक्षुओं! यह हल्ला बहुत दिन नहीं रहेगा । यह सप्ताह भर रहेगा । उसके बाद अपने ही आप शान्त हो जायगा ।"
६. "और भिक्षुओ, यदि वे तुम्हें चिढाये तो तुम यह कहकर उनका उत्तर दे सकते हो कि जो महावीर है, जो तथागत है, वे सदधम्म के ही रास्ते ले जाते है । यदि बुद्धिमान जन किसी को सदधम्म के ही रास्ते ले जाते हैं तो उसमें किसी को भी शिकायत का कोई कारण नहीं होना चाहिये । मेरे धम्म में 'जबर्दस्ती' के लिये स्थान नहीं । आदमी चाहे तो घर छोडकर प्रव्रजित हो सकता है और आदमी चाहे तो घर पर ही बना रह सकता है ।"
७. जब भिक्षुओं ने तथागत के आदेशानुसार आलोचकों को उत्तर दिया तो लोग समझ गये- 'शाक्यपुत्र श्रमण गौतम लोगों को धम्म के रास्ते ले जाते है, अधम्म के रास्ते नहीं ।' उन्होंने तथागत को दोष देना बन्द कर दिया ।

४. जैन तैर्थिको द्वारा हत्या का मिथ्यारोप

१. अन्य सम्प्रदायों के साधुओं को ऐसा लगने लगा था कि श्रमण गौतम के कारण लोग उनका आदर- सत्कार कम करने लगे है, इतना ही नहीं यह भी नहीं जानते कि वे है भी या नहीं?

२. “हम देखें कि किसी षड्यन्त्र की मदद से हम जनता में उसका प्रभाव घटा सकते है वा नहीं? शायद सुन्दरी की सहायता से हम ऐसा कर सकें” - -तैर्थिक सोचने लगे ।

३. वे सुन्दरी के पास गये और बोले- “बहन! तुम बहुत ही सुन्दर और मनोरम हो । यदि तुम श्रमण गौतम के बारे में कुछ अपवाद फैला दो तो हो सकता है कि लोग उसका विश्वास कर ले और श्रमण गौतम का प्रभाव घट जाय ।

४. प्रतिदिन शाम को हाथों मे फूलों की मालाये तथा नाना प्रकार की सुगंधियाँ लेकर जेतवन की ओर जाने लगी । जेतवन से लौटने वाले लोग पूछते-- “सुन्दरी! कहाँ जा रही है?” वह उत्तर देती “मैं श्रमण गौतम के पास उसकी गन्धकुटी में रहने जा रही हूँ ।”

५. और तैथिकों के उद्यान में रात बिता कर वह प्रातःकाल होने पर उधर से लौटती । यदि कोई उससे पूछता कि तू रात भर कहाँ रही तो वह उत्तर देती—‘श्रमण गौतम के पास ।’

६. कुछ दिनों के बाद तैर्थिकों ने हत्यारों को कुछ ले देकर सुन्दरी की हत्या करवा दी और उसकी लाश को जेत वन के पास की कूडे की ढेरी पर फिकवा दिया ।

७. तब उन तैर्थिको ने सरकारी कर्मचारियों तक यह सूचना भिजवाई कि सुन्दरी रोज जेतवन आया-जाया करती थी और अब वह दिखाई नहीं देती ।

८. सरकारी अफसरों को साथ लेकर उन्होंने सुन्दरी की लाश को कूडे की ढेरी पर से खोज निकाला ।

९. तब तैर्थिको ने तथागत के श्रावकों पर आरोप लगाया कि अपने शास्ता की लज्जा ढकी रखने के लिये उन्होंने सुन्दरी को मार डाला ।

१०. लेकिन हत्यारे आपस में इस रुपये के बटवारे के बारे में जो उन्हें सुन्दरी की हत्या करने के लिये मिला था, एक शराब की दुकान पर बैठे बैठे लडने लगे ।

११. अफसरों ने तुरन्त उन्हे पकड लिया । उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया और उन तैर्थिको को भी फंसाया जिनकी प्रेरणा से उन्होंने वह अपराध किया था ।

१२. इस प्रकार तैर्थिकों का रहा-सहा प्रभाव भी जाता रहा ।

५. जैन तैर्थिको द्वारा अनैतिकता का मिथ्या-रोप

१. सुर्योदय के साथ ही जैसे जुगनु अस्त हो जाते है, वह ही दशा तैर्थिकों की हुई । लोगों ने उनकों भेंट-पूजा भी देनी बन्द कर दी और उनका आदर-सत्कार भी करना बन्द कर दिया ।

२. वह चौरस्तों पर खडे हो होकर चिल्लाने लगे-- “यदि श्रमण गौतम पूर्ण ज्ञानी (बुद्ध) है तो हम भी है । यदि श्रमण गौतम को दान देने पुण्य लाभ होता है तो हमें भी दान देने से पुण्य लाभ होगा । इसलिये हमारी भेंट पूजा करो ।”

३. लोगों ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया । तब उन्होंने छिपकर एक षडयन्त्र रचने की सोची जिससे लोगों की नजर में संघ को गिराया जा सके ।

४. उस समय श्रावस्ती में चिंचा नाम की एक ब्राह्मणी (?) परिव्राजिका रहती थी । उसका रूप-रंग अत्यंत आकर्षक था और उसकी भाव-भंगिमा मनको लूभाने वाली थी ।

५. षडयन्त्रकारियों में एक दुष्ट ने परामर्श दिया कि चिंचा की सहायता से बुद्ध के बारे में अपवाद फैलाना और उसका लाभ-यश घटाना आसान होगा । शेष लोग सहमत हो गये ।

६. एक दिन चिंचा तैर्थिको के उद्यान में आई और अभिवादन कर पास बैठ गई । लेकिन किसी ने उससे बातचीत नहीं की ।

७. इस पर चकित होकर वह बोली :- “मैंने आप का कुछ अपराध किया है? मैंने आप को तीन बार अभिवादन किया है और आप मुझ से एक शब्द नहीं बोलते ।”

८. तैर्थिक बोले -- “बहन! क्या तू इतना भी नहीं जानती कि श्रमण गौतम की जन-प्रियता हमारे लाभ-सत्कार में बडी बाधक हो रही है?” “मैं नहीं जानती । क्या मैं इस विषय में कुछ कर सकती हूँ?”

९. "बहन! यदि तू हमारी कुछ भला करना चाहती है, तो अपने प्रयास से श्रमण गौतम के बारे में अपवाद फैला दे जिससे वह जन-प्रिय ना रहे ।" 'बहुत अच्छा,इस विषय में आप मुझ पर निर्भर रहे' कह वह वहाँ से चल दी ।

१०. 'स्त्री चरित्र' दिखाने में चिंचा पारंगत थी । जब लोग जेतवन से बुद्ध के प्रवचन सुनकर लौटने वाले होते, तो रक्तावरणा चिंचा हाथ में फूलों की माला और सुगन्धियाँ लिये जेतवन की ओर जाती दिखाई देती ।

११. यदि कोई प्रश्न करता-- "इस समय कहीं जा रही है?" वह उत्तर देती,"तुम्हे इससे क्या लेना- देना?" जेतवन के समीप तीर्थिकाराम में रात बिताकर वह सुबह के समय शहर की ओर लौटती, जब शहर के लोग बुद्ध के दर्शनार्थ जेतवन की ओर जाते होते ।

१२. यदि कोई उससे पूछता-- "रात कहाँ बिताई?" वह उत्तर देती "तुम्हें इस से क्या लेना-देना? मैंने जेतवन में श्रमण गौतम के साथ (उसकी) गन्धकुटी में रात बिताई ।"किसी किसी के मन में कुछ शंका पैदा हो जाती ।

१३. चार महिने बीतने पर उसने अपने पेट के गिर्द कुछ पुराने चीथडे लपेट कर उसे ऊंचा कर लिया और कहना आरम्भ किया कि श्रमण गौतम से उसे गर्भ ठहर गया है । कोई कोई शायद विश्वास भी कर लेते थे ।

१४. नौवे महिने में उसने अपने पेट पर एक लकडी का टुकडा बांध लिया और विषैले कीडो से देह कटाकर हाथ पैर फुला लिये और जिस समय तथा जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों को प्रवचन दे रहे थे वही पहुंच कर कहने लगी: हे महान् उपदेशक! बहुत उपदेश तुम लोगों को देते हो । तुम्हारी वाणी बडी मधूर हैं और तुम्हारे होंठ बडे कोमल है । तुम्हारे संसर्ग से मुझे गर्भ ठहर गया है और मेरा समय नजदीक आ गया है ।

१५. "तुमने मेरी प्रसूति की कोई व्यवस्था नहीं की । उस व्यवस्था के योग्य पथ्य आदि भी मुझे कहीं दिखाई नहीं देता । यदि तुम स्वयं इसकी व्यवस्था नहीं कर सकते, तो अपने शिष्यों में से किसी को--चाहे कोशल नरेश को, चाहे अनाथपिण्डिक को, अथवा चाहे विशाखा को-- कहकर इसकी व्यवस्था क्यों नही कराते?

१६. "लगता है कि तुम किसी कुमारी को अंगीकार करना ही जानते हो,लेकिन उसके परिणाम-स्वरुप जो सन्तान जन्म ग्रहण कर ले उसकी पालन- विधि से अपरिचित हो ।"उपस्थित जनता मूक बनी बैठी रही ।

१७. भगवान बुद्ध ने अपना प्रवचन बीच में रोक कर बडी गम्भीरता से उत्तर दिया-- "बहन! तूने जो कहा है उसके सत्यासत्य का ज्ञान केवल मुझे और तुझे ही है ।"

१८. चिंचा जोर जोर से खांसते हुए बोली- -हां हां, ऐसी बात का ज्ञान हम दोनो को ही हो सकता है ।"

१९. उसके खांसने से वह गांठ जिससे उसने वह लकडी पेट पर बांधी हुई थी, ढीली पड गई और वह लकड़ी खिसक कर उसके पांव पर आ पडी । चिंचा कहीं की न रही ।

२०. लोगों ने उसे डण्डे और पत्थर मार मार कर वहाँ से भगा दिया ।

६. देवदत्त चचेरा- भाई तथा शत्रु

१. देवदत्त भगवान् बुद्ध का चचेरा भाई था । लेकिन आरम्भ से ही उसे उनसे ईर्षा थी और वह अन्तिम दर्जे की घुणा करता था ।

२. जब बुद्ध घर छोड कर चले गये तो देवदत्त ने यशोधरा से प्रेम बढाने का प्रयास किया ।

३. एक बार जब यशोधरा के सोने का समय हो गया था, वह किसी से रोका नही गया और भिक्षु रुप में वह यशोधरा के शयनागार में पहुच गया । यशोधरा ने पूछा—"श्रमण! तू क्या चाहता है? क्या तू मेरे लिये मेरे स्वामी के पास से कोई सन्देश लेकर आया है?"

४. "तुम्हारा पति, उसे तुम्हारी क्या खाक चिन्ता है । वह तुम्हें निर्दयता पूर्वक सुख-निवास में छोड कर चला गया है ।"

५. यशोधरा ने उत्तर दिया-- "लेकिन ऐसा उन्होंने बहुतों के कल्याण के लिये किया ।"

६. "जो भी हो, अब समय है, उससे इस कूर निर्दयता का बदला लो ।"

७."श्रमण! जबान बन्द कर । तेरे विचार और वाणी दुर्गन्धि से भरी है ।"

८. "यशोधरा! "क्या तूने मुझे पहचाना नहीं? मैं तेरा प्रेमी देवदत्त हूँ ।"

९ . "देवदत्त! मैं तुझे झूठा और दुष्ट समझती थी । मैं ने कभी यह नहीं सोचा था कि तू कोई अच्छा श्रमण बन सकेगा, लेकिन मुझे पता नहीं था कि तू इतना कमीना है ।"

१०. देवदत्त चिल्लाया-- "यशोधरा! यशोधरा! मैं तुझसे प्रेम करता हूँ। तेरे पति के मन में तो मेरे लिये घुणा छोड कर और कुछ नहीं । तुम्हारे प्रति वह निर्दयी रहा है । मुझसे प्रेम कर और उससे बदला ले ।"

११. यशोधरा का खिंचा हुआ पीला चेहरा रंजित हो उठा । उसकी आंखों से आंसू बहने लगे ।

१२. “देवदत्त! क्रूर तुम हो । यदि तुम्हारे प्रेम में कुछ सचाई भी होती तो भी यह मेरा अपमान होता । तुम्हारा यह कहना कि मुझसे प्रेम करते हो तो महज तुम्हारा मृषावाद है ।
१३. “जब मैं तरुण और सुन्दर थी, तब तो तुमने मेरी ओर आंख उठा कर देखा नहीं । अब मैं जरा जीर्ण हो चली हूँ, रंज से दुःखी हूँ, और तू रात के समय अपने पाप-पूर्ण प्रेम की बात करने आया है! तू नीच है । तू कायर है ।”
१४. और वह जोर से चिल्लाई- “देवदत्त! निकल यहाँ से ।”देवदत्त चला गया ।
१५. देवदत्त भगवान् बुद्ध से बडा अप्रसन्न था क्योंकि उन्होंने संघ में उसे प्रधान पद न देकर सारिपुत्र को प्रधान बना दिया था । देवदत्त ने तीन बार तथागत के प्राणों का अन्त कर देने का प्रयास किया । लेकिन सफल नहीं हुआ ।
१६. एक बार भगवान् बुद्ध गृध्रकूट पर्वत की छाया में ऊपर-नीचे चहल- कदमी कर रहे थे ।
१७. देवदत्त उपर चढ़ा और जाकर एक बडा भारी पत्थर नींचे लुढका दिया ताकि तथागत का प्राणांत ही हो जाय । लेकिन वह पत्थर जाकर एक दूसरी चट्टान पर गिरा और वहीं गड गया । उसकी एक छोटी सी पच्चर आकर तथागत के पांव में लगी, जिससे रक्त बहने लग गया ।
१८. उसने भगवान् बुद्ध की जान लेने का दूसरी बार भी प्रयास किया ।
१९. इस बार देवदत्त राजकुमार अजात-शत्रु के पास गया और बोला--“मुझे कुछ आदमी दो ।”और अजात-शत्रु ने अपने आदमियों कों आज्ञा दी कि देवदत्त का कहना करें ।
२०. तब देवदत्त ने एक आदमी को आज्ञा दी--’मित्र! जाओ, श्रमण गौतम अमुक जगह है । जाकर उसे जान मार आओ । आदमी जाकर वापस लौट आया और बोला “मै तथागत का प्राण लेने में असमर्थ हूँ ।”
२१. उसने तथागत के प्राणांत का एक तीसरा प्रयास भी किया ।
२२. इस समय राजगृह में, नालागिरी नाम का एक बडा भयानक, नर-हत्यारा हाथी था ।
२३. देवदत्त राजगृह पहुंचा और वहाँ हाथियों के अस्तबल में उसने हथवानों और हाथियों की देख- भाल रखने वालों को कहा:- “मित्रो! मैं राजा का सम्बन्धी हूँ । मैं जिस आदमी को चाहूँ उसका पद बढा सकता हूँ और जिस आदमी का चाहूँ उसकी वेतन वृद्धि या राशन वृद्धि करा सकता हूँ ।
२४. “इसलिये मित्रों! जब श्रमण गौतम इस सडक से गुजरे तो नालागिरी को छोड दो ।”
२५. देवदत्त ने भगवान् बुद्ध की हत्या करने के लिये धनुष-बाण धारियों को भी कहा । उसने मदमस्त हाथी भी छुडवाया ।
२६. लेकिन, वह असफल रहा । जब लोगों को उसके इन दुष्ट प्रयासो की जानकारी हो गई तो जनता ने उसका सारा लाभ यश बंद कर दिया और राजा अजातशत्रु ने भी उससे-मिलना जुलना बंद कर दिया ।
२७. अब जीवित रहने के लिये उसे घर-घर भीख माँगनी पडती थी । अजातशत्रु से देवदत्त को बहुत प्राप्त होता था । लेकिन यह लाभ-सत्कार बन्द हो गया । नालागिरी की घटना के बाद देवदत्त का रहा सहा प्रभाव भी समाप्त हो गया ।
२८. अपनी करतूतो से अप्रिय बन जाने के कारण देवदत्त मगध छोडकर कोशलजनपद चला गया । वहाँ उसे राजा प्रसेनजित से आशा थी । लेकिन राजा प्रसेनजित ने भी उसे घुणा की दृष्टि से देखा और वहाँ से भगा दिया ।

७. ब्राह्मण तथा भगवान बुद्ध

(i)
१. एक बार जब भगवान् बुद्ध बहुत से भिक्षुओं के साथ कोशल-जनपद में चारिका कर रहे थे, वे थून नाम के एक ब्राह्मण-ग्राम में पहुंचे ।
२. थून के ब्राह्मण गृहपतियो ने समाचार सुना! “श्रमण गौतम हमारे गांव के खेतो तक आ पहुचा है ।”
३. वे ब्राह्मण गृहपति अश्रद्धालु थे, मिथ्या-दृष्टि थे और स्वभाव से लोभी थे ।
४. उन्होंने सोचा :- यदि श्रमण गौतम गांव में आ गया और दो तीन दिन यहाँ रह गया तो सभी लोग उसके उपासक हो जायेंगे । तब ब्राह्मण- धर्म के लिये कोई सहारा नही रहेगा । हमें उसका गाँव में आना रोक देना चाहिये ।”
५. गाँव तक पहुचने के लिये एक नदी पार करनी पडती थी । तथागत का गांव में आना रोकने के लिये ब्राह्मणों ने नदी पार करने के लिये सभी पत्तनों से नौकाए हटा ली और जो पुल आदि थे उन्हें निकम्मा बना दिया ।
६. उन्होंने एक कुँए के अतिरिक्त शेष सभी कुओं को घास- फूस से भरदिया और पानी के प्याव तथा विश्राम गृहे आदि को छिपा दिया ।

७. भगवान् बुद्ध ने उनकी करतूतों की कहानी सुनी तब भी उन पर दया कर अपने भिक्षुओ सहित उन्होंने नदी पार की । चलते चलते वे थून नामक ब्राह्मण ग्राम में पहुंचे ।
८. सडक छोडकर वे एक वृक्ष के नीचे जा बैठे । उस समय पानी लिये बहूत सी स्त्रियाँ भगवान् बुद्ध के पास से गुजर रही थीं ।
९. उस गांव में एक निश्चय हो चुका था, “यदि श्रमण गौतम, इस गांव में आ जाय तो उसका कुछ भी स्वागत- सत्कार नहीं होना चाहिये । यदि वह किसी घर पर पहुँचे तो न उसे और न उसके भिक्षुओ को ही किसी भी प्रकार अन्न-जल दिया जाय ।”
१०. एक ब्राह्मण की दासी पानी का घडा लिये जा रही थी । उसने तथागत और भिक्षुओ को देखा तथा जाना कि वे थके और प्यासे है । श्रद्धा-प्रसन्न होने के कारण उसने उन्हें पानी देना चाहा ।
११. उसने अपने मन में सोचा, “यद्यपि इस गांव के लोगो का निश्चय है कि श्रमण गौतम को कुछ भी न दिया जाय और उनके प्रति किसी भी प्रकार से सत्कार की भावना तक न प्रदर्शित की जाय, तो भी यदि मैं, इन ‘पुण्य- क्षेत्रों ‘ को पाकर भी, इन्हें थोडा पानी देकर भी अपने कल्याण की आधार- शिला न रखूंगी तो मैं इस दु :ख से कब मुक्त होऊगी?”
१२. “मालिको! चाहे जो हो, चाहे इस ग्राम के रहने वाले सभी लोग मिलकर मुझे मारें या बांध डालें तब भी मै ऐसे ‘पुण्य- क्षेत्र’ में पानी सीचूंगी ही ।”
१३. यद्यपि दूसरी स्त्रियों ने उसे रोकने की कोशिश की किन्तु अपने दृढ संकल्प के कारण अपनी जान तक की परवाह न करके, उसने अपने सिर से पानी का घडा उतारा उसे एक ओर रखा और तथागत के पास आई । उसनें उन्हें पानी दिया । तथागत ने पाँव धोये और पानी पिया ।
१४. उसके ब्राह्मण मालिक नें सुना कि उसने तथागत को पानी दिया है । “इसने गांव का नियम भंग कर दिया है, और लोग मुझे दोष दे रहे है’ सोच वह गुस्से के मारे दांत पीसता आया और उसे जमीन पर गिरा कर लातों और घुसों से पीटने लगा । उस ब्राह्मण की मार से वह मर गई ।

(ii)
१. द्रोण नामक ब्राह्मण तथागत के पास आया और उन्हें अभिवादन किया । तदनन्तर कुशल-समाचार पूछा और एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए द्रोण ब्राह्मण ने तथागत से शिकायत की:-
२. “श्रमण गौतम! मैं ने लोगों को यह कहते सुना कि श्रमण गौतम किसी वृद्ध, वयोवृद्ध आयु-प्राप्त ब्राह्मण के आगमण पर न उठते है और न उन्हें बैठने के लिये आसन देते है ।
३. “श्रमण गौतम! क्यो यह ऐसा ही है कि श्रमण गौतम किसी वृद्ध, वयोवृद्ध, आयुप्राप्त ब्राह्मण के आगमन पर न उठते है और न उन्हें बैठने के लिये आसन देते है । श्रमण गौतम! यह तो ठीक नहीं है ।”
४. “द्रोण! क्यो तुम अपने आप को ब्राह्मण समझते हो?”
५. “श्रमण गौतम! यदि कोई किसी ब्राह्मण के बारे मे ठीक ठीक कुछ कहना चाहे तो उसे कहना चाहिये कि ब्राह्मण अपनी माता तथा पिता दोनो की ओर से सुजात होता है, सात पूर्व पीढियों तक पवित्र होता है, जन्म की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष अध्यायी, वेदमन्त्रज्ञ, अक्षर और प्रभेदों सहित तीनों वेदो में पारंगत, शुद्ध-शास्त्र का ज्ञाता, इतिहास- पुराण का जानकार, काव्य और व्याकरण का पण्डित, महापुरुष -लक्षणों का कोविद विश्व-चिंतक होता है, और श्रमण गौतम! मेरे बारे में भी ठीक ठीक यह कहा जा सकता है क्योंकि मैं भी माता-पिता दोनों की ओर से सूजात हूँ ....विश्व-चिंतक हूँ ।”
६. “द्रोण! जो पुराने मन्त्र निर्माता, मन्त्र रचयिता, मन्त्र धर ब्राह्मण हैं, जिन्हें अपने मन्त्रों का अक्षरशः शब्दशः ज्ञान है:- जैसे अट्ठक, वामक्, यमदेव, विश्वमित्र, यमदग्नि, अंगिरस, भारद्वाज का कहना है कि ब्राह्मण पाच तरह के होते है-(१) ब्रह्म-सदृश ब्राह्मण, (२) देव-सदृश ब्राह्मण, (३) बन्धन-युक्त ब्राह्मण (४) बंधन भंजक ब्राह्मण तथा (५) अन्त्यज ब्राह्मण । अब तुम इन पांच प्रकार के ब्राह्मणों मे से किस प्रकार के ब्राह्मण हो?”
७. “श्रमण गौतम! मुझे ब्राह्मणों के पांच प्रकारों की जानकारी नही है । किन्तु तब भी मैं मानता हूँ कि हम ब्राह्मण है । आप हमें धर्म का उपदेश दें, ताकि हमें पांच प्रकार के ब्राह्मणों की जानकारी हो ।”
८. “ब्राह्मण! तो ध्यान देकर सुनो । मैं कहता हूँ ।”
९. “बहुत अच्छा” उसने कहा । तब तथागत बोले--
१०. “हे द्रोण! अब एक ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश कैसे होता है?”

११. “हे द्रोण! एक ब्राह्मण को लो जो माता पिता दोनों की ओर से सुजात हो सात पूर्व-पीढियों तक पवित्र हो ,जन्म की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष -वह अडतालिस वर्ष तक ब्रह्मचर्य-वास करता है, वह अधम्मानुसार नहीं-बल्कि धम्मानुसार आचार्य को दक्षिणा चुकाने में रत रहता है ।

१२. “और द्रोण! धम्मानुसार का क्या मतलब है? वह न कृषि से,न व्यापार से, न ग्वालेपन से, न धनुर्धारी बन, न राजकर्मचारी बन और न किसी दूसरे पेशे से ही अपनी जीविका कमाता है । वह जीविका के लिये भिक्षाटन ही करता है, भिक्षा पात्र का आदर करता है ।

१३. “वह अपनी गुरु -दक्षिणा चुकाता है,सिर दाढी मुंडवाता है,काषाय वस्त्र धारण करता है और गृहत्याग कर अनागरिक हो जाता है ।

१४. “इस प्रकार घर से बेघर हो वह एक दिशा को, दूसरी दिशा को, तीसरी दिशा को, चौथी दिशा को ऊपर, नीचे- सभी दिशाओं को मैत्री- भावना से युक्त होकर विहार करता है-दूर तक जाने वाली, प्रशस्त, असीम, घुणा वा द्वेष से सर्वथा शून्य ।

१५. “वह करुणा युक्त हो विहार करता है. . . . . . मुदिता युक्त हों विहार करता है. . . . . . उपेक्षा युक्त हो विहार करता है-दूर तक जाने वाली, प्रशस्त,असीम, घुणा वा द्वेष से सर्वथा शून्य ।

१६. “इस प्रकार इस चारो ब्रह्म- विहारों में विहार कर, मृत्यु होने पर, शरीर के न रहने पर वह ब्रह्म-लोक गामी होता है । हे द्रोण! इस प्रकार एक ब्राह्मण ब्रह्म-सदृश होता है ।

१७. “हे द्रोण! एक ब्राह्मण देव-सदृश कैसे होता है?

१८. “हे द्रोण! अब एक ब्राह्मण को लो जो पहले ब्राह्मण की ही तरह माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजात है. . . . . . . वह न कृषि से, न व्यापार से. . . . . अपनी जीविका कमाता है । वह जीविका के लिये भिक्षाटन. . . . . . करता है । वह अपनी गुरु-दक्षिणा चुकाता है और अधम्मानुसार नहीं बल्कि धम्मानुसार पत्नि ग्रहण करता है ।

१९. “इस विषय में धम्मानुसार का मतलब क्या है? वह किसी ऐसी ब्राह्मणी को ग्रहण नहीं करता है जो खरीदी- बेची गई हो, बल्कि ऐसी ही जिस के हाथ पर जल डाला गया हो । वह एक ब्राह्मणी के ही पास जाता है, किसी अन्त्यज, किसी बहेलिये, किसी बंस-फोड, किसी रथ- कार अथवा किसी आदिवासी की लडकी के पास नहीं । वह बच्चे वाली स्त्री के पास नहीं जाता, न दूध पिलाने वाली स्त्री के पास जाता है और न उसके पास जो ऋतुनी न हो ।

२०. “हे द्रोण! वह बच्चे वाली के पास क्यों नहीं जाता? यदि वह जायें तो निश्चय से बालक या बालिका का जन्म अपरिशुद्ध होगा । और वह दूध पिलाने वाली के पास क्यों नहीं जाता? यदि वह जाये तो निश्चय से बालक या बालिका का दूध-पान अपरिशुद्ध होगा ।

२१. “और जो ऋतुनी नहीं है उसके पास भी वह क्यों नहीं जाता? हे द्रोण! यदि एक ब्राह्मण जो ऋतुनी नहीं है उसके पास नहीं जाता है तो वह कभी भी उसके लिये कामाग्नि की तृप्ति का साधन नहीं बनती, वह उसके लिये केवल सन्तान की जननी ही बनी रहती है ।

२२. “और जब विवाहित जीवन से उसे सन्तान की प्राप्ति हो जाती है वह सिर दाढी मुंडवाता है. . . . . और गृह-त्याग कर अनागरिक हो जाता है. . . . .

२३. “और इस प्रकार घर से बेघर ही वह काम- भोगों की तृष्णा को त्याग प्रथम ध्यान प्राप्त कर विचरता है, द्वितीय ध्यान. . . . तृतीय ध्यान. . . . . . चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विचरता है ।

२४. “इन चारों ध्यानों को प्राप्त कर विचरने वाला वह मृत्यु होने पर,शरीर के न रहने पर देव-लोक में उत्पत्र होता है ।

२५. “हे द्रोण! इस प्रकार एक ब्राह्मण देव-सदृश होता है ।

२६. “हे द्रोण! और एक ब्राह्मण बन्धन-युक्त ब्राह्मण कैसे होता है?

२७. “हे द्रोण! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता को. . . . . . और वैसे ही विवाह करता है. . . . . .

२८. “और अब विवाहित-जीवन से उसे सन्तान-प्राप्ति हो जाती है, तो वह अपनी सन्तान के प्रेम के वश में हो जाता है और वह घर पर ही रहता है । वह गृह -त्याग कर अनागरिक नही होता ।

२९. “वह अपने परम्परा-गत ब्राह्मणी बन्धनों को निभाता है, उनका उल्लंघन नहीं करता । उस के बारे मे कहा जाता है कि वह सीमा में रहता है, सीमोल्लंघन नहीं करता । इसीलिये ऐसा ब्राह्मण बन्धन-युक्त ब्राह्मण कहलाता है ।

३०. “द्रोण! इस प्रकार ब्राह्मण बन्धन-युक्त होता है ।

३१. “और द्रोण! एक ब्राह्मण ‘बन्धन - भंजक’ कैसे होता है?

३२. “हे ब्राह्मण! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता का. . . . वह आचार्य की दक्षिण चुकाता है और एक स्त्री ग्रहण करता है, धम्मानुसार वा अधम्मानुसार; एक खरीदी गई वा बेची गई ब्राह्मणी अथवा जो जलाभिषिक्त हुई ।

३३. “वह एक ब्राह्मणी के पास भी जाता है यह किसी क्षत्रिय-कुमारी के पास या किसी नीच- जाती वा दासी स्त्री के पास; किसी अन्त्यज कुमारी के पास, किसी बंस फोड की लडकी के पास; किसी रथकार या किसी आदिवासी की लडकी के पास, वह बच्चे वाली स्त्री के पास जाता है, वह दूध पिलाने वाली के पास जाता है और वह ऋतुनी के पास जाता है तथा
जो ऋतुनी नही, है उसके पास भी जाता है; और उसके लिये ब्राह्मणी कामाग्नि को शान्त करने का, क्रीडा करने का, भोग का वा सन्तानोत्पति का साधन बन जाती है ।
३४. “और वह पुरानी ब्राह्मणी- परम्परा के बन्धन में नही रहता, वह उस सीमा को लांघ जाता है । उसके बारे में कहा जाता है :’वह सीमा में नहीं रहता वह सीमोल्लंघन करता है । इसलिये वह ‘बंधन- भंजक ‘ कहलाता है । ३५. इस प्रकार द्रोण! एक ब्राह्मण बंधन - भंजक कहलाता है ।
३६. “और द्रोण! एक ब्राह्मण ‘अन्त्यज–ब्राह्मण’ कैसे होता है?
३७. “हे द्राण! एक ब्राह्मण को लो जो समान माता पिता का. . . . . वह अडतालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करता है, वह (वेद) मन्त्रों का ज्ञाता बनता है, तब अपना विद्याध्ययन समाप्त करने के अनन्तर वह आचार्य-दक्षिणा खोजता है : (वह धम्मानुसार वा अधम्मानुसार जैसे भी अपनी जीविका चलाता है) कृषक बनकर, व्यापारी बनकर, ग्वाला बनकर, धनुषधारी बनकर, राजकर्मचारी बनकर अथवा किसी अन्य शिल्प द्वारा वा भिक्षापात्र की उपेक्षा न कर भिक्षाटन द्वारा ।
३८. “आचार्य-दक्षिणा दे चुकने के अनन्तर वह धम्मानुसार वा अधम्मानुसार एक स्त्री प्राप्त करता है, एक खरीदी या बेची गई, अथवा हाथ पर जल डालकर ली गई । वह एक ब्राह्मणी के पास जाता है अथवा किसी अन्य स्त्री के पास. . . . . . बच्चे वाली स्त्री के पास, दूध पिलाने वाली स्त्री के पास और वह उसके लिये कामाग्नि शान्त करने का साधन बन जाती है. . . . . अथवा सन्तानोत्पत्ति का । वह यह सभी बातें करता हुआ जीवन व्यतीत करता है ।
३९. “तब ब्राह्मण पूछते है-”यह कैसे है कि एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ऐसा जीवन व्यतीत करता है?”
४०. “तब वह उत्तर देता है!”जैसे आग साफ या मैली सभी चीजों को जला डालती है लेकिन उससे अग्नि अशुद्ध नहीं होती; इसी प्रकार भद्रजन! यदि एक ब्राह्मण इस प्रकार की सभी बातें करता हुआ भी जीवन व्यतीत करता है, तो उससे एक ब्राह्मण मलिन नही होता । ”
४१. “और यह कहा जाता है: वह ऐसी सभी बातें करता हुआ जीवन व्यतीत करता है,’इसीलिये वह अन्त्यज-ब्राह्मण कहलाता है ।
४२. “हे द्रोण! इस प्रकार एक ब्राह्मण अन्त्यज-ब्राह्मण हो जाता है ।
४३. “निश्चय से द्रोण! जो पुराने मन्त्र-निर्माता, मन्त्र-रचयिता, मन्त्र- धर ब्राह्मण हैं जिन्हें अपने मन्त्रों का अक्षरशः शद्बशः ज्ञान है-- उन्हीं का कहना है कि ब्राह्मण पाँच प्रकार के होते है- (१) ब्रह्म- सदृश ब्राह्मण, (२) देवता- सदृश ब्राह्मण, (३) बंधन-युक्त ब्राह्मण (४) बंधन- भंजक ब्राह्मण, तथा (५) अन्त्यज-ब्राह्मण ।
४४. “द्रोण! इन पाँच प्रकार के ब्राह्मणों में से तुम्हारी गिनती किन में है?”
४५. “श्रमण गौतम! यदि ऐसा है तो कम से कम हम अन्त्यज-ब्राह्मणो मे नहीं हैं।
४६. “लेकिन श्रमण गौतम! आप का कहना अदभूत है. . . . आप मुझे प्राण रहने तक बुद्ध की शरण में गया हुआ उपासक समझें ।

तीसरा भाग : उनके धम्म के आलोचक

१. सभी के लिये संघ का सदस्य बन सकने की आलोचना

१. किसी भी उपासक गृहस्थ को भिक्षु संघ अपना सदस्य बना सकता था ।

२. कुछ लोग ऐसे थे जो भगवान बुद्ध की आलोचना करते थे कि उन्होंने सभी के लिये संघ का द्वार खोल रखा है ।

३. उनका तर्क था कि इस व्यवस्था में यह दोष है कि कुछ लोग संघ में प्रविष्ट होने के अनन्तर फिर दुबारा गृहस्थ बन जा सकते हैं और उनके इस प्रकार निकल भागने से लोगों को यह कहने का अवसर मिलेगा कि श्रमण गौतम का धम्म निकम्मा होगा, तभी तो लोगों ने इसे त्याग दिया है ।

४. यह आलोचना निराधार थी । जिस उद्देश्य से तथागत ने यह नियम बनाया था, वह उद्देश्य आलोचकों के ध्यान मे आया ही न था ।

५. तथागत का उत्तर था कि उन्होंने सद्धम्म की स्थापना करके अमृत भरे सरोवर का निर्माण किया है ।

६. भगवान बुद्ध की इच्छा थी कि मलिन चित्त वाला कोई भी हो इस सद्धम्म रुपी सरोवर में स्नान करके अपने आपको निर्मल बना सके ।

७. और यदि कोई सद्धम्म रुपी सरोवर तक पहुँच कर भी उसमें स्नान नहीं करता और पूर्ववत् मलिन ही बना रहता है तो इसमें उसी का दोष है, सद्धम्म रुपी सरोवर का नहीं ।

८. "अथवा क्या मैं, "तथागत का कहना था," ऐसा कर सकता हूँ कि सद्धम्म रुपी सरोवर का निर्माण करने के अनन्तर कहूँ कि जो पहले से ही निर्मल चित्त है वे ही इसमें स्नान करने जायें और जो पहले से ही निर्मल नहीं हैं, वे इसमें स्नान करने न जाये?

९. "तब मेरे इस सद्धम्म का उपयोग ही क्या होगा?"

१०. आलोचक भूल गये कि तथागत अपना धम्म चन्द लोगों तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे । वे चाहते थे कि इसका द्वार सभी के लिये खुला रहे,सभी इसका परीक्षण कर सकें ।

२. व्रत ग्रहण करने की आलोचना

१. पंचशील ही पर्याप्त क्यों नहीं है? उन्हें और दूसरें व्रतों को व्रत रुप मे ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है?

२. तर्क करने वाले तर्क करते थे कि बिना औषध के रोग का शमन हो सकता है, तो फिर वमन कराने वाली औषधियों, जुलाब देने वाली औषधियों तथा अन्य ऐसी ही औषधियों का क्या प्रयोजन?

३. इसी प्रकार यदि ग्रहस्थ उपासक पंचशील ग्रहण करके ही इन्द्रियों के भोग भोगता हुआ भी शान्त श्रेष्ठ निर्वाण को प्राप्त कर सकता है तो भिक्षु को उन शीलो तथा दूसरें व्रतो को व्रतरुप में ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ।

४. भगवान बुद्ध ने इन्हे 'व्रतों' का स्वरुप इसलिये दिया है, क्योंकि नैतिकता की दृष्टि से इसका निश्चित मूल्य है ।

५. जो जीवन व्रत-युक्त है उसका नैतिक पथ पर अग्रसर होना निश्चित है । व्रत अपने में ही पतन के विरुद्ध एक बडा संरक्षण है ।

६. जो 'व्रत' ग्रहण करते है और उनका स्वतन्त्र रुप से पालन करते है,वे उन्नत होते हैं ।

७. 'व्रतो' का पालन काम-तृष्णा, ईर्ष्या, अहंकार तथा अन्य कुविचारों का बाधक है ।

८. जो 'व्रत' ग्रहण करते है तथा उनका पालन करते है वे निश्चित रुप से सुरक्षित रहते है और उनका मन तथा कर्म निर्मल होता है ।

९. मात्र शील ग्रहण करने से ऐसा नही होता ।

१०. शील ग्रहण करना पतनोन्मुख होने से उतना नहीं बचाता जितना व्रत बचाते है ।

११. 'व्रतो' का जीवन ज्यादा कठिन है, मात्र शील ग्रहण करने वाले का नही । मानवता के कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि समाज में कुछ 'व्रती 'भी रहे । इसीलिये भगवान बुद्ध ने 'शीलों 'तथा 'व्रती 'दोनों की व्यवस्था की है ।

३. अहिंसा के सिद्धांत की आलोचना

१. ऐसे लोग थे जो 'अहिंसा' के सिद्धान्त के समर्थक न थे । उनका कहना था कि 'अहिंसा' का मतलब है 'अन्याय' तथा 'अत्याचार' के सामने सिर झुकाना ।

२. भगवान् बुद्ध का 'अहिंसा' से जो आशय था, यह उसकी मूलत: गलत व्याख्या है ।

३. भगवान् बुद्ध ने अनेक अवसरों पर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है जिससे किसी को किसी प्रकार की अस्पष्टता वा गलत-फहमी न रहे ।
४. एक तो वह ही ऐसा अवसर है जिसका उल्लेख किया जाना चाहिये जब उन्होंने एक सैनिक के संघ में प्रविष्ट होने के बारे में नियम बनाया ।
५. एक बार मगध के सीमांत-प्रदेश में उत्पात मच गया था । तब मगध नरेश बिंबिसार ने अपने सेनापति को आज्ञा दी;"अब जाओ,और सेना-नायकों को कहो कि वे सीमा- प्रान्त में ढूँढ ढूँढ कर अपराधियों का पता लगायें, उन्हें दण्ड दें और शान्ति स्थापित करे । "सेनापति ने आज्ञा का पालन किया ।
६. सेनापति की आज्ञा पाकर सेना- नायक बडी दुविधा में पड गये । वे जानते थे कि तथागत की शिक्षा है कि जो 'युद्ध 'में लडने जाते है और जिन्हें 'युद्ध 'करने में आनन्द आता है वे 'पाप 'करते हैं और बहुत 'अपुण्य 'लाभ करते है । दूसरी ओर राजा की आज्ञा यह थी कि अपराधियों का पता लगाकर उन्हें मार डाला जाय । सेना- नायक अपने से पूछने लगे-हम क्या करें?
७. तब इन सेना-नायको ने सोचा:-'यदि हम तथागत के भिक्षु संघ मे प्रविष्ट हो जाए ,तों हम इस दुविधा से बच जायेंगे ।
८. तब ये सेना-नायक भिक्षुओं के पास पहुंचे और उन से प्रव्रज्या की याचना की । भिक्षुओं ने उन्हे प्रव्रजित तथा उपसमपन्न कर दिया । सेना- नायक सेना से गायब हो गये ।
९. सेनापति ने जब देखा कि सेना-नायक नहीं दिखाई देते तो उसने सैनिको को पूछा:- 'क्या बात है कि सेना-नायक नहीं दिखाई देते?" सैनिकों ने उत्तर दिया सेनापति। सेना-नायक भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो गये है।"
१०. सेनापति बहुत अप्रसत्र तथा बहुत क्रोधित हुआ," राजकीय सेना के लोगों को भिक्षु कैसे प्रव्रजित कर सकते है?"
११. सेनापति ने इस बात की सूचना राजा को दी । राजा ने न्यायाधीशों से प्रश्न किया -"कृपया बताये कि जो राजकीय-सेना के आदमियो को प्रव्रजित करे, उसे क्या दण्ड मिलना चाहिये?"
१२. "महाराज! उपाध्याय का सिर काट डालना चाहिये. कम्मावाचा पढने वाले की जबान निकाल डालनी चाहिये और संघ के उन सदस्यों की-जो किसी राजकीय सैनिक को प्रव्रजित करें- आधी पसलियाँ तोड डालनी चाहिये । "
१३. तब राजा वहाँ पहुंचा, जहाँ तथागत विराजमान थे; और अभिवादन कर चुकने के अनन्तर उसने भगवान् बुद्ध को सारी बात सुनाई ।
१४. "भगवान्! आप जानते है कि कई राजा धम्म के विरुद्ध है । ये विरोधी राजा बहुत मामूली मामूली बातों के लिए भिक्षुओ को कष्ट देने लिये तैयार रहते है । यदि ये जान जायेंगे कि भिक्षु सैनिको को वरगला कर भिक्षु संघ में भर्ती करते हैं तो फिर इसकि कल्पना कर सकना कठिन है कि ये भिक्षुओं के विरूद्ध क्या क्या कार्रवाईयाँ कर सकते है? इस विपत्ति से बचे रहने के लिये तथागत यथायोग्य करे ।"
१५. तथागत ने उत्तर दिया- "मेरी यह कभी मंशा नही रही कि 'अहिंसा' का नाम लेकर 'अहिंसा' कि आड मे सैनिक अपने राजा वा देश के प्रति जो उनका कर्तव्य है, उससे विमुख हो जाए ।"
१६. तदनुसार भगवान बुद्ध ने राजकीय सैनिकों के संघ में प्रविष्ट होने के विरूद्ध एक कानून बना दिया और इसकि घोषणा कर दी- "भिक्षुओ,किसी राजकीय सैनिक को प्रव्रज्या न मिले । यदि कोई देगा तो उसे दुष्कृत की आपत्ति (दोष) होगी ।"
१७. एक बार एक श्रमण महावीर के अनुयायी सिंह सेनापति ने 'अहिंसा' के ही विषय में तथागत से प्रश्न किया था ।
१८. सिंह ने पूछा:- "अभी भी एक सन्देह मेरे मन मे शेष है । क्या आप कृपया मेरे मन के अन्धकार को दूर कर देंगे ताकि मैं धम्म को उसी रुप मे समझ सकूँ, जिस रुप में आपने उसका प्रतिपादन किया है ।"
१९. तथागत के स्वीकार कर लेने पर सिंह सेनापति ने पूछा- "भगवान्! मैं सेनापति हूँ । मुझे राजा ने युद्ध लडने के लिये और अपने कानूनों का जनता द्वारा पालन करवाने के लिये ही नियुक्त किया है । तो क्या तथागत जो दुखियों के प्रति दया और असीम करुणा कि शिक्षा देते है, अपराधियो को दण्ड देने की अनुमति देते है? और क्या तथागत का यह भी कहना है कि अपने घरों, अपने बीबी-बच्चों और अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये युद्ध करना ठीक नहीं है? क्या तथागत सम्पूर्ण आत्म- समर्पण की शिक्षा देते है कि हम आततायी को जो वह चाहे कर दे, और जो जोर- जबर्दस्ती हमारी चीज हमसे छीनना चाहे उसे वह ले लेने दें? क्या तथागत को यह कहना है कि सभी प्रकार के युद्ध- ऐसे युद्ध भी जो न्याय की रक्षा के लिये लडे जाय हैं-वर्जित है?"
२०. तथागत का उत्तर था:- "जो दण्डनीय है, उसे दण्ड मिलना ही चाहिये । जो उपहार देने योग्य हो, उसे उपहार ही दिया जाना चाहिये । साथ ही किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दिया जाना चाहिये बल्कि उनके साथ प्रेम और दया का बर्ताव होना चाहिये । ये आदेश परस्पर विरोधी नहीं है । जो कोई अपने अपराध के लिये दण्ड भुगतता है, वह न्यायाधीश की द्वेष- बुद्धि के कारण नहीं, बल्कि अपने ही अकुशल- कर्म के परिणाम- स्वरुप । न्यायाधीश द्वारा दिया गया दण्ड उसके अपने कर्म का फल है । न्यायाधीश

जब दण्ड देता है तो उसके मन मे दण्डनीय व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की द्वेष की भावना नहीं होनी चाहिये, और एक हत्यारे को भी जब फांसी की सजा दी जाय तो यही सोचना चाहिये कि यह उसके अपने कर्मो का फल है । जब वह समझेगा कि 'दण्ड' उसके अन्तरतम को 'शुद्ध' ही बनायेगा तो कोई भी दण्डनीय व्यक्ति अपने भाग्य को रोयेगा नहीं बल्कि प्रसन्न ही होगा ।"

२१. इन बातों पर अच्छी तरह विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि भगवान् बुद्ध की देशना में 'अहिंसा' का मुख्य-स्थान है; किन्तु वह निरपेक्ष नहीं ही है ।

२२. उन्होंने सिखाया कि बुराई को भलाई से जीतो लेकिन यह कहीं नहीं सिखाया कि बुराई को ही भलाई से जीत लेने दो ।

२३. वह अहिंसा के समर्थक थे और हिंसा के निन्दक । लेकिन उन्होंने इससे कहीं इनकार नहीं किया कि बुराई से भलाई की रक्षा करनें के लिये आखरी दर्जे कहीं कहीं हिंसा का भी आश्रय लेना पड सकता है ।

२४. भगवान् बुद्ध ने किसी खतरनाक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया । आलोचक ही उसके यथार्थ स्वरुप और क्षेत्र को ठीक ठीक समझ नहीं पाये ।

४. शील का प्रचार संसार को अन्धकारावृत करने का दोषारोपण

(१)

१. दुःख का कपिल ने जो अर्थ किया था वह था चंचलता, अशान्ति,अस्थिरता ।

२. आरम्भ में यह सब कुछ तात्विक अर्थ ही रखता था ।

३. बाद में इसका अर्थ शरीर और मन का कष्ट हो गया ।

४. दोनों अर्थ एक दूसरे से बहुत दूर दूर नहीं थे । दोनों पास पास थे ।

५. अशान्ति से ही शरीर तथा मन के कष्ट उत्पत्र होते है ।

६. अचिरकाल में ही इसका अर्थ सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से शारीरिक और मानसिक कष्ट सहन हो गया ।

७. भगवान् बुद्ध ने 'दु:ख 'शब्द को किन अर्थो में प्रयुक्त किया है?

८. भगवान् बुद्ध का एक प्रवचन है, जिस से यह स्पष्ट होता है कि तथागत इस बात से अपरिचित नहीं थे कि दरिद्रता दु:ख की जननी है ।

९. अपने उस प्रवचन में तथागत ने कहा:- "भिक्षुओं, संसारी आदमी के लिये क्या दरिद्रता दु:खद वस्तु है?"

१०. "भगवान्! निश्चित रुप से ।"

११. "और जब आदमी गरीब होता है, उसे गरज रहती है, उसका हाथ तंग रहता है, उसे कर्ज लेने की आवश्यकता आ पडती है, तो क्या वह अवस्था भी दुःखद है?

१२. "भगवान्! निश्चित रुप से ।"

१३. "और जब उसे कर्ज की जरुरत होती है, वह उधार लेता है तो क्या यह भी दुःखद है?"

१४. "भगवान्! निश्चित रुप से ।"

१५. "और जब कर्जा चुकाने का समय आता है, वह कर्जा चुका नहीं सकता और लेने वाले उसी पर जोर डालते हैं तो क्या यह भी दु:खद है?"

१६. "भगवान्! निश्चित रुप से ।"

१७. "और जब ज़ोर डालने पर भी वह नहीं दे पाता, तो वे उसे पीटते हैं, तो क्या यह भी दुःखद है?"

१८. "भगवान्! निश्चित रुप से ।"

१९. "और जब पीटने पर भी नहीं दे पाता तो बांध डालते हैं, तो क्या यह भी दुःखद है?"

२०. "भगवान्! निश्चित रुप से ।"

२१. "इसलिये भिक्षुओं! दरिद्रता, आवश्यकता, कर्जा लेना, जोर डाला जाना, पीटा जाना तथा बांधा जाना-ये सभी संसारिक पुरुष के लिये कष्ट- प्रद है ।

२२. "संसार में दरिद्रता और ऋण बडे दुःखद है ।"

२३. इससे स्पष्ट होता है कि भगवान् बुद्ध की दु:ख की कल्पना भौतिक भी है ।

(२) अनित्यता को अन्धकार का कारण बताना

१. इस 'अन्धकारावृत्त' के आरोप का दूसरा कारण 'अनित्यता' का यह सिद्धांत बताया जाता है कि जो कुछ भी किन्ही चींजों के मेल से बना है वह सब अनित्य है ।
२. इस सिद्धांत की सच्चाई को सभी स्वीकार करते है ।
३. हर कोई मानता है कि सभी चीजे अनित्य है ।
४. यदि कोई सिद्धांत 'सत्य' है तो उसकी घोषणा होनी हि चाहिये, जैसे स्वयं 'सत्य' की; भले ही वह अरुचिकार ही क्यों न हो ।
५. लेकिन इससे एक निराशावादी परिणाम क्यों निकाला जाय?
६. यदि जीवन 'थोडे ही दिन के लिये है, तो यह 'थोडे ही दिन के लिये' है; इस विषय में किसी को भी दुःखी होने की जरुरत नहीं ।
७. यह तो केवल अपने अपने दृष्टिकोण की बात है ।
८. बर्मियों का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है ।
९. किसी की मृत्यु का उत्सव बर्मी-परिवार में ऐसे ही मनाया जाता है जैसे यह कोई बडी खुश होने की बात हो ।
१०. जिस दिन किसी की मृत्यु होती है, गृहस्थ सभी परिचितों को एक 'भोज 'देता है, और लोग नाचते- गाते मृत- देह को श्मशान भूमि तक ले जाते है । मृत्यु आने ही वाली थी--इसलिये कोई इसकी परवाह नहीं करता ।
११. यदि 'अनित्यता' का सिद्धांत निराशाजनक है तो केवल इसलिये है कि 'नित्यता' को जो वास्तव मे असत्य है सत्य मान लिया गया है ।
१२. इसलिये बुद्ध की देशना पर यह आरोप नही लगाया जा सकता कि यह आदमी को निराश बनाने वाली है ।

(३) क्या बौद्ध धम्म निराशावादी है?

१. भगवान् बुद्ध के धम्म पर 'निराशावादी' धम्म होने का आरोप लगया गया है ।
२. इस आरोप का कारण प्रथम आर्य-सत्य है जिसका कहना है कि संसार में दुःख (चिन्ता-कष्ट) है ।
३. यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि दुःख का उल्लेख होने मात्र से बुद्ध- धम्म पर यह आरोप लगाया जाय ।
४. कार्ल मार्क्स ने भी कहा था कि संसार में शोषण है, गरीब और भी अधिक गरीब होते चले जा रहे है, अमीर और भी अधिक अमीर होते चले जा रहे है ।
५. लेकिन तब भी किसी ने नहीं कहा कि कार्लमार्क्स का सिद्धांत 'निराशावादी' सिद्धांत है ।
६. तब बुद्ध देशना के ही सम्बन्ध में एक भिन्न दृष्टिकोण क्यों रखा जाय ?
७. इसका एक कारण यह हो सकता है कि उन्होंने अपने प्रथम- उपदेश में ही यह कहा है कि जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख हैं और मरण भी दुःख है, और इसी से भगवान बुद्ध के धम्म को कुछ गहरी निराशावादी रंगत दे दी गई है ।
८. लेकिन जो शब्द-शिल्पी है वे जानते हैं कि यह एक कलापूर्ण अतिशयोक्ति मात्र है और जो इस साहित्यिक् कला में निष्णात है वे प्रभाव उत्पन्न करने के लिये इसका उपयोग करते ही है ।
९. यह कथन कि 'जन्म दुःख है' एक अतिशयोक्ति है यह भगवान् बुद्ध के ही एक दूसरे प्रवचन से सिद्ध किया जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा हैं कि 'मनुष्यजन्म एक दुर्लभ वस्तु है ।'
१०. फिर यदि बुद्ध ने केवल 'दुःख' की ही बात की होती, तब भी शायद तथागत पर यह आरोप लग सकता था ।
११. लेकिन भगवान् बुद्ध का दूसरा आर्य सत्य इस बात पर जोर देता है कि इस दुःख का अन्त होना चाहिये । दुःख का अन्त करने की बात पर ज़ोर देने के लिये ही तथागत को दुःख के अस्तित्व की चर्चा करनी पडी ।
१२. भगवान् बुद्ध ने दुःख को दूर करने की बात को ही सर्वाधिक महत्व दिया है । यही कारण है कि जब उन्होंने देखा कि कपिल ने दुःख के अस्तित्व की चर्चा भर की है और इससे अधिक कुछ नहीं किया, तो वे असन्तुष्ट हुए और उन्होंने आलार कालाम का आश्रम तक छोड दिया ।
१३. तब ऐसा धम्म निराशावादी धम्म कैसे कहला सकता है?
१४. निश्चय से जो शास्ता दुःख का अन्त देखने के लिये इतने उत्सुक थे, निराशावादी नहीं कहे जा सकते ।

५. 'आत्मा' तथा 'पुनर्जन्म' सम्बन्धी आलोचना

१. भगवान बुद्ध ने कहा- 'आत्मा' नहीं है । भगवान् बुद्ध ने कहा-- 'पुनर्जन्म' है ।
२. ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो भगवान् बुद्ध पर यह दोष लगाते थे कि वे परस्पर विरोधी सिद्धांतों के प्रचारक है ।

३. उनकी शंका थी-- जब 'आत्मा' ही नही है तो 'पुनर्जन्म' कैसा हो सकता है?
४. इसमें कहीं कुछ भी विरोध नहीं हैं । बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म हो सकता है ।
५. आम का बीज है । आम के बीज से आम का पेड पैदा होता है । आम के पेड पर आम के फल लगते है ।
६. यह 'आम' का पुनर्जन्म है ।
७. लेकिन यहाँ 'आत्मा' कही भी नहीं है ।
८. इसी प्रकार बिना 'आत्मा' के पुनर्जन्म हो सकता है ।

६. 'उच्छेद-वादी' होने का दोषारोपण

१. एक बार भगवान् बुद्ध जब श्रावस्ती के जेतवनाराम मे ठहरे हुए थे, तो उन्हें सूचना मिली कि अरिट्ठ नाम का एक भिक्षु ऐसे मत को, जो तथागत का मत नहीं है, तथागत का मत समझ रहा है ।
२. एक विषय जिसके बारे में अरिट्ठ तथागत को गलत तौर पर समझें बैठा था, वह तथागत के 'उच्छेद-वादी' होने न होने का विषय था ।
३. तथागत ने अरिट्ठ को बुला भेजा । अरिट्ठ आया । प्रश्न किये जाने पर उसका मूँह बन्द हो गया ।
४. तब तथागत ने उसे कहा-- "कुछ श्रमण-ब्राह्मण मुझ पर गलत तौर से, मिथ्यारुप से, झूठे रुप से--उच्छेदवादी होने का 'दोषारोपण' करते है । कहते है कि मैं प्राणियों के उच्छेद की, अभावात्मक विनाश की शिक्षा देता हूँ । यह वास्तविकता के सर्वथा विरुद्ध है ।
५. यही तो मैं नही हूँ, यही तो मैं नहीं सिखाता हूँ ।"
६. पहले भी और आज भी मैं यही सिखाता हूँ कि दुःख है और दुःख का निरोध है ।

चौथा भाग : समर्थक और प्रशंसक

१. धानंजानी ब्राह्मणी की श्रद्धा

१. तथागत के अनगिनत समर्थक और प्रशंसक थे । उनमें से एक धानंजानी थी ।
२. वह भारद्वाज ब्राह्मण की पत्नि थी । उसका पति तथागत से घुणा करता था । लेकिन धानंजानी भगवान् बुद्ध की भक्त थी । उसकी श्रद्धा उल्लेख करने योग्य है ।
३. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के समीप वेळूवन विहार के कलन्दक-निवास नामक स्थान पर ठहरे हुए थे ।
४. उसी समय भारद्वाज परिवार के एक ब्राह्मण की धानंजानी नामक पत्नि अपने पति के साथ राजगृह में रहती थी ।
५. पति तो तथागत का बडा ही विरोधी था, लेकिन धानंजानी बुद्ध धम्म और संघ के प्रति उतनी ही प्रसत्र थी । उसे त्रिरत्न की स्तुति करने मे आनन्द आता था । जब कभी वह इस प्रकार मुँह खोलकर प्रशंसा करने लगती, उसका पति कान बंद कर लेता ।
६. एक बार जब उसने बहुत से ब्राह्मणो को भोजन के लिये निमंत्रित किया था, उसने ब्राह्मणी से कहा कि वह और जो चाहे करे किन्तु बुद्ध की स्तुति सुनाकर वह उसके अतिथियों को अप्रसन्न न करे ।
७. धानंजानी ऐसा कोई वचन देने को तैयार न थी । उसने उसे धमकाया कि तलवार से केले को काट डालने की तरह वह उसके टुकडे टुकडे कर देगा । वह आत्म-बलिदान के लिये तैयार थी । इस प्रकार उसने अपनी वाणी की स्वतंत्रता की रक्षा की, और उसने भगवान् स्तुति में पांच सौ बुद्ध की गाथायें कह सुनाई! ब्राह्मण ने बिना शर्त के पराजय स्वीकार की ।
८. भोजन पात्र तथा सुनहरी चम्मच रख दिये गये थे । अतिथि भोजन करने बैठे । अतिथियों को भोजन कराते समय ही उसकी बलवती भावना ने जोर मारा । वह वेळूवणाभिमुख हुई और उसने त्रि- रत्न की स्तुति की ।
९. अपमानित अतिथि उठ खडे हुए । एक नास्तिका की उपस्थिति से सारा भोजन अपवित्र हो गया था । थू थू करते हुए वे वहाँ से विदा हुए । ब्राह्मण ने सारा 'भोज' चौपट कर देने के लिये ब्राह्मणों को बहुत गालियाँ दीं ।
१०. उसने फिर भारद्वाज ब्राह्मण को भोजन कराते समय त्रि- रत्न की स्तुति की 'बुद्ध को नमस्कार है, धम्म को नमस्कार है, संघ को नमस्कार है ।
११. उसके ऐसा कहने पर भारद्वाज ब्राह्मण बहुत कोधित हुआ और चिल्लाया चण्डालिनी कही की, हर समय उसी सिर- मुण्डे के गीत गाती रहती है । हे चण्डालिनी! मैं तेरे गुरु को जाकर सबक सिखाता हूँ ।
१२. धानंजानी का उत्तर था "हे ब्राह्मण! सदेव, समार, स-ब्रह्म लोक में किसी श्रमण-ब्राह्मण, किसी देवता या किसी मनुष्य को भी मै नहीं पाती जो उस अर्हत संबुद्ध को इस प्रकार भला- बुरा कह सके । लेकिन तुम उनके पास जाओं, तब तुम स्वयं देखोगे ।"
१३. तब खिझा हुआ और अप्रसत्र ब्राह्मण तथागत की खोज में निकला । वहाँ पहुंच कर, जहाँ तथागत ठहरे हुए थे, उसने शिष्टाचार की बातचीत की और तब एक ओर जा बैठा ।
१४. इस प्रकार बैठे हुए ब्राह्मण ने तथागत से प्रश्न पूछे-- "सुखपूर्वक रहने के लियें हमें किसकी हत्या करनी चाहिये? और रोना न पडे, इसके लिये किसकी हिंसा करनी चाहिये? गौतम! वह क्या है जिसकी हत्या का तुम सब से अधिक समर्थन करते हो ?"
१५. तथागत ने उत्तर दिया:-- "सुखपूर्वक रहने के लिये क्रोध की हत्या करनी चाहिये । और रोना न पडे, इसके लिये हमें क्रोध की हिंसा करनी चाहिये हे ब्राह्मण! क्रोध की-- जिसका विषैला मूल है, जिसका उत्तेजनापूर्वक शिखर है और जिस में हत्यारा माधुर्य है । श्रेष्ठ जनों ने इसी प्रकार की 'हिंसा' की प्रशंसा की है । यदि भविष्य में और रोना-पीटना न हो, तो क्रोध की हिंसा कर डालनी चाहिये ।"
१६. भगवान् बुद्ध के प्रवचन के श्रेष्ठत्व को समझ भारद्वाज ब्राह्मण बोला- "भगवान अदभुत है । भगवान् अद्भुत है । जैसे कोई आदमी गिरी पडी वस्तु को स्थिर कर दे, अथवा प्रच्छन्न को प्रकट कर दे, अथवा मार्ग-भ्रष्ट को ठीक रास्ता दिखा दे, अथवा अन्धेरे में प्रदीप प्रज्वलित कर दे ताकि आँखवाले बाहर की चीजे देख ले-- इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने मुझे नाना प्रकार से अपना सद्धम्म प्रकट कर दिया है । भगवान्! मैं बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ? मैं गृहस्थी त्याग कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ ।
१७. इस प्रकार धानंजानी न केवल स्वयं भगवान् बुद्ध की भक्त थी, किन्तु उसने औरों को भी भक्त बनाया ।

२. विशाखा की दृढ श्रद्धा

१. विशाखा अङ्ग: जनपद के भद्दीय नगर में जन्मी थी ।

२. पिता का नाम धनंजय और माता को नाम सुमना था।
३. एक बार सेल ब्राह्मणा के निमंत्रण पर बहुत से भिक्षुओं सहित तथागत ने भद्दीय की यात्रा की। सेल ब्राह्मण की पोती विशाखा की आयू उस समय सात वर्ष की थी।
४. यद्यपि विशाखा की आयु केवल सात वर्ष की ही थी तब भी उसने भगवान् बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। मेण्डक ने उसे आज्ञा दे दी कि वह तथागत के दर्शन कर आये। साथ के लिये उसने पांच सौ साथी पाँच सौ दास और पांच सौ रथ भी दिये।
५. रथ को कुछ दूरी पर खडा करके वह पैदल तथागत के पास पहुंची।
६. भगवान् बुद्ध ने उसे धम्म का उपदेश दिया और वह उन की गृहस्थ शिष्या (उपासिका) बन गई।
७. इसके बाद पन्द्रह दिन तक मेण्डक भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षु संघ को प्रतिदिन निमंत्रित करके भोजन कराता रहा।
८. अन्त में जब प्रसेनजित् के कहने पर बिम्बिसार ने धनंजय को कोशल जनपद में रहने के लिये भेज दिया तो विशाखा भी अपने माता- पिता के साथ गई और साकेत में रहने लगी।
९. श्रावस्ती का एक सेठ था। नाम था मिगार। वह अपने पुण्यवर्धन नामक पुत्र का विवाह करना चाहता था। उसने कुछ लोंगों को योग्य लडकी की खोज में भेज रखा था।
१०. लडकी की खोज करने वाली मण्डली घूमते घूमते साकेत आ पहुंची। उन्होंने देखा कि किसी त्योहार के दिन विशाखा सरोवर पर स्नान करने जा रही है।
११. उसी समय जोर की वर्षा आई। विशाखा की सखियाँ भाग खडी हुई। लेकिन विशाखा नहीं भागी। वह अपनी समान गति से चलती हुई उस जगह जा पहुंची जहाँ मिगार के 'दूत' खडे थे।
१२. उन्होंने उससे पूछा—'तूने दौड कर अपने कपडे क्यो नहीं बचाये?' उसने उत्तर दिया कि उसके पास कपडों की कमी नहीं है, किन्तु दौडने से फिसल कर गिर पडने और अंग- भंग हो जाने तक का डर रहता है। 'अविवाहित लडकियां' वह बोली 'उस सामान की तरह से है जो बिक्री के लिये रखा है। उनकी शक्ल -सूरत ठीक रहनी चाहिये।'
१३. जिन्हें उसके सौन्दर्य ने पहले ही प्रभावित कर दिया था वे उसकी बुद्धि से और भी प्रभावित हुए। दूतों ने उसे एक पुष्प गुच्छ भेंट किया, जो विवाह के प्रस्ताव का प्रतीक था-- स्वीकृत हुआ।
१४. विशाखा के घर लौटने पर दूत भी पीछे पीछे घर आये। उन्होंने पुष्पवर्धन से विवाह करने का प्रस्ताव विशाखा के पिता धनंजय के सम्मुख उपस्थित किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और पत्रों की अदला- बदली द्वारा स्थिर हुआ।
१५. जब राजा प्रसेनजित् ने सुना तो उसने साथ साकेत चलने के लिये कहा। यह असाधारण सम्मान की बात थी। धनंजय ने राजा, उसके राजधिकारियो, मिगार, पुण्यवर्धन तथा सब बारातियों का बडा ही आदर- सत्कार किया। आतिथ्य में किसी तरह की कमी न होने दी।
१६. वधु के लिये गहने बनाने को पांच सौ सुनार नियुक्त किये गये। धनंजय ने अपनी लडकी के दहेज मे धन से भरी पांच सौ गाडियाँ तथा सोने और पशुओं से भरी पांच सौ गाडियाँ दीं।
१७. जब विशाखा के विदा होने का समय आया तो धनंजय ने उसे दस उपदेश दिये, जिन्हें मिगार ने भी साथ के कमरे में ही होने के कारण सुन लिया। ये दस उपदेश थे- (१) घर की आग बाहर नहीं जाने देना, (२) बाहर की आग घर में नहीं आने देना, (३) जो बदले मे दे उन्हें ही देना, (४) जो बदले में न दे उन्हें नहीं देना, (५) जो दे उसे देना, (६) जो नहीं दे उसे न देना, (७) प्रसत्रता पूर्वक बैठना, (८) प्रसत्रता पूर्वक खाना- पीना, (९) आग को संभालना, तथा (१०) गृह देवताओं का सम्मान करना।
१८. दूसरे दिन धनंजय ने आठ गृहस्थो को अपनी लडकी के गुण- दोषों का विवेचन करने के लिये नियुक्त किया और उनका कर्तव्य था कि यदि विशाखा पर कोई आरोप लगाया जाय तो उसकी जाँच करे।
१९. मिंगार चाहता था की उसकी पुत्र- वधु को श्रावस्ती की जनता देखे। लोग सडक के दोनों ओर खडे थे और विशाखा ने रथ में खडे खडे श्रावस्ती में प्रवेश किया। जनता ने उस पर से तरह तरह की चीजें न्योछावर की, किन्तु वे सभी चीजें उसने लोगों में बाँट दीं।
२०. मिंगार निगण्ठों का उपासक था। विशाखा के घर पर आने के बाद शीघ्र ही उसने उन्हें बुला भेजा। उनके आने पर मिंगार ने विशाखा को उनका स्वागत करने के लिये कहा। लेकिन उनकी नग्नता देखकर ही विशाखा उद्विग्न हो उठी। उसने उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने से इनकार कर दिया।
२१. निगण्ठो ने आग्रह किया कि विशाखा को वापिस भेज दिया जाय किन्तु मिंगार ने प्रतीक्षा करना उचित समझा।

२२. एक दिन जब मिंगार खाना खा रहा था और विशाखा पास खडी पंखा झल रही थी, घर के बाहर एक भिक्षु खडा दिखाई दिया । विशाखा एक ओर हट गई कि मिंगार की नजर उस पर पड जाय । लेकिन मिंगार ने 'भिक्षु 'की ओर देखा तक नहीं । वह अपना खाना खाता रहा ।
२३. यह देख विशाखा ने भिक्षु से कहा--भन्ते: आगे बड जाये, मेरा श्वसूर बासी भोजन खाता है । मिंगार को बहुत क्रोध आया । उसने उसे वापिस भेजना चाहा । किन्तु विशाखा के कहने पर मामला उन आठ 'पंचो' के सामने उपस्थित किया गया ।
२४. विशाखा के विरुद्ध जितने भी आरोप लगायें गये थे, उन्होंने उन सब की जांच की । किन्तु विशाखा को निर्दोष पाया ।
२५. विशाखा ने तब आज्ञा दी कि उसे उसके पिता के घर भिजवाने की तैयारी की जाय । मिंगार और उसकी पत्नी ने क्षमा मांगी । विशाखा ने इस शर्त पर रहना स्वीकार किया कि मिंगार भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर पर निमंत्रित करेगा ।
२६. यह उसने किया । किन्तु निगण्ठो के दबाव के कारण उसने तथागत को भोजन कराने का काम विशाखा को ही सौंपा, अपने पर्दे की ओट से तथागत का 'प्रवचन' सुनता रहा ।
२७. उस 'प्रवचन' का उस पर ऐसा प्रभाव पडा कि वह उपासक हो गया ।
२८. वह विशाखा के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ था । इसके बाद से वह उसको अपनी माता के समान समझने लगा और उसी प्रकार आदर सत्कार करने लगा । इसी लिये इसके बाद से विशाखा का नाम मिंगार- माता पड गया ।
२९. विशाखा की ऐसी ही दृढ श्रद्धा थी ।

३. मल्लिका की श्रद्धा

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे,एक गृहस्थ का प्रिय-पुत्र मर गया । पिता उसके शोक से इतना सन्तप्त हुआ कि उसका खाना-पीना और कारोबार सब छूट गया ।
२. वह हमेशा श्मशान-भूमि में जाता था और जोर जोर से चिल्लाता था । 'पुत्र! तुम कहाँ हो? पुत्र! तुम कहाँ हो?'
३. शोक-सन्तप्त पिता भगवान् बुद्ध के पास आया और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।
४. यह देख कि उसका दिमाग सर्वथ खाली था, उसकी किसी भी चीज में दिलचस्पी नहीं थी, वह यह भी नहीं बताता था कि वह क्यों आया; उसकी ऐसी अवस्था देख तथागत ने कहा-- "तुम अपने आप में नहीं हो । तुम्हारा चित्त स्थिर नहीं है ।"
५. "मेरा चित्त स्थिर कैसे रह सकता है, जब मेरा इकलौता प्रिय- पुत्र चल बसा?"
६. "हाँ गृहपति! हमारे प्रियजन शोक, संताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही है ।"
७. गृहस्थ को क्रोध आ गया । बोला-- "ऐसी बात कौन स्वीकार कर सकता है! हमारे प्रिय-जन हमारे लिये आनंद और सुख का कारण होते है ।"
८. यह कहता हुआ असन्तुष्ट गृहपति भगवान् बुद्ध के कथन को अस्वीकार कर, उठकर चला गया ।
९. समीप ही कुछ जुआरी बैठे जुआ खेल रहे थे । गृहपति उनके पास पहुंचा और उन्हें अपनी सब बात कह सुनाई कि कैसे वह तथागत के पास गया, कैसे तथागत ने उसका स्वागत किया, कैसे तथागत ने उसे क्या कहा और फिर कैसे वह उठकर चाला आया ।
१०. जुआरी बोले-- "तुम्हारा कहना एकदम ठीक है । हमारे प्रिय जन हमारे लिये आनन्द और सुख का कारण होते हैं ।" गृहपति को लगा कि उसे उन जुआरियों का समर्थन प्राप्त है ।
११. धीरे धीरे यह बात फैलती फैलती राजा के निवास तक पहूँच गई । वहाँ राजा ने मल्लिकारानी को कहा कि तुम्हारें श्रमण गौतम ने कहा कि प्रियजन शोक, सन्ताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही है ।
१२. "स्वामी! यदि तथागत ने ऐसा कहा है, तो ठीक ही कहा है ।"
१३. "मल्लिका! जैसे कोई शिष्य अपने गुरु की हर बात को 'जी ऐसी ही हैं' कहकर स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार तू भी जो कुछ श्रमण गौतम कहते है उसे यदि तथागत ने ऐसा कहा है तो ठीक ही कहा है' कह कर स्वीकार कर लेती है । जा दूर हट ।"
१४. तब मल्लिका ने नली- धान ब्राह्मण को बुलाया और कहा- "भगवान् बुद्ध के पास जाओ । मेरी ओर से चरणों में सिर रखकर नमस्कार करो । तब कुशल-समाचार पूछ चुकने के बाद पूछो कि क्या जो कुछ भगवान् बुद्ध के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कहा है, वह उन्हों ने सचमुच कहा है?"
१५. "और जो कुछ भी तथागत उत्तर दें, मुझे आकर ठीक ठीक वैसे ही बताना ।"

१६. मल्लिका रानी की आज्ञा मान ब्राह्मण भगवान बुद्ध के पास पहुंचा और जाकर प्रश्न किया कि क्या उन्होंने वास्तव में वैसा कहा था ।
१७. "हाँ ब्राह्मण! प्रियजन शोक, सन्ताप, कष्ट, दुःख और अनुताप का कारण होते ही है । ये कुछ प्रमाण हैं ।"
१८. "एक बार, यहीं श्रावस्ती में ही, एक स्त्री की माँ मर गई । बेटी होश- हवास गंवाये, पागल बनी एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाती घूमती थी- "क्या किसी ने मेरी माँ को देखा है? क्या किसी ने मेरी माँ को देखा है?"
१९. "एक दूसरा प्रमाण, श्रावस्ती की ही एक स्त्री है जिसका पिता मर गया, भाई मर गया--बहन मर गई-- बेटा मर गया--बेटी मर गई--पति मर गया । वह होश-हवास गंवाये, पागल बनी एक बाजार से दूसरे बाजार, एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाती घूमती थी-- "क्या किसी ने मेरे इन प्रियजनों को देखा है?"
२०. "एक तीसरा प्रमाण, श्रावस्ती का ही वह आदमी है जिसकी माँ मर गई ,जिसका पिता मर गया, भाई मर गया, बहन मर गई, बेटा मर गया, बेटी मर गई, पत्नि मर गयी । वह होश- हवास गंवाये, पागल बना एक बाजार से दूसरे बाजार एक चौरास्ते से दूसरे चौरास्ते चिल्लाता हुआ घूमता था-- "क्या किसी ने मेरे इन प्रियजनों को देखा है?"
२१. "एक और प्रमाण श्रावस्ती की वह स्त्री है जो अपने मायके गई, उसके माता-पिता उसे उसके पति से छीन कर किसी दूसरे आदमी से ब्याह देना चाहते थे,जिसे वह पसन्द नही करती थी ।
२२. "उसने अपने पति को यह बात बता दी । उसके पति ने उसके दो तुकडे कर दिये और उसके बाद स्वयं भी आत्म- हत्या कर दिया ताकि उन दोनों का मरण साथ साथ हो सके ।"
२३. ब्राह्मण नली- धान ने यह सब कुछ जाकर शब्दशः रानी मल्लिका को कह सुनाया ।
२४. तब रानी मल्लिका राजा के पास पहुंची और बोली- "स्वामी! क्या आपको अपनी इकलौती पुत्री वजिरा प्रिय है?" "हाँ! प्रिय है ।"
२५. "यदि आपकी वजिरा को कुछ हो जाय तो आपको कष्ट होगा या नहीं?" "यदि वजिरा को कुछ हो जाय तो इसका मेरे जीवन पर बडा बुरा प्रभाव पडेगा ।"
२६. "स्वामी! क्या आपको मैं प्रिय हूँ?" "हाँ! प्रिय हो!"
२७. "यदि मुझे कुछ हो जाय तो आपको दुख होगा या नहीं?" "यदि तुम्हें कुछ हो जाय तो इसका मेरे जीवन पर बडा बुरा प्रभाव पडेगा ।"
२८. "स्वामी! क्या आपको काशी-कोशल की जनता प्रिय है?" "हाँ प्रिय है ।" "यदि उसे कुछ हो जाय तो आपको अनुताप होगा या नहीं ।"
२९. "यदि काशी-कोशल की जनता को कुछ हो जाय तो मुझे बडा अनुताप होगा; यह हो ही कैसे सकता है कि ऐसा न हो ।"
३०. "तो भगवान् बुद्ध ने क्या इससे कोई भिन्न बात कही थी?" राजा ने पश्चाताप प्रकट करते हुए उत्तर दिया-- "मल्लिका! नही यही कहा था ।"

४. एक गर्भिणी की तीव्र अभिलाषा

१. एक बार भगवान बुद्ध मग्ग-देश के, सुंसुभार-पर्वत पर भेसकलावन के मृगदाय में ठहरे हुए थे । 'पद्म' नाम का बोधि राजकुमार का प्रासाद अभी बनकर समाप्त हुआ था । उसमें किसी श्रमण-ब्राह्मण वा अन्य किसी भी व्यक्ति का वास नहीं हुआ था ।
२. राजकुमार ने संजिक-पुत्र नाम के एक ब्राह्मण को कहा:- "भगवान् बुद्ध के पास जाकर मेरी ओर से उनके चरणों में नमस्कार करो । उनका कुशल-समाचार पूछो, और उन्हें भिक्षु संघ सहित कल के भोजन का निमंत्रण दो ।
३. निमंत्रण भगवान् बुद्ध तक पहुंचा, जिन्होंने उसे मौन रहकर स्वीकार किया और जिसकी सूचना राजकुमार को मिल गई ।
४. रात के बीत जाने पर राजकुमार ने अपने 'पद्म' नाम के महल में श्रेष्ठ भोजन तैयार कराया और सीढीयो पर सफेद वस्त्र बिछवाया । इसके बाद उसने उस तरुण ब्राह्मण की जबानी भोजन की तैयारी की सूचना भिजवाई ।
५. यह हो जाने पर, उस दिन पूर्वाह्न में चीवर पहन तथा पात्र (चीवर) हाथ में ले तथागत वहाँ आये जहाँ अपने महल के दरवाजे के बाहर राजकुमार प्रतीक्षा कर रहा था ।
६. तथागत को आता देखकर, राजकुमार आगे बढा, अभिवादन किया और तथागत के पीछे पीछे महल की ओर वापस आया ।

७. सीढियों के नीचे भगवान बुद्ध चुपचाप रुक गये | राजकुमार बोला-- "मैं प्रार्थना करता हूँ कि बिछे धुस्सों पर चरण- रज पडने दें | मैं तथागत से प्रार्थना करता हूँ कि इस धुस्से पर चरण-रज पडने दें --जो कि चिरकाल तक मेरे हित तथा सुख के लिये होगा |" लेकिन तथागत चुप रहे |

८. दूसरी बार भी राजकुमार ने प्रार्थना की | तब भी तथागत आगे नहीं बढे | तीसरी बार भी उसने प्रार्थना की, तब तथागत ने आनन्द की ओर देखा |

९. आनन्द समझ गये और उन्होंने कहा कि वह धुस्से लपेट दिये जाये, क्योंकि तथागत पीछे आने वाले लोगों का ख्याल कर-- भावी जनता का ख्याल कर--उस धुस्से पर पैर नहीं रखेंगे |

१०. राजकुमार ने धुस्से इकट्ठे करवा दिये और महल में ऊपर बैठने के लिये आसन लगवाये |

११. तब भिक्षु-संघ भगवान् बुद्ध ऊपर पधारे और बिछे आसनों पर विराजमान हुए |

१२. राजकुमार ने अपने हाथ से भिक्षुसंघ और तथागत को भोजन परोसा |

१३. भोजन की समाप्ति पर राजकुमार एक नीचा आसन ग्रहण कर एक ओर बैठ गया और बोला- "भगवान्! क्या वास्तविक कल्याण- आराम के रास्ते पर चलने से प्राप्त होता है वा कष्ट सहन के रास्ते पर चलने से?"

१४. तथागत ने उतर दिया, पूर्व में, बोधी- लाभ करने से पूर्व मैं भी इस बारे में विचार करता था | जिस समय, मेरे काले काले बाल थे, तारुण्य के मध्य में था अपने रोते- माता पिता को छोडकर मैंने सिर के बाल और दाढी मुंडा ली थी तथा काषाय वस्त्र धारण कर प्रव्रजित हो गया था--एक परिव्राजक कल्याण पथ का पथिक, अनुपम शान्ति की तलाश करने वाला |

१५. "अब मेरा निश्चित मत है | यदि आदमी सद्धर्म को जानता है, तो वह दु:ख का अन्त कर सकता है |"

१६. राजकुमार बोला-- "क्या अद्भुत सद्धम्म है! क्या अद्भुत सद्धम्म की व्याख्या है! यह समझने में कितना सुकर है |"

१७. तब तरुण ब्राह्मण बोल उठा-- "राजकुमार! यद्यपि आपने इस प्रकार समर्थन किया है, किन्तु आपने बुद्ध धम्म तथा संघ की शरण नहीं ग्रहण की।"

१८. राजकुमार का उत्तर था:-- "ऐसा मत कहों | ऐसा मत कहो | क्योंकि मैंने अपनी मातृश्री से सुना है कि जिस समय भगवान् बुद्ध कोसाम्बी के घोसिताराम में ठहरे हुए थे, वह गर्भिणी अवस्था मे ही भगवान् बुद्ध के पास गई और जाकर एक ओर बैठ गई | एक ओर बैठ कर उसने कहा- भगवान्! चाहे लडका हो और चाहे लडकी हो, जिस शिशु को मै इस समय अपने गर्भ में धारण किये हुए हूँ, वह मेरी अनुत्पन्न संतान बुद्ध, धम्म, तथा संघ की शरण ग्रहण कर रही है | भगवान्! इस शिशु को इसके जीवन भर अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें |"

१९. "दूसरी बार जब भगवान् बुद्ध यहाँ इस भग्गदेश में ही सिंसुभारगिरि पर भेसकलावन में ठहरे हुए थे, मेरी दाई मुझे तथागत के पास ले गई और सामने खडी होकर बोली- "यह बोधि राजकुमार बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता है |"

२०. "अब मैं तीसरी बार, स्वयं यह शरण ग्रहण करता हूँ और तथागत से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें |"

९. केनिय द्वारा किया गया स्वागत

१. आपण में सेल नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो तीनों वेदो में पारंगत था, व्याख्या सहित कर्मकाण्ड का पण्डित था, शब्द-शास्त्र तथा शब्दों की व्युत्पति का ज्ञाता था, पांचवी विद्या इतिहास से परिचित था | वह व्याकरण जानता था, और लोकायत-शास्त्र भी जानता था तथा महापुरुष लक्षणों की भी जानकारी रखता था। वह तीन सौ तरूण ब्राह्मणों को वेदमंत्र सिखाता था।

२. अग्नि-पूजक केनिय ब्राह्मण इस सेल ब्राह्मण को मानने वाला था। अपने तीन सौ शिष्यों के साथ जब वहाँ पहुंचा कि सभी अग्नि-पूजक भिन्न भिन्न कार्यो में व्यस्त है और स्वंय केनिय पृथक पृथक खाना बना रहा है।

३. यह देखा तो सेल ब्राह्मण केनिय ब्राह्मण से बोला- "यह सब क्या है? क्या कोई बारात जिमाई जाने को है? या कोई यज्ञ रचा है? अथवा उसके सब राजकर्मचारियों के साथ मगध-नरेश बिम्बिसार को ही कल के दिन भोजन के लिये निमंत्रित किया है?"

४. "सेल! यह कोई बारात भी नहीं जिमाई जा रहीं है और न मैने सभी राजकर्मचारियों सहित मगध-नरेश बिम्बिसार को निमंत्रित किया है। लेकिन मैंने एक बडा यज्ञ रचा है। श्रमण गौतम साढे बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिका करते करते आपण पधारे हैं।

५. "श्रमण गौतम के बारे में यह कीर्ति-शब्द सुना गया है कि वे अर्हत है सम्यक् समबुद्ध हैं।"

६. "मैंने कल उन्हीं को अपने भिक्षु-संघ सहित यहाँ भोजन के लिये निमंत्रित किया है। यह जो तैयारी हो रही है, यह सब उन्हीं के लिये है।"

७. सेल ने प्रश्न किया- "केनिय! क्या तू ने कहा कि वे सम्यक् समबुद्ध हैं?" "हाँ! मैंने कहा कि वे सम्यक्-समबुद्ध हैं ।" "क्या तूने सचमुच कहा कि वे सम्यक्- समबुद्ध है ।" "हाँ मैंने सचमुच कहा कि वे सम्यक्- समबुद्ध है।"

६. तथागत की राजा प्रसेनजित द्वारा की गई स्तुति

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथ पिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे।

२. उस समय कोशल-नरेश प्रसेनजित् उस बनावटी-युद्ध से लौटे ही थे,जिसमें वे विजयी हुए थे। उद्यान में पहुँचकर वे उधर घूम गये। जहाँ तक रथ से जाया जा सकता था, वे रथ से गये। आगे जाकर रथ से उतर गये और पैदल गये।

३. उस समय कुछ भिक्षु खुले में चहल-कदमी कर रहे थे। कोशल-नरेश प्रसेनजित् उनके पास गया और बोला-- "भन्ते! इस समय तथागत भगवान् अर्हत सम्यक् समबुद्ध किस जगह विराजमान हैं? मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।"

४. "महाराज! वे वहाँ है। द्वार बंद है। बिना घबराये आप धीरे से वहाँ चले जायें, बरामदे में प्रवेश करें, खांसे और दरवाजे की कुण्डी खटखटाये । तथागत तुम्हारे लिये दरवाजा खोल देंगे ।"

५. तब कोशल-नेरश प्रसेनजित् जैसा बताया गया था, उसी प्रकार वहाँ पहुंचा, खांसा और दरवाजे की कुण्डी खटखटाई । तथागत ने दरवाजा खोल दिया ।

६. तब प्रसेनजित् ने तथागत की 'गन्ध-कुटी' में प्रवेश किया, तथागत के चरणों पर अपना सिर रखा, उन चरणों को चूमा और हाथ से स्पर्श किया और अपने आगमण की सूचना दी,"भगवान्! मैं कोशल-नरेश प्रसेनजित् हूँ ।

७. भगवान बुद्ध ने पूछा-- "लेकिन, महाराज! इस शरीर में ऐसी क्या विशेषता है कि आप इस शरीर के प्रति इतना भक्ति- भाव प्रदर्शित कर रहे हैं ?"

सप्तम खंड

महान परिव्राजक की अन्तिम चारिका

पहला भाग-निकटस्थ जनो से भेंट

दूसरा भाग-वैशाली से विदाई

तीसरा भाग-महापरिनिर्वाण

पहला भाग : निकटस्थ जनों से भेंट

१. धम्म प्रचार के केन्द्र

१. धम्म-दूतों की नियुक्ति के बाद भगवान् बुद्ध स्वयं किसी एक जगह नहीं बैठ गये थे। वे भी स्वयं धम्म-दूत बने रहे।
२. ऐसा लगता है कि भगवान् बुद्ध ने कुछ विशेष स्थानों को धम्म-प्रचार का केन्द्र बना लिया था।
३. ऐसे केन्द्रो में प्रधान थे श्रावस्ती और राजगृह।
४. उन्होंने लगभग ७५ बार श्रावस्ती की यात्रा की होगी और कोई २४ बार राजगृह की।
५. कुछ दूसरे स्थान धम्म- प्रचार के छोटे केन्द्र थे।
६. जैसे कपिलवस्तु, जहाँ तथागत ६ बार गये, वैशाली भी छ: बार गये और कम्मासदम्म ४ बार।

२. भगवान बुद्ध कहाँ कहाँ पधारे?

१. अपनी चारिका करते करते उक्त प्रधान और छोटे केन्द्रो के अतिरिक्त ऐसे और बहुत से स्थान है जहाँ भगवान् बुद्ध गये।
२. वे उकट्ठा, नादिका, साला, अस्सपुर, घोषिताराम, नालन्दा, आपण तथा एतुमा पधारे।
३. वे ओपसाद, इच्छा-नंगल, चण्डाल-कप्प, तथा कुसीनारा गये।
४. वे देवदह, पावा, अम्बसण्डा, सेतव्या, अनुपिया तथा उजूनना गये।
५. जिन जिन जगहों पर तथागत गये उनके नामों को देखने से पता लगता है कि वे शाक्य-जनपद, कुरु जनपद तथा अग जनपद में पधारे।
६. मोटे रुप से यह कह सकते है कि उन्होंने समस्त उत्तरी- भारत की यात्रा की।
७. इन स्थानों की संख्या बहुत अधिक प्रतीत नहीं होती। लेकिन इनके बीच की भी दूरी कितनी है? लुम्बिनी से राजगृह कोई ढाई सौ मील से कम दूर नहीं है। इससे स्थानों की दूरी का कुछ अन्दाजा लग जाता है।
८. इन सभी स्थानों पर भगवान् बुद्ध पैदल ही गये हैं। उन्होंने बैलगाडी तक का भी उपयोग नहीं किया।
९. जब वे चारिका करते थे तो रास्ते में ठहरने के लिये भी कोई जगह नहीं थी। आगे चलकर तो उनके गृहस्थ उपासकों ने उनके रहने-ठहरने के लिये विहार बनवा दिये थे। तथागत बहुधा सडक के किनारे के वृक्षो की छाया में ही रात बिताते थे।
१०. जिनके मन में सन्देह थे, उनके सन्देह मिटाते हुए, जो विरोधी थे उनके तर्कों का उत्तर देते हुए, जो बच्चों की तरह उनका विश्वास करते थे उन्हें सत्पथ दिखाते हुए तथागत एक जगह से दूसरी जगह, एक गांव से दूसरें गाँव विचरते थे।
११. भगवान् बुद्ध जानते थे कि जितने लोग उनका उपदेश सुनने आते थे सब न समान रूप से बुद्धिमान होते थे और न ऐसे हि कि जिनकी पहले से कुछ पूर्व- धारणायें न बनी हुई हो।
१२. उन्होंने भिक्षुओं को बता तक दिया था कि श्रोतागण तीन प्रकार के होते हैं:-
१३. "खाली-दिमाग, जिस मूर्ख को कुछ भी दिखाई नहीं देता; यद्यपि वह बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके प्रवचन सुनता है, लेकिन कुछ नहीं समझ सकता। उसे बुद्धि ही नहीं होती।
१४. "लेकिन उससे अच्छा वह आदमी होता है जिसका चित्त एकाग्र नहीं होता, वह बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि, मध्य और अन्त तक उनके 'प्रवचन' सुनता हैं, और जब तक वहा बैठा रहता है तब तक सबकुछ समझता भी है; लेकिन वहाँ से उठने पर उसके दिमाग में कुछ टिका नहीं रहता। उसका दिमाग कोरा हो जाता है।
१५. "इन दोनों से प्रशस्त- प्रज्ञ आदमी अच्छा है। वह भी बार-बार भिक्षुओं के पास जाता है; आदि मध्य और अन्त तक उनके प्रवचन सुनता है; वहाँ बैठे- बैठे सब कुछ समझता है; सब कुछ ध्यान में रखता है, स्थिर-चित्त, एकाग्र- चित्त और धम्म तथा धाम्मिक विषयों में दक्ष।"
१६. इन सब के बावजूद भगवान् धम्मोपदेश के उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरते ही रहे। उन्होंने कभी कलान्ति अनुभव नहीं की।
१७. एक 'भिक्षु 'की तरह ही भगवान् बुद्ध के पास तीन चीवरों से अधिक कभी नहीं रहे। वे दिन में एक बार भोजन ग्रहण करते थे। वे हर रोज घर घर से भिक्षाटन करते थे।
१८. किसी भी मानव ने इससे कडे 'कर्तव्य' को नहीं निभाया होगा--और इतनी प्रसत्रता के साथ।

३. माता और पुत्र तथा पति और पत्नी की अंतिम भेंट

१. मृत्यु से पहले महाप्रजापति और यशोधरा तथागत से भेंट कर सकी ।

२. यही कदाचित् उनकी अन्तिम भेंट थी ।

३. पहले महाप्रजापति गई और उसने जाकर तथागत की पूजा की ।

४. वह उनकी ऋणी थी, क्योंकि तथागत ने उसे सद्धम्म का पान कराया था, क्योंकि उसके (अध्यात्म) शरीर ने तथागत के माध्यम से जन्म ग्रहण किया था, क्योंकि उसके शरीर मे धम्म ने तथागत के माध्यम से ही विकास पाया था, क्योंकि उसने तथागत के धम्मरुपी दुग्ध का पान किया था, क्योंकि उसने इन्ही की सहायता से संसार- सागर को तैर कर पार किया था--यह कितनी बडी बात थी कि वह बुद्ध जननी मानी गई!

५. और तब उसने अपनी बात कही--, "अब मैं इस देह का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त होना चाहती हूँ । हे दुःख का अन्त करने वाले भगवान्! मुझे अब इसकी अनुमति दें ।"

६. यशोधरा ने भगवान् बुद्ध से बात करते हुए कहा कि अब वह अठहत्तर वर्ष की हो गई है । तथागत ने कहा कि यह उनका अस्सीवाँ वर्ष है ।

७. यशोधरा ने कहा कि आज की रात ही उसकी अन्तिम रात्रि है । महाप्रजापति की अपेक्षा उसका स्वर अधिक संयत था । उसने तथागत से न मरने की अनुमति मांगी और न महाप्रजापति की तरह उसने उन्ही की शरण ही ग्रहण की ।

८. बल्कि उसके प्रति- विरुद्ध उसने कहा--मै अपनी शरण आप हूँ ।

९. वह अपने जीवन के सभी बंधन काट चुकी थी ।

१०. वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने आई थी, क्योकि तथागत ही उसके पथ-प्रदर्शक थे और तथागत से ही उसने धम्म-बल प्राप्त किया था ।

४. पिता और पुत्र में अंतिम भेंट

१. एक बार जब भगवान् बुद्ध राजगृह के वेळूवन में निवास कर रहे थे, उसी समय राहुल अम्बलट्ठिका में ठहरे थे ।

२. अपराहन के बाद जब भगवान् बुद्ध समाधि से उठे तो वह राहुल की ओर गये । उन्हे दूर से ही आता देख राहुल ने उनके लिये आसन बिछा दिया तथा पैर धोने के लिये पानी रख दिया ।

३. राहुल द्वारा बिछाये आसन पर बैठ कर तथागत ने अपने पांव धोये, और राहुल ने भी तथागत को अभिवादन कर एक ओर स्थान ग्रहण किया ।

४. राहुल को सम्बोधित कर के तथागत ने कहा-- "जिसे जान बूझ कर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, वह हुछ भी पाप- कर्म कर सकता है । इसलिए राहुल! यह सीखना चाहिये कि हम हँसी-मजाक मे भी कभी झूठ न बोलेंगे ।

५. "इसी प्रकार कोई भी काम करने लगो पहले उसके बारे में सोचों, कोई भी शब्द मुंह से निकालने लगो, पहले उसके बारे में सोचों, कोई भी बात मन मे पैदा हो, पहले उसके बारे मे सोचो ।

६. "जब कोई भी काम करने लगो तो पहले उसके बारे में सोचो कि यह तुम्हारे तथा दूसरों के लिये अहितकर तो नही होगा, एक दुष्ट-कर्म कष्टादायी होता है । यदि तुम्हारा विचार कहे कि यह काम ऐसा ही है, तो उससे विरत रहो ।

७. "लेकिन यदि सोचने- विचारने से लगे कि यह काम अहितकर नहीं है, हितकर है तो तुम उसे कर सकते हो ।

८. "मैत्री का अभ्यास करो; क्योकि मैत्री- भावना के अभ्यास से द्वेष का शमन हो जायगा ।

९. "करुणा का अभ्यास करो; क्योंकि करुणा- भावना का अभ्यास करने से खीझ का शमन हो जायगा ।

१०. "मुदिता का अभ्यास करो -क्योंकि मुदिता- भावना का अभ्यास करने से अरति का शमन हो जायगा ।

११. "उपेक्षा का अभ्यास करो; क्योंकि उपेक्षा- भावना को अभ्यास करने में चंचलता का शमन हो जायगा ।

१२. "शरीर के अशुभ रुप का चिन्तन करो; क्योंकि ऐसा करने से काम- राग का शमन हो जायगा ।

१३. "सभी चीजों की 'अनित्यता' की भावना करो, क्योकि ऐसा करने से अहंकार का शमन हो जायगा ।"

१४. ऐसा भगवान् बुद्ध ने कहा । राहुल ने सुना तो उसने प्रसन्न हो अभिनन्दन किया ।

५. भगवान बुद्ध और सारिपुत्र की अन्तिम भेंट

१. भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार में गन्ध-कुटी में विराजमान थे ।

२. पाँच सौ भिक्षुओ को साथ लिये सारिपुत्र वहाँ पहुँचे ।

३. तथागत को अभिवादन कर सारिपुत्र ने निवेदन किया कि अब मेरा अन्तिम समय समीप आ पहुँचा है । क्या तथागत अब मुझे शरीर-त्याग कीअनुमति देते हैं?

४. भगवान् बुद्ध ने सारिपुत्र से पूछा-- "क्या तूने अपने परिनिर्वाण के लिये कोई स्थान-विशेष चुना है?"

५. सारिपुत्र का उत्तर था- "मैं मगध के नालक नाम के गांव में पैदा हुआ था । जिस घर में पैदा आ था वह अभी भी है । मैने उसी को चुना है ।"

६. तथागत बोले-- "प्रिय सारिपुत्र! जो अच्छा लगे सो करो ।"

७. सारिपुत्र तथागत के चरणों पर गिर कर बोले-- "मैंने एक हजार कल्प तक पारमिताओं का अभ्यास केवल एक ही इच्छा को लेकर किया है और वह यह कि मुझे आपके चरणों की वन्दना करनी मिले । मेरी यह इच्छा पूरी हो गई । मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नही ।

८. "हमारी पुनरुत्पति की सम्भावना नहीं है । इसलिये यही हमारी अन्तिम भेंट है । तथागत मेंरे अपराधों को क्षमा करे ।

९. तथागत बोले-- "सारिपुत्र! क्षमा करने के लिए कुछ है ही नही ।"

१०. जब सारिपुत्र चलने लगे तो तथागत भी उनके प्रति गौरव प्रकट करने के लिए गन्धकुटी के बाहर आये और बरामदे में खडे हो गये ।

११. तब सारिपुत्र बोले-- "जब मुझे प्रथम बार दर्शन हुआ, मैं अत्याधिक आनन्दित हुआ । यह इस समय का दर्शन भी मेरे लिये अत्यन्त आनन्ददायक है । क्योंकि मैं जानता हूँ कि यही अन्तिम दर्शन है ।"

१२. बिना पीठ पीछे किये, सारिपुत्र हाथ जोडे जोडे वहाँ से विदा हुए ।

१३. तब भगवान् बुद्ध ने उपस्थित भिक्षु- मण्डली को कहा—'अपने ज्येष्ट भ्राता के पीछे-पीछे जाओ ।' उस बार--और पहली बार--भिक्षुसंघ तथागत को छोड कर सारिपुत्र के पीछे पीछे गया ।

१४. अपने गाव पहुँच कर सारिपुत्र ने ठीक उसी कोठरी में जिसमें जन्म ग्रहण किया था,परिनिर्वाण प्राप्त किया ।

१५. सारिपुत्र का दाह- संस्कार किया गया । उनकी अस्थियाँ तथागत के पास ले जाई गई ।

१६. सारिपुत्र के 'फूल' सामने आये तो तथागत बोले--'वह सब से अधिक बुद्धिमान था,उसमें संग्रह-वृत्ति का लेश भी न था, वह उत्साही और परिश्रमी था । उसे 'पाप' से घुणा थी । भिक्षुओं! उसके 'फूल' देखो । क्षमाशीलता में वह पृथ्वी के समान था । उसने क्रोध को जीत लिया था । वह कभी किसी इच्छा के वशीभूत न होता था । वह इन्दिय-जयी था । वह करुणा तथा मैत्री की मूर्ति था ।

१७. उसी समय महामोदगल्यायन भी राजगह के समीप एक एकान्त- विहार में रहते थे । तथागत के शत्रुओं द्वारा नियुक्त हत्यारों ने हत्या कर डाली ।

१८. महामोदगल्यायन की दुःखद मृत्यु का समाचार तथागत तक पहुँचा । सारिपुत्र और महामोदगल्यायन उनके दो मुख्य शिष्य थे । सारिपुत्र धम्म सेनापति कहलाते थे । तथागत अपनी धम्म- परम्परा चालू रखने के लिए कदाचित् उन्हीं पर निर्भर करते थे ।

१९. उन दोनों की मृत्यु से तथागत के मन में बहुत संवेग उत्पत्र हुआ।

२०. उसके बाद उन्हें श्रावस्ती में रहना अच्छा नहीं लगा। वे श्रावस्ती से विदा हुए ।

दूसरा भाग : वैशाली से विदाई

१. वैशाली को नमस्कार

१. अपनी अन्तिम चारिका के लिये निकलने से पूर्व तथागत राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे हुए थे ।
२. कुछ समय वहाँ रह चुकने के बाद तथागत ने कहा--आओ आनन्द! अम्बलट्ठिका चले ।"
३. "जो आज्ञा", आनन्द ने कहा । महान् भिक्षु संघ के साथ तथागत अम्बलट्ठिका के लिये चल दिये ।
४. कुछ समय अम्बलट्ठिका में ठहर कर तथागत नालन्दा चले गये ।
५. नालन्दा मे वह मगध की राजधानी पाटली ग्राम (पाटलीपुत्र) गये ।
६. पाटली-ग्राम से वह कोटि ग्राम गये और कोटि-ग्राम से नादिका ।
७. इनमें से हर जगह वे कुछ दिन रुके और वहाँ भिक्षु संघ अथवा उपासकों को प्रवचन दिये ।
८. नादिका से तथागत वैशाली गये ।
९. वैशाली निगण्ठना पुत्र (महावीर) का जन्म- स्थान था । इसलिये जैन मत का एक गढ भी ।
१०. लेकिन तथागत शीघ्र ही उन लोगों को अपना अनुयायी बनाने में सफल हो गये ।
११. कहा जाता है कि अनावृष्टि के कारण वैशाली में एक ऐसा अकाल पडा कि बहुत से लोग मर गये ।
१२. वैशाली के लोगों ने इसकी अपनी सभा में चर्चा की ।
१३. बडे वाद-विवाद के बाद सभी ने तथागत को नगर में आमन्त्रित करने का निश्चय किया ।
१४. वैशाली के पुरोहित- पुत्र राजा बिम्बिसार के मित्र महाली नाम के लिच्छवी को, सिद्धार्थ को निमन्त्रण देने के लिये भेजा ।
१५. भगवान् बुद्ध ने निमन्त्रण स्वीकार किया और पांच सौ भिक्षुओ को साथ ले चल दिये। जैसे ही उन्होंने वज्जियों की सीमा में प्रवेश किया, बडी ज़ोर का तूफान आया, मूसलाधार वर्षा हुई और अकाल समाप्त हो गया ।
१६. वैशाली के लोगों ने जो तथागत का इतना स्वागत किया उसका मूल कारण यही था ।
१७. जब भगवान् बुद्ध ने वैशाली के लोगों के दिलों को जीत लिया था, तो उनके लिये यह स्वाभाविक था कि वे उनकी अधिक से अधिक आओं भगत करते ।
१८. तब वर्षावास (चातुर्मास) का समय आ गया । भगवान बुद्ध वर्षावास कें लिये वेळुवन चले गये और उन्होंने भिक्षुओ को वैशाली मे ही वर्षावास करने को कहा ।
१९. वेळुवन (राजगृह) में वर्षावास समाप्त कर तथागत फिर वैशाली आये कि वैशाली से अपनी चारिका आरम्भ करें ।
२०. एक दिन तथागत ने पूर्वाहिन में चीवर पहना तथा पात्र-चीवर ले भिक्षाटन के लिये वैशाली में प्रवेश किया । भिक्षाटन के अनन्तर, जब वे भिक्षा ग्रहण कर चुके तो उन्होंने एक गज-राज की तरह वैशाली की ओर देखा और आनन्द से कहा-- "आनन्द! यह अन्तिम बार है कि तथागत वैशाली को देख रहे है ।
२१. यह कहते हुए उन्होने वैशाली के लोगों से विदा ली ।
२२. विदा होते समय तथागत ने वैशाली के लोगो को अपना भिक्षा-पात्र 'स्मृति' के रुप में दे दिया ।
२३. यह तथागत की वैशाली की अन्तिम यात्रा थी । इसके बाद तथागत वैशाली नहीं ही गये ।

२. पावा मे पडाव

१. वैशाली से तथागत भण्ड ग्राम गये ।
२. भण्ड ग्राम से हट्डी नगर और तब भोग-नगर ।
३. और भोग-नगर से पावा ।
४. पावा मे भगवान बुद्ध चुन्द नामक सुनार के आम्रवन में ठहरे ।
५. चुन्द ने सुना कि भगवान् बुद्ध पावा आये है और उसके आम्रवन में ठहरे है ।
६. चुन्द आम्रवन पहुँचा और जाकर तथागत के समीप बैठ गया । तथागत ने उसे 'धम्मोपदेश' दिया ।
७. इससे प्रसन्न होकर चुन्द ने भगवान बुद्ध को निग्रंत्रित किया-- "भिक्षु संघ सहित भगवान् बुद्ध कल मेरे घर पर भौजन करने की कृपा करें ।"
८. भगवान् बुद्ध ने 'मौन' द्वारा स्वीकृति दी । यह देख कि उसका निमंत्रण स्वीकृत हुआ,चुन्द वहाँ से चला गया ।

९. दूसरे दिन चुन्द ने अपने घर पर खीर आदि स्वादिष्ट भोजनों के साथ 'सूकर-मद्दव' भी तैयार कराया। समय होने पर उसने सूचना भिजवाई-- 'भगवान्'! समय हो गया है। भोजन तैयार है।'
१०. भगवान् बुद्ध ने चीवर धारण किया, पात्र हाथ में लिया और चुन्द के निवास-स्थान पर पहुंचे। वहाँ उन्होंने चुन्द का तैयार किया हुआ भोजन ग्रहण किया।
११. भोजनानन्तर भी भगवान् बुद्ध ने चुन्द को धम्मोपदेश दिया और तब वहाँ से चले गये।
१२. चुन्द द्वारा दिया गया भोजन तथागत को अनुकूल नही पडा। उन्हें रोग ने आ घेरा। रक्त- स्त्राव होने लगा और साथ मर्मान्तिक वेदना।
१३. लेकिन तथागत ने उसे 'स्मृति- सम्प्रजन्य' के साथ जैसे तैसे सहन कर लिया।
१४. आम्रवन लौटकर, कुछ स्वस्थ होने पर भगवान् बुद्ध ने आनन्द को कहा—'आओं आनन्द ! कुसीनारा चलें।' भिक्षु संघ सहित भगवान् बुद्ध कुसीनारा पधारे।

३. कुसीनारा पहुंचना

१. भगवान् बुद्ध थोडी दूर ही चले थे कि उन्हे विश्राम की आवश्यकता अनुभव हुई।
२. रास्ते में ही वे सडक से एक ओर हट कर एक वृक्ष की छाया में जा बैठे और आनन्द से कहा- "आनन्द! संघाटी की तह लगाकर बिछा दो। थका हूँ, कुछ देर विश्राम करागा।"
३. "बहुत अच्छा", कह आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की और चीवर को चौहरा कर के बिछा दिया।
४. तथागत उस बिछे आसन पर विराजमान हुए।
५. वहाँ बैठकर तथागत ने आनन्द को सम्बोधित किया और कहा "आनन्द! कुछ पानी ला। प्यासा हूँ। पानी पीऊंगा।"
६. आनन्द का उत्तर था-- "ककुत्थ नदी समीप ही है। इसका जल साफ और स्वच्छ है। पानी निर्मल है। आसानी से नीचे उतरा जा सकता है। वहाँ भगवान बुद्ध चलें, पानी भी पी ले और हाथ मुँह भी धो लें। इस जलाशय का जल साफ नही, गन्दला है।"
७. तथागत का शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि वे वहाँ तक चल न सकते थे। वह पास के जलाशय के पानी से ही संतुष्ट थे।
८. आनन्द पानी लाये, और तथागत ने पिया।
९. कुछ देर विश्राम करके भिक्षु संघ सहित तथागत ककुत्थ नदी पर पहुँचे। वहाँ पहुंच कर वे पानी में उतरे तथा स्नान किया और जल-पान किया। फिर दूसरी ओर बाहर आकर वे आम्रवन की ओर बढे।
१०. वहाँ पहूंच कर उन्होंने आनन्द को फिर आज्ञा दी कि उनका चीवर बिछा दे ! कहा-- "थका हूँ, लेटूँगा।" आज्ञानुसार चीवर बिछा दिया गया और तथागत ने उस पर विश्राम किया।
११. थोडी देर विश्राम कर चुके तो तथागत उठे और आनन्द से कहा-- "आनन्द! हम मल्लों के शाल-वन में चलें। यह हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर कुसीनारा का उपवन है।"
१२. वहाँ पहुँच कर तथागत नें आनन्द को फिर कहा-- "आनन्द ! इन जोडे शाल वृक्षों के बीच मेरी संघाटी बिछा दो। मैं थका हूँ और विश्राम करुंगा।"
१३. आनन्द ने संघाटी बिछा दी और तथागत ने अपने आपको उस पर लिटा दिया।

तीसरा भाग : महा- परिनिर्वाण

१. उत्तराधिकारी की नियुक्ति

१. एक समय भगवान् बुद्ध शाक्यों में चारिका कर रहे थे। उस समय वे धनुर्धारी नामक शाक्य परिवार के आम्रवन में ठहरे हुए थे।

२. उस समय पावा में निगण्ठनाथ पुत्र (महावीर) का देहान्त हुए थोडा ही समय हुआ था। उसकी मृत्यु पर निर्गन्धि (जैन) लोगों में आपस में झगडा हो गया। वे दो दलों में विभक्त होकर परस्पर एक दुसरे को शब्द रुपी वाणों से बींधने लगे।

३. अब चुन्द श्रामणेर पावा में वर्षावास समाप्त कर आनन्द स्थविर से मिलने आया। उस ने सूचना दी। "निगण्ठनाथ पुत्र का अभी पावा में शरीरान्त हो गया है। उस की मृत्यु हो जाने पर निर्ग्रन्थ लोगों में आपस मे झगडा हो गया है। वे दों दलों में विभक्त हो गये है। एक दूसरें को परस्पर शब्द रुपी वाणों से बींधते हैं। इसका कारण यही है कि उनका कोई शास्ता नहीं रहा।"

४. तब आनन्द स्थविर ने कहा-- "चुन्द! यह तथागत के ध्यान में लाने लायक एक महत्वपूर्ण विषय है। हम उनके पास चले और यह बात बता दे।"

५. "बहुत अच्छा," चुन्द ने कहा।

६. तब आनन्द और चुन्द दोनो मिलकर तथागत के पास पहुंचे और अभिवादन कर तथागत को निगण्ठनाथ पुत्र की मृत्यु की सूचना दी और साथ ही आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि तथागत अपना कोई उत्तराधिकारीनियुक्त कर दें।

७. चुन्द कि बात सुनी तो तथागत ने उत्तर दिया! "चुन्द! विचार करो कि लोग में एक शास्ता उत्पन्न होता है अर्हत, सम्यक्,समबुद्ध, यदि वह सद्धम्म की देशना करता है, जो सु- आख्यात है, जो प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक है,जो शान्ति की ओर ले जाता है; लेकिन यदि उसके श्रावक सद्धम्म में सम्यक् प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं, यदि वह सद्धम्म उस शास्ता के न रहने पर उनका त्राण नहीं कर सकता। तो....

८. "तो हे चुन्द! ऐसे शास्ता का न रहना उसके श्रावकों के लिये भी बडे दुःख की बात है और उसके धम्म के लिये बडा खतरा है।

९. लेकिन चुन्द। जब लोक में एक ऐसा शास्ता उत्पन्न हुआ हो जो अर्हत् हो, जो सम्यक्-समबुद्ध हो; जिसने सद्धम्म की देशना की हो; जिसका सद्धर्म सु-आख्यात हो, जो सद्धम्म प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक हो, जो शान्ति की ओर ले जाता है, और जहाँ श्रावक सद्धम्म में सम्यकरूप से प्रतिष्ठित हो गये हो और जब शास्ता के न रहने पर भी वह सद्धम्म उन श्रावको को सम्यक् रूप से प्रकट रहता हो; तो.....

१०. "तो चुन्द! ऐसे शास्ता का न रहना उसके श्रावको के लिये दुः ख बात नहीं हैं। तब किसी उत्तराधिकारी की क्या आवश्यकता है?"

११. जब आनन्द ने एक दूसरे अवसर पर भी यही बात दोहराई तो तथागत ने कहा-- "आनन्द! क्या दो भिक्षु भी तुम्हे ऐसे दिखाई देते है,जिनका धम्म के विषय में एक मत न हो?"

१२. "नहीं, लेकिन जो तथागत के आस-पास हैं ,हो सकता है कि वे तथागत के मरने के बाद 'विनय 'के सम्बन्ध मे, संघ के नियमो के सबंध मे विवाद खडा कर दें और ऐसा विवाद बहुत से लोगों के दुः ख के लिये होगा; बहुत लोंगों के अहित के लिये होगा।"

१३. "आनन्द! 'विनय' सम्बन्धी विवाद, भिक्षुओ के नियमो के सम्बन्ध में विवाद बहुत महत्व के नहीं है,लेकिन हो सकता है कि भिक्षु संघ में 'धम्म' को लेकर भी विवाद उठ खडा हो-यह सचमुच चिन्ता की बात होगी।

१४. "लेकिन 'धम्म' सम्बन्धी विवादों के विषय में कोई 'डिक्टेटर' कुछ नहीं कर सकता। और एक उत्तराधिकारी भी यदि 'डिक्टेटर' नहीं बनता तो कर क्या सकता हैं?

१५. "धम्म सम्बन्धी विवादों का निर्णय किसी डिक्टेटर का विषय नही है।

१६. "किसी भी विवाद के बारे में स्वयं संघ को ही निर्णय करना होगा। संघ को इकट्ठे होकर विचार करना चाहिये और जब तक किसी निर्णय पर न पहुंचा जाये तब तक उस सम्बन्ध मे अच्छी तरह ऊहा-पोह करनी चाहिये, और बाद में उस निर्णय को स्वीकार करना चाहिये।

१७. "विवादो का निर्णय बहुमत से होना चाहिये। उत्तराधिकारी की नियुक्ति इसका इलाज नही है।"

२. अंतिम धम्म-दीक्षा

१. उस समय सुभद्र परिव्राजक कुसीनारा में ठहरा हुआ था । सुभद्र परिव्राजक ने सूना”कहा जाता है कि आज की ही रात पिछले पहर में तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे ।”तब सुभद्र परिव्राजक के मन मे आया ।
२. “मैंने सुना कुछ दूसरे वयोवृद्ध परिव्राजको से--गुरु ओं तथा शिष्यों से कि लोक में तथागत, अर्हत, सम्यक्, समबुद्ध रोज रोज जन्म ग्रहण नहीं करते । और आज ही रात के पिछले पहर को श्रमण गौतम का परिनिर्वाण हो जायगा । अब मेरे मन में एक सन्देह पैदा हुआ है । मुझे श्रमण गौतम पर विश्वास है कि वह मुझे ऐसा उपदेश दे सकते है जिससे मेरे सन्देह की निवृत्ति हो जाय ।”
३. तब सुभद्र परिव्राजक छोटी सडक से मल्लो के शाल वन पहुंचा । वह वहाँ गया, जहाँ आनन्द स्थविर थे और बोला- आनन्द स्थविर! जरा देर के लिये तथागत का दर्शन कर पाता । ‘
४. उसके ऐसा कहने पर आनन्द स्थविर ने सुभद्र परिव्राजक को कहा- “सुभद्र! अब रहने दो । सुभद्र ! अब तथागत को कष्ट मत दो । सुभद्र! तथागत विश्राम कर रहे है और बहुत थके है ।”
५. सुभद्र परिव्राजक ने दूसरी और तीसरी बार भी अपनी बात दोहराई । तीनों बार आनन्द स्थविर ने सुभद्र परिव्राजक को एक ही उत्तर दिया ।
६. आनन्द स्थविर और सुभद्र परिव्राजक के बीच की बात-चीत को तथागत ने सुना लिया । उन्होंने आनन्द स्थविर को सम्बोधित करके कहा- “आनन्द! सुभद्र को मत रोको । सुभद्र को तथागत का दर्शन कर लेने दो । सुभद्र जो भी प्रश्न मुझ से करेगा वह मुझ से कुछ जानने के लिये ही करेगा, मुझे कष्ट देने के लिये नहीं करेगा । जो कुछ मै उसे उत्तर में कहूँगा, उसे भी वह शीघ्र ही समझ लेगा । ‘
७. तब आनन्द स्थविर ने सुभद्र परिव्राजक को कहा- “सुभद्र ! भीतर जाओ । तथागत ने तुम्हे अनुमति दे दी है ।”
८. तब सुभद्र परिव्राजक तथागत के समीप पहुंचा,अभिवादन किया किया और स्वास्थ समाचार पूछ कर एक ओर बैठ गया । इस प्रकार बैठे हुए सुभद्र परिव्राजक ने तथागत से प्रश्न किया
९. “श्रमण गौतम! ये जितने भी श्रमण ब्राह्मण हैं, जिन के पीछे जमात है, जो गणाचार्य हैं, जो प्रसिद्ध है, जो मतों के संस्थापक के रुप में ज्ञात हैं ‘जिन्हें जनता धर्मात्मा मानती है जैसे पूर्णकाश्यप, मक्खली गोशाल, अजित केशकम्बली पकुध कच्चायन, सञ्जय, वेलट्ठी-पुत्र तथा निगण्ठ- नाथ पुत्र- इन सब ने जैसा वे कहते है, अपने आपसे सत्य ज्ञान प्राप्त किया है वा नही किया? क्या उनमें से किसी ने नहीं किया? अथवा किसी ने किया है और किसी ने नहीं किया?”
१०. “सुभद्र! इस चक्कर में मत- पडो, कि किसी ने भी ज्ञान प्राप्त किया है वा नहीं किया? मैं तुम्हें धम्म का उपदेश देता हूँ । इसे ध्यान से सुनो । इधर चित्त दो । मै कहता हूँ ।”
११. “भगवान् । बहुत अच्छा”कह सुभद्र परिव्राजक ने तथागत की ओर ध्यान दिया । तब तथागत ने कहा:--
१२. “सुभद्र-जिस धम्म- विनय (मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग नही है, उसमें कोई श्रमण भी नहीं हैं । जिस धम्म-विनय (मत) में आर्य अष्टागिक मार्ग है उसी में श्रमण भी है ।
१३. “सुभद्र ! तथागत के धम्म-विनय (मत) में आर्य अष्टांगिक मार्ग है । इसलिए तथागत के धम्म-विनय में श्रमण भी हैं श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत है । दूसरे मत श्रमणों से शून्य हैं । लेकिन हे सुभद्र! यदि इस धम्म-विनय में सम्यक् जीवी होंगे तो संसार कभी अर्हतों से शून्य न होगा?
१४. “उन्तीस वर्ष की आयु में मैं कल्याण-पथ का पथिक बना ।
१५. “सुभद्र! अब पचास वर्ष से अधिक हो गये हैं जबसे मैं सद्धम्म का पक्ष ग्रहण किये हूँ ।”
१६. तथागत के ऐसा कहने पर सुभद्र परिव्राजक बोला--अद्भुत है श्रमण गौतम! अद्भुत है श्रमण गौतम!
१७. जैसे कोई फेंके हुए को फिर प्रतिष्टीत कर दे, अथवा ढके को उघाड दे, अथवा पथ- भ्रष्ट को मार्ग दिखा दे अथवा अन्धेरे में प्रदीप प्रज्वलीत कर दे ताकि आँख वाले देख सकें ।
१८. “इसी प्रकार तथागत ने मुझे सत्य का ज्ञान करा दिया । इसलिये मैं बुद्ध, धम्म तथा संघ की शरण ग्रहण करता हूँ ।”
१९. “सुभद्र! जो कोई पहले किसी दूसरे धर्म मे दीक्षित रहा हो, यदि संघ में प्रविष्ट होना चाहता है तो उसे चार महीने प्रतीक्षा करनी पडती है ।”
२०. “यदि यह नियम हैं ,तो मैं प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूँ ।”
२१. “लेकिन तथागत ने कहा—‘आदमी आदमी में भेद भी होता है ।’ उन्होने आनन्द को बुलाकर कहा-- ‘आनन्द! सुभद्र को संघ में दाखिल कर लो ।’
२२. ‘बहुत अच्छा’, कह आनन्द ने तथागत की आज्ञा स्वीकार की ।

२३. और तब सुभद्र परिव्राजक ने आनन्द स्थविर को कहा—'आनन्द! तुम्हारा बडा लाभ है । आनन्द! तुम्हारा बडा सुलाभ है । आनन्द! तुम बडे भाग्यवान हो, तुम्हें तथागत ने स्वंय अपने हाथ से भिक्षु-संघ मे दीक्षित किया है, धम्म-जल से अभिसिंचित किया है ।"
२४. आनन्द स्थविर का उत्तर था--'सुभद्र! तुम्हारे बारे में भी तो यही सत्य है ।"
२५. इस प्रकार तथागत की अनुज्ञा से सुभद्र परिव्राजक भिक्षु- संघ में सम्मिलित हुआ । स्वयं तथागत द्वारा दीक्षित वह तथागत का अंतिम श्रावक था ।

३. अंतिम वचन

१. उस समय भगवान् बुद्ध ने आनन्द को कहा:--
२. "आनन्द! हो सकता कि तुम यह सोचने लगों कि अब हमारे शास्ता चले गये । अब हमारा मार्ग-दर्शक नही रहा । लेकिन आनन्द! तुम्हें ऐसे नही सोचना चाहिये । मेरे बाद जो कुछ मैंने धम्म-विनय सिखाया-पढाया है, वही तुम्हारा शास्ता होगा ।
३. आनन्द! इस समय परस्पर एक दूसरे को समान सम्बोधन से ही पुकारने की प्रथा है । बडे छोटे का भेद नही । मेरे बाद यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिये । बडा छोटे को नाम लेकर वा आवुसों (आयुष्यमान) कहकर पुकार सकता है, किन्तु छोटा जब अपने से बडे को पुकारे तो उसे या तो उसके 'गोत्र' से पुकारना चाहिये अथवा 'भन्ते' कह कर पुकारना चाहिये ।
४. "और आनन्द! यदि संघ चाहे तो मेरे मरने के बाद जो छोटे- मोटे नियम है उन्हें छोड भी सकता है ।
५. "आनन्द ! तुम जानते हो कि छन्न कैसा जिद्दी, उल्टे-मार्ग पर चलने वाला तथा 'विनय 'को न मानने वाला है?
६. "आनन्द! मेरे बाद छन्न को 'ब्रह्म- दण्ड' दिया जाय ।"
७. "भगवान्! 'ब्रह्म- दण्ड' से आपका क्या अभिप्राय है?"
८. "आनन्द! छन्न चाहे कुछ भी कहे, उसे कहने दिया जाय, उसके साथ बोला न जाय, उसे कुछ कहा न जाय, उसे कुछ भी शिक्षा न दी जाय । हो सकता है कि इस तरह उसका कुछ सुधार हो जाय ।"
९. तब तथागत ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया:--
१०. "हो सकता है कि किसी भी भिक्षु के मन में बुद्ध के विषय में, धम्म के विषय में, संघ के विषय में, कुछ भी शंका हो, सन्देह हो, विचिकित्सा हो । अथवा मार्ग के ही विंषय में कुछ भी शका हो, सन्देह हो, विचिकित्सा हो । यदि हो, तो भिक्षुओं! अब समय है, पूछ लो । बाद मे न पछताना कि "हमारा शास्ता हमारे सम्मुख था, हमने पूछकर अपनी शंका न मिटाई ।"
११. ऐसा कहने पर भिक्षु चुप रहे ।
१२. तब दूसरी बार और तीसरी बार भी तथागत ने अपनी बात दोहराई । तीसरी बार भी भिक्षु मौन ही रहे ।
१३. तब तथागत ने कहा - "हो सकता है कि मेरे प्रति गौरव होने के कारण तुम मौन हो । मित्र के मित्र से पूछने की तरह पूछो ।"
१४. तब भी भिक्षु चुप ही रहे ।
१५. तब आनन्द स्थविर ने तथागत को कहा - "भगवान्! अद्भुत है । भगवान् । आश्चर्य है । मुझे अपने 'संघ' का विश्वास है । इतने भिक्षु एक भी नहीं है, जिस बुद्ध के बारे में शंका हो, धम्म के बारे में शंका हो, संघ के बारे में शंका हो अथवा (आर्य) मार्ग के बारे में शंका हो ।"
१६. "आनन्द! तुम्हे तो इस बात का विश्वास है । किन्तु तथागत को इस बात का ज्ञान है कि इन भिक्षुओं में से किसी एक को भी, किसी एक भी विषय में शंका नहीं है । मेरे इन पाँच सौ भिक्षुओं में से जो सब से कम उन्नत है वह भी कम से कम स्त्रोतापन्न अवश्य है, अर्थात स्रोत में आ पडा है और उसी की बोधि- प्राप्ति सुनिश्चित है ।"
१७. तब तथागत ने भिक्षुओ को सम्बोधित किया--
१८. "भिक्षुओं । मैं फिर तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ । सभी संस्कार अनित्य हैं । अप्रमादपूर्वक अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगे रहो ।"
१९. तथागत के अन्तिम- शब्द ये ही थे ।

४. आनन्द का शोक

१. आयु कुछ अधिक हो चली तो भगवान् बुद्ध को किसी निजी सेवक की आवश्यकता पडी ।
२. उन्होने पहले नन्द को चुना । उसके बाद आनन्द को चुना । आनन्द तथागत के अन्तिम समय तक तथागत की सेवा मे ही रहे ।

३. आनन्द केवल सेवक ही न थे,बल्कि उनके दिन-रात के प्रियतम साथी भी थे ।
४. जब भगवान् बुद्ध कुसीनारा पहुंचे और दो शाल-वृक्षों के मध्य विश्राम करने लगे तो भगवान् बुद्ध को लगा कि उनका अन्त समय समीप है और उन्हें यह भी लगा कि उन्हें कम से कम आनन्द को कह देना चाहियें ।
५. इसलिये उन्होंने आनन्द को सम्बोधित किया और बोले:- हे आनन्द! इन्ही साल वृक्षों के मध्य, इसी कुशीनारा के उपवन मे, रात्री के तीसरे पहर तथागत का परिनिर्वाण हो जायगा ।"
६. तथागत के ऐसा कहने पर आनन्द स्थविर ने कहा- "भगवान्! आप बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, लोंगों पर अनुकम्पा करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिये कल्प भर तक (जीवित) रहने की कृपा करें ।"
७. तीन बार आनन्द ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक यही प्रार्थना की । तथागत का उत्तर था 'आनन्द! अब रहने दो! अब ऐसी प्रार्थना मत करो । ऐसी प्रार्थना करने का समय बीत चुका ।'
८. "आनन्द! अब मैं बूढा हो गया, वय-प्राप्त हो गया, अब अन्त समय समीप हैं । मेरे दिन पूरे होने को आये हैं । मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ । जिस प्रकार कोई पुराना छकडा एक न एक दिन शीर्ण-विशीर्ण हो ही जाता है, वही गति तथागत के शरीर की भी है ।"यह सुना तो आनन्द स्थविर वहाँ रुके न रह सके ।
९. जब आनन्द स्थविर दिखाई नहीं दिये तो भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा— "आनन्द कहा हैं?' भिक्षु बोले-- "आनन्द स्थविर यहाँ से चले गये है और खडे रो रहे है ।"
१०. तथागत ने एक भिक्षु को बुलाकर कहा-- "जाओं, और आनन्द को कहो कि तथागत बुला रहे हैं ।"
११. "बहुत अच्छा" कहकर भिक्षु ने स्वीकार किया ।
१२. आनन्द वापिस आये तो आकर तथागत के समीप बैठ गये ।
१३. "आनन्द! रोओं मत । क्या मैंने अनेक बार पहले ही नहीं कहा की यह चीजों का स्वभाव ही है कि हम को अपने सभी प्रिय जनों से पृथक होना ही पडता है, विदा लेनी ही पडती है, सम्बन्ध तोडना ही पडता है ।
१४. "आनन्द! इतने दीर्घ काल तक तुम अपने मैत्री-पूर्ण वचनों तथा मैत्री- पूर्ण व्यवहार के कारण मेरे बहुत समीप रहे हो ।
१५. "आनन्द! तुम बडे कुशल रहे हो । आनन्द! प्रयास करो, तुम भी आस्रवों से पूर्ण मोक्ष प्राप्त करोगे ।"
१६. तब आनन्द के ही बारे मे बोलते हुए तथागत ने भिक्षुओं से कहा- "भिक्षुओं ! आनन्द बुद्धिमान है । भिक्षुओ! आनन्द ।
१७. "वह जानता है कि तथागत से भेंट करने का ठीक समय कौन सा है? भिक्षु-भिक्षुणियों के लिये ठीक समय कौन सा है, उपासक-उपासिकाओ के लिये ठीक समय कौन सा है, राजा अथवा राजा के मन्त्रियो के लिये ठीक समय कौन सा है? तथा दूसरे आचार्यों-शिष्यो के लिये कौन सा है?
१८. "भिक्षुओं! आनन्द की ये चार विशेषताये हैं ।
१९. "सभी आनन्द से मिलकर प्रसन्न होते है । सभी को आनन्द के देखने से आनन्द होता हैं । सभी को आनन्द का बोलना अच्छा लगता है । सभी को आनन्द का चुप रहना अच्छा नहीं लगता ।"
२०. उस समय आनन्द ने तथागत के परिनिर्वाण की ही बात करते हुए कहा-- "तथागत! आप इस जंगल के बीच, इस उजाड नगरी में 'परिनिर्वाण' प्राप्त न करें । चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कोसाम्बी तथा वाराणसी जैसे बडे बडे नगर हैं । भगवान् उनमें से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करें ।"
२१. "आनन्द! ऐसा मत कहो! आनन्द! ऐसा मत कहो! आनन्द! यह कुसीनारा ही किसी समय महासुदर्शन राजा की राजधानी रहा है । उस समय इसका नाम केशवती रहा है ।"
२२. तब तथागत ने आनन्द को दो बातें करने को कहा:--
२३. उन्होंने आनन्द को कहा कि चुन्द अथवा अन्य किसी को यह ख्याल न हो कि उसी का भोजन खाने के परिणामस्वरुप तथागत का परिनिर्वाण हो गया । उन्होंने सोचा कि इससे चुन्द मुसिबत में पड सकता है । उन्होनें कहा कि देखना, जनता में यह ख्याल न फैलने पाये ।
२४. दूसरी बात उन्होंने आनन्द से कही कि कुसीनारा के मल्लों को सूचित कर दे कि तथागत उनके उपवन में ठहरे हैं और रात्रि के तीसरे पहर में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे ।
२५. "ऐसा न हो कि बाद में मल्ल तुम्हें ही दोष दें, कहें कि हमारे अपने गांव में ही तथागत का परिनिर्वाण हुआ, हमें पता भी नहीं लगा । हम अन्त समय दर्शन भी नहीं कर पाये ।"
२६. उसके बाद अनिरुद्ध स्थविर तथा आनन्द स्थविर ने धाम्मिक चर्चा में ही शेष रात व्यतीत की ।
२७. जैसा पहले ही ज्ञात था, रात्रि के तीसरे पहर में ही तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये ।

२८. जब तथागत का परिनिर्वाण हो गया तो कुछ भिक्षु और आनन्द बाहें पसार-पसार कर रोने लगे, कुछ दुःखाभिभूत होकर जमीन पर भी गिर पडे:-- "तथागत अत्यन्त शीघ्र ही परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। तथागत अत्यन्त शीघ्र आँखों से ओझल हो गये। यह भुवन-प्रदीप बहुत ही शीघ्र बुझ गया।"
२९. वैशाख- पूर्णिमा की रात्रि के तीसरे पहर में तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनका परिनिर्वाण ईसा पूर्व ४८३ (चार सौ त्रासी) में हुआ।
३०. पाली में कहा है--
दिवा तपति आदिच्चो
रत्ती आभाति चन्दिमा
सन्नद्धों खत्तियों तपति
झायी तपति ब्राहाणों
अथ सब्बंग अहोरात्ती
बुद्धों तपति तेजसा ।।
३१. 'सूर्य केवल दिन में ही चमकता है और चन्द्रमा केवल रात्रि में। क्षत्रिय तभी चमकता है, जिस समय वह शस्त्रधारी रहता है। ब्राह्मण तभी चमकता है जब वह ध्यान-रत रहता है। लेकिन बुद्ध अपने तेज से दिन और रात हर समय प्रकाशित रहते है।'
३२. इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि बुद्ध भुवनप्रदीप थे--समस्त लोक का प्रकाश स्तम्भ थे।

५. मल्लो का विलाप, एक भिक्षु की प्रसन्नता

१. तथागत के आदेशानुसार आनन्द ने जाकर मल्लों को सुचित कर दिया।
२. जब मल्लों ने यह सुना तो उन्हें दुःख हुआ, उनकी स्त्रियाँ दुःखी हुई, उनके तरुण दुःखी हुए तथा उनकी कुमारियाँ दुःखी हुई--सभी के चित्त को बडा आघात पहुँचा।
३. कुछ अपने बाल बिखेर कर रोने लगी, कुछ हाथों से छाती पीट कर रोने लगीं और कुछ जमीन पर लोटने लगीं।
४. तब अपने कुमार, कुमारियों सहित मल्ल अपने उपवन में वहाँ गये जहाँ शाल-वृक्ष थे ताकि तथागत के अन्तिम दर्शन कर सके।
५. तब आनन्द स्थविर ने सोचा "यदि कुसीनारा के मल्ल एक एक करके तथागत के मृत-शरीर की वन्दना करेंगे, तो बडा विलम्ब होगा।"
६. इसलिये उसने एक एक मण्डली से, एक एक परिवार से, एक साथ वन्दना कराने की व्यवस्था की। प्रत्येक परिवार एक एक साथ तथागत के चरणों की वन्दना कर विदा लेने लगा।
७. उस समय बहुत से भिक्षुओ के साथ महास्थविर महाकाश्यप पावा से कुसीनगर की ओर ही बढे चले आ रहे थे।
८. उसी समय एक नग्न परिव्राजक पावा की ओर चला जा रहा था।
९. महास्थविर महाकाश्यप ने नग्न परिव्राजक को दूर से आते देखा। पास आने पर पूछा - "आप निश्चय से हमारे शास्ता से परिचित होंगे।
१०. "हाँ! निश्चित रूप से। आज श्रमण गौतम का परिनिर्वाण हुए सातवां दिन है।
११. उस समाचार सुनते ही भिक्षु- गण दुःखाभिभूत हो गये और रोने लगे।
१२. उस समय एक वृद्ध- प्रव्रजित सुभद्र नाम का एक भिक्षु भी वहाँ था।
१३. वह बोला - "मत रोओ, मत विलाप करो। हम अब श्रमण गौतम से मुक्त हुए। हमें उसके इस कहने से बडी हैरानी होती थी कि 'तुम यह कर सकते हो, और यह नहीं कर सकते'। अब हम जो चाहेंगे करेंगे और जो नहीं चाहेंगे, नहीं करेंगे। क्या यह अच्छा नहीं है कि वह चल बसा है! रोना किस लिये! विलाप किस लिये! यह तो खुशी की बात है!"
१४. तथागत अपने भिक्षुओं को इतनी कठोरता पूर्वक नियमों के बन्धन में बांधने वाले थे।

६. अन्तिम संस्कार

१. तब कुसीनारा के मल्लों ने आनन्द स्थविर से पूछा- "अब तथागत के शरीर के प्रति क्या करणीय है?

२. आनन्द स्थविर का उत्तर था -- जैसे लोग राजाओं के राजा-महा-राजाओं की दाह-क्रिया करते हैं, वैसे ही तथागत की होनी चाहिये ।"
३. "और राजाओं के राजा के मृत शरीर के प्रति क्या क्या करणीय होता है?"
४. आनन्द स्थविर ने उत्तर दिया "महाराजाओ की देह को एक नये कपडे से लपेटा जाता है। फिर राई--ऊन से लपेटा जाता है। फिर दूसरे नये कपडे से लपेटा जाता है और यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक वह एक के बाद दूसरे क्रम से पाच सौ बार नही लपेट लेते। तब वे शरीर को एक लोहे की तेल भरी बडी कडाही में रख देते है। उसके बाद उसे एक वैसे ही दूसरे लोहे के ढक्कन से ढक देते है। तब वे अनेक सामग्रियो से चिता का निर्माण करते है। यह वह तरीका है जिस प्रकार लोक किसी महाराजा का अन्तिम संस्कार करते हैं।"
५. मल्ल बोले:- "ऐसा ही होगा।"
६. तब मल्लो ने कहा:- "आज तथागत के शरीर की दाह-क्रिया करने के लिये बहुत विलम्ब हो गया है। हम इसे कल करे।"
७. तब कुसीनारा के मल्लों ने अपने आदमीयो को आज्ञा दीं-- तथागत की अन्त्येष्टि की तैयारी करो। सुगन्धियो , फूलो तथा कुसीनारा के बाजे बजाने वालों का संग्रह करो।"
८. लेकिन तथागत के शरीर के प्रति आदर, सत्कार, गौरव प्रदर्शित करते हुए तथा उसकी नृत्यों द्वारा, गीतों द्वारा, बाजो द्वारा, पूजा करते हुए फूल मालाओं द्वारा और सुगन्धियो द्वारा-- तथा कपडों के चन्दवे बनाते और उन पर लटकाने के लिये फूलो की मालाये गूँथते हुए उन्होंने दूसरा दिन भी गुजार दिया इसी प्रकार तीसरा दिन, चौथा दिन, पाचवां दिन और छठा दिन भी।
९. तब सातवे दिन कुसीनारा के मल्लों ने सोचा, 'आज हम तथागत के शरीर को ले चलें--आज हम उसकी अन्त्येष्टि कर लें।
१०. तदनन्तर मल्लों के आठ मुखियों ने सिर से स्नान किया, नये वस्त्र पहने ताकि वे तथागत की अर्थी को कन्धा लगा सकें।
११. वे तथागत को मुकुट-बंधन स्नान पर ले गये, जहाँ नगर के पूर्व की ओर मल्लों का चैत्य था। वहाँ तथागत के शरीर को रखकर उसे अग्नि-स्पर्श करा दिया गया।
१२. कुछ समय बाद तथागत की नश्वर देह राख परिणत हो गई।

७. भगवान बुद्ध के 'फूलों' के लिये कलह

१. जब तथागत का शरीर अग्नि द्वारा भस्म में परिणित कर दिया गया कुसीनारा के मल्लों ने समस्त राख और अस्थियाँ इकट्ठी कर लीं और अपने संथागार में रखकर उन्हें भालों से घेर दिया और उन पर धनुर्धारियों का पहरा बैठा दिया ताकि कोई उनका एक हिस्सा भी चुरा कर न ले जा सके।
२. सात दिन तक मल्लों ने नृत्य, गीत, वाद्य, माला तथा सुगन्धियो द्वारा उनके प्रति आदर, सत्कार तथा गौरव प्रदर्शित किया और उनकी पूजा की।
३. अब मगध- नरेश अजातशत्रु ने समाचार सुना कि कुसीनारा में तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।
४. इसलिये उसने मल्लों के पास अपना दूत भेजा ताकि वे उसे कृपया अवशेषो में से एक हिस्सा दे दें।
५. इसी प्रकार वैशाली के लिच्छवियो ने दूत भेजा ,कपिलवस्तु के शाक्यो ने भेजा, अहकप्य के वल्लियों ने भेजा, रामग्राम के कोलियों ने भेजा तथा पावा के मल्लो ने भेजा।
६. अस्थियो का एक हिस्सा मांगने वालों में वेठ द्वीप का एक ब्राह्मण था।
७. जब कुसीनारा के मल्लों ने इतनी मांगो की बात सुनी तो वे बोले:-- "हमारी सीमा मे तथागत का परिनिर्वाण हुआ है। हम किसी को कोई हिस्सा न देंगे। इस पर केवल हमारा अधिकार है।"
८. परिस्थिति को बिगडते देखकर द्रोण नाम के एक ब्राह्मण ने मध्यस्थता की। बोला-- "मेरे दो शब्द सुन लें।"
९. द्रोण बोला-- "तथागत ने शान्ति और सहन-शीलता की शिक्षा दी है। यह उचित नहीं है कि उन्ही तथागत की अस्थियों के लिये- जों प्राणियों मे सर्व श्रेष्ठ थे- -झगडा हो,कलह हो, लडाई हो।
१०. "हम सब सहमत होकर अस्थियों को आठ बराबर-हिस्सों मे बांटे और हर जनपद में उन पर स्तुप बनाये जायें ताकि हर जनपद मे उन की पूजा हो सके।"
११. कुसीनारा के मल्ल सहमत हो गये। बोले:-- "अच्छा तो ब्राह्मण! तू ही इन्हें सही सही आठ बराबर हिस्सों में बाँट दे।"
१२. "बहुत अच्छा" कह द्रोण ने स्वीकार किया।
१३. उसने तथागत के अवशेषो के बराबर बराबर आठ हिस्से कर दिये।

१४. बंटवारा कर चुकने पर उस ने कहा कि मुझे यह बर्तन मिल जायें, तो मैं इस पर एक स्तुप बनवाऊँगा ।

१५. सबने मिलकर ब्राह्मण को बर्तन देना स्वीकार किया ।

१६. इस प्रकार तथागत की अस्थियों के हिस्से हो गये और जिस झगडे का अन्देशा था, वह शान्ति से निपट गया ।

८. बुद्ध-भक्ति

१. यह बात श्रावस्ती में ही घटी

२. उस समय बहुत से भिक्षु यह सोचकर कि जब चीवर तैयार हो जायेगा तीन महीने के बाद, तथागत चारिका के लिये निकल पडेंगे, तथागत के लिये एक चीवर तैयार कर रहे थे ।

३. उसी समय इसिदत्त तथा पूर्ण नाम के दो राज्याधिकारी किसी काम से साधुका मे ठहरे हुए थे । तब उन्होंने यह समाचार सुना-- "कहते है कि बहुत से भिक्षु यह सोचकर कि जब चीवर तैयार हो जायगा, तीन महिने के बाद तथागत- चारिका के लिये निकल पडेगे, तथागत के लिये एक चीवर तैयार कर रहे हैं ।

४. तब इसिदत्त और पूर्ण ने एक आदमी को सड़क पर नियुक्त कर दिया । उसे कहा-- "ज्यो ही तुम उन भगवान् अर्हत, सम्यक् समबुद्ध को आते देखो,तुरन्त आकर इसकी हमें सूचना दो ।"

५. दो तीन दिन तक वही रहकर प्रतीक्षा करते रहने के बाद उसने कुछ दूर से ही तथागत को आते देखा । वह दौडा दौडा इसिदत्त तथा पूर्ण राज्याधिकारियों के पास गया और सूचना दी । "भगवान्, अर्हत,सम्यक्- समबुद्ध चले आ रहे हैं । अब आप जो इच्छा हो करें ।"

६. तब इसिदत्त और पूर्ण दोनों राज्याधिकारी तथागत की ओर आगे बढें । पास पहुँच कर उन्होंने तथागत को अभिवादन किया और तथागत के पीछे पीछे हो लिये ।

७. तब तथागत सडक से हट कर एक वृक्ष के नीचे बिछे एक आसन पर जा बैठे । तथा इसिदत्त और पूर्ण राज्याधिकारी भी तथागत को नमस्कार कर एक और बैठ गये । बैठ चुकनें पर उन्होंने तथागत से कहा--

८. "भगवान ! जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद में चारिका करेंगे तो हम निराश हो गये ओर हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय! अब तथागत हम से दूर हो जायेंगे ।

९. "भगवान्! जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद में चारिका करने के लिये श्रावस्ती से निकल रहे हैं तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय! अब तथागत हमसे दूर हो जायेगे ।

१०. "भगवान्! फिर जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद को छोड मल्ल जन-पद में चारिका के लिये चले जायेगे.... कि वे चले गये हैं, तो हम निराश हो गये... हो जायेगे ।

११. "भगवान् फिर जब हम ने सुना कि तथागत मल्ल जनपद को छोड वज्जी जनपद में चले जायेसंगे... कि वे वास्तव मे चले गये हैं... कि वे वज्जी छोड काशी चले जायेसंगे... कि वे वास्तव में चलें गये हैं... कि वे काशी के लोगों को भी छोड मगध में चारिका करने के लिये चले जायेगे... कि वे वास्तव मे चले गये हैं तो हम निराश हो गये और हमारा दिल छोटा हो गया कि हाय! तथागत हम से बहुत दूर हो गये ।

१२. लेकिन भगवान्! जब हमने सूना कि तथागत मगध छोडकर काशी पधारेंगे तो हम बडे प्रसन्न हुए और हमारा दिल बल्लियों उछलने लगा कि अब तथागत हमारें नजदीक आ रहे है ।

१३. "और जब हमने सुना कि वे काशी आ गये हैं तो हम बडे प्रसन्न हुए...

१४. (उन्होंने तथागत के काशी से वज्जी.... वज्जी से मल्लों के जनपद में..... मल्लों के जनपद से कोशल के जनपद में आने का इसी तरह वर्णन किया ।)

१५. "लेकिन भगवान्! जब हमने सुना कि तथागत कोशल जनपद से भी श्रावस्ती की ओर चारिका करने के लिये चले आ रहे है तो हम बडे प्रसन्न हुए और हमारा दिल बल्लियों उछलने लगा कि तथागत अब हमारे बहुत समीप आ गये ।

१६. "तब जब हमने सुना कि तथागत श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुए हैं तो हमें असीम प्रसन्नता हुई, हमें असीम आल्हाद हुआ कि अब तथागत हमारें समीप है ।"

अष्टम खंड

महामानव सिद्धार्थ गौतम

पहला भाग - उनका व्यक्तित्व
दूसरा भाग - उनकी मानवता
तीसरा भाग - उनको क्या पसंद था और क्या नहीं?

पहला भाग : उनका व्यक्तित्व

१. उनकी व्यक्तिगत आकृति इत्यादी

१. जितने भी वर्णन मिलते है उनसे यही ज्ञात होता है कि तथागत एक सुन्दर शरीर वाले थे ।

२. वह एक स्वर्ण-पर्वत के शिखर के समान थे । उनका कद ऊँचा था, शरीर सुडौल था, आकार-प्रकार आकर्षक था ।

३. उनकी लम्बी-लम्बी बाहे, उनकी शेर की सी चाल, उनकी वृषभ की सी आंखें, उनका सौन्दर्य, उनकी स्वर्ण समान दीप्ति, उनकी चौडी छाती-- सभी को अपनी ओर आकर्षित करती थी ।

४. उनकी भौंहे, उनका माथा, उनका चेहरा और उनकी आखें उनका बदन, उनके हाथ, उनके पांव अथवा उनकी चाल- -उनके शरीर के किसी भी हिस्से पर जिसकी भी आंखें पडी, वे फिर वहाँ से हिल न सकीं ।

५. जिस किसी ने भी उन्हें देखा, उस पर उन की तेजस्विता, उनकी सामर्थ्य, उनके अनुपम सौन्दर्य का प्रभाव पडा है ।

६. उनका दर्शन होने पर कही जाने वाले रुक जाते, जो खडे होते वे पीछे चल देते, जो शान्तिपूर्वक धीरे धीरे चलते होते वे तेजी से दौडने लगते और जो बैठा होता वह तुरंत खडा हो जाता ।

७. जो भी उनके दर्शनार्थ आता, कोई हाथ जोडकर नमस्कार करता, कोई सिर झुका कर नमस्कार करता, कोई स्नेहसिक्त शब्दों से सम्बोधित करता-- कोई भी बिना गौरव प्रदर्शित किये न जाता ।

८. वे सभी के प्रिय- पात्र थे और सभी के आदर-भाजन ।

९. स्त्री-पुरुष सभी उनके वचन सुनने के लिये उत्सुक रहते थे ।

१०. उनका स्वर असाधारण रुप से मधुर था, गम्भीर था, आकर्षक था,गतिमान था और स्पष्ट था । उनकी वाणी दिव्य- संगीत के समान थी ।

११. उनका स्वर ही श्रोता के मन में आश्वासन पैदा कर देता था, उनकी तेजस्विता रौबीली थी ।

१२. उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि न केवल वे लोगों के स्वाभाविक नेता थे बल्कि उनके दिलों के देवता थे ।

१३. उनको कभी श्रोताओं की कमी न होती थी ।

१४. यह बात विशेष महत्व की नहीं थी कि वे क्या कहते थे, वे कुछ भी कहें, सुनने वाले की भावनायें बदल जाती थी और उसकी इच्छा- शक्ति उनकी प्रबल इच्छाशक्ति के सामने झुकती थी ।

१५. उनकी वाणी से ही उनके श्रोताओ को यह विश्वास हो जाता था कि जो कुछ वे कह रहें हैं वह अक्षरशः सत्य तो है ही, साथ ही उनकी 'मुक्ति' का एकमात्र मार्ग भी वही है ।

१६. उनके श्रोताओ को उनकी वाणी में उस सत्य के दर्शन होते थे जिसमें दासो को मुक्त कर देने की सामर्थ्य थी । गुलामों को आजाद बना देने की ताकत थी ।

१७. जब भी वे स्त्री-पुरुष से बात-चीत करते उनका गम्भीर- शांत स्वरुप लोगो के मन मे एक आदर की भावना का सञ्चार करता और उनकी मधुर वाणी लोगों को आश्चर्य और आनन्द से विभोर कर देती ।

१८. डाकू अँगुलिमाल और आळवी के आदम-खोर को कौन धम्म की दीक्षा दे सकता था? एक शब्द के द्वारा कौन राजा प्रसेनजित तथा रानी मल्लिका का मेल करा सकता था? जिस पर उनका मन्त्र चल जाता, वह सदा के लिये उन्ही का हो जाता ।

२. आँख से देखने वालो की साक्षी

१. इस परम्परागत मत का समर्थन उन लोगों की साक्षी से भी होता है जिन्होने भगवान् बुद्ध को उनके जीवनकाल में देखा है, जिन्होने उनसे भेंट की हैं ।

२. एक ऐसा प्रत्यक्ष साक्षी साल नाम का ब्राह्मण था । भगवान् बुद्ध को आमने सामने देखकर उसने उनकी इस प्रकार स्तुती की थी ।

३. जब तथागत के सामने आया, तो उस ब्राह्मण ने बैठने तथा कुशल समाचार पूछ लेने के अनन्तर भगवान् बुद्ध के शरीर पर बत्तीस महापुरुष लक्षणो के होने न होने की जांच की ।

४. बत्तीस महापुरुष लक्षणो के विषय में असन्दिग्ध होकर भी उसका यह सन्देह बना रहा कि वह 'बुद्ध' है या नही? लेकिन उसने पुराने वृद्ध ब्राह्मणों से, आचार्यो-प्राचार्यो से यह सुन रखा था जो अर्हत होते हैं, सम्यक् समबुद्ध होते हैं, वे अपनी स्तुती सुनने पर अपने आप को प्रकट करते है । इसलिये उसने निम्नलिखित शब्दों से तथागत की स्तुती करने कर ठानी ।

५. “भगवान! आप का शरीर अंग-सम्पूर्ण है, श्रेष्ठ है, समृद्ध है, आकर्षक है । स्वर्ण-वर्ण है, दान्तो से स्वर्ण रश्मिया निकलती हैं, अंग अंग सशक्त है ,पूरे बत्तीस- महापुरुष लक्षणों से युक्त है ।
६. “स्पष्ट दृष्टि, सुन्दर,ऊंचे और सीधे है आप । अपने अनुयायियो में सूर्य-समान प्रज्वल्लित है । आप ऐसे प्रकाश- युक्त, ऐसे स्वर्णिम-वर्ण-- अपने तारुण्य को आप अनागारिक श्रमण बनकर क्यों व्यर्थ गंवा रहे है?
७. “आप को चक्रवती नरेश बनाना चाहिये और समुद्र पर्यंत आप का राज्य होना चाहिये । अभिमानी राजाओं को आपके सम्मुख नतमस्तक होना चाहियें और आप को समस्त जगत का चक्रवर्ती-राजा होना चाहिये ।”
८. आनन्द स्थविर के अनुसार तथागत का शरीर इतना अधिक स्वच्छ और ज्योतित था कि यदि उन के बदन पर किसी स्वर्णिम-वस्त्र का जोडा रखा जाता तो उस की ज्योंति शरीर की ज्योती के सम्मुख म्लान पड जाती ।
९. तब इसमें क्या आश्चर्य है यदि तथागत के विरोधी तथागत को एक जादूगर समझते थे!

३. उनके नेतृत्व की सामर्थ्य

१. भिक्षुसंघ का कोई वैधानिक अध्यक्ष आदि नहीं था । तथागत का संघपर कोई अधिकार नहीं था । भिक्षु-संघ एक स्वायत पूर्ण संस्था थी ।
२. तो भी संघ और उसके सदस्यों पर तथागत को क्या अधिकार था?
३. इस विषय मे हमारे पास तथागत के समकालीन दो जनों के वक्तव्य उपलब्ध हैं ।
४. एक बार तथागत राजगृह के वेळूवन में विहार कर रहे थे ।
५. एक दिन तथागत राजगृह में भिक्षाटन के लिये चले किन्तु ‘अभी कुछ जल्दी है’ ऐसा समझ वह परिव्राजकाराम में सकुलदायी के पास चले गये ।
६. उस समय सकुलदायी बहुत से परिव्राजकों से घिरा हुआ था । वे ‘है’ अथवा ‘नहीं है’ की तात्विक चर्चा करके बडा हल्ला मचा रहे थे ।
७. कुछ दूर से ही जब सकुलदायी ने तथागत को आते देखा, उसने अपने साथियों से कहा”चुप करो । हल्ला मत मचाओ । श्रमण गौतम आ रहे है । उन्हें हल्ला प्रिय नहीं है ।”
८. इस प्रकार वे चुप हो गये । तब तक तथागत आ पहुचे । सकुलदायी ने कहा-- “भगवान्! आप से यहाँ पधारने की प्रार्थना है । आप का सच्चे हृदय से स्वागत है । चिरकाल से आपका इधर आगमन नहीं हुआ । आप के लिये आसन सुसज्जित है । कृपया आसन ग्रहण करें ।”
९. तथागत ने आसन ग्रहण किया और पूछा कि क्या बात-चीत चल रही थी?
१०. सकुलदायी बोला-- “इसे जाने दें, कोई महत्वपूर्ण बात नहीं । यह कभी भी जान ले सकते हैं ।
११. कुछ समय पूर्व, जब नाना मतों के श्रमण-ब्राह्मण संथागार में इकट्ठे हुए तो उनमें इस विषय पर चर्चा चली कि मगध के लोगों के लिये यह कितनी अच्छी बात है, कितनी अधिक अच्छी बात है कि जितने गणाचार्य हैं, जितने विख्यात श्रमण हैं, जितने नाना मतों के संस्थापक हैं, जितने बहुत लोगों द्वारा आद्रत है--वे सभी राजगृह में वर्षावास करने आये है ।
१२. “उनमें पूर्ण काश्यप हैं, मक्खली-गोशाल है, अजित-केशकम्बल है, पकुधकच्चायन है, सञ्जय बेलट्ठिपुत्त है, निगंठनाथ पुत्त हैं-- सभी विशिष्ट हैं और सभी यहाँ वर्षावास करने आये है । उन में श्रमण गौतम भी हैं, जो संघ के नायक है, ज्ञात-विख्यात धम्मानुशासक हैं, धम्म-संस्थापक हैं; अनेक लोगों के श्रद्धा भाजन हैं ।
१३. अब इन ज्ञात विख्यात विशिष्ट पुरुषों में कौन है जो अपने शिष्यों द्वारा यथार्थ विधि से आद्रत होता है, सत्कृत होता है तथा सम्मानित होता है? ओर वे कैसे तथा कितने गौरव की भावना के साथ अपने गुरु के पास रहते हैं?
१४. कुछ ने कहा--पूर्ण काश्यप का कोई आदर सत्कार नहीं करता, उसे अपने शिष्यों से कुछ गौरव प्राप्त नहीं होता । वे अपने गुरु के प्रति तनिक भी गौरव का भाव नहीं रखते ।
१५. ऐसा भी अवसर रहा है कि पूर्ण काश्यप अपने कुछ सौ अनुयायियों को उपदेश दे रहा है, तब तक एक शिष्य बीच में ही बोल पडा है-- “पूर्ण काश्यप से मत पूछो । वह इस विषय में कुछ नहीं जानता । मुझे पूछो । मैं जानता हूँ । मैं आप सब को सब बाते समझा दूँगा ।”
१६. तब पूर्ण-काश्यप ने आँखों में आसू भर कर और हाथ फैला कर कहा है-- “चुप रहो । हल्ला मत करो ।”

दूसरा भाग : उनकी मानवता

१. उनकी करुणा- महकारुणिक

१. एक बार जब तथागत श्रावस्ती मे ठहरे हुए थे, तो कुछ भिक्षुओं ने आकर शिकायत की कि कई देव-गण आते है और उन्हे हैरान करते है, तथा उनकी ध्यान भावना में विघ्न उपस्थित करते हैं ।

२. उनकी कष्ट-कथा सुनी तो भगवान बुद्ध ने उन्हे निम्नलिखित उपदेश दिया:-

३. "जो परमार्थ के विषय में कुशल हैं,जो शान्ति-पद को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस प्रकार बरतना चाहिये । उसे समर्थ होना चाहिये,उसे ऋजु-सुऋजु होना चाहिये, उसे सुवच होना चाहिये, उसे मृदु तथा विनम्र होना चाहिये ।

४. उसे सन्तोषी होना चाहिये,उसकी आवश्यकतायें अधिक नहीं होनी चाहिये,उसपर बहुत जिम्मेदारियाँ नहीं होनी चाहिये, उसकी वृत्ति (जिविका) हलकी होनी चाहिये, उसे संयतेन्द्रिय होना चाहिये, उसे ज्ञानी होना चाहिये, उसे प्रगल्भ होना चाहिये तथा उसे गृहस्थ जनो में आसक्त नही होना चाहिये ।

५. "उसे कोई भी छोटी से छोटी ऐसी गलती नहीं करनी चाहिये कि विज्ञजन उसे दोष दे सके । उसकी यही कामना होनी चाहिये कि 'सभी प्राणियों का मंगल हो, सभी प्राणी सकुशल रहे, सभी प्राणी सुखी रहें ।"

६. "कैसे भी प्राणी हो-- दुर्बल हों वा सबल हो, ऊंचे हो या नीचे हों, मध्यम कद के हों, वा छोटे कद के हों, आकार के बडे हों वा छोटे हों--कोई भी हों सभी--

७. "चाहे देखे गये हो और चाहे न देखें गये हो, चाहे समीप रहते हों और चाहे दूर रहते हो,चाहे पैदा हो गये हो, चाहे अभी पैदा होने वालें हो--सभी प्राणी सुखी रहें ।

८. "कोई एक दूसरें को धोखा न दे । कोई किसी से घुणा ना करें, कोई किसी का बुरा न चाहे ,कोई किसी से द्वेष न करे ।

९. "जैसे माँ अपनी जान देकर भी अपने इकलौते पुत्र की रक्षा के लिये तैयार रहती है वही भाव आदमियों का सभी प्राणियों के प्रति रहना चाहिये ।

१०. "उसे समस्त लोक में अपनी असीम मैत्री का संचार करना चाहिये--ऊपर, नीचे, तिर्यक बिना किसी बाधा के, द्वेष भाव से सर्वथा रहित ।

११. "चाहे वह खडा हो, चलता हो, बैठा हो, लेटा हो- जितने समय भी वह जागता रहे-- उसे अपनी सतत जागरुकता बनाये रखनी चाहिये; यही श्रेष्ठ जीवन है ।

१२. "किसी (मिथ्या) दृष्टि में न पडे, शीलवान हो, ज्ञानी हो, इन्द्रिय-सुखों में आसक्त न हों-- ऐसा होने से ही उसे पुन: पुन: गर्भ में नहीं आना पडता ।"

१३. थोडे शब्दों में भगवान् बुद्ध ने उन्हें कहा:- "अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो ।"

२. दुःखियों का दुःख दूर करने वाले मानसिक दुःखों के महान चिकित्सक

(१) विशाखा को दी गई सान्तवना

१. विशाखा एक उपासिका थी । वह रोज रोज भिक्षुओ को भिक्षा दिया करती थी ।

२. एक दिन उसके साथ रहने वाली उसकी पोती बीमार पडी और मर गई ।

३. विशाखा के लिये शोक असह्य हो गया ।

४. उसकी दाह- क्रिया के अनन्तर वह भगवान् बुद्ध के पास गई और आँखों से आँसू गिराती हुई एक ओर बैठ गई ।

५. तथागत ने पूछा-- "विशाखे! तू दुःखी और शोकाकुल, आँखो से आंसू गिराती हुई क्यों बैठी है?"

६. उसने अपनी पोती की मृत्यु की बात कही और कहा कि"वह बडी आज्ञाकारिणी थी, और उस जैसी मिल नहीं सकती ।"

७. "विशाखे! श्रावस्ती मे कुल कितनी लडकियाँ होगी?"

८. "भगवान्! लोगों का कहना है कि करोडो!"

९. "यदि वे सभी तुम्हारी पोतीयाँ हो तो क्या तुम उन को प्यार नहीं करोगी?

१०. "भगवान्! निश्चय से ।"

११. "और प्रति दिन श्रावस्ती में कितनी लडकियों की मृत्यु होती है?"

१२. “भगवान्! अनेको की ।”
१३. “तब तो एक क्षण भी ऐसा न आयेगा, जब तुम किसी न किसी के शोक से व्याकुल न होगी ।”
१४. “भगवान्! सत्य है!”
१५. “तब क्या तुम दिन-रात रोती ही रहोगी?”
१६. “भगवान्! आपने ठीक ठीक समझा दिया । मैं समझ गई ।”
१७ . “तो अब फिर और शोक मत करो ।”

(२) किसा-गोतमी को संतोष

१. किसी गोतमी का विवाह श्रावस्ती के एक ब्योपारी के पुत्र से हुआ था ।
२. विवाह के कुछ समय बाद वह पुत्रवती हुई ।
३. दुर्भाग्य से अभी उसमें चलने-फिरने की ताकत भी नहीं आई थी कि उसे साँप ने डस लिया और वह चल बसा ।
४. सांप के काटे का छोटा सा दाग बच्चे की मृत्यु का कारण कैसे हो सकता था?
५. उसे यह विश्वास ही नहीं होता था कि उसका बच्चा वास्तव में मर गया हैं, क्योंकि इस से पहले उसने ‘मृत्यु’ देखी ही न थी ।
६. इसलिये उसने अपने पुत्र की मृत-देह ली और एक घर से दूसरे घर घूमने लगी । उसकी दशा ऐसी विचित्र थी कि लोगों ने समझा कि वह पागल हो गई है ।
७. अन्त में एक वृद्ध पुरुष ने उसे श्रमण गौतम के पास जाने का परामर्श दिया । उसके भाग्य से तथागत श्रावस्ती में ही थे ।
८. इसलिये वह तथागत के पास आई और अपने मृत- पुत्र के लिये दवाई चाही ।
९. तथागत ने उसकी कष्ट-गाथा और उसका विलाप सुना ।
१०. तब तथागत ने कहा-- “नगर में जाओ और किसी ऐसे घर से जहाँ कोई मरा न हो कुछ सरसों के दाने ले आओ । मैं तुम्हारे बच्चे को जिला दूंगा ।”
११. उसे यह बात अत्यन्त सरल मालूम दी । अपने मृत- पुत्र की देह लिये उसने नगर में प्रवेश किया ।
१२. लेकिन उसे शीघ्र ही पता लगा कि वह कितने भ्रम में थी । उसे एक भी घर ऐसा न मिला जहाँ कोई न कोई मरा न हो ।
१३. एक गृहस्थ ने उसें कहा-- “जो जीते हैं वे थोडे हैं, जो मर गये हैं वे ही अधिक है?”
१४. वह तथागत के पास वापस लौट आई--निराश और खाली हाथ ।
१५. तब तथागत ने पूछा- “किसा गोतमी! क्या मृत्यु सभी के लिये नहीं हैं, क्या केवल उसी के साथ यह अप्रिय घटना घटी है?”
१६. वह तब गई और बच्चे का अन्तिम क्रिया कर दी । किसा गोतमी कह रही थी-- “सभी कुछ अनित्य है । यही नियम है ।”

३. रोगी शुश्रूषक तथागत

(१)

१. एक समय एक भिक्षु को अतिसार हो गया था और वह अपने मल- मूत्र में पडा था ।
२. आनन्द स्थिविर को साथ लिये घूमते-घूमते भगवान् बुद्ध उस भिक्षु के निवास-स्थान पर पहुचे ।
३. तथागत ने उस भिक्षु को देखा कि वह अपने ही मल-मूत्र में पडा है । यह देख वे उसकी ओर गये और जाकर पूछा- “भिक्षु! तुझे क्या कष्ट है ।”
४. “भगवान! मैं अतिसार से पीडित हूँ ।”
५. “भिक्षु! क्या कोई तुम्हारी सेवा नहीं कर रहा है?”
६. “भगवान! नहीं!”
७. “भिक्षु । ऐसा क्यों है कि दूसरे भिक्षु तुम्हारी सेवा नही करते?”
८. “भगवान! मैं भिक्षुओं के लिये किसी भी तरह उपयोगी नहीं हूँ इसलिये भिक्षु मेरी सेवा नहीं करते ।”
९. तब तथागत ने आनन्द स्थविर को कहा-- “आनन्द! जा पानी ले आ । मैं इस भिक्षु का मल-मूत्र साफ करुँगा ।”
१०. “बहुत अच्छा” कह आनन्द स्थविर ने स्वीकार किया । जब पानी आ गया तो- तथागत ने पानी गिराया और आनन्द स्थविर ने उस भिक्षु का शरीर मल- मल कर धोया । तब तथागत ने उसे सिर की ओर से उठाया और आनन्द स्थविर ने पाँव की ओर से दोनों ने मिलकर उसे उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया ।

११. तब तथागत ने इस अवसर पर सभी भिक्षुओ को इकट्ठा किया और उनसे पूछा
१२. "भिक्षुओं, अमुक आवास (कमरे) में कोई बीमार भिक्षु है?"
१३. "भगवान्! है ।"
१४. "उस भिक्षु को क्या कष्ट है?"
१५. "भगवान । उस भिक्षु को अतिसार है ।"
१६. "लेकिन भिक्षुओं! क्या कोई भी उसकी देख-भाल कर रहा है?"
१७. "भगवान! नहीं ।"
१८. "क्यों नहीं? भिक्षु उसकी देख-भाल क्यो नहीं करते?"
१९. "भगवान । वह भिक्षु भिक्षुओं के किसी काम नहीं आता । इसलिये भिक्षु उसकी देख-भाल नहीं करते ।"
२०. भिक्षुओं! तुम्हारी देख- भाल करने वाले तुम्हारे माता-पिता नहीं है । यदि तुम आपस में ही एक दूसरे की सेवा नहीं करोगे तो कौन करेगा? भिक्षुओं! जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है ।
२१. "यदि उपाध्याय हो तो उसे जीवन भर रोगी की सेवा करनी चाहिये और उसके स्वास्थ-लाभ तक प्रतीक्षा करनी चाहिये । यदि आचार्य हो, यदि नेवासिक भिक्षु हो, यदि शिष्य हो, यदि साथ रहने वाला हो, यदि गुरु- भाई हो- -हर किसी को दूसरे के स्वास्थ्य-लाभ तक उसकी देखभाल करनी चाहिये । यदि कोई रोगी की देख- भाल नहीं करता, तो यह उसका दोष माना जायगा ।"

(२)
१. एक बार भगवान् बुद्ध राजगृह के महावन में कलन्दक निवास मे ठहरे हुए थे ।
२. उस समय स्थविर वक्कली एक कुम्हार के छाये हुए स्थान पर पडे थे, रुग्ण, पीडित, भयंकर बीमारी से ग्रस्त ।
३. तब स्थविर वक्कली ने अपने उपस्थापको को बुलाया और कहा "मित्रों! यहाँ आओ । तथागत के पास जाओ । मेरा नाम लेकर उनके चरणों की वन्दना कर कहो ।--" भगवान! भिक्षु वक्कली रुग्ण है, पीडित है, भयंकर बीमारी से ग्रस्त है । वह तथागत के चरणों की वन्दना करता है ।" और तुम यह भी कहना, भगवान्. यह अच्छा होगा, यदि आप वक्कली पर दया करके, उसे देख आने की कृपा करेंगें ।
४. भगवान बुद्ध ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया । तदनंतर तथागत चीवर पहन, पात्र-चीवर ग्रहण कर स्थविर वक्कली को देखने के लिये चले ।
५. स्थविर वक्कली ने तथागत को दूर से ही आते देखा । उन्हें देख स्थविर वक्कली बिस्तर पर ही हिलने-डोलने लगे ।
६. तब तथागत ने वक्कली स्थविर को कहा, "वक्कली । हिल डोल मत! आसन सज्जित है । मैं इस पर बैठूंगा ।" वे बिछे आसन पर विराजमान हुए । बैठकर तथागत ने वक्कली स्थविर से कहा--
७. "वक्कली! मैं समझता हूँ कि तुम अपने कष्ट को सहन कर रहे हो । मै समझता हूँ तुम बडी सहनशीलता से काम ले रहे हो । अब क्या तुम्हारी पीडा घट रही हैं, बढ तो नहीं रही है? इसके घटने के लक्षण हैं, बढने के तो नहीं?"
८. "भगवान्! नहीं मैं सह नहीं सक रहा हूँ । मैं सहनशीलता से काम नहीं ले सक रहा हूँ । मुझे तीव्र वेदना होती है । कष्ट घट नहीं रहा है । कष्ट के घटने का कोई लक्षण नहीं । बढने का ही है ।"
९. "वक्कली । तेरे मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह हैं, कोई अनुताप है?"
१०. "भगवान्! मेरे मन में कोई सन्देह नहीं, कोई अनुताप नहीं ।"
११. "वक्कली! कोई ऐसी बात तो नहीं जिससे तुम अपने शील की ओर देख कर स्वयं आप अपनी गर्हा करते हो?"
१२. "भगवान्! नहीं कोई ऐसी बात नही, कि मैं अपने शील की ओर देख कर आप अपनी गर्हा करुँ ।"
१३. "तब भी वक्कली! तुम्हें कुछ चिन्ता अवश्य होगी । कोई न कोई अनुताप अवश्य होगा?"
१४. "भगवान्! मैं बहुत समय से तथागत के दर्शनों की कामना कर रहा था लेकिन तथागत के दर्शनार्थ आ सकने की मेरे शरीर में ताकत नहीं थी ।"
१५. "वक्कली! इस मेरे गन्दे शरीर के दर्शन करने में क्या ररवा है । जो धम्म को देखता है, मुझे देखता है । जो मुझे देखता है, धम्म को देखता है । वक्कली! जो धम्म को देखता है, मुझे देखता है । जो मुझे देखता है, धम्म को देखता है ।"

(३)

१. ऐसा मैंने सुना एक समय भगवान् बुद्ध भग्गी जनपद में, मृगुदाय में,भेसुकला वन में सिंसुमार गिरि पर विराजमान थे तब गृहपति नकुल-पिता आया और तथागत को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।
२. वहाँ बैठकर गृहपति नकुल-पिता ने तथागत से निवेदन किया: "भगवान्! जरा जीर्ण हूँ, वय प्राप्त हूँ, जीवन की घडियाँ गिन रहा हूँ, मैं बीमार रहता हूँ और हर घडी कष्ट में रहता हूँ । और भगवान् मुझे बडी मुश्किल से बुद्ध तथा संघ का दर्शन करना मिलता है । भगवान् आप मुझे सांत्वना के कृपया ऐसे दो शब्द कहें जो मेरे आनन्द में वृद्धि करने वाले हो तथा चिरकाल तक मेरे हित और सुख के लिये हों ।"
३. "यह ठीक है,यह ठीक है , गृहपति कि तुम्हारा शरीर दुर्बल है और कष्टों से लदा हुआ है । इस तरह की शरीरिक अवस्था होने पर स्वास्थ्य की आशा नहीं ही की जा सकती । लकिन तब भी गहपति! तुम्हें ऐसी भावना करनी चाहिये कि 'यद्यपि मेरा शरीर रोगी है, लेकिन मैं मन से निरोग रहुंगा । गृहपति तुम्हें ऐसा अभ्यास करना चाहिये ।"
४. गृहपति नकुलपिता ने बडे प्रसन्न मन से तथागत के वचन सुने । फिर अपने स्थान से उठ, तथागत को अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चला गया ।

(४)
१. एक बार तथागत शाक्यो के कपिलवस्तु में अंजीरों के उद्यान में ठहरे हुए थे ।
२. उस समय बहुत से भिक्षु तथागत के लिये चीवर बनाने मे लगे थे । उनका कहना था, "चीवर तैयार हो जाने पर, और तीन महीने-समाप्त हो जाने पर तथागत चारिका के लिये निकल पडेंगे ।"
३. तब महानाम शाक्य ने सुना कि बहुत से भिक्षु तथागत के लिये चीवर बना रहे हैं और उनका कहना है...... और तब वह तथागत के पास पहुंच एक ओर बैठा । एक ओर बैठे हुए महानाम शाक्य ने तथागत से निवेदन किया-
४. "भगवान! मैं सुनता हूँ कि बहुत से भिक्षु तथागत के लिये चीवर बनाने में लगे है और उनका कहना है चीवर तैयार हो जाने पर, और तीन महीने समाप्त हो जाने पर, तथागत चारिका के लिये निकल पडेंगे । अब भगवान्! हमने आप के श्रीमुख से यह कभी नहीं सुना कि एक समझदार गृहस्थ अपने साथी रोगी, पीडित दुःखी गृहस्थ को किस प्रकार सांत्वना दे सकता है, क्या कहकर उसका मन प्रसन्न कर सकता है?"
५. "एक समझदार गृहस्थ को अपने साथी रोगी, पीडित,दुःखी गृहस्थ को चार तरह से सान्तवना देनी चाहिये: "भाई, धम्म और संघ में श्रद्धा रखों और उस शील में जो अखण्डित रहने से, परिशुद्ध रहने से, चित्त को शांति देता है ।
६. "महानाम एक समझदार गृहस्थ दूसरे रोगी, पीडित दुःखी गृहस्थ को इस प्रकार सान्तवना दे चुके तो इससे आगे उसे इस प्रकार बोलना चाहिये:-
७. "मान लो कि वह मरणासन्न रोगी अपने माता-पिता को देखने के लिये व्याकुल है तो उसे कहना चाहिये कि मित्र! चाहे तुम अपने माता-पिता को देखने के लिये व्याकुल हो और चाहे व्याकुल न हो, तुम्हारा मरण समीप है । इसलिये अच्छा होगा कि तुम अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा छोड दो ।
८. "यदि रोगी कहे कि मैंने माता-पिता की कामना छोड दी तो उससे कहना चाहिये कि मित्र! अभी तुम्हारे मन में बच्चों को देखने की कामना है । क्योंकि हर हालत में तुम मरणासत्र हो, इसलिये यह भी अच्छा ही होगा यदि तुम बच्चों की कामना को भी त्याग दो ।
९. "इसी प्रकार उसे पाचों इन्द्रियों के सुख- भोगों के बारे में भी कहना चाहिये । मान लो कि रोगी कहता है, मुझे पांचों इन्द्रियो के सुखों की कामना है । तो उसे कहना चाहिये कि मित्र! इन पांच इन्द्रियों के सुखों की अपेक्षा दिव्य-लोक के सुख अधिक प्रणीत हैं । यह भी अच्छा ही होगा की इन पांच इन्द्रियों के सुखों का त्याग कर आप दिव्यलोक के सुखों पर मन लगाये ।"
१०. "तब यदि रोगी कहे कि मेरा ध्यान दिव्य- लोक के सुखों पर ही केंन्द्रित हैं, तो उससे कहना चाहिये कि अच्छा होगा कि तुम अपना ध्यान ब्रह्म-लोक के सुखों पर केन्द्रित करो । और तब यदि रोगों का मन वही केन्द्रित है, तब उससे कहना चाहिये--
११. "मित्र! ब्रह्म लोक भी अनित्य है, परिवर्तनशील है, उसमें भी ममत्व हो सकता है । मित्र! यह अच्छा होगा कि तुम ब्रह्मलोक की आशा का भी त्याग कर दो और ममत्व का मूलोच्छेद करने की ओर ध्यान दो ।
१२. "और यदि उस रोगी ने ऐसा कर लिया है, तो जहाँ तक आश्रवों से मुक्ति की बात है, तो जो सद्गृहस्थ इस प्रकार ममत्व से मुक्त हो सकता है उसमें और जिस श्रावक ने आश्रव क्षय किया है उसमें-- दोनो में कोई अन्तर नहीं ।"

४. असहनशीलों के प्रति सहनशीलता

१. एक बार भगवान् बुद्ध आलवक यक्ष की राज्य-सीमा में आलवी मे रहते थे । तब आलवक यक्ष तथागत के पास आया और बोला-- "श्रमण! यहाँ से निकल ।"

२. तथागत का उत्तर था "मित्र! बहुत अच्छा ।" इतना कहा और वे बाहर चले गये ।

३. तब यक्ष ने आज्ञा दी, "श्रमण! भीतर आओं ।"

४. तथागत भीतर चले आये । बोले: "मित्र! बहुत अच्छा ।"

५. दूसरी बार भी आलवक यक्ष ने तथागत को कहा-- "श्रमण! निकल यहाँ से ।

६. तथागत बाहर चले गये । बोले:-- "मित्र! बहुत अच्छा ।"

७. दूसरी बार भी यक्ष ने आज्ञा दी-- "श्रमण ! भीतर आओ ।"

८. तथागत भीतर चले आये बोले:-- "मित्र! बहुत अच्छा ।"

९. तीसरी बार भी आलवक यक्ष ने तथागत को कहा-- "श्रमण ! निकल यहाँ से ।"

१०. तथागत बाहर चले गये । बोले-- "मित्र! बहुत अच्छा ।"

११. तीसरी बार फिर यक्ष ने आज्ञा दी-- "श्रमण! भीतर चले आओ ।"

१२. "तथागत भीतर चले आये । बोले:-- "मित्र । बहुत अच्छा"

१३. चौथी बार भी आलवक यक्ष ने कहा-- "श्रमण! निकल यहाँ से!"

१४. इस बार तथागत ने कहा-- "मित्र! मैं नहीं निकलूंगा । तुझे जो करना हो करो ।

१५. यक्ष को क्रोध आ गया । बोला-- "मैं एक प्रश्न पूछूंगा श्रमण! यदि मेरे प्रश्न का उत्तर न दे सके तो या तो मैं तुझे पागल बना दूंगा, या हृदय फाड डालूंगा और नहीं तो पांव से पकड कर नदी के उस पार फेंक दूंगा ।"

१६. "मित्र! मुझे इस लोक में कोई ऐसा नहीं दिखाई देता जो या तो मुझे पागल बना दे या मेरा हृदय फाड डाले और या मुझे पाँव से पकडकर नदी के उस पार फेंक दे । लेकिन तब भी तुझे जो प्रश्न पूछना हो पूछ ।"

१७. तब आलवक यक्ष ने तथागत से निम्नलिखित प्रश्न पूछा--

१८. "इस संसार में आदमी के लिये सर्वश्रेष्ट धन कौन सा है? कौनसा कुशल-कर्म सुखदायक है? रसों में मधुरतम रस कौन सा है? किस तरह का जीवन सर्वश्रेष्ट जीवन कहा जाता है?"

१९. तथागत ने उत्तर दिया-- "श्रद्धा सर्व-श्रेष्ट धन है । धम्मानुसार रहने से सुख मिलता है । सत्य का रस भी रसों से मधुरतम है । प्रज्ञा मूलक जीवन से बढ़ कर कुछ नहीं ।

२०. आलवक यक्ष ने पूछा-- "आदमी बाढ को कैसे पार करता है? आदमी समुद्र को कैसे लाँघता है? आदमी दु:ख का अन्त कैसे करता है ।"

२१. तथागत ने उत्तर दिया-- "आदमी श्रद्धा से बाढ को पार करता है । आदमी अप्रमाद से (भव) सागर को लाँघ जाता है । आदमी प्रयत्न से दु:ख का नाश करता है । आदमी प्रज्ञा से परिशुद्ध होता है ।"

२२. तब आलवक यक्ष ने पूछा-- "आदमी ज्ञान कैसे प्राप्त करता है? आदमी धन कैसे प्राप्त करता है? आदमी यश कैसे प्राप्त करता है? आदमी मित्र कैसे प्राप्त करता है? इस लोक से परलोक को जाने पर आदमी को अनुताप कैसे नहीं होता?"

२३. तथागत ने उत्तर दिया-- "निर्वाण-प्राप्ति के लिए अर्हतों तथा धम्म मे श्रद्धा रखने से, आज्ञाकारी होने से, अप्रमादी होने से ,ध्यान लगाकर सुनने वाला होने से, आदमी ज्ञान प्राप्त करता है ।"

२४. "जो उचित हि करता है, जो दृढ निश्चयी है, जो जागरुक है, वह धन प्राप्त करता है । जो देता है वह मित्र प्राप्त- करता है ।

२५. "जिस श्रद्धावान उपासक में सत्य, सदाचार, सबर और सदाशयता तथा उदारता होती है, उसे मरने पर अनुताप नहीं होता ।

२६. "आओ! जो दूसरे बहुत से श्रमण-ब्राह्मण हैं, उनसे भी पूछ लो कि क्या सत्य, संयम, दान-शीलता तथा सबर से भी बडकर कुछ है?"

२७. आळवक यक्ष बोला-- "अब मै किसी दूसरे श्रमण ब्राह्मण से भी क्यों पूछू? आज मैं अपने भावी ऐश्वर्व्य से परिचित हो गया हूँ ।

२८. "निश्चय से, तथागत मेरे ही कल्याण के लिये आळवी पधारे हैं । आज मैं जानता हूँ कि किन्हे (दान) देने से अधिक से अधिक फल मिलता है ।

२९. "आज से मै तथागत तथा उनके धम्म को नमस्कार करता हुआ, एक गांव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर विचरुंगा ।"

९. समानता तथा समान-व्यवहार के समर्थक

१. तथागत ने जितने भी नियम भिक्षु संघ के लिये बनाये, स्वेच्छा से उन सभी नियमों को उन्होंने अपने ऊपर भी लागू किया ।

२. इसलिये कि वे ही 'संघ' के मूल है, वा वे ही संघ के नायक है, उन्होंने अपने लिये कभी किसी नियम में भी अपवाद नहीं चाहा । यदि वे चाहते तो उस असीम आदर और प्रेम की भावना के कारण जो संघ के सदस्यों के मन में उनके लिये थी वे तथागत को बडी प्रसन्नता से उन नियमों से मुक्त करते ।

३. भिक्षु एक ही बार भोजन ग्रहण कर सकते है-- यह नियम अन्य सभी भिक्षुओं के साथ साथ तथागत को भी स्वीकृत था ।

४. भिक्षु के पास कोई निजी सम्पत्ति नहीं रहनी चाहिये-- यह नियम अन्य सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था ।

५. भिक्षु के पास केवल तीन चीवर ही होने चाहिंये- यह नियम सभी भिक्षुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था ।

६. एक बार जब भगवान बुद्ध शाक्य जन पद के कपिलवस्तु नगर में न्याग्रोधाराम में रहते थे, तो भगवान् बुद्ध की मौसी प्रजापति गौतमी अपने हाथ का काता, हाथ का बुना धुस्सा जोडा लाई और तथागत से उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की ।

७. तथागत ने उसे उत्तर दिया,"प्रजापति! उसे संघ को दे ।"

८. दूसरी ओर तीसरी बार भी प्रजापति गौतमी ने अपनी प्रार्थना दोहराई । उसे हर बार वही उत्तर मिला ।

९. तब आनन्द ने आग्रह किया- "भगवान् प्रजापति गौतमी आप की मौसी है । प्रजापति गौतमी ने आप को दूध पिलाया है । आप उसका दिया धुस्सा जोडा स्वीकार कर लें ।" लेकिन तथागत का यही आग्रह रहा कि धुस्सा जोडा संघ को ही दिया जाय ।

१०. आरम्भ में भिक्षु संघ का यही नियम था कि कूडों की ढेरियों पर पडे मिले चीथडों से ही भिक्षु- संघ के वस्त्र बनाये जायें । यह नियम इसी लिये बना था कि जिसमें धनी-वर्ग के लोग ही संघ में आकर न भर जाये ।

११. लेकिन एक बार जीवक तथागत को नये वस्त्र का बना चीवर देने में सफल हो गया । जब तथागत ने वह चीवर स्वीकार किया,उन्होंने उसी समय सभी भिखुओं के लिये भी चीथडो के बने चीवर ही पहनने का नियम ढीला कर दिया ।

तीसरा भाग : उन्हें क्या नापसन्द था और क्या पसन्द?

१. उन्हें दरिद्रता नापसन्द थी

१. एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम मे विहार कर रहे थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति तथागत के दर्शनार्थ आया। आकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। बैठकर उसने तथागत से प्रश्न किया-- "आदमी को धनार्जन क्यों करना चाहिये?"

२. "तुम पूछ रहे हो तो मैं तुम्हें बताता हूँ।"

३. "किसी एक आर्य-श्रावक को लो जिसने मेहनत करके धन कमाया है,जिसने हाथों से परिश्रम करके धन कमाया है, जिसने पसीना बहा कर धन कमाया है तथा जिससे न्यायत: धन कमाया है वह उस धन से अपने आप को प्रसन्न बनाता है, आनन्दित बनाता है,उसे प्रसन्नता तथा आनन्द को बनाये रखता हैं, वह अपने माता-पिता को सुख और आनन्द देता है तथा उन्हें सुखी और आनन्दित बनाये रखता है; इसी प्रकार अपने स्त्री-बच्चों को, अपने दासों को तथा अपने कमकरों को धनार्जन करने का पहला उद्देश्य यही है।

४. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है वह अपने मित्रो, अपने साथीयों को सुख और आनन्द देता है तथा उन्हें सुखी और आनन्दित बनाये रखता है यह दूसरा उद्देश्य है।

५. "जब इस प्रकार धन प्राप्त हो जाता है, तो वह अग्नि या पानी से अपनी हानि नही, होने देता, राजाओ या चोरों से अपनी हानि नहीं होने देता, शत्रुओं या उत्तराधिकारीओं से अपनी हानि नहीं होने देता-- वह अपने माल को सुरक्षित रखता है। यह तीसरा उद्देश्य है।

६. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो वह अतिथि- यज्ञ कर सकता है, पितृ-यज्ञ कर सकता है, राज- यज्ञ कर सकता है तथा देव-यज्ञ कर सकता है, यह चौथा उद्देश्य है।

७. "जब इस प्रकार धन प्राप्त होता है, तो गृहपति उन सब श्रमणो तथा सन्त- पुरुषों को दान देता है जो अहंकार तथा प्रमाद से बचते हैं, जो सभी बातों को विनम्रता-पूर्वक सहन कर लेते है, जो संयत है, जो शान्त है तथा जो आत्म- विकास में लगे है। उसका वह दान ऊँचे सदुद्देश्य सहित होता है, सुख देने वाला और स्वर्ग की ओर ले जाने वाला। यह धनार्जन का पांचवा उद्देश्य है।"

८. अनाथपिण्डिक समझ गया कि भगवान् बुद्ध दरिद्रों की दरिद्रता की प्रशंसा करके उन्हें सांत्वना नहीं देते। वे 'दरिद्रता' को ऊँचा उठाकर उसके बारे में यह भी नहीं कहते कि दरिद्रता का जीवन सुखी जीवन होता है।

२. उन्हें संग्रह-वृत्ति नापसंद थी

१. भगवान बुद्ध एक बार कुरु जनपद के कम्मासदम्म नामक नगर में ठहरे हुए थे।

२. आनन्द स्थविर, जहाँ भगवान् बुद्ध थे, वहाँ पहुँचे और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

३. इस प्रकार बैठे हुए आनन्द स्थविर ने कहा- "तथागत द्वारा उपदिष्ट प्रतीत- समुत्पाद का नियम अदभुत है। यह अत्यन्त गम्भीर है। किन्तु मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है।"

४. "आनन्द! ऐसा मत कहो। आनन्द! ऐसा मत कहो! ऐसा मत कहो। यह प्रतीत्यसमुत्पाद का नियम बहुत गम्भीर है। इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को ही न समझ सकने के कारण, इसी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम के भीतर ही प्रवेश न कर सकने के कारण यह संसार उलझन में पड गया है, यह दु:ख का अन्त नहीं कर सकता है।

५. "मै ने कहा है कि तृष्णा होने से उपादन होता है। जहाँ किसी के मन में किसी भी चीज के लिये कोई तृष्णा न हो तो क्या किसी प्रकार का भी उपादान होगा?"

६. "भगवान्। नहीं होगा।"

७. "तृष्णा होने से ही आदमी लाभ के पीछे जाता है।

८. "लाभ के पीछे भागने से काम और राग उत्पन्न होते है।

९ . "काम और राग होने से वस्तुओ के लिये आग्रह हो जाता है।

१०. "आग्रह होने से अधिकार (मलकीयत) हो जाता है।

११. "मलकीयत होने से लोभ तथा और भी अधिक सम्पत्ति का स्वामित्व पैदा होता है।

१२. "मलकीयत होने से सम्पत्ति की देख-भाल करनी होती है।

१३. "सम्पत्ति की देख- भाल में से ही बहुत से अकुशल- धम्म पैदा हो जाते है जैसे मुक्के तथा ज़ख़म, झगडे, कलह, बदनामी और झूठ ।

१४. "आनन्द! यह प्रतीत्य-समुत्पाद का नियम है । आनन्द! यदि तृष्णा न हो तो क्या लाभ के पीछे भागना होगा? यदि लाभ के पीछे भागना 'न हो तो क्या कामना उत्पत्र होगी? यदि कामना न हो तो क्या आग्रह होगा? यदि सम्पत्ति के लिये आग्रह न हो तो क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिये प्रेम होगा? यदि सम्पत्ति ही न हो तो क्या अधिक सम्पत्ति के लिये लोभ होगा?

१५. "भगवान्! नहीं होगा ।"

१६. "यदि निजी सम्पत्ति के लिये आसक्ति न हो तो क्या संसार में शान्ति नहीं होगी?"

१७. "भगवान्! होगी ।"

१८. तब तथागत ने कहा- "मै पृथ्वी को पृथ्वी मानता हूँ । लेकिन मेरे मन में इसके लिये तृष्णा नहीं है ।

१९. "इसीलिये मैं कहता हूँ कि तमाम तृष्णाओं का मूलोच्छेद कर देने से, उनके पीछे न भागने से, बल्कि उनका नाश कर देने से, उनका त्याग कर देने से, उनका परित्याग कर देने से ही मैंने 'बुद्धत्व' लाभ किया है ।

२०. "भिक्षुओं, भौतिक वस्तुओं के नही, किन्तु मेरे धम्म के उत्तराधिकारी बनो । क्योंकि तृष्णा से आसक्ति पैदा होती है और आसक्ति से मानसिक दासता ।"

२१. इन शब्दों में भगवान बुद्ध ने आनन्द स्थविर तथा अन्य भिक्षुओं को संग्रह करने की प्रवृत्ति के दुष्परिणाम समझाये ।

३. उन्हें सुसंगति पसंद थी

१. भगवान् बुद्ध को सुसंगति इतनी अधिक प्रिय थी कि उनको सुसंगति-प्रिय बुद्ध का नाम ही दिया जा सकता है ।

२. इसीलिये उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा- "कल्याण मित्रों की संगति करो ।"

३. भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा:-

४. "भिक्षुओ! मैं कोई दूसरी ऐसी बात नहीं जानता तो अनुत्पन्न कुशल धम्मों में वृद्धि कर दे अथवा उत्पन्न अकुशल-धम्मो में ह्रास पैदा कर दे । जैसी कि यह कल्याण- मित्रता ।

५. "जो सुसंगति में रहता है, उसमें अनुत्पन्न कुशल धम्म उत्पन्न हो जाते है और उत्पन्न अकुशल धम्मो का ह्रास हो जाता है । अकुशल धम्म तथा अकुशल- प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है ,कुशल धम्मो के प्रति प्रवृत्ति की कमी का ह्रास हो जाता है, कुशल-धम्म तथा कुशल धम्मो के प्रति प्रवृत्ति बढ जाती है तथा अकुशल-धम्मो के प्रति प्रवृत्ति की कमी में वृद्धि होती है ।

६. "भिक्षुओं ,मै दूसरी कोई ऐसी बात नहीं जानता जो अनुत्पन्न बोधि अंगों को उत्पन्न न होने दे अथवा उत्पन्न बोधि अंगो को पूर्णता तक न पहुंचने दे, जैसे कि यह बे-ढंगा-विचार ।

७. "भिक्षुओं, जो बेढंगे-ढंग से विचार करता है उसमें अनुत्पत्र बोधि-अंग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होते ।

८. "भिक्षुओं, सगे-सम्बन्धियो की हानि कोई बडी हानि नही है । प्रज्ञा की हानि बडी हानि है ।

९. "भिक्षुओं, सगे-सम्बन्धियों की वृद्धि कोई बडी अभिवृद्धि नहीं है । प्रज्ञा की वृद्धि बडी अभिवृद्धि है ।

१०. "इसलिये भिक्षुओं! तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिये कि हम प्रज्ञा का लाभ करेंगे । तुम्हें प्रज्ञावान बनना चाहिये ।

११. "भिक्षुओ ! धन की वृद्धि को बडी अभिवृद्धि नहीं है । सभी अभिवृद्धियो में श्रेष्ठ है प्रज्ञा की अभिवृद्धि । इसलिये भिक्षुओ तुम्हें यही अभ्यास करना चाहिये कि हम प्रज्ञा का लाभ करेगें । तुम्हें प्रज्ञावान बनना चाहिये ।

१२. भिक्षुओं ! यश की हानि कोई बडी हानि नही है, प्रज्ञा की हानि बडी हानि है ।"

४. वे सुसंगति से प्रेम करते थे

१. एक बार तथागत शाक्य जनपद में शाक्यों के एक नगर सक्कर में ठहरे हुए थे ।

२. तब स्थविर आनन्द तथागत के पास आये, अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये । इस प्रकार बैठे हुए आनन्द स्थविर ने कहा:--

३. भगवान्! सत्संगति आधा श्रेष्ठ-जीवन है, कल्याण-मित्रता आधा श्रेष्ठ-जीवन है, भलों की संगति आधा श्रेष्ठ-जीवन है ।"

४. “आनन्द! ऐसा मत कहो । सत्संगति आधा नहीं पूरा श्रेष्ठ-जीवन है । कल्याण-मित्रता आधा नही, पूरा श्रेष्ठ-जीवन है । भलों की संगति आधा नहीं पूरा-श्रेष्ठ जीवन है ।

५. “भिक्षुओं जो भी सत्संगति मे रहता है, जिसके कल्याण-मित्र है, ओर जो भलों की संगति मे रहता है--उससे हम यह आशा कर सकते है कि वह आर्य अष्टांगिक मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति करेगा ।

६. “आनन्द! ऐसा भिक्षु आर्य अष्टांगिक-मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति कैसे करता है?

७. “आनन्द! वह सम्यक्-दृष्टि का अभ्यास करता है, जो त्यागाश्रित है, जो विरागाश्रित है, जो निरोधाश्रित है, वह सम्यक्-संकल्प का अभ्यास करता है । वह सम्यक्-वाणी का अभ्यास करता है । वह सम्यक् कर्मान्त का अभ्यास करता है । वह सम्यक्-आजीविका का अभ्यास करता है । वह सम्यक् व्यायाम का अभ्यास करता है । वह सम्यक्-स्मृति का अभ्यास करता है तथा वह सम्यक् समाधि का अभ्यास करता है-- ये सभी त्यागाश्रित है, विरागाश्रित है तथा निरोधाश्रित है ।

८. “आनन्द ! जो भिक्षु सत्संगति में रहता है, जिसके कल्याण-मित्र है और जो भलों की संगति में रहता है वह आर्य अष्टांगिक- मार्ग पर अधिक से अधिक प्रगति करता है ।

९. “इस तरह से आनन्द ! तुम्हें यह समझना चाहिये कि यह जो सत्संगति में रहना है यह जो कल्याण-मित्रता है, यह जो भलों की संगति में रहना है, यह पूरा श्रेष्ठ जीवन है ।

१०. “निश्चय से आनन्द ! जो जरा- धर्म प्राणी है, जो मरण- धर्म प्राणी है, जो दु:ख, शोक, रोने पीटने वाले हैं, वे कल्याण -मित्रता के परिणाम- स्वरूप इन सब से मुक्त हो जाते है ।

११. “इस तरह से आनन्द! तुम्हे यह समझना चाहिये कि यह जो सत्संगति में रहना है, यह जो कल्याण-मित्रता है, यह जो भलों की संगति में रहना है- यह पूरा श्रेष्ठ जीवन है ।”

समाप्ति

१. भगवान् बुद्ध की प्रशस्ति

१. भगवान् बुद्ध का जन्म पच्चीस सौ वर्ष हुए हुआ था ।

२. आधुनिक विचारक और वैज्ञानिक उनके तथा उनके धम्म के बारे में क्या कहते है? उनके विचारों का यह संग्रह उपयोगी होगा ।

३. प्रो. एस. एस. राघवाचार्य कहते है ।

४. "भगवान् बुद्ध के अविर्भाव से ठीक पहले का समय भारतीय इतिहास का सर्वाधिक अन्धकारमय युग था ।

५. "चिन्तन की दृष्टि से यह पिछडा हुआ युग था । उस समय का विचार धर्म-ग्रन्धो के प्रति अन्धविश्वास से जकड़ा हुआ था ।

६. "नैतिकता की दृष्टि से भी अन्धकारपूर्ण युग था ।

७. "विश्वासी हिंदुओं के लिये नैतिकता का मतलब इतना ही था कि धर्म ग्रंथों के अनुसार यज्ञादिको को ठीक ठीक कर सकना ।

८. "आत्म-त्याग या चित्त की पवित्रता आदि जैसे यथार्थ नैतिक विचारों को उस समय के नैतिक-चिन्तन में कोई उपयुक्त स्थान प्राप्त न था ।"

९. श्री. आर. जे. जैक्सन का कहना है ।

१०. "भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का अनुपम रुप भारतीय धाम्मिक विचारधारा के अध्ययन से ही स्पष्ट होता है ।

११. "ऋग्वेद की ऋचाओं में हम पाते है कि आदमी बहिर्मुख है--उसका सारा चिन्तन देवताओं की ओर अभिमुख है ।

१२. बौद्ध धम्म ने आदमी के अन्दर जो सामर्थ्य छिपी हुई है, उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया ।

१३. "वेदों में हमें प्रार्थना, प्रशंसा और पूजा ही मिलती है ।

१४. "बौद्ध धम्म में ही हमें प्रथम बार चित्त को सही रास्ते पर चलाने के शिक्षा- क्रम की शिक्षा मिलती है ।"

१५. श्री. विनवूड रीड का कहना है:-

१६. "जब हम प्रकृति की पुस्तक खोलकर देखते है, जब हम लाखों-करोडो वर्षो का खून तथा आंसुओं में लिखा हुआ 'विकास' का इतिहास' पढ़ते हैं, जब हम जीवन का निमंत्रण करने वाले नियमों को पढते हैं, और उन नियमों को, जो विकास को जन्म देते है, तो हमे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि यह सिद्धांत कि परमात्मा प्रेम- रूप हैं, कितना भ्रामक है ।

१७. "हर चीज में बदमाशी भरी पडी है और अपव्यय का कही कोई ठिकाना नहीं है । जितने भी प्राणी पैदा होते है उनमें बचने वालो, की संख्या बहुत ही थोडी है ।

१८. "चाहे समुद्र में देखों, चाहे हवा में देखो और चाहे जंगल में देखो-- हर जगह यही नियम है, दूसरों को खाओ तथा दूसरों के द्वारा खाये जाने के लिये तैयार रहो । हत्या ही विकास-क्रम का कानून है ।"

१९. श्री० रीडे ने यह बात अपनी 'मारटायरडम आफ मैंन' (Martyrdom of Man) नाम की पुस्तक में कही है । भगवान् बुद्ध का धम्म इससे कितना भिन्न है !

२०. डॉ. रंजन राय का कहना है:-

२१. "उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में तीन कानूनों की तूती बोलती थी । किसी ने उन्हें अस्वीकार करने का साहस नहीं किया ।

२२. "ये कानून थे-- (१) जड-पदार्थ का कानून, (२) जड पदार्थ के समूह का कानून, (३) शक्ति का कानून ।

२३. "यह उन आदर्श-वादी चिन्तको के जयघोष थे, जो समझते थे कि ये तीनों अविनाशी हैं ।

२४. "उन्नीसवी शताब्दी के वैज्ञानिको के अनुसार ये तीन कानून ही सृष्टि के संचालक थे ।

२५. "उन्नीसवी शताब्दी के वैज्ञानिकों के अनुसार ये तीन कानून ही सृष्टि के मूल तत्व थे ।

२६. "उनकी कल्पना थी कि विश्व अविनाशी अणुओं (Atoms) का समूह है ।

२७. "उन्नीसवी शताब्दी समाप्त होने को आई श्री. जे. जे. थामसन और उनके अनुयायियों के अणुओं पर हथौडे चलाने आरम्भ किये ।

२८. "आश्चर्य की बात हुई-- अणुओं के भी टुकडे टुकडे होने लगे. ।

२९. "इन टुकडों को परमाणु कहा जाने लगा-- सभी समान और सभी में ऋणात्मक विद्युत् ।

३०. "जिन अणुओं को मैक्सवैल विश्व के अथवा वास्तविकता के अविनाशी आधार-स्तम्भ मानता था, वे खण्ड-खण्ड हो गये ।

३१. "उनके बहुत छोटे-छोटे खण्ड हुए--प्रोटोन तथा एलेक्ट्रोन (Protons & Electrons); धनात्मक तथा ऋणात्मक विद्युत लिये हुए ।

३२. "एक निश्चित अविनाशी जड पदार्थ-समूह की कल्पना विज्ञान से विदा हुई । इस शताब्दी में सभी का विश्वास है कि जड-तत्व का प्रतिक्षण निरोध हो रहा है ।

३३. "भगवान बुद्ध के अनित्यता के सिद्धांत को समर्थन प्राप्त हुआ है ।

३४. "विज्ञान ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि विश्व की गति (चीजों के) मेल से किसी चीज के बनने,उनके खण्ड खण्ड हो जाने तथा फिर मिलने के नियमों पर ही आश्रित है ।

३५. "आधुनिक विज्ञान के अनुसार अन्तिम तत्व अनेक होकर एक भासित होने वाला है ।

३६. "आधुनिक विज्ञान भगवान् बुद्ध के अनित्यता तथा अनात्मवाद के सिद्धांत की प्रतिध्वनि है ।

३७. श्री. ई० जी० टेलर ने अपने 'बुद्धिज्म एण्ड माडर्न थाट' (Buddhism and Modern Thought) में लिखा है:-

३८. "काफी समय से आदमी बाहरी ताकतों के दबाव मे रहा है । यदि उसे 'सभ्य' शब्द के वास्तविक अर्थो में सभ्य बनना है तो उसे अपने ही नियमों द्वारा अनुशासित रहना सीखना होगा । बौद्ध धम्म ही वह प्राचीनतम नैतिक विचार धारा है जिसमें आदमी को स्वयं अपना आप अनुशासक बनने की शिक्षा दी गई है ।

३९. "इसलिये इस प्रगतिशील संसार को बौद्ध धम्म की आवश्यकता है ताकि वह इससे यह ऊंची शिक्षा हासिल कर सके ।"

४०. श्री. लेसली बोलटन (The Rev. Leslie Bolton) नाम के ईसाई धर्म के युनिटेरियन सम्प्रदाय के पुरोहित का कहना है:--

४१. "बौद्ध धम्म में आध्यात्मिक मनोविज्ञान को मैं बहुत महत्वपूर्ण योगदान मानता हूँ ।"

४२. "बौद्धों की तरह हम युनिटेरियन सम्प्रदाय के मानने वाले भी परम्परा, पुस्तकों वा मतों के बाह्य अधिकार को प्रमाण नहीं मानते । हम आदमी के अपने भीतर ही उसका मार्ग- दर्शक प्रदीप देखते हैं ।

४३. "युनिटेरियन मत के अनुयायियों को ईसा और बुद्ध दोनो ही जीवन के श्रेष्ट व्याख्याकार प्रतीत होते है ।"

४४. प्रो. डेविट गोडर्ड का कथन है:-

४५. "संसार में जितने भी धर्म संस्थापक हुए हैं,उनमें भगवान् बुद्ध को ही यह गौरव प्राप्त है कि उन्होंने आदमी में मूलत: विद्यमान उस निहित शक्ति को पहचाना जो बिना किसी बाह्य निर्भरता के उसे मोक्ष पथ पर अग्रसर कर सकती है ।

४६. "यदि किसी वास्तविक महान् पुरुष का महात्म्य इसी बात में है की वह मानवता को कितनी मात्रा में महानता की ओर अग्रसर करता है, तो तथागत से बढकर दूसरा कौन सा आदमी महान हो सकता है?"

४७. "भगवान् बुद्ध ने किसी 'बाह्य शक्ति' को आदमी के ऊपर बिठाकर उसका दर्जा नहीं घटाया, बल्कि उसे प्रज्ञा और मंत्री के शिखर पर ले जाकर बिठा दिया है ।"

४८. बुद्धिज़्म ग्रंथ के लेखक श्री ई. जे. मिलर का कहना है:-

४९. "दूसरे धर्म में 'विद्या'को इतना महत्व नहीं दिया गया और 'अविद्या' की इतनी गरहा नही की गई, जितनी बुद्ध-धम्म में ।

५०. "कोई दूसरा धर्म अपनी आँख खुली रखने पर इतना जोर नहीं देता ।

५१. "किसी दूसरे धर्म ने आत्म -विकास की इतनी विस्तृत, इतनी गहरी तथा इतनी व्यवस्थित योजना पेश नहीं की ।"

५२. अपने 'बुद्धिस्ट एथिक्स' नामक ग्रन्ध में प्रो. डब्लू. टी. स्टास ने लिखा है:--

५३. बौद्ध धम्म का नैतिक आदर्श- पुरुष-अर्हत-- न वे केवल सदाचार की दृष्टि से बल्कि मानसिक विकास की दृष्टि से भी महान होना चाहिये ।

५४. उसे दार्शनिक तथा श्रेष्ट आचारवान्-- दोंनो एक साथ होना चाहिये ।

५५. "बौद्धधम्म ने 'विद्या' को हमेशा मुक्ति के लिये अनिवार्य माना है और 'अविद्या' तथा 'तृष्णा 'को मोक्ष के प्रधान बाधक कारण स्वीकार किया है ।

५६. "इसके विरुद्ध ईसाई आदर्श पुरुष के लिये ज्ञानी होना कभी आवश्यक नहीं माना गया है ।

५७. "क्योंकि संस्थापक का अपना स्वरुप ही आदार्शनिक था । इसलिये ईसाइयन में दार्शनिकता का आदमी की नैतिकता से कोई सम्बन्ध नही माना गया हैं ।"

५८. संसार के दुखों के मूल में शरारत से कहीं अधिक अज्ञान ओर अविद्या ही है ।

५९. "भगवान बुद्ध ने इनके लिये जगह नहीं रखी ।"

६०. यह दिखाने के लिये कि भगवान् बुद्ध और उनका धम्म कितना महान् है और कितना अनुपम है-- इतना पर्याप्त है ।

६१. कौन है जो ऐसे भगवान् बुद्ध को अपना शास्ता स्वीकार न करना चाहेगा

२. उनके धम्म के प्रचार की शपथ

१. अनन्त प्राणी है, हम शपथ ग्रहण करे कि हम सभी को भवसागर के पार उतारेंगे ।

२. हम में अनन्त कमजोरियाँ हैं, हम शपथ ग्रहण करें कि हम एक एक करके सबको दूर करेंगे ।

३. अगणित सत्य है, हम शपथ ग्रहण करें कि हम सभी का बोध प्राप्त करेगे ।

४. भगवान् बुद्ध का अनुपम मार्ग है, हम शपथ ग्रहण करें कि हम उस पर पूरी तरह चलेंगे ।

३. भगवान् बुद्ध के पुन: स्वदेश लौट आने की प्रार्थना

१. हे पुराषोत्तम! मैं सर्व भावना से तथागत की
शरण ग्रहण करता हूँ ,जिन की ज्योति
निर्बाध रुप से दसों दिशाओं में व्याप्त है;
और कामना करता हूँ कि मैं आपके उस
सुखावति लोक में जन्म ग्रहण करुँ ।
२. आप के उस लोक को जब मैं अपने मानस चक्षु
से देखता हूँ तो जानता हूँ कि यह तीनों भवों की समस्त भूमियों से
प्रकृष्टतर है ।
३. कि यह आकाश के समान सर्वग्राही है--
अनन्त और असीम ।
४. आपकी धम्मानुसारिणी करुणा तथा मैत्री
सभी भौतिक -वस्तुओं से श्रेष्ठतर उस
पुण्य-राशी का परिणाम है, जिसे अपने
अनन्त जन्मों में संचित किया है ।
५. आपका प्रकाश सूर्य तथा चन्द्रमा रुपी दर्पण के
समान सर्वव्याप्त है ।
६. मेरी कामना है कि जितने भी प्राणी उस
सुखावति-व्यूह में जन्म ग्रहण करें वे सभी
तथागत के समान ही सद्धम्म की घोषणा करें ।
७. यहाँ मैं यह निबन्ध लिख रहा हूँ और ये
पुण्य श्लोक भी; मेरी प्रार्थना है कि मुझे
तथागत का साक्षात् दर्शन हो सके,
८. और मैं समस्त प्राणियों सहित सुखावति- व्यूह में
जन्म ग्रहण कर सकूँ ।